टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पुणे अंतर्गत
हिंदी विषय में विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.)
^¯ÖÖ×¬Ö ÆüÖ ¯ÖÃüÖüÖ ¿ÖÖ¬Ö-¯Ö²Ö¬Ö

:: शोध विषय ::

"शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन"

- शोधकर्ता -

दळवे सूर्यकांत माधवराव

- शोध निर्देशक -

डॉ. राजे काशिनाथ गुराप्पा

- अध्ययन केंद्र -

श्री बालमुकुंद लोहिया संस्कृत आणि भारतीय विद्या अध्ययन केंद्र

टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ, १२४२ सदाशिव पेठ, पुणे.

†ŒüÖ²Ö¸ü - 2013

:: प्रमाणपत्र ::

प्रमाणित किया जाता है कि, **श्री. सूर्यकांत माधवराव दळवे** ने **"×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन"** इस विषय पर यह शोध प्रबंध मेरे निर्देशन में टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूणे की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत किया है। यह इनकी मौलिक कृति है। इसे परीक्षणार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाती है।

स्थान : शिराढोण, जि. उस्मानाबाद.

×ÝÖ×£Ö : †ŒÝÖ²Ö¸ü 2013

शोध निर्देशक

डॉ. राजे काशिनाथ गुराप्पा

भूतपूर्व प्राचार्य एवं हिंदी विभागाध्यक्ष

श्री. कुमारस्वामी महाविद्यालय,

†ÖÃÖÖ ×•Ö. »ÖÖÝÖ¸ü

:: ¯Ö×ÛÖ–ÖÖ¯Ö¡Ö ::

मै प्रतिज्ञापूर्वक घोषित करता हूँ कि, **"शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन"** यह शोध प्रबंध शोध निर्देशक **डॉ. राजे काशिनाथ गुराप्पा** जिल्हा लातूर के निर्देशन में मैने स्वयं टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूणे के पीएच.डी.(हिंदी) उपाधि हेतु लिखा है।

यह शोध प्रबंध या इसका कोई भाग अन्यत्र कहीं भी या किसी भी उपाधि अथवा परीक्षण हेतु किसी अन्य विश्वविद्यालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

स्थान : शिराढोण, जि. उस्मानाबाद.

×ÛÖ×£Ö : †ŒÛÖ²Ö¸ü 2013

शोधकर्ता
सूर्यकांत माधवराव दळवे

:: ऋणनिर्देश ::

जब मैंने पीएच.डी. करने का निश्चय किया तब संशोधन का विषय और मार्गदर्शक का सवाल मेरे सम्मुख उपस्थित हुआ। मैं कुछ मार्गदर्शको से मिला विविध विषयों पर चर्चा हुई कई विषय सामने आये। इन सभी विषयोंपर विचार मंथन करने के बाद मेरे दिल की आवाज सुनाई पड़ी। क्यों न मैं डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी पर संशोधन करुँ? मेरे आदरणीय गुरुवर्य प्राचार्य डॉ. राजे काशिनाथ गुराप्पा से विचार विमर्श करने के बाद अंत मे मैंने "शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन" यह विषय संशोधन के लिए चुना। प्राचार्य डॉ. राजे सर मेरे एम.फिल के शोध निर्देशक रहे है। पहले तो प्राचार्य डॉ. राजे सर निर्देशन करने के लिए तैयार थे ही नही, लेकिन अपने छात्र का हट, जिद्द, लगन और परिश्रम को देखकर मार्गदर्शन करने के लिए समर्थन दिया। सच्चाई और ईमानदारी का उदात्त रुप डॉ. राजे सर. दूसरों के हित में अपना हित, त्याग और समर्पण में श्रेष्ठता देखने की मूल प्रवृत्ति है। आदरणीय डॉ. राजे सर ने प्राचार्य की जवाबदारी के बावजूद भी मार्गदर्शन करने के लिए समर्थन दिया। डॉ. राजे सर मुझे अपने कर्तव्य को बार-बार याद दिलाते विचार विमर्श करके मार्गदर्शन करते और मेरा कार्य आगे बढ़ता गया। इस तरह आज डॉ. प्राचार्य राजे सर के कुशल एवं परिपक्व मार्गदर्शन में मैने अपना शोधकार्य पुरा किया। डॉ.प्राचार्य राजे सर ने अपना अमूल्य समय देकर आत्मीयतापूर्वक मार्गदर्शन किया। उनका यह ऋण मैं कभी नहीं भूल सकूँगा।

इस शोधकार्य को प¸ü करने में टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ के अधिष्ठाता डॉ. Áüß¯üü¤ भट्ट एवं पदाधिकारियों का और प्रा.पाटील सर का सहृदय आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे शोधकार्य पूर्ण करने के लिए प्रेरित किया। जहाँ मैं सेवारत हूँ - शरदचंद्र महाविद्यालय, शिराढोण ता.कळंब जि.उस्मानाबाद के संस्थापक अध्यक्ष सन्माननीय प्राचार्य एन.बी. शेख साहब तथा प्राचार्य अफसरजी शेखसाहब का मैं ऋणी हूँ। संस्था के सभी पदाधिकारी एवं सदस्यों का भी मैं ऋण व्यक्त करता हूँ, जिनका मुझे समय-समय पर

मार्गदर्शन मिलता रहा। शरदचंद्र महाविद्यालय शिराढोण के भूतपूर्व प्राचार्य डॉ.शाम पाडे सर जो हमे सदा संशोधन करने के लिए प्रेरित किया करते थे। मेरे महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ.साजेद चाऊस सर जो हर पल हमे आग्रह करते रहते थे कि, संशोधन जल्द से जल्द पूरा हो एक मित्रता की प्रखर वाणी सदा उनमे निहित है। मैं उनका ऋणी हूँ। मेरे परममित्र प्रा. डॉ.उमाकांत जाधव का भी ऋणी हूँ। जिन्होंने मुझमे नयी उम्मीद और प्रेरणा निर्माण करने का काम किया है। मेरे सहपाठी प्रा.डॉ.कदम एस.एस., प्रा.गवळी एस.टी. मेरे भाई डॉ.दळवे बी.पी., दळवे एस.डी., दळवे एस.एस. और मेरे सहपाठी डॉ.जाधव एल.एम, जाधव एच.व्ही. जिनकी प्रेरणा से शोधकार्य समय पर पूरा हो सका। मेरे बड़े भाई श्री.रंगराव दळवे मंझले भाई श्री.चंद्रकांत दळवे का भी मैं हृदय से ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर सहायता प्रदान की। मेरे महाविद्यालय के सहयोगी अध्यापक प्रा.डॉ.शेख ए.आय., प्रा.डॉ. खोंड एस.व्ही., प्रा.साळुंके जे.डी.,प्रा.घोलप के.जी., प्रा.भिसे आर.आर., प्रा. शिरमाळे एम.बी., प्रा.कांबळे बी.व्ही., प्रा.सय्यद ए.एफ., प्रा.पटेल एस.एम., प्रा. डॉ.आकोलकर ए.डी., प्रा.डॉ. सय्यद रब्बानी, प्रा. अत्तार ए.एच., प्रा.अडसुळे एस.पी., प्रा. गंभिरे पी.यु., प्रा. काझी झेड.ए., डॉ. काझी शकीलोद्दिन और महाविद्यालय के सभी सहयोगियों का भी मैं आभार प्रकट करता हूँ।

"शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन" इस विषय पर संदर्भ ग्रंथ, मूल ग्रंथ, पत्र पत्रिकाएँ कोश यह सब समय पर उपलब्ध कर देनेवाले ग्रंथपाल सय्यद मॅडम का भी मैं हृदय से ऋणी हूँ। कानपूर प्रकाशन के यादव जी का भी आभार प्रकट करता हूँ। मेरी एम.ए. की शिक्षा दयानंद कला महाविद्यालय लातूर में पूरी हो गई। गुरुवर्य डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे सर, डॉ. अंबादास देशमुख, उपप्राचार्य डॉ.बिसेन सर के कारण वहाँ ग्रंथालय में ग्रंथों को देखने की अनुमति प्राचार्य डॉ. वामन पाटील सर से मिली। इसलिए मैं इन सभी का आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं उन लोगों का ऋणनिर्देश करना कैसे भूलूँ, जिनके कारण मेरा शोध प्रबंध पूरा हो गया। प्रा.दाताळ एल.बी. जो मुझे सदा प्रोत्साहित करते रहते थे, उनका भी मैं हृदय से ऋणी हूँ। इनके अलावा मेरे स्वर्गवासी पिताजी श्री.माधवराव धोंडीराम दळवे, जिनकी प्रेरणा और अमोघ इच्छाशक्ति का रुप ही आज का मेरा अस्तित्व है। उन्ही के स्वप्नों की

उड़ाण ही यह शोधकार्य रहा है। माता गं.भा. सत्यभामा माधवराव दळवे जिनका मेरे सिर पर कृपाशीर्वाद है। मेरी धर्मपत्नी सौ. गीता दळवे जिन्होंने मुझे अपने व्यस्त कामों से बाहर आकर अध्ययन करने के लिए पुष्टि दी। मेरी पुत्री कु.ज्ञानेश्वरी दळवे और कुमारी भगवती दळवे जिन्होंने मेरे अध्ययन में कभी बाधा नहीं डाली, बालक्रीडा मनोवृत्ति के होकर भी अपना खेलना-कूदना दूसरों के साथ करने से शोधकार्य में गति आ गई। मेरी साली कुमारी राधा जाधव और दूसरी साली कुमारी लता जाधव जो इंजिनिअर है। जिनका मुझे हर समय शोधकार्य में सहयोग मिला इनका भी मैं आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य मानता हूँ।

पुन:श्च एक बार मैं कहना चाहूँगा कि मैं डॉ. राजे काशिनाथ गुराप्पा सर के ऋण से कदापि मुक्त नहीं हो सकता। इस शोधकार्य को पूर्ण करने का संपूर्ण श्रेय उन्हीं का है। उनके उचित निर्देशन में मैं उत्साह के साथ कार्य करता रहा। मेरे स्वर्गवासी पिताजी माधवराव दळवे जो मुझे बचपन में कहा करते थे तुझे अध्यापक बनना है, ऊँची शिक्षा गृहण करनी है। उन्ही के शुभवचनों से मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ।

यह शोधकार्य पूर्ण करने में मेरी पूजनीय माताजी गं.भा.सत्यभामा दळवे की मु¥Ö ¯Ö¸ü सदैव प्रेरणा एवं आशीर्वाद रहा है। मैं यह शोधकार्य पूजनीय माता-पिता के आशीर्वाद से ही पूर्ण कर सका हूँ।

इस शोध-प्रबंध को अत्यंत अल्प समय में निर्दोष तथा सुंदर रुप में मुद्रित करने हेतु श्री.तानाजी माने को हृदय से धन्यवाद देता हूँ उनकी गजब की टंकलेखन क्षमता ÃÖ ´Ö †x³Ö³ÖŸÖ Æü…

स्थान : शिराढोण, जि. उस्मानाबाद.

xÖ×£Ö : †ŒÖ²Ö¸ü 2013

सूर्यकांत माधवराव दळवे

:: प्राक्कथन ::

मैं बचपन से ही हिंदी इस विषय में रुचि रखता आया हूँ। मेरे मानसपटल पर ग्रामकथाकार डॉ.शिवप्रसाद सिंहजी की छबी सदैव अंकित रही है। ग्रामकथाकारों में शिवप्रसाद सिंह जी द्वारा समाज में पीड़ित, शोषित, अस्पृश्य समाज की दयनीय स्थिती में नया भावबोध डालने की शक्ति के कारण मैं उनके साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ। किसी भी व्यक्ति में चेतना का स्वर देनेवाला कोई न कोई होता है। मेरे जीवन में भी ऐसा ही प्रसंग आया जिसका श्रेय मेरे माता-पिता को देकर कृतार्थ होता हूँ। बहुत प्रयासों के बावजूद मुझे संशोधन कार्य में यश नजर आया, जिससे मैं प्रसन्न होकर, **"शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन"** इस विषय पर संशोधन करने में सफल हो गया।

प्रस्तुत शोधकार्य को मैने छः अध्यायों में विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय - 'डॉ. शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' है। इस अध्याय के अंतर्गत डॉ.शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व के अंतर्गत उनकी जीवनी में जन्म, परिवार, शिक्षा, विवाह तथा संतती, नौकरी एवं मृत्यु का विस्तारपूर्व विवेचन किया गया है। व्यक्तित्व में बाह्य रुप और आंतरिक रुप देखे जाते है। बाह्य रुप में शिवप्रसादजी अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी थे। प्रथम दर्शन में ही उनके धीर-गंभीर पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव सहज रुप से देखने को मिलता है। शिवप्रसाद जी का रहन-सहन शारीरिक विशेषताओंका विवेचन किया गया है। आंतरिक व्यक्तित्व के अंतर्गत रुचि रुझान भाव एवं विचारों को चित्रित किया गया है। अन्तः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर उनके व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पहलू इस प्रकार थे- शिवप्रसाद सिंह का संपूर्ण जीवन ही प्रामाणिकता का उदाहरण है। विनम्रता, संघर्षशीलता उनके जीवन का अविभाज्य अंग बना है। स्पष्टवादिता, संवेदनशीलता, अध्ययनशीलता, गम्भीरता, चिंतनशीलता आस्तिकता और मानवता उनमें ठुस-ठुसकर भरी हुई है। डॉ.शिवप्रसाद सिंह के कृतित्व के अंतर्गत कहानी साहित्य, उपन्यास साहित्य, निबंध साहित्य, शोध एवं समीक्षा, अन्य साहित्यिक विधाएँ, संपादकीय कार्य, काव्य, नाटक, जीवनी, रिपोर्ताज, सम्मान एवं पुरस्कार का विवेचन किया गया है। शिवप्रसाद सिंह की विचारधारा के

अंतर्गत नारी विषयक विचारधारा, समाज विषयक विचारधारा, लोकतंत्र विषयक विचारधारा, साहित्य विषयक विचारधारा, साहित्यकार विषयक विचार, भाषा विषयक विचारधारा का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक - 'डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य विधा का उद्भव और विकास' है। इस अध्याय के अंतर्गत डॉ.शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास साहित्य का उद्भव विकास एवं सामान्य परिचय दिया गया है। कहानी साहित्य में अंधकूप (सम्पूर्ण कहानियाँ) एक यात्रा सतह के नीचे (सम्पूर्ण कहानियाँ भाग -२), अमृता (सम्पूर्ण कहानियाँ भाग - ३) कुल मिलाकर ८५ कहानियों का सामान्य परिचय दिया गया है। नाटक साहित्य के अंतर्गत 'घाटियाँ गूंजती है' सिर्फ एक ही नाटक का सामान्य परिचय दिया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी के तीन विधाओं का अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक - 'डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग - संघर्ष है। इस अध्याय में भारतीय वर्ग-संघर्ष की पृष्ठभूमि, भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष का प्रादुर्भाव भारतीय वर्णव्यवस्था वर्ग-संघर्ष और डॉ. शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य, उपन्यास साहित्य में वर्ग - संघर्ष, कहानी साहित्य में वर्ग-संघर्ष, नाटक साहित्य में वर्ग-संघर्ष आदि का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय का शीर्षक- 'डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का विवेचन' है। इस अध्याय में डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का विवेचन, आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण, राजनीतिक समस्याओं का विवेचन, धार्मिक विवेचन, और सांस्कृतिक विवेचन किया गया है।

बदलते सामाजिक संदर्भ में समाज में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ, परिवर्तनशील समाज में बदलते सामाजिक मूल्य, सामाजिक परिवेश में आधुनिकता, मनुष्य के स्वभावगत स्वार्थ, यौन चेतना, शहरी मूल्यों के प्रभाव के कारण भारतीय ग्रामीण परिवेश में नैतिक मूल्यों के विघटन, उच्च निम्न जातियों के यौन-संबंध, संबंधो में तनाव और दाम्पत्य संबंधो में विघटन, माँ-बाप और संतान के बीच संबंधो में विघटन, ग्रामीण परिवेश में नारी की परिवर्तित मानसिकता, नारी और विवाह। इन सभी बदलते संदर्भो का विवेचन किया गया है।

बदलते आर्थिक संदर्भ में चित्रित आर्थिक समस्याएँ, आर्थिक दुरवस्था और उसके कारण, समाज का सदियों से शोषण करनेवाला जमींदार वर्ग, शोषक प्रवृत्ति की जड़ सरकारी अफसर, जनता का वर्दी के नामपर आर्थिक शोषण करनेवाला पुलिस वर्ग, दैवी और भौतिक आपदाएँ, अंधश्रध्दा के नाम पर जनता का आर्थिक शोषण करनेवाले ढोंगी साधू, अर्थ के कारण बेकारी की समस्याएँ, रोजी-रोटी की समस्या, जमींदारी उन्मूलन के बाद जमींदारों की स्थिती, नगरोन्मुखता के कारण आर्थिक शोषण। इन अलग-अलग आर्थिक संदर्भो का विवेचन किया गया है।

बदलते राजनीतिक समस्याओं के संदर्भ में राजनीति तथा साहित्य का स्वरुप, डॉ.शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में व्यक्त राजनीतिक स्वर, ग्रामीण परिवेश में नवीन भाव क्रांती, सामंतीय जीवन का विघटन, नेताओं की राजनीतिक अवसरवादिता, गांधीवाद, छात्र आन्दोलन,ग्राम पंचायते। इन सभी पहलूओं का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है।

बदलते धार्मिक समस्याओं के संदर्भ मे धर्म का अर्थ एवं धर्म की परिभाषा, धर्म और समाज का अटूट संबंध धर्म और बदलते सन्दर्भ, ग्रामीण समाज में व्याप्त अंधविश्वास के कारण समाज का नैतिक पतन, धार्मिक एकता एवं विकृतियां, धर्म के नाम पर बाह्याचार, भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताएँ एवं अंधविश्वास के नाम पर होता समाज का शोषण, भौतिक स्वार्थो की पूर्ति हेतू मनौतियाँ, देवी-देवताओं की पूजा, †Öx¤|...

बदलते सांस्कृतिक संदर्भ में डॉ.शिप्रसाद सिंह जी के साहित्य का सांस्कृतिक विवेचन, संस्कृति की परिभाषा, संस्कृति और सभ्यता, भारतीय ग्रामीण संस्कृति के विविध पहलू, विवाह की अलग-अलग प्रथा तीज चरण छूना, प्रेमालाप, छटी बरही, पर्व त्यौहार मेले, कीर्तन लोकगीत और लोकनृत्य। इस प्रकार बदलते हुए सांस्कृतिक स्वरुप, मूल्यों एवं विशेषताओं का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है। पंचम अध्याय का शीर्षक-'डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का शिल्प' है। इस अध्याय के अंतर्गत शैली, भाषा, के कलात्मक प्रयोग, अलंकार, शब्द संपत्ति का विवेचन किया गया है। शैली में वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली (मैं शैली) पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैशबैक शैली) वार्तालाप या संवाद शैली, चेतनाप्रवाही शैली, पत्रात्मक शैली, डायरी शैली,

प्रतीकात्मक शैली का विवेचन किया गया है। भाषा के अंतर्गत पात्रानुसार भाषा, भाषा का वैशिष्ट्य, लोकभाषा का हिंदीकरण चित्रात्मक भाषा, काव्यात्मक भाषा, ध्वन्यात्मकता। भाषा के कलात्मक प्रयोग में प्रतिक योजना, बिंब विधान, दृश्य बिंब, श्रव्य बिंब, घ्राण बिंब, स्पर्श बिंब, स्वाद बिंब, मिथक, संकेत। अलंकार : पात्रो के शारीरिक अंगो के लिए प्रयुक्त उपमान, मानवीकरण, रुपक आदि। शब्द संपत्ति के अंतर्गत ठेठ ग्रामीण शब्द, तत्सम शब्द, तद्‌भव शब्द, ऊर्दू शब्द, अंग्रेजी शब्द, अरबी-फारशी शब्द, गुजराती शब्द, बंगाली शब्द, बाजारु शब्द और गालियाँ, मुहावरे, कहावते आदि का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है। कोमल और निर्मल भावों से भाषा लचीली बनती हुई नजर आती है। भाषा जो कि विचारों और भावों के आदान-प्रदान का साधन है। डॉ.शिवप्रसाद सिंह के पास वह समर्थ भाषा है जो ह्रदय में उठनेवाले नाना भावों के मूर्तीकरण में सफल है। उनके पास वह विशाल शब्द भंडार है जो ह्रदय के हर सुख-दुःख के भाव को, मस्तिष्क हर चिंतन को और लौकिक-पारलौकिक जगत से जुड़े हर अनुभव को वाणी देने में सक्षम है। निश्चय ही भाषा और शैली की दृष्टि से डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी का लेखन पर्याप्त धनी है।

शोधकार्य का षष्टम् और अंतिम अध्याय 'निष्कर्ष एवं मूल्यांकन' है। इस अध्याय ´Ö **'शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन'** का मूल्यांकन किया गया है एवं इस अनुसंधान के निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए है जो निम्नवत हैं-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में व्यक्त सामाजिक नीति मूल्यों का ऱ्हास हो रहा है, उन सामाजिक नीति मूल्यों का जतन होना अनिवार्य है। नहीं तो मानव अपनी मानवता को खो देगा।

गद्य साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विषमता को खत्म करना अनिवार्य है। शिक्षा और रोजगार के साधनों में बढोत्तरी करना आवश्यक है। आधुनिक युग में संयुक्त परिवार टूट कर बिखर रहे है। नई पीढ़ी के रुमानी प्रवृत्ति के कारण समाज के नैतिक मूल्यों में गिरावट हो रही है। रुमानी प्रवृत्ती में परिवर्तन लाना ही हमारा उत्तरदायित्व है। सांस्कृतिक त्यौहार विशिष्ट वर्ग या क्षेत्र को एक परिधि में बनाये रखने का काम करते है।

:: विषयानुक्रमणिका ::

अध्याय	*अध्याय के नाम*	¯ÖÂŠ
❍	मुखपृष्ठ	I
❍	प्रमाणपत्र	II
❍	¯Ö×ŸÖ–ÖÖ¯Ö¡Ö	III
❍	ऋणनिर्देश	IV
❍	प्राक्कथन	VII
❍	विषयानुक्रमणिका	XI
❍	शोध प्रबंध की रुपरेखा	XII
¯Ö£Ö´Ö	डॉ. शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1-49
द्वितीय	डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य विधा का उद्भव और विकास	50-145
तृतीय	डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष	146-186
“ÖŸÖ£Ö	डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का विवेचन	187-382
¯Ö“Ö´Ö	डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का शिल्प	383-426
ÂÖÂŠ´Ö	निष्कर्ष एवं मूल्यांकन	427-456
❍	ग्रंथ सूची	457-463

शोध प्रबंध की रुपरेखा

"शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन"

भूमिका :

साहित्यकार और कथाकार के रुप में डॉ.शिवप्रसाद सिंह का सातवे दशक में अभुतपूर्व योगदान रहा है। स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य के सशक्त हस्तांक्षर डॉ. शिवप्रसाद सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार है। शिवप्रसाद सिंह जैसे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्तित्व को शब्दों में पकडना असंभव नहीं तो कठीन जरुर है। शिवप्रसाद सिंह के बाह्य व्यक्तित्व में गहन मौन और मुक्तहास जैसी दो विरोधाकारी स्थितियों का साक्षात्कार होता है। धीर-गंभीर स्वभाव एवं कम बाते करना उनके इस व्यक्तित्व की मुख्य विशेषतः है। सिंहजी का जीवन संघर्षो की गाथा है। डॉ.शिवप्रसाद सिंह मनुष्यता के संदर्भ में का कथन 'मैं तो उस पार्टी का सदस्य हूँ जिसके सामने मनुष्य से बड़ी कोई इकाई नहीं है, मनुष्यता से बडा कोई मजहब नहीं है - मैं उसी की आत्मा के अपूर्व सौंदर्य का चितेरा हूँ और इसी सत्य की विजय के लिए सचेष्ट हूँ। जो भी इसके पक्ष में है, इसके साथ हैं, उनके साथ दिखाई पडता हूँ। जो इसका नाम लेकर अपना स्वार्थ साधते हैं- मै उनका पर्दाफाश करता हूँ।'

डॉ.शिवप्रसाद सिंह काम मन की तरंग पर करते थे। ठिक ढंग से करिअर बनानेवालों में से वे नही थे। उन्हे जो अच्छा लगता था, वही वे करते थे। शहर में रहकर भी उनका मन ग्रामीण ही था। यह सिंहजी के व्यक्तित्व की विशेषता है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में ज्यादातर ग्रामीण परिवेश का ही अंकन हुआ है। ग्रामीण समाज में प्रचलित जातिवाद के संदर्भ में सिंह जी कहते हैं- "भारतीय लोकतंत्र का सबसे बड़ा सडा हुआ कैसरग्रस्त जो हिस्सा है उसका नाम है जातिवाद।" इस जातिवाद ने समाज को खोखला बना दिया है। जातीव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, अंधश्रध्दा इन सबकी चक्की में पिसता जा रहा भारतीय ग्रामीण समाज और उनका किया जा रहा श्रम, अर्थ और शरीर का शोषण इसके खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत किसी में भी नहीं थी। उसको वाणी देने का सफल प्रयास ही सिंह जी का

गद्य साहित्य रहा है।

डॉ.शिवप्रसाद सिंह सक्षम भारत को देखना चाहते थे, जिसमे न जातिवाद हो, न साम्प्रदायिकता हो, न नारी का शोषण हो, न आर्थिक फासला हो, न भ्रष्टाचार हो, इस प्रकार का सपना गद्य साहित्य के माध्यम से व्यक्त हुआ है। आजादी के बाद समाज में निश्चित रुप से परिवर्तन हुआ है। समाज में प्रचलित सडी-गली रुढी परंपरा, अंधश्रध्दा पर विश्वास करनेवाला समाज स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा के कारण उनके आचार, विचार, रहन-सहन, खानपान में परिवर्तन आया है। फिर भी ग्रामीण समाज में शिक्षा प्रसार न होने के कारण अंधश्रध्दा रुढी परंपरा का बोलबाला अभी भी बना हुआ है। ग्रामीण नारी की स्थिति कुछ अच्छी खासी नही है। हमारी नारी जानवर जैसी बद्त्तर और नरकीय जिंदगी गुजार रही है। नारी को जिस संस्कृति में पूजा जाता है, उसी संस्कृति में उसे चार दिवारों में बंदिनी बनाकर बंध किया गया है। हर एक अत्याचार की कीमत नारी को ही चुकानी पडती है। आज नारी सभी बंधनों को तोडकर बदलते हुऐ परिवेश में खुद में परिवर्तन कर, पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। स्त्री-पुरुष समानता की ओर आज का समाज विमुख हो रहा है। यह शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य की, बहुत बड़ी उपलब्धि है।

डॉ.शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य जमींदारी प्रथा से लेकर आझाद भारत के कुल मिलाकर लगभग अर्धशती के जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है। इसलिए इस बिंदू पर कथा-यात्रा का विकास ग्रामीण जीवन का ऐतिहासिक विकास बन जाता है। भारतीय संस्कृति विश्व मे सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है, फिर भी आधी आबादीवाली स्त्री समाज में दासी या बंदिनी ही है। पाश्चात्य संस्कारों में भारतीय संस्कृति नामशेष होती जा रही है।

परिवर्तन सृष्टि का नियम है, और इस नियम के अनुसार शोषित वर्ग में भी परीवर्तन आना अनिवार्य है। इसी परिवर्तन के कारण आज शोषित वर्ग शोषक वर्ग के सभी बंधानों को तोड़ देता है और एक नई क्रांती की सूचना देता है। जो शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है। आज गाँववालो में कोई आपसी स्नेह, लगाव नही रहा। गरीब मजदूरों का दोहरा शोषण हो रहा है। वर्ग-संघर्ष का भयानक और बीभत्स रुप सामने आ रहा है। स्त्रियाँ, विवाहिताओं पर सरेआम अत्याचार हो रहे थे। बहू बेटियाँ सरेआम शक्ति संपन्न लोगोंद्वारा बेईज्जत और आवारा, शक्तिहीन नई पीढ़ी

के शिकार हो रही है। नवयुवतियों को अर्थ के अभाव में बूढ़ों के गले मढ दिया जा रहा है। इज्जत के नाम पर बेटों को बचाने के लिए नारी को अपमानित करने की परंपरा इस यात्रा का अंग बन गयी है। इस समाज ने पूंजी के आधार पर साम्राज्यवाद को स्वीकारा है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन की यह यात्रा नरकिय जीवन के उत्कृष्टतम रुप तक पहुंच गयी है। नवयुवकों में यथार्थ को झेलने की न तो शक्ति है न धैर्य इस यात्रा के पढ़े लिखे युवा पथिक अपनी रुमानी प्रवृत्ति को ही उजागर करते है।

भारतीय समाज बहुत सारी समस्याओं से घिरा हुआ है। सुशिक्षित बेरोजगार युवको की समस्या आज इतना उग्र रुप धारण कर गई है, जिसके कारण नगरभिमुखता चोरी, डकैती, दहशतवाद, नक्षलवाद जैसी समाज विघातक प्रवृत्ति की ओर नवयुवक झुकता जा रहा है। समाज आज बुरी आदतों का शिकार बन गया है, और मन में स्वैराचार की प्रवृत्ति पनप रही है जिसके कारण समाज का अधपतन हो रहा है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक समस्याओं को सामने रखकर कलम चलाई है। जिससे समाज में परिवर्तन हो और राष्ट्र प्रगति में सार्थक हो। समाज में जो पिछडी जन जातियाँ है उनमे परिवर्तन आये, उनके दु:ख दर्द, अज्ञान आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का कार्य गद्य साहित्य में किया गया है।

आज दहेज समस्या आम समस्या बनकर रह गयी है। जो भारतीय समाज पर लगा हुआ बहुत बड़ा कलंक है। जो खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा है। दहेज के नाम पर आर्थिक शोषण किया जा रहा है। नारी का शारीरिक और मानसिक शोषण को भी पाठक के सामने लाने का प्रयास किया गया है। अंधश्रध्दा और कुप्रथाओं पर अंकुश लगाया जाए इसके संबंध में कानून बनाया गया फिर भी आत्महत्या और हत्या हो रही है।

पतिव्रता नारी को वेश्या बनने के लिए मजबूर किया जा रहा है। पेट की आग बुझाने के लिए तन बेचने का रास्ता अपनाना पड रहा है। समाज में सदियों से प्रचलित अनिष्ठ रुढी परंपराओं पर तिखा प्रहार शिवप्रसाद सिंह ने किया है। उन समस्याओं को हल करने का प्रयास भी किया गया है। परिवर्तन समाज का अविभाज्य अंग है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। इसके अनुसार आज समाज में खुले आम आंतरजातीय विवाह होने लगे है। जाति-पाती के बंधन आधुनिक युग में कुछ ढिले पड़े है। जो एक परिवर्तनवादी

समाज की नयी रोशनी है।

शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य साहित्य में विभिन्न जाति धर्मो में बटे हुए समाज को उत्सव, त्यौहारों के डोर से एकसुत्र में बांधने का सफल प्रयास किया है। उत्सव, त्यौहार के अंकन के द्वारा समाज में एकता को दर्शाना उनका प्रमुख उद्देश रहा है। फिर भी हर एक समाज अपने-अपने जाति धर्म को ऐसा चिपककर बैठा है, मर जायेगा लेकिन उसे छोडने का नाम नही लेगा। आपसी स्वार्थ, धर्मांध प्रवृत्ति इसके लिए अहितकारक रही है।

साहित्य समाज का दर्पन है इस उक्ति के अनुरुप साहित्य में हुए परिवर्तन को महसुस किया जा सकता है। डॉ.शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कलम के माध्यम से परिवर्तनवादी मानसिकता को अभिव्यक्त किया है। **'शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन'** में सभी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक समस्याओं के साथ नीति-मूल्यों में गिरावट, बढ़ता हुआ वर्ग-संघर्ष, शोषण, अंधश्रध्दा, रुढी परंपरा, नारी की स्थिति, आधुनिक नारी की स्वच्छंद वृत्ति इन सभी का विवेचनात्मक अध्ययन बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया गया है।

१) अनुसंधान का महत्व :

मानव समाजशिल प्राणी होने के कारण वह समाज का अविभाज्य अंग है। हर एक व्यक्ति को अपने ढंग के अनुसार जीवन जीने का अधिकार है। लेकिन वास्तव में ऐसा नही है। समाज में कई लोग ऐसी कुप्रवृत्ति के होते है, जो दूसरों का अधिकार छिन लेते है। आदमी को आदमी की तरह जीवन जीने ही नहीं देते बल्कि जानवर से भी ज्यादा बद्त्तर जिंदगी गुजारनी पड़ती है। अर्थ का अभाव और अशिक्षा के कारण समाज का आधा हिस्सा कमजोर है। ऐसे लोगों की माली हालत में सुधार के कई उपाय शिवप्रसाद सिंह के साहित्य की देन है। समाज में प्रचलित वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था के बंधन अब ढिले हो रहे है। संयुक्त परिवार नई सोच के कारण विभक्त हो रहे है। उन सभी कारणों को भी खोजने का प्रयास अपने साहित्य में किया गया है।

शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य साहित्य में समाज के हर एक कोने को छुने का प्रयास किया है। ऐसी कौनसी भी समस्या नही है, जो उनके साहित्य का अंग न बनी

हो। ग्रामीण स्तर के निम्नतम पात्रों को साहित्य का हिरो बनाया है। महामानव बनने के लिए राजपरिवार में जन्म लेना बहुत बड़ी विडम्बना है। जाति वंश से मानव महामानव नहीं बनता, तो अपने आचार, विचार से महामानव बनता है। मानवता का यह संदेश उनके साहित्य का अभिन्न अंग है।

समाज के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक समस्याओं को समाज के सामने उजागर करना ही प्रमुख उद्‌देश रहा है। सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों का पतन हो रहा था। वहीं पर कुछ नये मूल्यों की प्रतिष्ठा हो रही थी, पुराने मूल्यों को हेय समझकर उनकी उपेक्षा होने लगी थी। समाज का सभी ओर से पतन हो रहा था। उनको बनाये रखने के लिए डॉ. शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य सहायक सिध्द हुआ Æ… ‡ÃÖ×»Ö< **"शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन"** पर समग्रता से अध्ययन करना।

२) शोध-कार्य का उद्‌देश्य :

प्रस्तुत शोध प्रबंध के माध्यम से निम्न प्रवृत्तियों का अंकन करना प्रमुख उद्देश्य ¸ÆÖ Æ-

1. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में सिंह जी का स्थान निश्चित करना।
2. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में ग्रामीण समाज की आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करना।
3. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में हो रहे सामाजिक परिवर्तन को उजागर करना।
4. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष की स्थिती को स्पष्ट करना।
5. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में ग्रामीण समाज में शिक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करना।
6. संयुक्त परिवार विभक्त हो रहे है, उन कारणों का शोध लेना।
7. ग्रामीण समाज में नारी की स्थिती को उजागर करना।
8. उत्सव, त्यौहारों के माध्यम से एकता को बनाये रखना।
9. सिंह जी के साहित्य में नैतिक मूल्यों की हो रही क्षति को स्पष्ट करना।

10. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विषमता को कम करना।

11. सिंह जी की भाषा-शैली और नए-नए प्रयोगों के माध्यम से पहचाने जाते हैं उसे समझाना।

३) अनुसंधान के सर्वेक्षण :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के हर विधा पर बहुत सारे विद्वानोंने अनुसंधान कार्य किया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास साहित्य पर आलोचक और विद्वानों ने संशोधनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन किया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के कहानी विधा पर भी आलोचनात्मक अनुसंधान किया गया है। नाटक विधा का भी आलोचनात्मक अनुसंधान किया गया है। निबंध विधा पर भी अनुसंधान कार्य किया गया है। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध इन सभी विषयों पर स्वतंत्र रुप से अनुसंधान कार्य किया गया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी पर आलोचनात्मक अनुसंधान डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी तथा डॉ. कामेश्वर प्रसाद सिंह जी ने प्रमुखता से किया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह पर बहुत सारे विद्वानोंने अनुसंधान कार्य किया है।

लेकिन मैने 'शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन' में उनके तीन विधाओं का विवेचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। जो सभी अनुसंधानों से अलग है।

४) अनुसंधान की व्याप्ती और मर्यादा :

"शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन" इस विषय पर अध्ययन करते समय विषय के संबंध में मर्यादा होती है। प्रमुखता से इस शोध-प्रबंध में शिवप्रसाद सिंह के संपूर्ण साहित्य की जानकारी न लेते हुए उनके उपन्यास साहित्य, कहानी साहित्य और 'घाटियाँ गूँजती है' एक नाटक का ही विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अनुसंधान का अध्ययन उपन्यास, कहानी और नाटक साहित्य तक ही सिमित रखा गया है। इसलिए इससे जो निष्कर्ष निकलेंगे वे निष्कर्ष संपूर्ण साहित्य के निष्कर्षो की कसौटी पर खरे नहीं उतरेंगे।

५) अनुसंधान गृहीतके :

अनुसंधान गृहीतकों के अंतर्गत :

प्रस्तुत शोध प्रबंध में निम्नलिखित गृहितके सामने रखे थे।

1. पूंजीवाद के आधार पर साम्राज्यवाद को उजागर करना।
2. पढ़े लिखे युवा पिढी के रुमानी प्रवृत्ति को उजागर करना।
3. सामाजिक और सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों की क्षति को स्पष्ट करना।
4. शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य के माध्यम से सामाजिक विषमता को कम करना।
5. सामाजिक समस्याओं का हल ढूंढना।
6. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में चित्रित वर्ग-विषमता को कम करना।
7. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में नारी शोषण को वाणी देना।
8. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में चित्रित अनमेल विवाह और दहेज समस्या को समाज के सामने लाना।
9. समाज में वेश्याओं की मानसिक स्थिती को स्पष्ट करना।
10. शिवप्रसाद सिंह जी के साहित्य में आंतरजातीय विवाह पर प्रकाश डालना।
11. सुशिक्षित युवकों की बढ़ती बेरोजगारी की समस्या के कारणों को स्पष्ट करना।
12. राष्ट्रीय एकात्मता को स्पष्ट करना।
13. पुराने और नय मूल्यों मे हो रही टकराहट को स्पष्ट करना।

६) सामग्री संकलन :

शोधकार्य और सामग्री संकलन की प्रक्रिया अपने-आप में बड़ा कठिन कार्य है। वैज्ञानिक शोध के विकास होते हुए भी अहिंदी भाषी प्रदेशों में खासकर ग्रामांचल प्रदेश में रहनेवाले शोधकर्ताओं के लिए शोध-सामग्री सहजता-सरलता से प्राप्त हो पाना अपने-आप में बड़ा कठिन काम है। मुझे भी शिवप्रसाद सिंह के रचनाओं को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकाशन संस्थाओं का सहारा लेना पड़ा है।

अनुसंधान में सामग्री संकलन के स्त्रोतों में

* द्वितीय स्त्रोत के अंतर्गत सिंह जी के मुल ग्रंथ, आलोचनात्मक ग्रंथ, अनुकालिक

प्रकाशने, नियतकालिके, पत्र-पत्रिकाएँ, कोश, आदि का आधार लिया गया है।

७) अनुसंधान की पध्दति :

अनुसंधान में अंत:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य दोनो पध्दतियों का उपयोग किया गया है। अंत:साक्ष्य में साहित्यकार ने साहित्य में जो कहा है तथा बहि:साक्ष्य में समकालीन आलोचक, रचनाकार तथा पत्र-पत्रिकाओं में सिंह जी के गद्य साहित्य के संबंध में कथन को व्यक्त किया गया है। उसी प्रकार, व्याख्यात्मक, वर्णनात्मक, चित्रात्मक, विश्लेषणात्मक, मनोवैज्ञानिक, आदि पध्दतियों का उपयोग किया गया है।

शोध विषय की रुपरेखा :

प्रस्तुत शोध का अध्ययन छ: अध्यायों में किया गया है, अन्त में संदर्भ ग्रंथ सूची दी गयी है।

प्रथम अध्याय	-	शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व एंव कृतित्व.
द्वितीय अध्याय	-	शिवप्रसाद सिंह के गद्य विधा का उदभव और विकास
तृतीय अध्याय	-	शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष
चतुर्थ अध्याय	-	शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का विवेचन
पंचम अध्याय	-	शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का शिल्प
षष्ठ अध्याय	-	निष्कर्ष एवं मूल्यांकन

इन अध्यायों का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है -

"शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' इस प्रथम अध्याय में शिवप्रसाद सिंह का बाह्य व्यक्तित्व और आंतरिक व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को चित्रित किया गया है। सिंह जी का जन्म तथा जन्मस्थान, पारिवारिक जीवन, शिक्षा, अध्यापन कार्य, विचारधारा आदि के संदर्भ में सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है। १९ अगस्त १९२८ को वाराणसी जिले के जमनियाँ गांव में जमींदार परिवार में जन्म हुआ। काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में ३२ वर्षो तक अध्यापन कार्य कुशलता, ईमानदारी और तन्मयता के साथ पूरा किया। २८ सितम्बर १९९८ को बनारस के सुंदरलाल अस्पताल में सबसे विदा

ली। बहुत ही कृतार्थता के साथ हिन्दी साहित्य जगत ने एक महान साहित्यकार को खो दिया हमेशा-हमेशा के लिए। डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। बाह्य व्यक्तित्व में गहन मौन और मुक्तहास जैसी दो विरोधाकारी स्थितियों का साक्षात्कार होता है। गुर गंभीर स्वभाव एवं कम बाते करना उनके इस व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता है। सिंह जी का आन्तरिक व्यक्तित्व विविध पहलुओं से युक्त था। जिसमें रुचि, रुझाना, भाव एवं विचारों को चित्रित किया जाता है। बेहद प्रतिभा संपन्न और अदभूत पढाकु। पुराने नये साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र, ज्योतिष तंत्र साधना का रात दिन अध्ययन मंथन किया। प्रामाणिकता, विनम्रता, संघर्षशीलता, अध्ययनशीलता, गंभीरता, चिंतनशीलता उनके जीवन के आधारस्तंभ थे। प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हमेशा अपने समय से आगे देखता है। परिणामतः उसका समय उसे ठीक से पहचान नहीं पाता। परन्तु बाद का समय तो उसे स्वीकार करता ही है। साहित्य निर्माण में व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है इसे प्रस्तुत करने का यहाँ एक प्रामाणिक प्रयास है।

'शिवप्रसाद सिंह के गद्य विधा का उद्‌भव और विकास' इस द्वितीय अध्याय में प्रमुखता से सिंह जी के उपन्यास, कहानी और नाटक विधाओं का उद्‌भव और विकास का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। नौ उपन्यास तीन कहानी संग्रह और घाटियाँ गूंजती हैं नाटक सम्मिलीत है। सिंह जी ने इसके अलावा निबंध, समीक्षा को अपनी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया और इन विधा क्षेत्रो में उन्होंने मत्त्वपूर्ण बहुमूल्य सृष्टि करके हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने जीवनी एवं संस्मरण भी लिखे सिंह जी के तीन विधा का संक्षिप्त में सोउद्देश्य परिचय दिया गया है।

'शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष' इस तृतीय अध्याय में सिंह जी के गद्य साहित्य में चित्रित वर्ग-संघर्ष को स्पष्ट किया गया है। भारतीय वर्ग-संघर्ष की पृष्ठभूमि प्राचीनकाल में भी वैचारिक विषमता के कारण शास्त्रार्थ का आयोजन किया जाता था। भारतीय वर्ग-संघर्ष के सम्बन्ध मे यह एक अति प्राचीन परम्परा है। लेकिन आधुनिक समाज में एक ओर वैभवशाली लोग और सम्पत्तिहीन लोगों के बीच या पूंजीपतियों एवं मजदूरों के बीच प्राप्त वर्ग-संघर्ष साहित्य में दिखाई देता है।

धनवान एवं निर्धनों, शक्तिशाली एवं निर्बलों, पूंजीपति और मजदूरों का शोषण तो आज की पृष्ठभूमि में भी रहा है। भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष का प्रादुर्भाव भक्तिकालीन साहित्य में भी मिलती है। हमारे भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष प्राचीनकाल से ही प्रारम्भ हो चुका था। जिसका मुखरित रुप आज सर्वत्र दिखाई दे रहा है। वर्ग-संघर्ष का सिध्दान्त कार्ल मार्क्स की बहुत बड़ी उपज है। मनुष्य की कृतियाँ ही इतिहास का निर्माण करती है। कर्म इच्छाओं के द्वारा संचलित होते है। इच्छाएँ विचारों का प्रतिरुप है। विचार मनुष्य की उन सामाजिक परिस्थितियों का ही प्रतिबिम्ब है जिनके अन्तर्गत वह रहता है।

वर्ग-संघर्ष और सिंह जी का गद्य साहित्य में मानव को जीवन जीते समय हर पल अलग-अलग समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उन सभी समस्याओं की उपज ही संघर्ष है। सिंह जी के उपन्यास साहित्य, कहानी साहित्य और नाटक साहित्य में उच्च-निम्न का वर्ग-संघर्ष भर पड़ा है। वर्ग-संघर्ष ही उनके साहित्य की आत्मा है। समाज में पिछडे दलित दुःखी लोगों की प्रतिवाणी ही सिंह जी का साहित्य है। समाज से बहिष्कृत, उपेक्षित समाज को जानवर से भी बद्दत्तर जिंदगी गुजारनी पड रही थी।

उनको समाज में जानवर से मानव बनाने का सफल प्रयास साहित्य में हुआ है। नारी तो सदियों से प्रताड़ित शोषीत है, उसे उसके अधिकार, कर्तव्य, और आत्मविश्वास, आत्मसम्मान देने का काम साहित्य में किया है। जो पुरुषों के कंधो से कंधा मिलाकर काम कर सके, जिसका फलस्वरुप आज नारी समाज में सम्मान से जिवनयापन कर रही है। फिर भी समाज को वर्ग-संघर्ष का लगा हुआ काला दाग खत्म होने का नाम ही नही ले रहा है। 'शैलूष', 'अलग-अलग वैतरणी' वर्ग-संघर्ष के साक्ष्य है।

'शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का विवेचन' इस चतुर्थ अध्याय में सामाजिक आर्थिक, धार्मिक, राजैतिक, सांस्कृतिक सामस्याओं का हल ढूंढने का प्रयास किया गया Æ…

बदलते सामाजिक संदर्भ में समाज में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ, परिवर्तनशील समाज में बदलते सामाजिक मूल्य, सामाजिक परिवेश में आधुनिकता सिंह जी के साहित्य में ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश में मानव जीवन में व्याप्त कष्ट, संत्रास, घुटन,

संघर्ष आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है। सामाजिक मूल्य देशकाल एवं परिस्थितीयों के अनुरुप परिवर्तित होते है। पुराने मूल्यों का ऱ्हास और नये मूल्यों की स्थापना हो रही है। उच्च-निम्न जातियों के यौन संबंध अब खुलकर सामने आ रहे है। मान-मर्यादा, आत्मसम्मान, आज का मानव खो चुका है। दाम्पत्य संबंधो में भी टकराव हो रहा है। माँ-बाप संतान के बीच संबंधो में विघटन हो रहा है। अनमेल विवाह, आंतरजातीय विवाह बदलाते आधुनिक परिवेश की उपज है। 'गली आगे मुडती है' उपन्यास में आरती आधुनिक विचारोंवाली युवती के रुप में चित्रित हुई है।

बदलते आर्थिक संदर्भ में चित्रित आर्थिक समस्याएँ, आर्थिक विपन्नता से त्रस्त अर्धनग्न, भुखे, प्यासे, असंख्य निम्न मजदूर नर-नारियों के करुणामय स्वर को सार्थक वाणी देने का काम सिंह जी ने किया है। साम्यवादी समाज की स्थापना द्वारा ही वर्ग-संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है। पुलिस, सरकारी अफसर द्वारा कानून के नाम पर समाज का आर्थिक शोषण किया जा रहा है। स्वतंत्रता के चालीस वर्ष बाद भी देश की आर्थिक स्थिति निर्धनता का मजाक उडा रही है, ऐसा ही अब महसुस होता है। भ्रष्टाचार भारतीय जनतंत्र को लगी हुई किड है, जो दिन-ब-दिन बढती ही जा रही है। बेकारी की समस्या आज विकराल रुप धारा कर चुकी है। ग्रामीण युवक काम की तलाश में शहर की ओर चले जा रहे है। ढोंगी साधुओं के द्वारा भी समाज का आर्थिक शोषण किया जा रहा है। धर्म के नाम पर धन को प्राप्त कर रहे है।

राजनितिक समस्याओं के अंतर्गत डॉ. सिंह जी ने राजनैतिक समस्याओं पर भी चिंतन किया है। आज की राजनीति कल का इतिहास बन जाती है। सिंह जी के साहित्य में राजनैतिक स्वर को बडी सशक्तता से व्यक्त किया गया है। 'शैलूष' में अपने अधिकारों को पाने के लिए नटों द्वारा किया गया संघर्ष विशेष महत्त्व रखता है। जिसके पास अर्थ है वही राजनेता बनता है और राजनीति करता है। नेताओं की स्वार्थी राजनैतिक अवसरवादीता। ग्रामपंचायते राजनेता लोगों के बुरे कर्मो को छिपाने के अड्डे बन गये है। आज राजनीति गिने-चुने लोगों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गई है। ग्रामीण परिवेश में नवीन भाव क्रांति, सामंतीय जीवन का विघटन, छात्र आंदोलन आदि का चित्रण हुआ है।

धार्मिक समस्याओं के विवेचन के सन्दर्भ में सिंह जी का गद्य साहित्य सार्थक सिध्द हुआ है। भारतीय समाज में धर्म को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। धर्म मानव जीवन के कर्म पक्ष को उजागर करनेवाली शक्ति है। धर्म का वास्तविक अर्थ कर्तव्य पालन है। धर्म और समाज का अटूट संबंध है। धर्म आज वास्तविक संदर्भो से मुक्त होकर मनुष्य के संकुचित स्वार्थी संकीर्ण विचारों से जुडता जा रहा है। धर्म का सामाजिक महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा है। ग्रामीण समाज में धर्म के नाम पर अंधश्रध्दा, रुढी, परंपराओं का निर्वाह किया जा रहा है। अति धार्मिकता नैतिक पतन का कारण बन रही है। धर्म के नाम पर बाह्याचार किया जा रहा है। भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताओं को समाज से बहिष्कृत करने का प्रयास किया गया है।

सांस्कृतिक समस्याओं के विवेचन में संस्कृति शब्द की परिभाषा के सन्दर्भ में दिनकर जी का कथन 'संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा सूक्ष्म होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध।' भारतीय ग्रामीण संस्कृति के विविध पहलुओं को अपने साहित्य में स्थान दिया है। ग्रामीण समाज में व्याप्त पर्व, त्यौहार, मेले, लोकगीत, लोककथाओं का यथाप्रसंग प्रयोग किया गया है। पर्व, त्यौहार, मेले, जो एकता का प्रतिक बनकर सामने आते है। लोकगीत और लोककथाओं से समाजप्रबोधन तथा मनोरंजन और अपने प्रदेश की अस्मिता को व्यक्त करते है।

देहात में किये जानेवाले शिशु जन्म के समय के संस्कार रीति-रिवाज ग्रामीण संस्कृति के सांस्कृतिक पहलु है। उन सभी पहलुओं को अपने साहित्य में स्थान दिया गया है। जो हमारी संस्कृति के धरोहर है।

'शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का शिल्प' इस पंचम अध्याय में सिंह जी ने अपने गद्य साहित्य की भाषा को जीवन्त बनाने के लिए विभिन्न स्तरों से शब्द चयन किये है। ज्यादातर ग्रामीण शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। पूर्वांचल की भाषा को जानना हो तो सिंह जी का साहित्य पढो, पूरे पूर्वांचल की भाषा समझ में आ जायेगी। वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, प्रतीकात्मक शैली, उन्मुक्त कसाव शैली, संवाद शैली, चेतनाप्रवाही शैली, पत्रात्मक शैली, डायरी शैली का प्रयोग भी किया गया

है। भाषा के अंतर्गत काव्यात्मक भाषा, धवन्यात्मक भाषा, प्रतिक, बिंब, दृश्य, श्रव्य, घ्राण स्वाद, स्पर्श बिंब का बडी कुशलता से प्रयोग किया गया है। मिथक, अलंकार का प्रसंगानुरुप प्रयोग हुआ है। शब्द प्रयोग करने में सिंह जी बडे ही माहीर थे। सिंह जी के पास वह समर्थ भाषा है जो ह्रदय में उठनेवाले नाना भावों के मूर्तीकरण में सफल है। उनके पास वह विशाल शब्द भंडार है जो ऱ्हदय के हर सुख दु:ख के भाव को मस्तिष्क हर चिंतन को और लौकिक-पारलैकिक जगत से जुडे हर अनुभव को वाणी देने में सक्षम Æ...

'निष्कर्ष एवं मूल्यांकन' इस अंतिम अध्याय में निष्कर्ष में संपूर्ण शोध का सार प्रस्तुत किया गया है। 'मूल्यांकन' में शोध प्रबंध के अंतर्गत जो नए तथ्य सामने आए है उसे प्रस्तुत किया गया है उन्होंने अपने गद्य साहित्य के माध्यम से समाज जीवन की विविध समस्याओं का सजग चित्रण किया गया है। सिंह जी के गद्य साहित्य में चित्रित सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विषमता को धीरे-धीरे कम करना अनिवार्य है। शिक्षा और रोजगार के साधनों में बढोत्तरी करना । नारी अब घर के अलावा समाज के हर क्षेत्र में अपना नाम रोशन कर रही है। शोषक वर्ग की पुख्ताह दिवारे आधुनिक विचारों के कारण बहने लगी है। संयुक्त परिवार टूटकर बिखर रहे है। अपनत्व की भावना कम होती नजर आ रही है। नैतिक मूल्यों की क्षति को रोकना। नई पीढी के रुमानी प्रवृत्ति में परिवर्तन लाना। अस्पृश्य, निम्न आदिवासी जाति को सामान्य नागरिक के रुप में स्थापित करना। विश्वमानवता की संकल्पना के बीज बो देना। रिश्वत, दहेज, भ्रष्टाचार पर रोक लगाना। ग्रामीण समाज में यौन संबंध के संदर्भ में जागृति लाना। अनमेल विवाह पर रोक लगाना अनिवार्य है।

विभिन्न समस्याओं से जुझता हुआ भारतीय समाज संकुचित दायरों को छोडकर विस्तीर्ण दायरों को अपनाने में मन, बुध्दि, अंतरात्मा से परिक्षित होकर नई संकल्पनाओं को अपने भीतर समा लेंगे तो आनेवाली नई पीढ़ी इनके नक्शे कदमों पर चलेगी जो उनके लिए मार्गदर्शक होगी।

^¯ÖÃÖÆÖ¸ü :-

इस अध्ययन के बाद निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि, यथार्थवादी प्रयोगधर्मी रचनाकार डॉ. शिवप्रसाद सिंह को हिंदी का एक सफल गद्यकार कहा जा सकता है। उन्होंने अपने गद्य साहित्य के माध्यम से समाज जीवन के विविध पहलुओं का सजग चित्रण किया है। हिंदी साहित्य परंपरा में यदि कोई रचनाकार परंपरा से हटकर सृजन करता है, तो उसे परंपराद्रोही, प्रतिक्रियावादी कहकर नकारा जाता है। शिवप्रसाद सिंहजी का सम्पूर्ण जीवन ही प्रामाणिकता का उदाहरण है। समाज में प्रचलित सभी अंधश्रद्धा, रुढी-परंपराओं से समाज को सचेत करने का सफल प्रयास हुआ है। शोषण के दमन चक्र को तोडने के लिए प्रवृत्त किया गया है। उसमें सफल भी रहें है। जमींदारों की पुख्ताह दिवारों को नामशेष किया गया है।

समाज में फैली वर्ग विषमता की दरी को खत्म करने का प्रयास ही उनका साहित्य रहा है। गद्य विधा के माध्यम से जमींदार के शोषण का अब जनता सीना तानकर अपने अधिकारों की माँग करने लगे है। समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। सांस्कृतिक अध:पतन को रोककर राष्ट्रीय एकात्मता को बचाये रखने का प्रयास हुआ है। शोषण के खिलाफ समाज जागृती का अनोखा संदेश गद्य साहित्य में दिया गया है। ग्रामीण जनता की हर समस्या का समाधान उनके साहित्य में मिलता है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में मानव धर्म की प्रतिष्ठा का स्वर मुखरित हुआ है। हिन्दु-मुस्लिम एकता की प्रखर ध्वनि मुखरित हुई है। धर्म के नाम पर हो रहे शोषण चक्र को तोड दिया है। आधुनिक प्रभाव के कारण विवाह की संकुचित मानसिकता में परिवर्तन दिखाई देता है। जाति-पाति के बाहर भी अब विवाह संबंध Ã£ÖÖ×¯ÖŸÖ ÆÖê ¸üÆê Æï…

सिंहजी भाषा को संप्रेषण या अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रखते। भाषा को उसकी अनंत संभावनाओं तक आजमाते है। भाषा-शैली और शिल्प में भाषा खेलती है, नृत्य करती है। कलात्मकता में उत्कर्ष है जिसमें संगीत, चित्रकला शब्द शून्य है। सिंहजी आधुनिक युग के प्रमुख रचनाकार है जिनमें भविष्य की सोच है, आनेवाले युग की झलक है। निश्चित ही सिंह जी का हिंदी साहित्य में अपना एक विशेष स्थान है।

सिंह जी का गद्यसंसार एक प्रकार से व्यर्थता के विरुद्ध खडा संसार है। जिनकी हर रचना को पढ़ने, समझनें की चुनौती निहित है।

शोध विषय की उपलब्धियाँ :-

प्रस्तुत शोघ विषय के अध्ययन के बाद निष्कर्षत: उसकी कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त ÆÖ •ÖÖŸÖß Æî -

- ➢ शिवप्रसाद सिंह का जीवन संघर्षों की गाथा है।
- ➢ उनका कृतित्व उनके व्यक्तित्व की झांकी है।
- ➢ सिंह जी के गद्य साहित्य में अश्लीलता तथा स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण ही नही है। इसमें मनोवैज्ञानिक चित्रण गरीबी भूख की पीडा, पारिवारिक वेदना, स्त्री की मार्मिक पीडा, अकेलापन आदि का भी चित्रण हुआ है।
- ➢ शिवप्रसाद सिंह जी हिन्दी के वैज्ञानिक रिपोर्ताज के जनक है।
- ➢ सिंह जी कहानी नहीं कहते बल्कि पाठक को अपने अंदर मौजूद अनेक कहानियों को कुरेदने के लिए मजबुर करते है।
- ➢ सिंह जी ने पहली बार उन्मुक्त कसाव शैली का अंकन किया है।
- ➢ हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रवाह में एक नई शैली के प्रवर्तक के रुप में वे जाने •ÖÖŸÖê Æî…
- ➢ भारतीय किसानों की यथार्थ स्थिति का चित्रण हुआ है।
- ➢ समाज से उपेक्षित अंगो पर दृष्टि डाली है।
- ➢ शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य साहित्य में सभी शैलीयों को अपनाया है।
- ➢ समाज से बहिष्कृत, उपेक्षित, अछुत वर्ग को अपने साहित्य का हिरो बनाया है।
- ➢ शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में शिल्पगत नवीनता है।
- ➢ हिन्दी के सिंह जी प्रथम ऐसे रचनाकार है, जिनके गद्य में 'अलंकार' भाषा को आभुषित करते है।
- ➢ सिंहजी एक प्रकार से ऐसे साहित्य प्रज्ञा के निर्माता है, जिसने शब्द-शब्द अपने लय में प्रस्तुत किए है।

- शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में सभी भाषाओं के शब्द प्रयोग मिलते है।
- शिवप्रसाद सिंह की भाषा एक प्रकार से चलित भाषा है, भाषा ही सब कुछ कहने लगती है।
- सिंह जी की भाषा संस्कृत, ऊर्दू, फारसी से संस्कारित है।
- स्थुल रुप से सिंहजी असांप्रदायिक, नारीवादी, साक्षरतावादी, धर्मनिरपेक्ष, चिंतनवादी और भाषावादी लेखक के रुप में पहचाने जा सकते है।
- आधुनिक युग की विशेषता है - भविष्य की सोच। सिंह में अतीत वर्तमान तथा भविष्य का अंकन है, कालबोधों का अतिक्रमण है।

भविष्य में शोध संभावनाएँ :-

इस शोध कार्य के आधार पर भविष्य में यह विषय अनेक संभावित विषयों को प्रेरित करता है वे निम्न रुप से -

- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास और समाज जीवन
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंध
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में व्यक्त संवेदना का स्वरुप
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के कहानी साहित्य में वर्गसंघर्ष
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में ग्राम जीवन
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य की भाषा शैली
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में व्यक्त पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

प्रथम अध्याय

शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 **जीवनी :-**

1.1.1 जन्म

1.1.2 ¯Öß¸¾ÖÖ¸ü

1.1.3 शिक्षा

1.1.4 ×¾Ö¾ÖÖÆü ŸÖ£ÖÖ ÃÖÓŸÖ×ŸÖ

1.1.5 नौकरी

1.1.6 मृत्यु

1.2 **व्यक्तित्व :-**

1.2.1 डॉ.शिवप्रसाद सिंहजी का बाह्य व्यक्तित्व.

1.2.2 डॉ.शिवप्रसाद सिंहजी का आंतरिक व्यक्तित्व.

1.2.2.1 प्रामाणिकता

1.2.2.2 विनम्रता

1.2.2.3 ÃÖ‘ÖÂÖ×¿Ö»ÖŸÖÖ

1.2.2.4 Ã¯ÖÂ™¾ÖÖ×¤üŸÖÖ

1.2.2.5 संवेदनशिलता

1.2.2.6 अध्ययनशीलता

1.2.2.7 गंभीरता

1.2.2.8 चिंतनशिलता

1.2.2.9 आस्तिकता

1.2.2.10 मानवता

1.3 **डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी की विचारधारा**

1.3.1 नारी विषयक विचारधारा

1.3.2 समाज विषयक विचारधारा

1.3.3 लोकतंत्र विषयक विचारधारा

1.3.4 साहित्य विषयक विचारधारा

1.3.5 साहित्यकार विषयक विचारधारा

1.3.6 भाषा विषयक विचारधारा

1.4 डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी का कृतित्व

1.4.1 कहानी साहित्य .

1.4.2 उपन्यास साहित्य

1.4.3 निबंध साहित्य

1.4.4 शोध एवं समिक्षा

1.4.5 अन्य साहित्यिक विधाएँ

1.4.6 संपादकीय कार्य

1.4.7 डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी की : रचना - यात्रा

1.4.7.1 शोधकार्य

1.4.7.2 समीक्षा

1.4.7.3 कहानी संग्रह

1.4.7.4 उपन्यास

1.4.7.5 ललित निबंध

1.4.7.6 नाटक

1.4.7.7 काव्य नाटक

1.4.7.8 x¸¯ööŸöö•ö

1.4.7.9 जीवनी

1.4.7.10 साक्षात्कार

1.4.7.11 संपादन

1.4.8 **सम्मान एवं पुरस्कार**

1.4.8.1 सम्मान

1.4.8.2 पुरस्कार

शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तावना :

स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर डॉ.शिवप्रसाद सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह ही शोध-समीक्षा सृजन, चिंतन दर्शन आदि क्षेत्रो में परिचित रहे है। डॉ.पांडेय शशिभूषन 'शीतांशू' कहते हैं - "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की वैदुष्यपूर्ण सहदयता और सर्जनात्मकता उनके दो मूर्धन्य शिष्यों-नामवर सिंह और शिवप्रसाद सिंह को विरासत मे प्राप्त हुई है।उनके इन दो शिष्यों ने हिंदी में उनकी कीर्ती - पताका आगे बढाई ह..."[1]

नामवर सिंह और शिवप्रसाद सिंह दोनों गुरु बंधु थे। परन्तु दोनों के पथ अलग-अलग थे।" नामवर सिंहके यहाँ गुरु के गुणों का विकास उनकी वक्तृत्व कला में हुआ जब कि शिवप्रसाद सिंहके यहाँ उनके लेखन में लिखने के लिए जिस एकाग्रता की, तन्मयता की, फुरसत की जरुरत पडती है, वह शिवप्रसाद सिंह जी को मिली।"[2]

शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य मे ग्रामीण जीवन सजीव हो उठा है। वास्तव में प्रेमचंद जी के बाद हिंदी साहित्य में ग्राम जीवन को यथार्थता के साथ चित्रित करनेवाला कोई सशक्त साहित्यकार देखने को नहीं मिलता।" आजादी के साथ उभरी जिस नई पीढी ने इस गैप (रिक्तता) को भरने की, सार्थक कोशिश की है डॉ. शिवप्रसाद सिंह का नाम उनमें अग्रगण्य है।"[3] केवल कथा साहित्य ही नहीं तो नाट्यलेखन,वैचारिक लेखन,समीक्षा,जीवनी-निबंध आदि विविध गद्य विधाओं मे वे सिध्दहस्त थे। इसलिए उनके साहित्य की, समीक्षा उनके व्यक्तित्व के परिचय के बाद ही संभव हो पाएगी। "साहित्यकार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों उसी प्रकार मिले होते है.जैसे वाणी के साथ अर्थ होता है - साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब ही उसकी रचनाधर्मिता में दिखाई देता है।''[4] स्वयं डॉ.शिवप्रसाद सिंह 'विद्यापति' के संदर्भ में लिखते है-'' लेखकों के साहित्य को समझने के लिए उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण आवश्यक हो •ÖÖŸÖÖ Æî...."[5] वैसे किसी भी लेखक के व्यक्तित्व को सार्थक शब्दों में 'पकडना' एक कसौटी ही होती है। और शिवप्रसाद सिंह जैसे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्तित्व को शब्दो

में पकडना असंभव नही तो कठीन जरुर है ।

१.१ जीवनी :

1.1.1 जन्म :

शिवप्रसाद सिंह जी का जन्म १९ अगस्त १९२८ को वारणसी जिले के जलालपुर (जमनियाँ) गांव मे हुआ था। जलालपुर गांव कहने को तो है वाराणसी जनपद मे परन्तु वह गाजीपुर जनपद की सीमा से एकदम लगा हुआ है। और उसका पडोसी प्रसिध्द कसबा जमानियाँ गाजीपुर जिले में पडता है।"[6] "इनके पिता का नाम था चंद्रिका प्रसाद सिंह और माँ का नाम कुमारी देवी।''[7]

1.1.2 ¯Ö×¸¾ÖÖ¸ü :

शिवप्रसाद सिंह के पितामह गणेश सिंह बहुत बडे जमीदार थे । पिता चंद्रीकाप्रसाद सिंह १९७२ ई. मे स्वर्गवासी हुए।"[8] माँ श्रीमती कुमारी देवी गंभीर प्रशांत सुसंस्कृत व्यक्तित्व की धनी थी। सनातन नारी परंपरा की स्नेहशील ममता और संस्कार की वह प्रतिमूर्ति थी। उनमे अभिजात कुलवधु के साथ-साथ गहन उत्तरदायित्व बोध भी था। डॉ. कामेश्वर सिंह कहते हैं-" कहना न होगा कि शिवप्रसादजी के व्यक्तित्व पर पिता से भी अधिक इस माँ की छाप और छाया है।"[9] परन्तु उनके व्यक्तित्व पर स्नेहमयी,ममतामयी दादी माँ का भी प्रभाव रहा है। स्वयं शिवप्रसाद जी के शब्दो मे-" माँ -बाप से जादा प्यार स्नेह मुझे बचपन में दादी माँ से मिला,जिन्हे मै मैया कहा करता था।"[10] यही कारण है कि इनकी पहिली रचना 'दादी माँ' शीर्षक कहानी ही है जो १९५१ ई. मे 'प्रतीक' में छपी £Ößü…

डॉ.शिवप्रसाद सिंह को दो भाई थे। आप अग्रज थे और अनुज श्री शंभूप्रसाद सिंह गांव पर खेती बाडी का काम देखते हैं। शिवप्रसाद सिंह जी कहतें है-" उनमे (शंभूप्रसाद सिंह मे) आलस्य है। गांजा पीते है इसलिए खेती वगैरह उनसे संभलती नही। वैसे शालीनता है उन में मेरा अदब भी करते है दो बहने हैं। दोनो सुखी है और हमारे संबंध ³Ößü ²ÖÆãüŸÖ †“”ü Æïü…"[11] कम उम्र में विवाह हो जाने पर भी उन्हें पत्नी सौम्य प्रकृति की मिली। अत: डॉ.शिवप्रसाद सिंह पत्नी के रुप में श्रीमती धर्मा को पाकर स्वयं को

सौभाग्यशाली मानते रहे। आप न तो बहुत अधिक पढ़ी-लिखी थी न ही किसी ललित कला के प्रति विशेष रुचि थी। परन्तु डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गृहस्थ जीवन सम्बन्धी दायित्वों का आपने स्वयं अकेले ही सुनिर्वाह किया जिससे कि डॉ.शिवप्रसाद सिंह को कभी भी उधर देखने की आवश्यकता ही नही हुई। यदि डॉ.शिवप्रसाद सिंह को आपका इतना दुर्लभ सहयोग एवं सहकार न मिलता तो शायद डॉ.शिवप्रसाद सिंह निर्विघ्र रुप से साहित्य सेवा न कर पाते। अत: आपकी पत्नी आपके लेखकीय जीवन के लिए सचमुच एक वरदान रुप साबित हुई है। डॉ.शिवप्रसाद सिंह की पत्नी श्रीमती धर्मा की कई संतानें हुई जिन में दो शिशु रुप में ही काल-कवलित हो गयी पुत्र नरेंद्र एवं पुत्री मंजुश्री (मंजु) ही बचे। परन्तु मंजु भी कहाँ बची? मंजुश्री भी गुर्दे की असाध्य बीमारी से ग्रस्त हुई । पुत्री के इलाज के लिए बनारस,चण्डीगढ दिल्ली और मद्रास के अस्पतालों की खाक छानी तमाम कोशिशों के बावजूद भी मंजुश्री नहीं बचाई जा सकी और १९ दिसंबर १९८४ को उसका निधन हो गया।

1.1.3 शिक्षा :

शिवप्रसाद सिंह की शिक्षा दीक्षा का आरंभ जलालपुर प्रायमरी पाठशाला से हुआ।"[12] पाँचवी कक्षा तक जलालपुर में ही रहे। छठी कक्षाके लिए जमनियाँ कस्बे के मिडिल स्कूल में नाम लिखाया गया। इसी बीच आर्थिक कारणों से स्कूल छोडना पडा । अब गांव सेआठ मील दूर 'मिडिल स्कूल बरहनी' में गये। इस स्कूल में १९४२ ई. में उत्तीर्ण हुए। शिवप्रसाद सिंह जी पढाई में कुशाग्र बुध्दि के थे। अध्ययन में उन्हे विशेष रुचि थी।

शिवप्रसाद सिंह जी के लिए 'मिडिल स्कूल बरहनी' में अनुभव कुछ अच्छे नहीं रहें। वहाँ होस्टल नहीं था। एक बडे से कमरे में घर के अन्य तीन सदस्यों के साथ रहना पडता था। उन लोंगो को इसी कमरे में एक ओर उपलो की आत्र पर खाना बनाना पडता था शिवप्रसाद जी कहते है- "खाना बनाना मुझे बिल्कुल नही आता था। ...सो बाकी लोंगो की दया पर जीता था। उसके लिए झगडे भी खूब होते थे कई-कई दिन खाना भी नही खाता था। किसी-किसी तरह वहाँ से मिडिल किया।"[13]

इसके बाद 'गवर्नमेंट विक्टोरिया हाईस्कूल' गाजीपुर सिटी से प्राईवेट सिस्टम में

हाईस्कूल परीक्षा दी। सन १९४७ में हाईस्कूल की परीक्षा गणित, बीजगणित, संस्कृत और इतिहास में विशेष योग्यता के साथ प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की।

इस बीच परिवार में काफी अशान्ति का वातावरण था। कहने के लिए वे एक जमींदार परिवार के सदस्य थे। पर वहाँ का वातावरण बदलते हुए युग के कारण पस्त हिम्मती ,काहिली और घोर निराशा का था। स्पष्ट है कि, कुशाग्र बुध्दि के बालक शिवप्रसाद सिंह के लिए वहाँ सांस लेना मुश्किल हो गया था। आगे की पढाई की चिंता थी। उन्हीं के शब्दो में- "हाईस्कूल तक पहुंचने से पहले ही बोध हो गया था कि इस परिवार में पिछले देढ सौं वर्षो से किसी ने ऐसी तालीम नहीं पायी जो काबिले तारीफ हो। तो भला मैं वह सपना कैसे देखता? ...ये खुद तो जहन्नुम में जा रहे हैं, मुझे भी ले जायेंगे।बिना किसी से पूछे हाईस्कूल पास करते ही टूटा ट्रंक और फटी दरी में तकिया लपेट गाँव छोड़कर भाग आया और इंटर मे पढने लगा।"[14]

वाराणसी आकर शिवप्रसाद जी ने उदय प्रताप कॉलेज में प्रवेश लिया। सन १९४९ में इंटरमीडिएट की परीक्षा हिंदी, संस्कृत, तर्कशास्त्र और अंग्रेजी विषय लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसी वर्ष काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में बी.ए. की कक्षा में प्रवेश लिया। बी.ए. द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उदय प्रताप कॉलेज के दिन शिवप्रसाद जी के लिए नया मोड साबित हुए। क्योंकि यहीं से उनमे साहित्य के प्रति अनुराग और अभिरुचि की वृध्दि हुई।

सन १९५१ में हिंदी साहित्य विषय लेकर उन्होंने एम.ए. में प्रवेश लिया। १९५३ में एम.ए.की परीक्षा में प्रथम श्रेणी के साथ पहला स्थान पाकर उत्तीर्ण हुए और स्वर्ण पदक प्राप्त किया। उन दिनों वे आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्याख्यानों से बहुत प्रभावित थे। एम.ए. में प्रस्तुत किये जाने वाले लघु शोध प्रबंधके लिए उन्हों ने विषय चुना था 'कीर्तिलता और अवहटठ भाषा'। सन १९५५ में यह शोध ग्रंथ प्रकाशित भी किया। डॉ.शम्भूनाथ पांण्डेय कहते है, "कीर्तिलता अमर कवि विद्यापती की महत्वपूर्ण रचना हैं। यह आदिकालीन साहित्य की प्रामाणिक मूल्यवान उपलब्धि हैं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के इस पुस्तक पर काम करनें से पहले अवहटठ भाषा के संबंध में न तो कोई सुनिश्चित धारणा थी और न कीर्तिलता की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन। डॉ.शिवप्रसाद

सिंह ने इस पर इतना परिश्रम से काम किया कि, 'अवहटठ' सुपरिचित शब्द बन गया।"[15]

एम.ए. उत्तीर्ण होने के बाद शिवप्रसाद सिंह ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विशेष छात्र वृत्ति प्राप्त की और १९५७ ई. में काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से पीएच्.डी. की उपाधि प्राप्त की। यह शोध कार्य 'सूरपूर्व ब्रज भाषा और उनका साहित्य' विषय पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। यह शोध कार्य अत्यंत श्रमसाधना का था क्योंकि समस्या थी सूरपूर्व ब्रजभाषा की सामग्री प्राप्त करना। शिवप्रसाद सिंह जी ने,"राजस्थान के विभिन्न स्थानों के शास्त्र भंडारों में सुरक्षित हस्तलेखों और गुटकों से विपुल सामग्री खोज निकाली और उसके आधार पर लगभग १० वी शताब्दी से १६ वी शताब्दी तक की ब्रजभाषा और उसके साहित्य की त्रुटित श्रृंखला को जोड दिया।"[16] इस शोध-ग्रंथ की भी विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

शिवप्रसाद जी की इसी योग्यता को देखकर सन १९५६ में काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में वे एक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। अवकाश प्राप्ति तक वे इसी विश्वविद्यालय से जुड़े रहे।

1.1.4 ×¾Ö¾ÖÖÆ ŸÖ£ÖÖ ÃÖ÷ŸÖÖ®Ö :

शिवप्रसाद सिंह जी जमींदार परिवार के सदस्य थे। गांव का वातावरण था।जमींदार परिवार की झूठी शान के साथ तथा परंपरा के अनुसार उनका विवाह तभी हुआ था जब वे कक्षा आठ में पढ रहे थे। संयुक्त परिवार था, न चाहते हुए भी शिवप्रसाद जी को हाँ करनी पडी। उन्हीं के शब्दों में- "मैं मजबूर था। संयुक्त परिवार के मुखिया का विरोध उस वक्त के माहौल में लगभग असंभव था...।"[17]

पत्नी के रुप में श्रीमती धर्मा को पाकर डॉ.शिवप्रसाद सिंह निश्चित ही सौभाग्य शाली रहे। श्रीमती धर्मा बहुत ही शांत तथा त्याग की मूर्ति है। भारतीय नारी के गुणो से युक्त श्रीमती धर्मा ने परिवार के लिए सब कुछ किया। कहते हैं कि पति की सफलत में पत्नी का बडा योगदान रहता है। इस दृष्टि से श्रीमती धर्मा का योगदान निश्चय ही श्रेष्ठ Æ… उन्होंने सारी गृहस्थी संभाली तभी तो शिवप्रसाद जी निरंतर अविरत साहित्य लेखन में •Ö™ ¸Æ…

शिवप्रसाद सिंह जी का वैवाहिक जीवन अत्यंत सफल रहा। संघर्षमय जीवन में भी विवाह का बंधन अटूट रहा। सन १९५३ की जुलाई में हुए दो बच्चों की मृत्यु भी आप सह गये। उसके बाद पुनः दो शिशूओं से आंगन चहक उठा एक थी मंजुश्री जिसका १९ दिसंबर १९८४ को देहावसन हुआ तथा पुत्र नरेंद्र। आज शिवप्रसाद सिंह जी के पुत्र नरेंद्र पुत्रवधु मीरा पोती ईशिता आदि सदस्य बडे सुख शांती से जीवनयापन कर रहे हैं।

1.1.5 नौकरी :

"सन १९५६ से ही आप काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के साथ जुड़ गये थे। १९६८ में रीडर तथा १९८४ मे प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुए। १९८३ -८५ तक विभागाध्यक्ष भी रहे। लगभग ३२ वर्षों तक अध्यापन कार्यकुशलता, ईमानदारी और तन्मयता के साथ पूरा करके ३१ अगस्त १९८८ को शिवप्रसाद सिंह जी सेवा मुक्त Æ‹…"[18]

शिवप्रसाद जी मुलतः साहित्यकार थे। नौकरी के अपने नियम होते हैं, कानून होते हैं। नौकरी के बंधनों में रहना उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के खिलाफ था। तभी तो वे कहते है- "अध्यापकीय और साहित्यिक दोनों ही जीवन में मैने एकांतवास की सजा खूब झेली है।"[19] इसी कारण लेखनकार्य और नौकरी के दायित्व में शिवप्रसाद जी काफी तनाव महसूस करते थे। इस संदर्भ मे डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी द्वारा पूछे गये प्रश्न का उन्होंने उत्तर दिया था- "जो विश्वविद्यालय का ढांचा होता है, वह एक तरह का शिकंजा है। उसमे लेखक को फिट होने का प्रयत्न करना पड़ता है। युनिवर्सिटी का माहौल इस प्रकार प्रेरणादायक नहीं हैं जिसमें रचनात्मक कार्य किया जा सके। एक अध्यापक की 'प्रोफेशनल लाईफ' का उसके लेखक की जिंदगी से तालमेल नही बैठ पाता। बीस तरह के ऊटक नाटक करने पडते हैं पदोन्नति या इसके उसके लिए।"[20] x±ú¸ भी इन विवादों से दूर रहकर उन्होंने एक आदर्श अध्यापक के रुप में काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में सुयश प्राप्त किया था। इसका राज था-"उनके विवेक ने फैसला कर लिया कि नौकरी गृहस्थ की लाचारी है और रचना कर्म ही स्वधर्म है।"[21]

1.1.6 मृत्यु :

शिवप्रसाद सिंह जी के लिए मृत्यु तो प्रेमिका के समान थी। उनकी एक ही इच्छा थी कि, काशी में ही जीवन की इति हो।[22] काशी से उनको बेहद लगाव था। अपने गांव के बाद उनके मन पर सबसे गहरी छाप बनारस की ही थी। यही वे किशोर से युवा और युवा से वानप्रस्थ हुए। काशी के बाहर से उन्हे काफी प्रस्ताव प्रलोभन मिले-"उंची कुर्सियों पर बैठने के सादर आमंत्रण को शिवप्रसाद सिंह जी ने मात्र इसीलिए नकार दिया कि वे काशी के बाहर के थे।"[23]

मृत्यु के बारे में डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी के विचार थे-"मेरी माँ भौतिक शरीर से बिदाई लेने से बहुत पहले कह चुकी थी कि मृत्यु तो एक त्यौहार है, पर्व है कि यथा शीघ्र इस जीर्ण कलेवर और मानसिक कलुष से बाहर आकर अगर मानसिक स्तर पर जीने लगे हों तो उसके माध्यम से हजारों पाठकों को बताओ कि जिन्दगी और मृत्यु से कैसे लडते रहे। उसे प्यार से कितना दुलारा है तुमने।"[24]

शिवप्रसाद सिंह जी किस प्रकार की मृत्यु चाहते थे? वे एक चिंतक सर्जक थे। उनका सारा जीवन युध्द करते ही बीता। मृत्यु उनके लिए एक प्रेमिका थी। अत: उससे डर कैसा? मृत्युरुपी प्रेमिका की तो वे प्रतीक्षा कर रहे थे-" निश्चित ही मृत्यु का त्यौहार मेरे जीवन की पूर्णत: बनेगा। मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूं।"[25] †ŸÖ: •Ö²Ö †×ŸÖ´Ö ²ÖÖß´ÖÖÖ¸üß में उनके पुत्र नरेंद्र ने दिल्ली के राम मनोहर लोहिया अस्पताल में दाखिल किया तो वे बडे बेचैन हुए। वे काशी लौटना चाहते थे। अत: वे अपने पुत्र नरेंद्र से कहते थे कि, "कोई काशी छोडकर और कहीं क्यों मरना चाहेगा? यह शरीर तो काशी का ही हैं। उनकी आंतरिक इच्छा को नरेंद्र ने समझा और ७ दिसंबर १९९८ को बनारस ले आये। इस प्रकार एक महान साहित्यकार ने अंतिम सांस काशी में ही ली। २८ सितंबर १९९८ को सुबह ४.०० बजे उन्होंने सुंदरलाल अस्पताल मे सब से विदा ली, बहुत ही कृतार्थता के ÃÖÖ£Ö…"[26] हिंदी साहित्य जगत ने एक महान साहित्यकार को हमेशा-हमेशा के लिए खो दिया।

१.२ व्यक्तित्व :

1.2.1 डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी का बाह्य व्यक्तित्व :

डॉ.शिवप्रसाद सिंह अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। प्रथम दर्शन में ही उनके धीर-गंभीर पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव सहज रुप से प्रकट होता है। उनके साहित्यिक व समीक्षक या शिष्य इस प्रभावी व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।"पक्का गेहुँआ रंग, क्लीन, शेण्ड चेहरा, तीखी नाक और काफी बडी-बडी आँखे।"[27] देखते ही किस पर प्रभाव नहीं पडेगा? इसीलिए तो विश्वनाथ प्रसाद जी को उनके इस रुप को देखकर लगता है कि, "प्रसाद जी के नायक की परिकल्पना साकार हो गयी।"[28] उनके सिंह की सी छाती, हस्तिशुंडसा भुजदंड, साधारण व्यक्ति की आँखो से दो गुना बडी आँखे, उन्नत ललाट[29] से राजेंद्र प्रसाद पांण्डेय प्रभावित थे, तो चौडे कंधे, लंबा कद, मजबूत काठी, गेहुँआ रंग, सुदर्शन चेहर, आस्था की दृढता और आत्मीयता से छलकती आँखे"[30] देखकर जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव कृतार्थ थे। शिवप्रसाद जी के आत्मीय रुपसिंह चंदेल भी लिखते हैं। "उनका शरीर भव्य आँखे बडी यदि अतीत में जाएँ तो कह सकते हैं कि कुणाल पक्ष जैसी सुंदर, ललाट चौडा, चेहरा बडा और पान से रंगे होठ सदैव गुलाबी रहते थे।"[31]

शिवप्रसाद सिंह के चेहरे के दो प्रमुख आकर्षण थे- जो पहली नजर में ही मन को बरबस बाँध लेते थे- एक तो प्रचलन के विपरीत कान के उपर काफी उंचा खत और दूसरे उनकी भृकुटी की कमनीय वक्रता।[32] उनके इसी रुप को देखकर डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी उन्हे सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व के धनी मानते थें।[33]

धोती कुरता उनका सदाबहार पसंदीदा पेहराव था। सिर्फ जाडों में आज के फॅशन से थोडा लंबा सिला बंद गले का कोट या सदरी और जुड जाती थी। निश्चित रुप से उनका यह पेहराव उनके व्यक्तित्व को द्विगुणित आभा प्रदान करता था।

शिवप्रसाद सिंह के संदर्भ में दो बातों का उल्लेख प्राय: सभी परिचितों ने किया है,ठहका मार कर हँसना और पान खाना। डॉ.अवधेश प्रधान के अनुसार "बात लंबी खिंच गयी तो अचानक पनडब्बा खोलकर बडे प्रेम से पान लगाएँगे। इनको, उनको, आपको-हमको, खिलाने के बाद खुद खाएँगे और थोडी देर घुमने-घुलाने के बाद फिर

शुरु। और हाँ बीच-बीच में घनघोर ठहाके।"[34] साहित्यिक मित्रों को उनकी हंसी 'दहाड मारते समुद्र की याद दिलाने के लिए काफी थी।'[35] पान न खाने वाले साहित्यिक मित्रों पर वे तरस खाते और कहते कि, पान नहीं खाते तो साहित्य क्या खाक लिखोंगे! अत: पान न खाने वाले भी 'बीडा' उठा लेते।

शिवप्रसाद सिंह के बाह्य व्यक्तित्व में गहन मौन और मुक्ताहास जैसी दो विरोधाकारी स्थितियों का साक्षात्कार होता है। गुरु-गंभीर स्वभाव एवं कम बाते करना उनके इस व्यक्तित्व की मुख्य विशेषत: है। लोगों की यह आम शिकायत रहती है कि, ये अंतर्मुखी व्यक्तित्व के आदमी हैं और किसी से मिलते जुलते नहीं हैं। सारिका में इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है-"मै अपने से किसी पर खुलता नहीं हूँ। यह मेरा स्वभाव है। जब तक कोई खुद बातचीत शुरु नहीं करता है मैं चुप ही रहता हूँ शायद इसीलिए लोग मुझे गैर मिलनसार मानते है।"[36]

किन्तु जो लोग गहरे सम्पर्क में आते हैं. उनको यह आपत्ति नहीं होती। उनके साथ ये साहित्य पर घंटो बातचीत करते रहते है। और बीच-बीच में उन्मुक्त ठहाका भी लगाते हैं... वैसे ये हँसते बहुत कम हैं। जो लोग उनके निकट आने की कोशिश करते है, वे जल्दी ही उनके इस स्वभाव को पहचान और स्वीकार कर लेते हैं। मैं एकदम कटा हुआ आदमी हूँ उनकी यह स्वीकारोक्ति है। इस संबंध में सत्यदेव त्रिपाठी १९८५ के एक साक्षात्कार में कहते है-"मैं दरबारदारी पसंद नही करता। बहुत थोडे लोगों से मन की बात हो पाती है। जो कटे रहने का सवाल हैं अगर वह न होता तो जो मैं दे पाया वह न दे पाता। मेरा कटना उन तत्वों से कटना था जो मेरी प्रशंसा कर दुसरों की निंदा करके मेरे निकट पहुँचना चाहते थे। जहां तक साहित्यिक औदार्य का संबंध है, एक छोटेसे -छोटा साहित्यकार भी मेरे पास आकार रचनाएँ दिखा राय ले सकता है। मैं उसकी सहायता करता रहा हूँ। जब मै आराम विशेष करता हूँ तो मुझे लगता है कि, मै भीड में बोल नही सकता।"[37]

शिवप्रसाद सिंह के मन में दुनिया के तमाम डॉक्टरों के प्रति घनघोर वितृष्णा का भाव तब जन्म लेता है। जब कोई डॉक्टर उन्हें पान खाने से मना करता था। कंबख्त इतनी मासूम और बढिया चीज के खिलाफ खडे हो जाते हैं। सिर्फ खडे रहते तो कोई

बात नहीं थी, पर हात धोकर पीछे पड जाते हैं। उनको क्या पता कि, 'प्रत्येक मुश्किल मुहिम पर ,हर युध्द के मोकों पर, हर संत्रास और संकट के समय पान खाने वाले ही बीडा उठाते हैं क्योंकि वे तो बीडा उठाते ही रहते हैं।"[38]

शिवप्रसाद सिंह जी को अपने गांव जलालपुर से बडा प्रेम था। अलग-अलग वैतरणी तथा अधिकांश कहानियों में हमें उनके गांव के प्रति विलक्षण-आकर्षण के दर्शन होते हैं। अलग-अलग वैतरणी का जग्गन मिसिर वास्तव में लेखक की आंतरिक वेदना को ही अभिव्यक्त करता है- "गांव का क्या होगा? गांव कोई आदमी है कि उसका कुछ होता रहेगा। अरे भाई ये तो खेमा है। कभी उखडता है। कभी गडता है। कभी बुरे दिन आते है। कभी अच्छे दिन आते है। कभी बिगडता है, कभी संवरता है। असली चीज तो धरती है। आप क्या समझते है कि, अब दुनिया को धरती से कोई मतलब नहीं रहा? धरती ही सब कुछ देती है विपिन बाबू ! उसके बिना आदमी का गुजर नहीं। यह पक्की बात है। खेमा खराब होगा,इंतजाम बिगडेगा। धरती से जरुरी चीजों का मिलना बंद होगा। हाय तोबा मचेगी तो झख मारकर खेमा दुरुस्त करना होगा। नहीं करोंगे तो मरोगे। है कि नही?[39] इसलिए जितना मजा उन्हें सार्ग या कामू पर विद्यापति या अरविंद पर संस्कृति या दर्शन पर बात करने में आता उससे भी अधिक मजा लेते हुए वे अपने गांव के नटों और कंजडों, तालाब और खेती के बारे में बात करते थे। उन्हे जलालपुर पर बात करते हुए कभी थकान महसूस ही नहीं होती थी।

शिवप्रसाद जी शिक्षा हेतू काशी नगरी आये और यही बस गये थे। गांव भौतिक रुप से छोटा था। मानसिक रुप से नही… शहर में बसना नियति बन गयी थी पर-"शहर में रहकर भी मेरा मन एक ग्रामीण का मन ही बना रहा। मैने कभी भी आधुनिक कहे जाने वाले व्यसनों जैसे होटल में आना जाना, शराब पीना या तरह -तरह के अन्य मनोरंजन जो चरित्र और मस्तिष्क दोनों को खराब करते हैं, का शिकार नही हुआ था। घर भी बिलकुल ही ग्रामीण परंपरागत घर है… आज कल अंग्रेजी की दिखावटी शिक्षा से उत्पन्न जो वातावरण है लोगों के घरों का-टा-टा पप्पा, डैडवाला-यह सब मेरे साथ नही ¸ÆÖ…"[40]

शिवप्रसाद सिंह के लिखने-पढने, उठने-बैठने का एक ही कमरा था, जिसमे

नाश्ता-पानी, गप-शप सब चलता था। कमरे में एक बडी सी चौकी होती थी जो आधी किताबों से भरी रहती थी। यही एक सर्जन का कारखाना था। न फूलों के गुलदस्तों की अपेक्षा, न चिकने किमती कागज की चाह। जिस आसन पर पूजा होती थी उसी पर हजामत, नाश्ता, चाय, समाचार पत्र भी वहीं बैठकर पढा करते थे। साहित्य सृजन, चिंतन-अध्ययन से लेकर घर गृहस्थी के प्रबन्ध, मिलने वालों का ताँता, चर्चा, विचार-विमर्श हर प्रकार की गप्पें, शोध छात्रो को निर्देश सब उसी आसन से होता था। वहाँ लगभग आधे दर्जन मोटे-पतले फाऊंटनपेनों से भरा एक खुला डिब्बा, फिर रबर पेंसिल, ब्लेड, आदि के पात्र, मोटी-मोटी पुस्तके, समाचार पत्र, फाईले, पांडुलिपियाँ, पत्रों के बंडल, सब हाथ की पहुंच के अंदर।"[41]

इसी कमरे में बैठकर अध्यात्म, इतिहास, ज्योतिष, साहित्यशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा विज्ञान, धर्म, संस्कृति, दर्शन, मनोविज्ञान आदि. विषयों का अध्ययन किया जाता था। पूरब-पश्चिम के साहित्यिक आंदोलनों पर यहीं बैठकर गंभीर चिंतन होता था। यही बैठकर, कोर्के गार्दे, नीत्शे, दास्तोवस्की, यास्पर्स, हेडगर, सार्त्र, काफ्का, कामू पढे जाते थे। अरविंद लोहिया, रजनीश पर चिंतन होता था। यहीं पर 'मानसी गंगा' अवतरित हुई, यहीं पर 'आधुनिक परिवश और नवलेखन' पर कलम चलाई गई। यहीं बैठकर राहुल, निराला को याद किया गया, गुरु हजारी प्रसाद को नमन किया गया, नेहरु जी को श्रध्दा सुमन अर्पित हुए। यहीं पर बैठकर आपने कई बार नन्हों, परमेश्वर बाबू, अमृता, श्यामा, कबरी, अशरफ चाचा, तिऊरा, हरिचरण, बशीर, नट अदि से साक्षात्कार किया। खलील चाचा का 'गये वक्त का ताजिया' यही से देखा था। देविका, सोनवाँ, रुपवा, कनिया, पटनहिया भाभी, यहीं आकर लेखक से अपने आँसू भरी दास्तान सुना गयी थी। पूरे कमरे में मंजुश्री की आवाज बार-बार सुनाई पडती थी- "आप इतना अधिक ताप मत ढोइये बाबूजी, कभी अपने आप बहुत दुबले हो गये हैं।"[42]

1.2.2 डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का आंतरिक व्यक्तित्व :

शिवप्रसाद सिंह जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका व्यक्तित्व विविध पहलुओं से युक्त था। आन्तरिक व्यक्तित्व के अंतर्गत रुची, रुझान, भाव व विचारों को

चित्रित किया जाता है। स्वाध्याय की प्रवृत्ति उनकी सर्व प्रथम अभिरुचि थी... इसके लिए पुस्तकें पढना, पुस्तकालय अटेंन्ड करना, नये-पुराने किसी भी लेखक का लिखा गया साहित्य इनके अध्ययन का विषय हो सकता था। पाश्चात्य और पौर्वात्य दोनों प्रकार के साहित्य और साहित्यकारों के प्रति इनमे आस्था और अनुराग था तथा इनके साहित्य-समीक्षा में इनके प्रौढ, सम्यक और विस्तृत अध्ययन का प्रतिपलन विद्यमान है। अन्त:साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर उनके व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार थे।

१.२.२.१ प्रामाणिकता :

शिवप्रसाद सिंह जी का संपूर्ण जीवन ही प्रामाणिकता का उदाहरण है। सिंह जी को झूठ से बहुत नफरत थी। न किसी की निंदा, न किसी की झूठी प्रशंसा। उनको ताक-झाँक से, दिखावे से सक्त नफरत थी। वे गुटबाजों से हमेशा दूर ही रहते थे। अंदर एक बाहर एक ऐसा उनका आचरण कभी नहीं रहा। जो दिल में होता था, वही कलम के माध्यम से पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ शब्दबध्द होता था। जीवन हो या साहित्य, उनके आदर्श एक थे, निष्ठा एक थी। उनकी प्रामाणिकता साहित्यिक प्रक्रिया का उदाहरण -"उन दिनों मेरे ऊपर प्रसाद का प्रभाव बहुत ज्यादा था। उपन्यास 'रंगभूमी' अच्छा लगा था। 'निर्मला' और 'कर्मभूमी' मुझे पसंद नहीं आये 'गोदान' तो बहुत बाद में पढ़ा। एक बात मैं तहेदिल से प्रेमचंद को पसंद करता था। वे सपाट भाषा में बहुत बडा सामाजिक कथ्य कह जाते थे। प्रेमचंद से ज्यादा शरतचंद्र पसंद थे जिन्हें पूरा पढा उस समय।"[43]

शिवप्रसाद जी का साहित्यिक कर्म भी प्रामाणिकता से युक्त हैं। किसी के दबाव में आकर कुछ नहीं लिखा। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के आधार पर मुस्लिम विरोधी मान लिया गया। आरोप लगाने वाले अलग अलग वैतरणी के खलिल मियाँ को भूल जाते हैं। 'शैलूष' पढकर उन्हे एक ओर ठाकुर कोसते हैं, तो दूसरी और ब्राम्हण। कुछ सवर्ण पाठकों ने उन्हें 'शिवप्रसाद हरिजन' तक कहा।[44] इसके बावजूद वे स्थित प्रज्ञ

रहे। लोहिया उनके आदर्श थे। भला ऐसे आरोपों से वे कब विचलित होते? अपनी प्रामाणिकता पर उन्हें पूरा विश्वास था। अतः वे अपने लक्ष्य से कभी विचलित नही हुए। इसलिए शोध कार्य हो, सृजन कर्म हो, अलोचना हो या अध्यापकीय जीवन इन में कभी भी अप्रामाणिकता का प्रवेश नहीं हुआ। यह उनके जीवन की बहुत बडी उपलब्धि थी। अपनी आचार और विचार की प्रामाणिकता के कारण वे अपनें आप में एक आदर्श पुरुष के रुप में पहचाने जाते हैं।

१.२.२.२ विनम्रता :

शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। कई लोग उन्हें अहंकारी समझकर उनसे दूर ही रहते थे पर थे वे अत्यन्त विनम्र। बाहर से जितने सख्त लगते थे, अन्दर से उतने ही मृदु। कृषक परिवार में पैदा हुए शिवप्रसाद सिंह मूलतः ऋजु प्रकृति के आदमी थे। वे दूसरों की विदवत्ता का आदर करते थे। श्रीकांन्त वर्मा हो या केरल के शंकर कुरुप, उनकी कविताओं की वे जी भर प्रशंसा किया करते थे। अस्तित्ववादी चिंतकों पर इसी विनम्रता के कारण समीक्षात्मक लेख लिखे। गुरु हजारी ¯ÖÃÖÖ¤ü के साथ-साथ राहुल सांकृत्यायन, निराला, मैथिली शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' शांतिप्रिय द्विवेदी, रामचंद्र वर्मा आदि साहित्यकारों को विनम्रता से नम्न करते हैं। यह सूची इतनी बडी थी कि शिवप्रसाद जी कहते थे, 'किस किसको नाम करु' नेहरु के ¯¾Öü< उनका यह नमन देखिए-"अपने देश में एक ऐसा व्यक्ति है जो पतला दुबला, सुंदर तन बदन का, आकर्षक सा पुरुष है, जो चाहता तो राजकुमारों की तरह रहता, पर जिसने अलख फकीरी का बाना धारण कर लिया है, जो मिजाज का बडा गरम है, दिल का बडा कोमल, एक क्षण आग, दूसरे क्षण पानी।"[46] इसी विनम्रता के कारण उन्होंने 'अलग अलग वैतरणी' उपन्यास त्रिलोचन शास्त्री, शमशेर तथा नागार्जुन को भेंट किया है। इसी विनम्रता से 'उत्तर योगी' का सृजन हुआ। इसी विनम्रता के कारण उन्होंने लोहिया को गुरु माना था। उनकी विनम्रता के एक नही हजारों उदाहरण मिलते हैं।

1.2.2.3 ÃÖ‘ÖÂÖ¿ÖßÖ»ÖŸÖÖ :

शिवप्रसाद सिंह का जीवन, संघर्षो की गाथा है। यह संघर्ष बचपन से ही शुरु हो जाता है। पढाई के लिए संघर्ष करना पडा। पढाई के लिए ही एक दिन बनारस भाग जाते है। इसी समय परिवार आर्थिक कठिनाईयों की परिस्थितियों से गुजर रहा था। इसका भी तनाव उनके मन पर था। उन्हीं के शब्दों मे- "लोग यही जानते हैं कि लेखक एक बडे जमींदार परिवार का सदस्य है। तथाकथित जमींदार परिवार में फाके होने लगे थे। घर में तेल नहीं था मिट्टी (किरासन) तेल के लिए पैंसे नहीं थे... मिठे तेल में दिया जलाने की बात तो सपना थी। हम किशोर लोग सूखी सनई जलाकर रोशनी करते ताकि घुघनी में नमक सही अंदाज से पडे और कहीं ठीक से उलटे-पुलटे बिना तीखी ऑच पर जल न जाये।"[47]

जीवन के हर क्षेत्र में उनका यह संघर्ष जारी था। नौकरी के क्षेत्र में स्वाभिमान हेतु संघर्ष, लेखन में सत्य की अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष। मंजुश्री के साथ साक्षात मृत्यु से संघर्ष, उनका 'मंजुशिमा' यह उपन्यास मृत्यु के साथ किये गये संघर्ष की कथा ही तो है। स्वयं की लंबी बिमारी, रेनेल फेल्योर की दारुण चिंता, डॉक्टरों का अमानवीय व्यवहार, किडनी न पा सकने की स्थिति में रोज-रोज हारना, हारकर जीना, फिर इसी क्रम में दु:खों का गझिन होते जाना-सब कुछ सहा था शिवप्रसाद सिंह ने पर संघर्ष जारी था। लेखक कहते हैं,"मृत्यु जीती, मैं हारा। पर मैं संतुष्ट हूँ। इसलिए कि मैने उसे (मंजुश्री को) मृत्यु के मुख में जाने से रोक दिया था।क्या हुआ कि वह तीन साल तक ही जी पायी। यह भी बहुत है। अगर मैंने मृत्यु को एक मिनट के लिए भी रोक दिया तो मैं सफल हूँ। मैं टूट गया तो क्या हुआ? मृत्यु भी तो टूट गयी मेरे लिए।"[48]

संघर्ष ही शिवप्रसाद के लेखन का प्राण है। पाठक महसूस करता है कि लेखक विपिन के साथ लड रहा है, भैरों पाडे के साथ लड रहा है। रामानंद, कीरत, शिवेंन्द्र, प्रतर्दन लेखक इनके संघर्ष में साथ है। सब्बों मौसी की लडाई न्याय की है तो लेखक भी उसके साथ है। चमार, भंगी, डोम, मुसहर, हिजडा, समाज से उपेक्षित और बहिष्कृत जन के साथ तो लेखक लड ही रहे थे। क्योंकि लडना और लडते रहना शिवप्रसाद की नियति थी। हर कदम पर संघर्ष, कदम-कदम पर संघर्ष शिवप्रसाद जी के जीवन का ब्रिद बन गया था।

1.2.2.4 Ã¯ÖÂ™¾ÖÖ×¤ŸÖÖ :

शिवप्रसाद सिंह जी अपनी स्पष्टवादिता के लिए हिंदी साहित्य जगत में प्रसिध्द थे। साहित्य ही नही समाज, धर्म, राजनीति आदि. विषयों पर भी वे अपने विचार स्पष्ट रुप से व्यक्त करते थे। ललित निबंध हो या उपन्यास उन्होंने अपने विचार स्पष्ट रुप से पाठक के सामने रखे है… लेखक को पाठकों की 'सत्य के प्रति आस्था' पर विश्वास £ÖÖ…

अपनी भूमिकाओं तथा निबन्धों में लेखक की स्पष्टवादिता अधिक प्रखर रुप से देखी जा सकती है। "कुहरे में युध्द" की भूमिका मे वे लिखते है कि 'हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता ने नींद हराम कर रखी है। अत: उन्होंने इस पर लिखा और बडी ईमानदारी से लिखा है। इस समस्या पर लिखना कुछ लोगों को हिन्दूवादी होना लगता है। लेखक को उसकी चिंता नहीं है। क्योंकि शिवप्रसाद सिंह जी जानते थे कि लेखक होने का यही दंड होता है। परन्तु वे पर्याप्त धैर्यवान थे और उन्हें विश्वास था कि, एक न एक दिन सत्य पुकारेगा और तुम्हें ठोस जमीन पर ले आयेगा।"[49]

नवलेखन पर उनके स्पष्ट और सुव्यवस्थित विचार "आधुनिक परिवेश और नवलेखन" में पढने को मिलते हैं। नवलेखन देश की जीवित समस्याओं पर सोचना नहीं चाहता, यथार्थ की ठोस जमीन पर खडा होना नही चाहता, तो फिर वह जीना क्यों "ÖÖÆÏÖÖ ÆÏ?"[50]

हिंदी आलोचना पर भी उनके स्पष्ट विचार देखने को मिलते है। आलोचकों की गुटबाजी के कारण वे स्वयं उपेक्षित रहे। उन्हीं के शब्दों में-"आलोचना को सेतु बनाने का कार्य करना चाहिए, पर दुर्भाग्य से हिंदी में आलोचक अवसर के अनुसार अपने को बदल लेने की प्रक्रिया में इतना रस लेते हैं कि प्राय: आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं। लगातार एकांगी और रचनाकार के प्रति बेईमान का व्यवहार उनका उददेश्य बन गया है। वह मात्र समीक्षा तक सीमित न रहकर शिविरवादी बटखरों से लेखक की रचना को तौलकर जहाँ चाहे पहुंचाने का अमर्ष ढोने लगता है।"[51]

इसकी स्पष्टवादिता के कारण वे प्रजातंत्र को 'मृग मरीचिका' कहते है, स्वतंत्रता के बाद के भारतीय इतिहास को वे एक ही शीर्षक देते हैं- शर्मनाक भिक्षा काल लेकिन

वे साक्ष्य के बिना कुछ कहते ही नही थे। साक्ष्य के बिना लेखक उन्हें अधूरा लगता था। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि, "शिवप्रसाद सिंह अपनी दो टूक बात कह देने के लिए प्रसिध्द थे। न ऊधो का लेना और न माधों का देना, उनके व्यक्तित्व का स्वभाव है।"[52]

१.२.२.५ संवेदनशीलता :

सहित्यकार शिवप्रसाद सिंह अत्यंत संवेदनशील मन के सर्जक थे। उनके मन में एक कवि हमेशा मौजूद रहता था। इसीलिए उनकी कहानियों, उपन्यासो, निबंधो में कवि की-सी संवेदना देखने को मिलती है।

यह संवेदना ही है जो लेखक को समाज से जोडती है। जोडती ही नही उद्विग्र भी करती है। रचना के माध्यम से वह अपनी संवेदना समाज के साथ जोडता है। इसीलिए शिवप्रसाद सिंह समाज के आखिरी छोर पर खडे गरीब किसान, मजदूर, नट, मुसहर, दलित आदि. की संवेदना को अभिव्यक्त करते है। इसी बात को रेखांकित करते हुए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी भी उन्हे एक पत्र मे लिखते हैं- 'इन्हें भी इंतजार है' आद्योपांत पढ गया हूँ। तुमने एक अद्‌भुत संसार को प्रत्यक्ष कराया है। कजरी, सुभागी, नन्हों, दीनू, लहरी, जगिया, पंडित घूरेमल सचमुच तुम्हारे इंतजार में थे।"[53] लेखक की इसी संवेदनशीलता ने पटनहिया भाभी, कनिया, रुपवा, सोनवाँ. जैसे अद्वितीय पात्र हिंदी साहित्य को दिये।

१.२.२.६ अध्ययनशीलता :

"एक लेखक के निर्माण में सार्वजनिक जीवन की संरचनाएँ, नाना पुराण ग्रंथ, अध्ययन और अनुभव, प्रतिभा एवं श्रम आदि का योगदान रहता है।"[54] शिवप्रसाद जी के संदर्भ में यह बात सौ प्रतिशत सही है। बकौल हिमांशु जोशी."साहित्य, संस्कृति, दर्शन हर विषय में उनकी गहरी पैठ थी।"[55] तथा बकौल कृष्णदत्त पालीवाल "बेहद प्रतिभा संपन्न और अद्‌भुत पढाकू। पुराने नये साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र ज्योतिष, तंत्र साधना का रात दिन अध्ययन मंथन किया।"[56] इन बातों से स्पष्ट है कि शिवप्रसाद जी बहुचर्चित रचनाकार थे। उन्होंने देश विदेश के प्राचीन और नवीनतम साहित्य का

अध्ययन तो किया ही था, साथ ही इतिहास, संस्कृति दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान गणित, आदि. विषयों में उनकी अच्छी पहुंच थी। विज्ञान की उपलब्धियाँ तथा सिमाओं का उन्हें अच्छा परिचय था। अध्ययन उनका नित्य कर्म था। समीक्षा हो या शोध कार्य हो या सृजन कार्य अध्ययन अनिवार्य होता था। "विषयवस्तु दिमाग में एक लम्बे अर्से तक कौंधती रहती है, उससे जुडी उपलब्ध समस्त सामग्रियों का आद्योपांत अध्ययन करता Æ..."[57] उनका शोध साहित्य 'कीर्तिलता तथा अवहट्ठ भाषा'तथा 'सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य' उनकी अध्ययनशीलता के उत्कृष्ट प्रमाण हैं... 'उत्तर योगी' आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद' आदि रचनाएँ उनकी अध्ययनशीलता के अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। उनके शोध-ग्रन्थों को देखकर ही राहूल जी ने उन्हें 'बीहड पथ का सबल पैर' कहा था।"[58] उनके 'नीला चाँदा' 'कुहरे मे युध्द' 'दिल्ली दूर है' 'वैश्वानर' आदि उपन्यास भी किसी शोध कार्य से कम नहीं है।

१.२.२.७ गंभीरता :

डॉ.शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व के संदर्भ में डॉ.विवेकी राय कहते है, "अध्यात्म, इतिहास, ज्योतिष, भाषाविज्ञान, साहित्यशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, धर्म, दर्शन, और पूरब-पश्चिम के साहित्य आंदोलनों आदि.के गहन अध्ययन से परिपुष्ट उनका यह व्यक्तित्व बहुत ही गंभीर है।"[59] आपके छात्र तथा साहित्यिक मित्र इस गंभीरता का आदर करते थे। आपके गंभीर व्यक्तित्व के सामने वे नतमस्तक हो जाते थे।

धीर गंभीर बातें करना और कम बातें करना आपके व्यक्तित्व की विशेषता कही जायेगी। जब तक कोई अपनी ओर से बात शुरु नहीं करता शिवप्रसाद जी चुप ही रहते थे। परन्तु अध्यापक के रुप में जब छात्रों के सम्मुख उपस्थित होते थे तो विविध विषयों पर अधिकार वाणी से घंटो बोलते रहते। अतः छात्रों में आप प्रिय थे। आपके छात्र रहे डॉ.प्रेमचंद जैन के शब्दों मे "जिन शिक्षकों का पढाने के लिए सुनाम था उनमे डॉ.शिवप्रसाद सिंह का नाम अग्रिम पोंरो पर लिया जाता था। कक्षा में उनसे किसी को भय नही लगता था। परन्तु कक्षा के बाहर फिर वही भय। "[60] कभी वात्सायन जी ने भी केदारनाथ जी से कहा था कि "मैने तो सोचा था कि हिंन्दी में सब से अधिक गंभीर

मैं हू, लेकिन हमको भी शिवप्रसाद जी ने हरा दिया।"[61] ऐसा गंभीर व्यक्तित्व था शिवप्रसाद जी का!

१.२.२.८ चिंतनशीलता :

विविध विषयों पर निरंतर अध्ययन और उस पर चिंतन शिवप्रसाद जी की प्रवृत्ति थी। एक तो साहित्यकार और दूसरे अध्यापक। अत: इन दोनों भूमिकाओं की नियति एक ही थी-चिंतन जो भी मिला पढ जाते, पढने के बाद चिंतन करते। सार्त्र, कामू, से लेकर अरविंद, लोहिया तक पढे, उन पर चिंतन किया। राजनीति, समाज, विज्ञान, साहित्य आदि पर चिंतन जारी था ही… उनके उपन्यासों मे भी यह चिंतन घुल-मिल गया हैं। शिवप्रसाद जी का कोई भी उपन्यास उठा लीजिए, उसमे एक चिंतन सर्जक के दर्शन होते है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय गांव में आये बदलाव का चिंतन है,'अलग अलग वैतरणी' मे युवा आक्रोश पर चिंतन हैं, 'गली आगे मुडती है' में मध्यकालीन काशी पर चिंतन है 'नीला चाँद' में वैदिक कालीन काशी पर चिंतन है, 'वैश्वानर' में साक्षात मृत्यु का चिंतन है, मंजुशिमा 'में' एक नही बहुत सारी बाते है। तभी तो हिंदी के प्रसिध्द साहित्यकार प्रभाकर माचवे जी कहते है-"मैं शिवप्रसाद सिंह को हिन्दी का बहुत बडा आशा-प्रकाश स्तंभ मानता हूँ। उनमे सहज चिंतक और कवि- कथाकार के बडे मधुर एवं सुदृढ दर्शन ÆÖŸÖ Æï...[62]

१.२.२.९ आस्तिकता :

शिवप्रसाद सिंह आस्तिक थे। उनकी ईश्वर में आस्था थी। परन्तु अपनी आस्था का उन्होंने कभी प्रदर्शन नही किया। दिखावे से उन्हे सक्त नफरत थी। आस्था या श्रध्दा का यह अर्थ नहीं कि हम भीड में खो जाएँ। शिवप्रसाद जी को ऐसी भीड कभी पसंद नहीं आयी। इसी कारण कभी-कभी वे अपने आपको नास्तिक तक कह देते थे। कहते थे, "मैं आज अपने आपको नास्तिक कहता हूँ। पर मूर्ति पूजा का विरोध नहीं करता।"[63] ´ÖÙŸÖ या मूर्तिपूजा के संदर्भ में उनके विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। वे कहते थे कि मूर्ति इसलिए महत्वपूर्ण नहीं होती है कि उसमें शक्ति होती है, बल्कि महत्वपूर्ण बात हो जाती है जब

उसे हजारों लोग पूजने लगते हैं शीश झुकाने लगते हैं। यही ईश्वर के प्रति आस्था महत्वपूर्ण है।

अंधश्रध्दा, रुढि परंपराओं का तिरस्कार शिवप्रसाद जी ने किया है। ईश्वर और धर्म संबंधी लेखक के विचार पाखंडो से दूर है। हिन्दू धर्म की अनेक कालबाहय परंपराएँ, रुढियाँ पसंद नहीं थी। वही बात पूजा के संदर्भ में,"नीला चाँद" के संदर्भ में रामकली सराफ कहती है," रचनाकार के लिए पूजा, आराधना, आत्मा के संस्कार की चीज है न कि बाह्य दिखावे या पाखंड प्रदर्शन की।"[64]

१.२.२.१० मानवता :

शिवप्रसाद सिंह जी साहित्यकार अध्यापक, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे, परन्तु सबसे पहले वे एक सच्चे सहृदय इन्सान थे। मानवतावादी विचार एवं व्यवहार आपके व्यक्तित्व की बुनियाद थे। इसी कारण अपनी रचनाओं में उन्होने समाज के उपेक्षित एवं शोषित वर्ग की व्यथा कथा को अभिव्यक्ति दी है। वे स्वयं कहते हैं, "मेरी प्रेरणा के स्त्रोत हैं लोहिया यानी कामरेड जो "कैपिटल" और "कठोपनिषद" को समन्वित करने की तकनीक में माहिर थे, मैं जन के साथ हूँ, श्रमिक किसान, औरते, मजदूर, संघर्ष में निरंतर उपवास के बीच जिगर तोड कमाई करने वाले मेरे "जन" के आधार हैं, बेरोजगार युवक मेरे जन के खंभे है।"[65]

मनुष्यता से बढकर उनके लिए कोई विचार नही हैं, कोई पार्टी नहीं है। आप उन्हें कांग्रेसी, मार्क्सवादी, समाजवादी कुछ भी समझने के लिए आजाद हैं पर तब हम निश्चित रुप से गलत होंगे, क्योकि उनके अनुसार "मैं तो उस पार्टी का सदस्य हूँ जिसके सामने मनुष्य से बडी कोई इकाई नहीं हैं, मनुष्यता से बड़ा कोई मजहब नहीं है-मैं उसी की आत्मा के अपूर्व सौंदर्य का चितेरा हूँ और इसी सत्य की विजय के लिए सचेष्ट हूँ। जो भी इसके पक्ष में है, इसके साथ हैं, उनके साथ दिखाई पडता हूँ। जो इसका नाम लेकर अपना स्वार्थ साधते हैं-मै उनका पर्दाफाश करता हूँ।"[66]

शिवप्रसाद जी का संम्पूर्ण कथासाहित्य इसी मनुष्य की अबाध विजय यात्रा का ध्वजवाहक हैं, नन्हों से लेकर कनिया तक, कजरी से लेकर पटनहिया भाभी तक भैरों

पांडे से लेकर रामानन्द तक, खलील चाचा से लेकर आनंद तक, कीरत से लेकर प्रतर्दन तक सभी मनुष्य की विजय यात्रा के ध्वजवाहक हैं।

१.४ डॉ. शिवप्रसाद सिंह का कृतित्व :

शिवप्रसाद जी का जीवन संघर्ष का दूसरा नाम हैं। शिवप्रसाद जी के सृजन कार्य का आरंभ कविता से हुआ था। लेकिन कविता उनकी बौध्दिक रुझानों का साथ न दे सकी। नये विचारों का बौध्दिक पर्यावरण उन्हें कहानी उपन्यास की ओर ले गया। कहानी उपन्यास में उन्होंने अपना एक अलग स्थान बनाया। इन विधाओं को नयी दिशा भी दी। यही बात उनके निबंध तथा समीक्षात्मक साहित्य पर भी लागू होती है।

बहुत ही पढाकू व्यक्तित्व, गंभीर चिंतन, आधुनिक दृष्टि से उनका रचनाकार्य प्रभावित रहा। अत्याधिक अध्ययनशीलता लेखक की सर्जनात्मक क्षमता एवं शक्ति को कभी-कभी कम कर देती है। शिवप्रसाद सिंह के संदर्भ में ऐसा नहीं हुआ। उल्टे अध्ययनशीलता से उनके सृजन में लालित्य द्विगुणित ही हुआ है। रुपसिंह चंदेल कहते है- "डॉ.शिवप्रसाद सिंह उन बिरले लेखकों मे थे जो किसी विषय विशेष पर कलम उठाने से पूर्व विषय से संबंधित तमाम तैयारी पूरी करके ही लिखना प्रारंभ करते थे।"[91] यानी किसी शोधकार्य से कम न था। उनका साहित्य-सृजन 'वैतरणी' की तटचर्चा मे वे कहते हैं-"इस उपन्यास पर मैं कई बरसों से काम करता आ रहा हूँ। कई बार काटा-पीटा और रद्दोबदल किया हैं। जानता हूँ यह अंतिम रुप भी मेरे मन के करैता की सही 'ठनक' को बाँध नही पाया है। पर कहीं न कहीं तो विराम चाहिए हीं।" इसलिए पांडुलिपी जब तक प्रकाशकों तक नही पहुंचती उनमे निरंतर रद्दोबदल की प्रक्रिया जारी रहती थी। रचना के प्रति रचनाकार के मन में जो एक मोह जन्म लेता है, उसे वे बार-बार तोडते रहते। कहना ना होगा कि उनका समस्त साहित्य इस दिव्य प्रक्रिया से गुजरा है।

किसी भी साहित्यकार की रचनाओं का अनुशीलन करते समय एक प्रश्न मन में उठता ही है। और वह है प्रभाव का। शिवप्रसाद जी पर शुरु में प्रेमचंद जी का कुछ प्रभाव जरुर रहा। पर इनका मार्ग अलग था। प्रेमचंद जी उनके उद्देश्य की एक मंजिल थे,

शिल्प में उनके आदर्श कभी नहीं बने। महादेवी का गद्य तथ प्रसाद की कहानियाँ उन्हें अच्छी लगती थी। वैचारिक क्षेत्र में लोहिया, अरविंद, से वे काफी ¯Ö³ÖÖ×¾ÖŸÖ ¸üÆü… ¤üÃÖ कैपिटल' और 'कठोपनिषद' यानी शोषण मुक्ति और स्वातंत्र्य दोनों को जोडने वाले राम मनोहर लोहिया को वे अपना गुरु मानते थे। विवेकानंद, अरविंद, रवि बाबू, हजारी प्रसाद द्विवेदी-ये सब ऐसी मंजिलें हैं ऐसे आदर्श है, जिन तक पहुंचना उनका ध्येय £ÖÖ…"[92] इसके लिए उन्हें अपनी स्वतंत्र परंपरा पर चलना अधिक पसंद था। परंपरा के नाम पर किसी भी लेखक के पास अपने को गिरवी रखना उन्हें पसंद नहीं था। यह उनकी प्रवृत्ति के खिलाफ था। वे तो "शिवप्रसाद परंपरा के आरंभिक और अंतिम लेखक £Ö…"[93] अरुणेश नरीन की समीक्षात्मक दृष्टि भी कहती है, "शिवप्रसाद जी को पढने के बाद लगा कि उन्होंने किसी वाद या दर्शन को अपने साहित्य का आवरण नहीं बनाया।"[94]

तब दुसरा प्रश्न मन में उठता है कि शिवप्रसाद सिंह की संहिता का प्रेरणा-बिन्दु क्या है? उत्तर उन्हीं के शब्दों में, "मेरे लेखन की प्रेरणा मेरे आसपास जीने वाला सामान्य आदमी है। मैं लिखता तो उसी के लिए हूँ, पर सामाजिक ढाँचा ऐसा है कि उस सामान्य आदमी के एक बहुत छोटे हिस्से तक मेरा लेखन पहुँच पाता है। मैं अवरोध को तोडने के लिए प्रयत्न भी करता हूँ और इसे ही लेखन की प्रेरणा भी कहता हूँ।"[95]

1.4.1 कहानी साहित्य :

शिवप्रसाद सिंह स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य के प्रतिष्ठित कथा साहित्यकारों मे प्रथम पंक्ति के रचनाकार हैं। कहानी लेखन से ही उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा है। सन १९५१ में जब वे बी.ए. के छात्र के रुप में होस्टेल में रहते थें तब 'दादी माँ' कहानी लिखी थी। उस समय उन्हे १०४ डिग्री बुखार था और दादी माँ की याद आ रही थी। 'दादी माँ' कहानी अक्टूंबर १९५१ के 'प्रतीक' में संपादक अज्ञेय की इस टिप्पणी के साथ छपी थी- "जिन्हें कहानी के लिए प्लाट नहीं मिलता वे 'दादी माँ' कहानी पढकर सीखे। मार्गदर्शन के लिए यह कहानी उनके लिए उपयुक्त है।"[96]

शिवप्रसाद जी ने 'कर्मनाशा की हार', 'आर पार की माला', 'उपधाइन मैया',

'संपेरा', 'बिंदा महाराज', 'अंधकूप' (अंधकूप सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-१ से), 'एक यात्रा सतह के नीचे', 'इन्हें भी इंतजार हैं', 'धारा', 'मुरदासराय' (एक यात्रा सतह के नीचे सम्पूर्ण कहानियाँ भा-२), 'सुनो परीक्षित सुनो', 'अमृता' (अमृता कहानी संग्रह) एक से एक बढकर ८५ कहानियाँ लिखी। कहानियाँ संख्यात्मकता की अपेक्षा गुणात्मकता में ÁÖÂŠ Æ...

शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं। 'बिंदा महाराज' मास्टर सुखलाल, नन्हों, अमृता, आदि. शीर्षक भी इसी बात के प्रमाण हैं। शिवप्रसाद सिंह जी के मन में पहले चरित्र उभरते थे, फिर कहानी के माध्यम से पाठक के सामने आते थे। उनकी ज्यादातर कहानियों मे एक मैं अवश्य मिलता है। पर यह 'मैं' मात्र शैली नहीं है। कहानियों को व्यक्तिपरक बनाने वाला माध्यम मात्र भी नहीं है और न ही स्थितियों का प्रत्यक्षदर्शी गवाह ही वह वस्तुतः समय सत्य का साक्षी और भोक्ता पुरुष है उनके लिए साहित्य आत्मअनुभव की प्रक्रिया मात्र है। डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी के अनुसार- "मैं का माध्यम उनके लिए अपने व्यक्तित्व की तलाश है जो कृतित्व का ऐसा अविभाज्य अंग बन गया है कि प्रयुक्त कहानियाँ उसी के कंधो पर टिकी है।"[97] अतः यह 'मै' भोगे हुए अनुभवों की सच्चाई के लिए आवश्यक बन गया है।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में ग्रामीण जीवन का ययार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है। प्रेमचंद जी की कहानियों मे एक आदर्श था। स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के मूल्यों और आदर्शो में तेजी से टकराहट पैदा हुआ उसी का चित्रण शिवप्रसाद जी की कहानियों में है। उन्होंने अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज की व्यथा को सशक्तता के साथ अभिव्यक्त किया है। इसमें विवाह में ठगी गयी नन्हों है तो जीवन से ठगी गयी 'कबरी' (इन्हें भी इंतजार है)। परिवार के बोझ तले 'अवधू' (एक यात्रा सतह के नीचे) की भावनाएँ दब गयी हैं। अगर म्लेच्छ होने के कारण अशरफ चाचा (किसकी पाँखे) से देवी की पूजा का चंदा नही लिया जायेगा तो वे गांव छोडने के लिए मजबूर होंगे ही। हरिचरण मौत से डरकर 'मुरदा सराय' में आया था और अब जिंदगी से डरकर घर जा रहा है। यहाँ 'कर्मनाश की हार' होती है, 'नयी पुराणी तस्वीरे' देखने को मिलती हैं। बरगद का पेड खडा है महुवे के फूल खिले हैं... साथ ही नीरु की 'आर पार की माला'

न बंधने से और 'पापजीवी' बदलू की व्यथा से आँसुओं में धरती भीगती रहती है।

स्पष्ट है कि प्रेमचंद के बाद कहानी साहित्य में ग्रामीण जीवन पर लिखने वाले शिवप्रसाद जी सर्वाधिक समर्थ कहानीकार के रुप में सामने आते हैं। डॉ. पुष्पपाल सिंह के शब्दों में 'जिस प्रकार गाँव के संस्कार में पुरी तरह पगी भाषा प्रेमचंद लिखते हैं, वैसी शिवप्रसाद सिंह के अतिरिक्त कदाचित, कोई और प्रेमचंद के बाद नहीं लिख सकता है। यह महज फतवेबाजी नहीं, सभी लेखकों की कहानी भाषा के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर पूर्ण दायित्व के साथ दिया गया निष्कर्ष है।"[98] इसलिए परमानंद श्रीवास्तव के लिए शिवप्रसाद जी 'प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं'।[99]

1.4.2 उपन्यास साहित्य :

शिवप्रसाद जी ने 'अलग अलग वैतरणी' के रुप में १९६७ मे पहला उपन्यास लिया। वैसे उपन्यास लेखन की बात १९५६-५७ के आस पास से ही उनके दिमाख में थी। उनकी बहुत सी कहानियाँ औपन्यासिक हैं, जैसे 'आर पार की माला', 'इन्हें भी इंतजार है', 'कर्मनाशा की हार', 'पापजीवी', 'नन्हों', 'मुरदा सराय' आदि कई कहानियाँ उपन्यास होते होते बच गयीं। एक तरह से कहा जायेगा कि उन्होंने उपन्यासो की हत्या करके कहानियाँ लिखी है... फिर उन्होंने महसुस किया है कि आज की जिंदगी इस सीमा तक उलझी हुई है कि वह कहानी से अधिक निबंधों में ही अभिव्यक्त हो सकती है। यदि उसे और अधिक गहराई में ले जाना चाहें तो फिर उपन्यासों की शरण लेनी पडेगी।[100] †Ö¸ उन्होंने उपन्यासों की शरण ली। एक के बाद एक 'अलग अलग वैतरणी', नीला चाँद', वैश्वानर' जैसे महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखे।

'अलग-अलग वैतरणी' स्वातंत्र्योतर ग्राम जीवन को चित्रित करता है तो 'गली आगे मुडती है। युवा आक्रोश को। 'नीला चाँद' कलासिक उपन्यास मध्ययुगीन काशी पर लिखा गया है, तो 'वैश्वानर' वैदिक काल की काशी पर। 'कुहरे में युध्द', 'दिल्ली दूर है' में 'नीला चाँद' की तरह ही इतिहास की पृष्ठभूमि में वर्तमान की समस्याओं का चिंतन है। नटो के संघर्ष को 'शैलूष' में और नारी की उपेक्षा को 'औरत' में अभिव्यक्त किया है। 'मंजुशिमा' में बेटी को बचाने के लिए साक्षात मृत्यु से संघर्ष करने वाले पिता

का चित्रण है। संक्षेप में 'शिवप्रसाद जी की हर कृति अपने साथ एक सवाल लेकर उपस्थित होती है, जो निरंतर पाठक के मन को उद्वेलित करता है।'[101]

'मंजुशिमा' में मृत्यु से संघर्ष करने वाले शिवप्रसाद जी आखिर मृत्यु से हार ही गये। भौतिक रुप से जन्म लेने वाले प्रत्येक सजीव की मृत्यु निश्चित है, पर उन्हे जिंदगी से केवल और दस वर्षों की अपेक्षा थी। क्योंकि उन्होंने पुनर्जन्म के रहस्यों पर आधारित एक उपन्यास 'कहाँ कहाँ खोजूँ' लिखना आरंभ किया था। कबीर के जीवन पर आधारित 'अनहद गरजे' उपन्यास में छह सौ साल पुराना बनारस पुनर्जीवित होने वाला था, भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के आग्रणी सेनानी कुँअर सिंह के जीवन पर भी एक बडा उपन्यास लिखने का उनका मानस था।[102] विद्यापति के जीवन पर भी उपन्यास लिखने का सृजन की तैयारी चल रही थी।[103] काफी कुछ था उनके मन मे, परंन्तु उनकी २८ सितंबर १९९८ को मृत्यु ने हिंन्दी साहित्य जगत को अपरिमित हानि पहुँचायी। हिन्दी साहित्य जगत ने न केवल उन्हें खोया, बल्के उनके साथ बहुत कुछ खो दिया, हमेशा के लिए।

1.4.3 निबंध साहित्य :

शिवप्रसाद सिंह मूलत: कथाकार थे। परन्तु कथा साहित्य के अलावा उनका साहित्यिक मन निबंध लेखन में भी काफी रुचि लेता था। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र कहते हैं,। उपन्यास विधा निबंधकार पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी के लिए अथवा कवि कथाकार अज्ञेय के लिए निंबध विधा जैसे द्वितीय कोटी की विधा नही थी, वैसे ही कथाकार शिवप्रसाद सिंह के लिए निबंध रचना बैठे ढाले का धंधा नहीं है[104] इसिलिए उन्होंने एक से बढकर एक रचना बैठे ढाले का निबंध लिखे। इन निबंधों में उनका गुरु गंभीर व्यक्तित्व, बहु पठनीयता स्पष्ट रुप से देखने को मिलती है, बिल्कुल अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह।

'शिखरों का सेतु' (१९६२) उनका पहला निबंध संग्रह। इसके बाद 'कस्तुरी मृग' 'चतुर्दिक' आदि निबंध संग्रह प्रकाशित हुए। आज उनके संपूर्ण निबंधो के दो संग्रह - 'मानसी गंगा (१९८६) 'किस किस को नमन करुँ '(१९८७) प्रकाशित हो चुके हैं। उनके

बाद 'क्या कहुँ कुछ कहा न जाये १९९५ 'खालिस मौज में' (१९९८) प्रकाशित निबंध संग्रह हैं 'जेहि मन पवन न संचरै', 'रसमादन', ' 'बीडा उठाइए', 'अंधेरी रात का गुलाब', 'उदास पतझर का कथाकार : चेखव', 'मैं क्या हूँ', 'क्या कहूँ कुछ कहा न जाये', 'राम को पुनः वनवास न दें', 'लोकतंत्र की मृग मरीचिका', 'धूलिवंदन' आदि १२६ निबंध शिवप्रसाद सिंह जी ने लिखे। यानी कहानियों से भी अधिक उन्होंने निबंध लिखे। अपने इन निबंधो के बारे में उनका कहना है, "बहुत से निबंध तो अपने को विश्लेषित करते दिखाने के लिए लिखे कि मैं हूँ क्याँ? लेकिन सबसे बडा कारण वह विश्वास ढूँढना था, जो अन्न ने उपजता है और वह अन्न खेतों में सरसों का फूल बनकर छाता है। जितनी प्रकृति कहानी में आयी थी, वही लोगों को अधिक लगती थी। लेकिन मेरी प्रकृति पूजा का उपसंहार तो निबंध में ही होता है।[105] अमूमन ललित निबंधकार अतीत के ऐश्वर्य या प्रकृति के वैभव में डूब जाना ही अपनी सिध्दी मानते हैं, लेकिन शिवप्रसाद सिंह के संदर्भ में ऐसा नहीः है, वे गहन रसास्वादन के क्षणों में भी लोक की चिंता नहीं छोडते। 'रसमादन निबंध का यह आरंभ ही देखिए "गरमी की छुट्टी हो या किसी पर्व त्यौहार का समय, जहाँ भी नियमित ढंग से चलते हुए कार्यो से बचने का मौका हाथ लगे मेरे मन के भीतर सोया ईहामृग तुरंत गांव की डगर पकडना चाहता है[106]

साहित्य के शलाका-पुरुषों का जीवन इनके निबंध लेखन का प्रिय विषय रहा है। महाकवि निराला राहुल, नवीन, शंकर करुप से लेकर चेखण हेमिंग्वे, पास्तरनाक, कामू आदि के जीवन पर लिखे गये निबंध शिवप्रसाद सिंह जी की नयी दृष्टि को उजागर करते है। निराला जैसे श्रेष्ट साहित्यकार को हमने ठीक से समझा ही नहीं। इस बात की पीडा व्यक्त कर शिवप्रसाद जी कहते हैं, "निराला ने अपने काव्य जीवन में आरंम्भ से अंत तक सिर्फ एक साधना की है और वह है आत्मविसर्जन की साधना। उन्होंने अपने को लुटा देने का संकल्प किया था, अपने को सब में डुबा देने का व्रत लिया था किन्तु अंतता उनके पास ऐसा बहुत बचा रह गया था जिसे समाज ले न सका, आत्मसात न कर सका।"[107]

शिवप्रसाद सिंह जी के अंदर एक कवि हमेशा मौजुद रहा है। उनके अंदर का यह कवि उनके निबंधो में भी नटखट बच्चों की तरह बीच-बीच में ताक झाँक करता दिखाई

देता है। निबंधों के शीर्षक भी किसी कवित्व से कम नहीं। उदा- अंधेरी रात का गुलाब, रसमादन, इसके साथ ही उन्होंने अनेक प्रसिध्द कवियों की रचनाओं को तथा लोकगीतों को भी निबंधो में पिरो दिया है."वह भी क्या जिन्दगी", वही दिन वही सवेरा। वही रात तेली के बैल सरीक फेरा।"[108]

इन निबंधों में शिवप्रसाद सिंह जी का चिंतक के रुप में व्यक्तित्व खुलकर सामने आता है। ऐसे अनेक निबंध है जिनमे लेखक अपनी वर्तमान राजकीय, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थिति पर चिंतन प्रस्तुत करता है। अपने निबंधों में उन्होंने भारत पर मंडराते संकटो और उनमे छिपी साजिश का पर्दाफाश कर दिया है। उनक यह हस्तक्षेप "एक लेखक का हस्तक्षेप है जो तलवारों से हजार गुना अधिक कलम की ताकत Ãö »öÃö Æ…"[109]

1.4.4 शोध एवं समीक्षा :

शिवप्रसाद जी शोधकार्य की अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। एम.ए.के लिए लिखा हुआ लघु शोध प्रबंध 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा' (१९५५) तथा पीएच.डी. की उपाधि हेतु लिखा शोध ग्रन्थ सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य (१९५७) इनके शोध ग्रंन्थें में आते है। दोनों समय निर्देशक के रुप में गुरुवर्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ही थे। इस शोध कार्य को पूरा करने के लिए शिवप्रसाद सिंह जी ने अथक परिश्रम किये थे। 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा' शोध ग्रंथ को देखकर ही राहुल जी ने उन्हें 'बीहड पथ का सबल पैर' घोषित किया था। इस शोध ग्रंथ में अवहटठ भाषा का संतुलित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस शोध ग्रंथ मे अवहटठ भाषा के प्रारंभिक रुप इतिहास, विकास, मैथिली-पिंगल देशी आदि भाषाओं के साथ उसका संबंध. तत्कालिन रानीतिक परिस्थितियाँ आदि के साथ-साथ 'कीर्तिलता' के वस्तु वर्णन तथा साहित्यिक मूल्यांकन का भी महत्वपूर्ण कार्य शोधार्थी ने किया है।

यही महत्वपूर्ण प्रयास 'सूरपूर्व ब्रज भाषा तथा उसका काव्य' में भी देखने को मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कभी कहा था कि सूरसागर किसी पहले से चली आती हुई परंपरा का चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्व विकास सा जान

पडता है। इस सूत्र को पकडकर शिवप्रसाद सिंह जी ने जयपुर जाकर कई दिनों तक पुरानी पांडुलिपियों का अध्ययन किया। साथ ही जैसलमेर, बीकानेर, मेडता आदि स्थानों से भी सामग्री बटोरी और इस शोध कार्य को पूर्ण किया।"[110]

समीक्षा के क्षेत्रे में तो शिवप्रसाद सिंह जी का कार्य सभी को आश्चर्यचकित करनेवाला रहा है। क्योंकि उनकी प्रवृत्ति समीक्षक की कम, सर्जक की अधिक थी। पर इस क्षेत्र में भी उन्होंने जो कुछा लिखा, अद्वितीय है। इसमे विद्यापति (१९५४) 'रसरतन का संपादन' (१९६७) 'आधुनिक परिवेश और नवलेखन' (१९७०) 'आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद' (१९७३) इसमे उनका समावेश होता है।

विद्यापति समीक्षा ग्रन्थ आप में बेजोड है। विद्यापति पर अब तक प्रकाशित समीक्षाओं में यह सबसे श्रेष्ठ है। 'आधुनिक परिवेश और नवलेखन' समीक्षा कृति नवलेखन को प्रतिष्ठापित करती है। शिवप्रसाद सिंह ने समय-समय पर नवलेखन के विषय में जो कुछ सोचा समझा, जिया, भोगा, झेला, उसका खाका इन निबंधो ´Ö ×´Ö»ÖŸÖÖ Æü… इस कृति में कमलेश्वर, मोहन राकेश, और निर्मल वर्मा पर की गयी आलोचनाएँ उत्कृष्ट है। अस्तित्ववादी लेखकों पर लिखे उनके लेख 'आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद' मे संकलित है। धर्मवीर भारती के आग्रह पर धर्मयुग के लिए ये लेख लिखे गये हैं।[111]

शिवप्रसाद सिंह जी ने जहाँगीर कालीन कवि पुहकर की रचना 'रसरतन' (संवत १६७३) का वैज्ञानिक और प्रामाणिक पाठ संपादन किया है। इस प्रक्रिया में उनकी अनुसंधानिका दृष्टि सदैव सक्रिय रही है।"[112] इसप्रकार शिवप्रसाद जी का शोध एवं समीक्षा कार्य किसी दीपस्तंभ से कम नहीं है।

1.4.5 अन्य साहित्यिक विधाएँ :

शिवप्रसाद सिंह जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने कथा साहित्य के साथ-साथ अन्य विधाओं में भी अपनी कलम का जादू दिखाया हैं। नाटक, रिपोर्ताज, जीवनी नाट्यकाव्य, यात्रा वर्णन आदि विधाओं में भी उन्होंने सफलता के साथ लिखा है।

शिवप्रसाद सिंह जी के दो नाटक प्रकाशित हुए है- 'घाटियाँ गूंजती है' और 'अश्मक का फूल' इनमे 'घाटियाँ गूंजती है' चीन भारत युध्द का व्यापक फलक लेकर लिखा गया है। चीनी आक्रमण को शिवप्रसाद सिंह जी के अंदर का साहित्यकार सह नहीं पाया और 'घाटियाँ गूंजती हैं' इस नाटक का प्रमुख पात्र विवेक कहता है, "ऐसी लडाई हमारे इतिहास में पहले पहल आयी है। यह हमारी सैनिक शक्ति की परीक्षा की नही, आत्मिक शक्ति की परीक्षा की भी घडी है। हम तथागत बुध्द, अशोक और गांधी के देश के निवासी आज संयोग से ऐसे शत्रु के सामने खडे हैं, जहाँ हमारी आत्मशक्ति की पूरी जांच हो जायेगी।"[113] यह नाटक तीन अंको में लिखा गया है और श्रीमती इंदिरा गांधी को समर्पित है। 'अश्मक का फूल' भी उनका प्रसिध्द नाटक है।

'सत्य की तलाश शिव के कंधे' उनका प्रसिध्द एवं चर्चित काव्य नाटय है। यह कृति आठ सर्गो में विभक्त है। इस पर भी चीनी आक्रमण की छाया देखी जा सकती है 'शिव' भारत के प्रतीक है, सौम्य और शान्तिप्रिय। 'दक्ष' खुदगर्ज चीन का प्रतीक है। 'सत्य' उच्च मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों का प्रतीकात्मक रुप है। सत्या के विनाश पर शिव विचलित हो तांडव नृत्य करते है।

'उत्तरयोगी' (श्री अरविंद जीवन और दर्शन) शिवप्रसाद सिंह जी द्वारा लिखित प्रसिध्द जीवनी है। उत्तर से आने वाले योगी श्री अरविंद ने अपनी व्यावहारिकता से लेखक को सबसे अधिक प्रभावित किया था।"[114] परिणाम देखने को मिला-बडे परिश्रम से लगभग ४०० पृष्ठों में लिखी गयी यह जीवनी।

'साब्जा पत्र कथा कहें' शिवप्रसाद जी का यात्रा वृत्तांत मात्र नहीं है, आत्मा को छू देने वाली भावुकता भी है। शिवप्रसाद जी के लिए देश के बाहर जाना देश से निकाला जैसे लगता है। अतः इसमे देश के अंतर्गत की गयी चार यात्राओं का वर्णन है। लेखकने साहित्य, राजनीति, प्रकृति, अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति आदि कई विषयों को इस यात्रा में समेट लिया है।

समय-समय पर अनेक विदवानों ने शिवप्रसाद जी के साक्षात्कार लिए और उसे प्रकाशित करवाए थे।

अपने इन साक्षात्कारों में से कुछ साक्षात्कार शिवप्रसाद जी ने 'मेरे साक्षात्कार' रचना में संग्रहित कर उन्हे प्रकाशित किया है। इन साक्षात्कारों में सृजन प्रेरणा, साहित्यिक विचार, रचनाकर्म जीवन विषयक दृष्टिकोण आलोचना आदि विषयों पर लेखक के विचार व्यक्त हुए हैं।

वैज्ञानिक रिपोर्ताजों पर आधारित रचना 'अंतरिक्ष के मेहमान' शिवप्रसाद जी की प्रसिध्द रचना है। हिन्दी में वैज्ञानिक रिपोर्ताज के क्षेत्र में यह पहला प्रयास है। इस दृष्टि से शिवप्रसाद जी हिंन्दी में वैज्ञानिक रिपोर्ताज के जनक भी है। उन्होंने यह रचना प्रथम अंतरिक्ष यात्री यूरी गागारिन को समर्पित की है।

1.4.6 संपादकीय कार्य :

जिस क्षेत्र में जिस विधा में शिवप्रसाद जी ने कदम रख, उसे अद्वितीय बनाने का प्रयास किया। उनका संपादन कार्य भी इसी श्रेणी का है। उन्होंने अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की षष्ठिपूर्ति अवसर पर 'शान्ति निकेतन से शिवालिक ग्रंथ का संपादन कर उन्हें अनोखी भेंट अर्पित की। २४ सितंबर १९६७ को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के नवनिर्मित प्रेक्षागृह में महादेवी वर्मा की उपस्थिति में शिवप्रसाद जी ने प्रथम प्रति गुरुवर्य को भेंट की तब खचाखच भरा हुआ प्रेक्षागृह तालियों की गडगडाहट से गूंज उठा था। इस रचना में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की बहुत ही व्यापक और तटस्थ व्याख्या करने वाले धर्मवीर भारती, रामदरश मिश्र, प्रभाकर माचवे, बच्चन सिंह, अरुणेश नीरन, नेमिचंद जैन, देवराज, मधुरेश, विद्यानिवास मिश्र, डॉ.राजमणि शर्मा, आदि जाने-माने साहित्यकारों-समीक्षकों के ३९ लेख संपादित किये गये है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हटने की घटना पर शिवप्रसाद जी अपने लेख में कहते हैं, "मैने उन दिनों काफी निकट से देखा। मन के भीतर जो भी उथल¯ÖÛ£Öß»Ö रही हो, बाहर से वे, उन्हीं के शब्द उधार लूँ तो, निर्वात दीप की तरह बिलकुल निष्कंप थे। उनके मन को आघात लगा था, पर मलाल न था। उन्होंने अन्याय के विरध्द लडाई नही लडी। बहुतों को उनका यह व्यवहार खला। मुझे भी।"[115]

इसके साथ ही शिवप्रसाद सिंह जी ने 'कल्पना' के दो सौ दसवें और दो सौं ग्यारहवें नवलेखन विशेषांक अतिथि संपादक के रुप में संपादित किये थे। नवलेखन के पुन:परीक्षण के उददेश्य से इन विशेषांको की योजना बनायी गयी थी। नवलेखन के सर्जक, आलोचक रहे शिवप्रसाद सिंह पर यह काम सौंपा जाना उचित ही था। इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह जी ने 'सरोकार' के धर्म निरपेक्षता, विशेषांक, लोकतंत्र विशेषांक, और तिब्बत समस्या विशेषांक का भी कुशल संपादन किया है।

1.4.7 शिवप्रसाद सिंह : रचना-यात्रा

१.४.७.१ शोधकार्य :

१) कीर्तिलता और अवहटठ भाषा १९५५

२) सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य.१९५७

१.४.७.२ समीक्षा :

1) ×¾ö a ö¯ö×Ÿö - 1954

२) रसरतन (पाठ संपादन) १९६७

३) आधुनिक परिवेश और नवलेखन १९७६

४) आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद १९७३

१.४.७.३ कहानी संग्रह :

१) आर-पार की माला - 1955

२) कर्मनाशा की हार - 1958

३) इन्हें भी इंतजार है - 1961

४) मुर्दासराय - 1966

5) †-ö¸ö ÆÃöŸöö Æ - 1975

६) भेडिये - 1977

७) मेरी प्रिय कहानियाँ - 1978

८) अंधकूप - 1978

९) एक यात्रा सतह के नीचे - १९७९

१०) सुनो परीक्षित सुनो - १९९१

11) †´ÖŸÖÖ - 1991

१२) अंधकूप (सम्पूर्ण कहानियाँ-१)

१३) एक यात्रा सतह के नीचे (संपूर्ण कहानियाँ - २)

१४) अमृता (सम्पूर्ण कहानियाँ - ३)

१.४.७.४ उपन्यास :

१) अलग-अलग वैतरणी - १९६७

२) गली आगे मुडती है - 1974

३) नीला चाँद - 1988

4) ¿Ö»ÖÂÖ - 1989

5) ´Ö•Ö×¿Ö´ÖÖ - 1990

6) †Ö¸ÖŸÖ - 1992

७) कुहरे में युध्द - 1993

8) ×¤»»ÖßÖ ¤¸ü Æ - 1993

९) वैश्वानर - 1996

१.४.७.५ ललित निबंध :

१) शिखरों के सेतु - 1962

२) कस्तूरी मृग - 1972

३) चतुर्दिक - 1972

४) मानसी गंगा (संम्पूर्ण निबंध-१) १९८६

५) किस किस को नमन करु (सम्पूर्ण निबध-२) १९८७

६) क्या कहूँ कुछ कहा न जाये - 1995

७) खालिस मौज मे - 1998

१.४.७.६ नाटक :

१) घाटियाँ गूंजती है - 1963

२) अश्मक का फूल -

१.४.७.७ काव्य नाटक :

१) सत्य की लाश : शिव के कंधे

1.4.7.8 ×¸¯ÖÖŸÖÖ•Ö :

१) अंतरिक्ष के मेहमान - 1965

१.४.७.९ जीवनी :

१) उत्तर योगी (श्री अरविंद : जीवन और दर्शन) १९७२

१.४.७.१० साक्षात्कार :

१) मेरे साक्षात्कार - 1995

१.४.७.११ संपादन :

१) शांति निकेतन से शिवालिक - 1967

२) कल्पना (नवलेखन विशेषांक)

अंक २१० अगस्त १९६९

अंक २११ नवंबर १९६९

३) सरोकार - १ (धर्मनिरपेक्षता विशेषांक) १९८९

सरोकार - २ (लोकतंत्र विशेषांक) १९९०

सरोकार - ३ (तिब्बत समस्या विशेषांक) १९९१

1.4.8 सम्मान एवं पुरस्कार

१.४.८.१ सम्मान :

शिवप्रसाद सिंह जी १९८६ में यू.जी.सी. द्वारा हिंन्दी पाठयक्रम विकास केंद्र के समन्वयक नियुक्त किये गये। रेलवे बोर्ड के राजभाषा विभाग के मानद सदस्य रहे। साहित्य अकादमी, बिरला फाऊडेशन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान जैसे अनेक संस्थाओं ने किसी न किसी रुप में संबध्द रहे थे। ऐसे कुछ सम्मान के क्षण शिवप्रसाद जी के जीवन में आये थे।

१.४.८.२ पुरस्कार :

पुरस्कार जहाँ लेखक को आर्थिक दृढता प्रदान करने में सहायक होते हैं वहाँ स्वस्थ एवं रचनात्मक लेखन की ओर प्रोत्सहित भी करते हैं...

शिवप्रसाद जी का कहना था कि जिस मंजिल तक मैं जाना चाहता हूँ वहाँ के लिए मुझे प्रोत्साहन चाहिए, पुरस्कार नहीं। "मैने कभी पुरस्कार या पारितोषिक के लिए न लिखा, न लिखूँगा। मै चारण नही हूँ।"[116]

शिवप्रसाद सिंह जी स्वाभिमानी थे। पर्याप्त उपेक्षा के बावजूद उन्हें काफी पुरस्कारों से सम्मानित होने का मौका मिला। उन्हे प्राप्त पुरस्कार,

१) हरी जी दालमियाँ पुरस्कार - सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य

२) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पुरस्कार - उत्तर योगी

३) मदनमोहन मालवीय पुरस्कार - 'रसरतन' के पाठ संपादन पर

४) आचार्य रामचंद्र शुक्ल पुरस्कार - कस्तूरी मृंग

५) देव पुरसकार - अलग-अलग वैतरणी

६) प्रेमचंद पुरस्कार - गली आगे मुडती है

७) भारतीय साहित्य अकादमी पुरस्कार - नीला चाँद

८) शारदा सम्मान - नीला चाँद

९) व्यास सम्मान - नीला चाँद

१०) उत्तर प्रदेश का हिन्दी संस्थान सम्मान.

1.3 ×¾Ö“ÖÖ¸ü -ÖÖ¸üÖ :

1.3.1 नारी विषयक विचार धारा :

भारतीय समाज में नारी सदियोंसे शोषित, पीडित रही है। आज हमारे देश के अंतर्गत नारी सिर्फ उपेक्षा की वस्तु हो गयी है। नारी को भोग्या की दृष्टि से देखा जाने लगा है। वह सब कुछ सहने के लिए बाध्य है। 'गली आगे मुडती है' की जयंती रामानंद से पूछती है कि "क्या तुमने अपने को किसी नारी की अवस्था में रखकर सोचा है? कितनी असहाय, मूक और करुणा की पात्र होती है वह"

इतना ही नही वह रामानंद के माध्यम से सारे समाज को सवाल करती है, "तुम्हारे समाज में कभी पुरुष के साथ भी बलात्कार या रेप होता है।"[67] ऐसा सवाल शायद ही किसी रचनाकार ने किया हो।

शिवप्रसाद सिंह जी ने स्त्री पात्रो के माध्यम से सम्पूर्ण स्त्री वर्ग की व्यथा की कथा को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देने का पूरा प्रयास किया है। 'गली आगे मुडती है' की पढी लिखी जयंती परन्तु अनपढ गवार लाजवंती का यह सवाल हमारे शास्त्रों को ही पक्षपाती करार देता है-"सगरा सास्तर तिरिया के सताव बदे बना है। मरद के हजार खून माफ। ओके छुटटी कि ऊ चाहे त अपने मेहरारु के कुत्ता की नाई झकझोरत रहे, आ औरत बदे सास्तर बोल देलेस कि डयोढी लाँघब पाप है। बाह रे दुनिया-बाह रे सास्तर।"[68]

शिवप्रसाद सिंहजी मानते थे कि नारी सारी दुनिया की सबसे अधिक सताया Æ†Ö प्राणी है। दुःख सहना ही उसका धर्म है। लेखक नारी दुःख की वास्तविकता अपने आस पास अनुभूत कर रहे थे। तभी तो लेखक आनंद वाशेक के मध्यम से समस्त नारी वर्ग को सम्मान का स्थान देना चाहता है।"जिस घर में पुत्र आते है वहाँ वंशदीप जलता है, पर जब कन्या आती है तो संस्कृति का एक वरदान आता है। वहाँ से सभ्यता के सूर्य का उदय होता है।'[69] शिवप्रसाद सिंह का यह भी मानना था कि जिस घर में कन्या जन्म लेती है, उस घर के युवक अपने आप शिष्टता सीख लेते हैं। अपनी बेटी, बहन, भतीजी को स्मरण करके वे दूसरों की बेटी बहन भतीजी के साथ खुद शिष्टता के साथ पेश आते है।

शिवप्रसाद सिंह जी नारी को श्रेŠ मानते है। प्रकृति ने ही उसे पुरुष से श्रेŠ बनाया है। "जो खून को दूध में बदल सकती है उसे प्रकृति ने ही श्रेŠ बनाया हैं।"[70]

शिवप्रसाद सिंह जी के हर उपन्यास, बहुत सारी कहानियों में नारी की व्यथा को शब्दबध्द किया गया है। परन्तु 'औरत' उपन्यास तो सिर्फ औरत की कहानी ही है। पूर्वांचल की नारी के माध्यम से लेखक ने समस्त भारतीय नारी की व्यथा को पाठक के सामने रखा है। शिवप्रसाद सिंह जी के जीवन और साहित्य में नारी के प्रति सम्मान ही व्यक्त हुआ है।

1.3.1 समाज विषयक विचारधारा :

डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी एक चिंतक साहित्यकार थे। उनकी दृष्टि से समाज की बदतर होती स्थिति नहीं छूटती। वे कहते थे, "हंसते खेलते बच्चों की किलकारियों में कभी जन्नत दिखती थी पर आज यह सब देखकर शंका होती है। कौन जाने कब किस क्षण यह फुलवारी रेगिस्तान में बदल जाये किस क्षण किलवारियों को जहरीला धुआँ दम घोटकर अपने आगोश में ले ले। मैं उदासी क्रिएट करके उसमे मजा लेने वालों में नहीं हूँ। अपनी नसों और शिराओं में जो खून बहता हैं वह सर्द नहीं है। ऐसा भी कैसे कहूं कि उसमे दर्द नहीं हैं।[71]

पुनरुत्थानवादी हिंदू मुस्लिम संघर्ष का कारण ढुंढने ही उन्होंने 'दिल्ली दूर है' की रचना की है। हिन्दू मुस्लिम धर्मो में समान रुप से बढता धार्मिक उन्माद लेखक के लिए चिंता का विषय था। धार्मिक उन्माद मानव विकास में बाधा है। तभी तो खलील मियाँ, जहूर चाचा, आनंद वाशेक, जैसे मानवता का धर्म मानने वाले “Öx¸¡Ö ¯Ö¤Ö ÆÖŸÖ Æ…

भारतीय समाज में छाये हुए जातिवाद से तो शिवप्रसाद जी बहुत ही परेशान थे। उनका कहना था "भारतीय लोकतंत्र का सबसे बडा सड़ा हुआ कैंसरग्रस्त जो हिस्सा है उसका नाम है जातिवाद।"[72] इस जातिवाद ने समाज को खोखला बना दिया है। रुढि परंपराओं के नाम पर, धार्मिक ग्रन्थों के नाम पर समाज का एक बहुत बडा हिस्सा 'अछूत' बनकर मृत्यु से भी भयानक यातनाएँ सह रहा है यह शिवप्रसाद जी जैसे चिंतक के लिए असह्य हैं तभी तो मृत जानवरों को उठाने वाले मध्ययुग के भरत डोम से वे हडताल करवाते हैं। भरत डौम (नीला चाँद) के माध्यम से सवाल भी पूछते हैं कि क्यों उन्हें गाँव मे आते हुए झंझा बजाना पडता है ताकि लोग उनसे दूर हट जाएँ। क्या वे मनुष्य नहीं हैं? 'शैलूष' की सावित्री तो नटों के साथ खानाबदोशी का जीवन जीती है, उन्हीं के साथ रहती है और उनके संघर्ष को अंजाम तक पहुँचाती हैं। इस प्रकार शिवप्रसाद जी के साहित्य में दलितों की समस्याओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है। इसलिए वे कहते हैं, "मैं तो किंचित संतोष के साथ कहूँगा कि मैने इस वर्ग की जिंदगी को चित्रित

करने में जितना अभिनिवेश दिखाया हैं उतना शायद ही किसी कथाकार ने किया होगा। 'अलग-अलग वैतरणी' में ही नहीं 'दिल्ली दूर है' तक में अधिकांश कहानियों मे मैने इनकी आह और व्यथा को वाणी दी है।[73]

समाज में फैली आर्थिक विषमता से विद्वान साहित्यकार बडे, दु:खी थे। यह आर्थिक विषमता इंसान को इंसानियत से दूर ले जा रही है यह व देख रहे थे। तभी तो वे कहते हैं।"आज जहाँ धन एक और किसान या मजदूर के घर कटोरी में दूध पिलाने वाली महिला के रुप में उपस्थित है।"[74]

शिवप्रसाद जी सक्षम भारत को देखना चाहते थे, जिसमें न जातिवाद हो, न सांप्रदायिकता हो, न नारी का शोषण हो, न आर्थिक फासला हो, न भ्रष्टाचार हो, लोहिया का भी यही सपना था, इसलिए शिवप्रसाद जी लोहिया को"आधुनिक भारत के सर्वाधिक रंगीन और जीवंत राजनेता मानते थे।"[75]

1.3.3 लोकतंत्र विषयक विचार :

लोकतंत्र विषयक विचारों में शिवप्रसाद सिंह की प्रखर देश भक्ति के दर्शन होते हैं। उनके अनुसार स्वतंत्र भारत का लोकतंत्र ÃÖÖŠ वर्ष से भी अधिक उम्र का हो गया है। एक सपना देखा था भारतीय जनता ने। भोले-भाले लोग समझते थे कि अब प्रजा का तंत्र है, अब सब दु:ख दर होंगे। पर जल्दी ही कठोर वास्तविकता ने जनता के सपने को चकनाचूर कर दिया। जनता का मोह भंग हुआ, वह दु:ख उठाने के लिए मजबुर थी। शिवप्रसाद जी इस दु:खी जनता के साथ थे भाई भतीजावाद ने हमारे लोकतंत्र को 'मृग मरीचिका' बना दिया। उन्ही के शब्दों में "हर ब> बाप का बेटा आदमी हो सकता है।लेकिन आप अगर निरीह Æ, 2Ö“ÖÖ¸ हैं, ईमानदार हैं और योग्य हैं तो आप अपनी असफलताओं, बेकारी और बेबसी के लिए, अपने भाग्य के लिए कोसिए। आप की सब से बडी अयोग्यता यह है कि आप के बाप चोर नहीं थे। आप के नाना देशद्रोही नहीं थें, आपके काका, ताऊ, सभी गुट बनाकर देश को बेचनाऔर खाना नÆà जानते थे। अपनी अयोग्यता के लिए दसरों को लानत क्यों भेजते हैं?[76] इससे और तीखा व्यंग्य क्या हो सकता है हमारे लोकतंत्र पर।

शिवप्रसाद जी जानते थे कि जनता बेदाग चरित्रों का ही साथ देना चाहती है पर कहाँ हैं ऐसे बेदाग चरित्र? कहाँ हैं जनता का दु:ख समझने वाले नेता? कहाँ हैं जनता का दु:ख दूर करने वाली पार्टी? पार्टियाँ कैसे जीतती हैं यह खुला हुआ भेद है। भाई भतीजावाद, जातिवाद भ्रष्टाचार विपक्षी नेताओं का चरित्र हनन, गुंडा-गर्दी क्या क्या नहीं चलता डेमोक्रेसी में? बकौल शिवप्रसाद सिंह "कोई भी दल यह दावा नहीं कर सकता कि वह लोकतांत्रिक तरीके का सही रुप से पालन करते हुए अपनी साफ छवि के कारण जीता है।"[77] शिवप्रसाद जी के अनुसार लोकतंत्र की सबसे बडी दुर्बलता होती है वहाँ की जनता का अशिक्षित होना। इसलिए हमारे नेता जीतोड मेहनत करके भोली और अशिक्षित जनता को सहज बाग दिखा कर अपना स्वार्थ साधते हैं नेता कहते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं। लाल बहादुर शास्त्री या लोहिया जैसे नेता अब कहाँ हैं? कुर्सी से चिपके हमारे नेता लोकतंत्र के नाम पर जनता की भावनाओं से खेल रहे हैं। हर चुनाव में वे ही नेता और वे ही वादे। बुराई में कोई किसी से कम नहीं, तब चुनाव किसका करें? जनता यही सोंचती है कि यह उससे कम दागदार है इसे ही वोट दे दो। जहाँ चुनाव की यह स्थिती हो, वहाँ देश का भविष्य क्या हो सकता है? अत: शिवप्रसाद जी के शब्दों में, "स्वतंत्रता के चालीस वर्षो बाद भी हिंन्दुस्तानी औरत का दर्जा शोषित समुदाय के अलावा और क्या है? हरिजन, शुद्र नारी जिस लोकतंत्र में उपेक्षित हो उसकी सार्थकता के गुणगान की कला मुझे नहीं मालुम Æ..."[78] इसलिए उन्होंने लोकतंत्र का झूठा गुणगान कभी नहीं किया।

1.3.4 साहित्य विषयक विचार :

डॉ. शिवप्रसाद सिंह प्रतिभाशाली तथा चिंतक साहित्यकार थे। अत: उनके साहित्य विषयक विचार हिंन्दी साहित्य के लिए अमूल्य निधी है। वे उन साहित्य कारो में से एक थे जो मानते थे कि "रचना वही नहीं होती जो अक्षरों और जाने पहचाने शब्दों मे सीमित है, बल्कि वह भी है जो दो पंक्तियों के बीच किसी तीसरी पंक्ति के रुप में छिपी रहती है।"[79] शिवप्रसाद जी अपनी स्पष्टवादिता के लिए

सुप्रसिध्द थे ही। उनके साहित्यिक विषयक विचार पढते समय उनकी यह स्पष्टवादिता और भी अधिक मुखरित हो उठती है, 'आधुनिक परिवेश और नवलेखन इसका प्रमाण है।

शिवप्रसाद जी का मानना था कि मनुष्य की मनुष्यता को उभारने के लिए साहित्य को कटिबध्द होना पडेगा। विधा कौनसी भी हो, शैली भी हो, महत्वपूर्ण है जीवन को ईमानदारी से प्रस्तुत करना जीवन की समस्याओं से जूझना, जूझने के लिए प्रेरणा देना साहित्य का प्रथम लक्ष्य है। इसलिए नवलेखन पर उनके विचार थे कि अगर यह साहित्य देश की, समाज की, जीवंत समस्याओं पर सोचना नहीं चाहता तो फिर वह जीना क्यों चाहता हैं? इसके बावजुद वे नवलेखन की एक उपलब्धियों को रेखांकित करना भी नहीं भूलते। उनके अनुसार नवलेखन की एक बहुत बडी उपलब्धि यह है कि उसने एक ऐसा भाषा माध्यम आयत कर लिया है जो सीधा, तीखा, सशक्त और सभी प्रकार की बनावटी कृत्रिमताओं से रहित है।

साहित्य लेखन के लिए प्रेरणा महत्वपूर्ण होती है। 'विद्यापति' पर विचार व्यक्त करते हुए वे कहते हैं- बिना प्रेरणा के काव्य नहीं होता काव्य तो क्या, संसार का कोई बडा कार्य महती प्रेरणा के बिना संभव नहीं है। प्रेरणा हमेशा सांसारिक परिचित वस्तु से उत्पन्न होती है, किंतु यह प्रेरणा ह्दय में एक ऐसे भाव स्त्रोत को जन्म देती है जो हमारे लिए एकदम नया और शक्तिपूर्ण होता है।"[80]

साहित्य को चाहिए कि वह जीवन के संघर्षो को अभिव्यक्त करे। आज भ्रष्टाचार, भाई-भजावाद, जातिवाद, आर्थिक विषमता, सांप्रदायिकता नारी शोषण ऐसे अनेक विषय हैं जिनसे साहित्यकार बेचैन है। शिवप्रसाद जी जानते थे कि साहित्य में इतनी शक्ति होती हैं कि वह मरी कौमों को जिलाता है। अत: "साहित्यकार आम आदमी के साथ यदि खडा होकर उसकी जिंदगी की सही साक्ष्य भर दे सके, उसकी रचनाएं उसके परिवेश और समय का दस्तावेज बन सके ŸÖÖ ³ÖÖß ²ÖÆüŸÖ Æî...

शिवप्रसाद सिंह जी नग्नता और कला के संबंध में विचार बडे साफ है। उनके अनुसार भुवनेश्वर खजुराहों की देवांगनाएँ आदि कृतियाँ नग्नता नही कला

हैं, क्योंकि उनके पीछे मनुष्य का मांसल शरीर नहीं, उसकी आत्मा की छाया है या ऐसा संम्मोहन है जो उसे दिव्यता की ओर ले जाने का प्रयास करता है जो शारीरिक सीमा को तोडने के बाद ही अनुभव किया जा सकता है।

शिवप्रसाद जी प्रतिभा को मनुष्य की उपलब्धि मानते थे। प्रतिभा ही साहित्य रचना के लिए पर्याप्त नहीं होती। इसलिए शिवप्रसाद जी का कहना था कि लेखक के लिए अनवरत श्रम की आवश्यकता होती है, तभी प्रतिभा का पूर्ण विकास संभव है। शिवप्रसाद सिंह जी साहित्य को आत्मा अन्वेषण की प्रक्रिया मानते थे।

1.3.5 साहित्यकार विषयक विचार :

शिवप्रसाद सिंह जी रचनाकार के लिए पहले आच्छा आदमी होना वे पहली शर्त मानते थे। उनके अनुसार बिना मनुष्यता के साहित्य दो कौडी का होता है। स्वयं वे अपने आपको मनुष्य की अबाध विजय-यात्रा ध्वजवाहक कहते थे। वे उस पार्टी के सदस्य थे जिसके सामने मनुष्य से बडी कोई ईकाई नहीं मनुष्यता से बडा कोई धर्म नही। अगर ऐसा है तो आनंद वाशेक का कथन सत्य हैं कि "दुनिया में सबसे जादा मर्दानगी फनकार में होती है। उसकी लडाई अलबत्ता तेगो तलवार से नही, कलम से होती हैं, उसे भी दुश्मन को ललकारते देखकर गुस्सा आता Æ..."[81]

आज साहित्य के क्षेत्र में भी राजनीति ने प्रवेश किया है। पुरस्कार और सम्मान पर बडे-बडे बुध्दिजीवी साहित्यकार अपने आपको बेच देते हैं। शिवप्रसाद सिंह जी जैसे साहित्यकार को बडा क्लेश लगता है। वे कहते थे राजनेताओं का पुतला बनने से साहित्यिक प्रतिष्ठा मिल सकती है, लेकिन संतोष नहीं।

साहित्यकार का जीवन से गहरा संबंध होना चाहिए। शिवप्रसाद जी का मानना था कि साहित्य का जब जीवन से संपर्क टूट जाता है तब वह साहित्य न होकर पत्रकारिता हो जाता है आज पढा कल रददी हो जायेगा। श्रेष्ठ साहित्य के लिए तो "लेखक की दृष्टि में वैश्विक व्यापकता का होना बहुत जरुरी है। इसके बिना बडी रचना सामने नहीं आ सकती।"[82] शिवप्रसाद जी कहते थे मानव की

स्वार्थ की आंधी में पेड वे ही उखडते हैं जो अपनी धरती के भीतर जडों से कट गयें हैं।

शिवप्रसाद जी एक सजग साहित्यकार होने के नाते अपने साहित्यकार मित्रों से अपेक्षा रखते थे कि वे समाज से बहिष्कृत उपेक्षित समाज की दु:ख, दर्द, व्यथा को अपने साहित्य में चित्रित करें आज के बुध्दिजीवी के सामने जातिवाद, नारी शोषण, सांप्रदायिकता तथा बढती आर्थिक विषमता, रोजगार मुख्य समस्याएँ है। इन पर ईमानदारी और सदसद्विवेक बुध्दि से लेखन होना अनिवार्य है। स्वयं शिवप्रसाद सिंह जी ने इन पर लिखा, इस कारण वे दूसरों से अपेक्षाएँ रखते हैं।

शिवप्रसाद सिंह जी साहित्यकार को संघर्षशील प्राणी मानते हैं। शिवप्रसाद सिंह जी ने जीवन के वास्तविक संघर्ष को अपने साहित्य मे उतारा। सन १९६२ में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो शिवप्रसाद जी की आत्मा बेचैन हो उठीं और 'घाटियाँ गूंजती है' नाटक का सृजन हुआ। "प्रश्न यह है कि यदि किसी राष्ट्र पर कोई तानाशाही धर्मांध शासन बलात युध्द लादता हैं तो उस देश के साहित्यकार को क्या करना चाहिए।"[83] शिवप्रसाद सिंह जी ने वही किया जो एक सच्चे साहित्यकार को करना चाहिए था। वाराणसी के एक आलीशान होटल में 'धूमिल जयंती' आयोजन किया गया था। धूमिल के विचारों की यह सीधे-सीधे हत्या थी। विरोध हुआ और जमकर हुआ। अगुवाई की थी डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने। गरीबों के कवि की जयंती एक आलीशान होटल में उन्हें पसंद नही आयी। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद लिखते हैं-"इसके बाद से ही धुमिल की जयंती उनके गांव में, उन्ही लोगों के बीच मनाई जाने लगी जिसके लिए उन्होंने लिखा है।"[84]

1.3.6 भाषा विषयक विचारधारा :

शिवप्रसाद जी भाषा के बारें में एक सजग रचनाकार रहे है। उनके अनुसार "भाषा विचार विनिमय का माध्यम भर नहीं होती। भाषा देश की आत्मा का वाड्मयी कलेवर होती है।"[85] अत: उन्होंने भाषा पर काफी गहरा चिंतन प्रस्तुत किया है।

भाषा का प्रश्न भारत जैसे बहुभाषिक देश में काफी महत्वपूर्ण है। जितना महत्वपूर्ण उतना ही पेचीदा भी। हमारे नेताओं ने भाषा को एक समस्या बनाकर इस तरह उलझाकर रख दिया है कि जितना आप सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, उतनी वह उलझती जाती है। यह सब देखकर शिवप्रसाद सिंह जी जैसा चिंतक साहित्यकार कह उठता है, "दुनिया में शायद ही कोई देश हो जिसने अपनी आजादी की पचासवीं वर्षगांठ विदेशी भाषा के माध्यम से मनायी हो।"[86]

हमने अंग्रेजो से आजादी तो पा ली, पर अंग्रेजी से नही, क्या इसके लिए और एक स्वातंत्र्य आंदोलन लडना होगा? और लडे भी तो किसके खिलाफ समस्या गंभीर है। शिवप्रसाद जी ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी का महत्व तो स्वीकार करते हैं, परन्तु वे यह भी जानते थे कि "अंग्रेजी का समर्थन करने वाले वे लोग हैं जो स्वतंत्रता का अर्थ मुट्ठी भर तथाकथित पढ़े लिखे लोगों का शासन ÃÖ´Ö–ÖŸÖ Æ…"[87]

भाषा को लेकर हमारे देश की स्थिती बडी संवेदनशील है। हिंदीं के समर्थन का अर्थ तमिल (या अन्य दक्षिणी भाषाओं) का विरोध लिया जाता है अतः शिवप्रसाद जी ने हिंदी वालों को 'तमिल दिवस' मनाने की सूचना की थी। ऐसी सूचना शायद ही किसी अन्य साहित्यकार अथवा नेता द्वारा आयी हो। इतना ही नहीं, शिवप्रसाद जी हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के बारे में भी चिंतित थे। उनकी उन्नती की कामना करने वालों मे थे इसलिए वे राजस्थानी, मैथिली और डोंगरी को संवैधानिक भाषा परिच्छेद में स्थान देने के पक्ष में थे। राष्टभाषा को सम्मान देना यानी अपनी-अपनी मातृभाषाओं की उपेक्षा करना नहीं है। शिवप्रसाद जी का तो कहना था कि जैसे शिशु के विकास के लिए माँ का दूध आवश्यक हैं वैसे ही भाषा सीखने की शुरुआत के लिए मातृभाषा आवश्यक है।

भाषा राष्ट्रीय शरीर की नब्ज हैं और दूसरी ओर भारतीय प्रतिभाएँ अंग्रेजी के चर्चित ज्ञान की जूठन बटोर रही हैं। शिवप्रसाद जी के अनुसार " अंग्रेजी सिर्फ एक विदेशी भाषा का ही नाम नही हैं, बल्कि वह हिंन्दूस्थान को बेचने की तमाम कारगुजारियों और साजिशों का कोड वर्ड है।"[88] हिन्दी तो समुचे भारत को एक

सूत्र में बांधने वाली भाषा है। शिवप्रसाद जी केरल में आयोजित 'सुरभी मानसोत्सव-९४' में भाग लेने के लिए सादर आमंत्रित थे। उस वक्त वहाँ पर मणिपूरी, असमिया, डोंगरी, राजस्थानी, मैथिली, गुजराती आदि भाषाओं के प्रतिनिधी जब अपनी बात हिंन्दी में कहने लगे तो लेखक को सुखद अश्चर्य हुआ। उन्हें लगा कि हम हिंन्दी को टूटे पहियों की गाड़ी समझने वाले कितने गलत हैं। वे कहते हैं, "विविध भाषाओं के प्रतिनिधीयों को अपनी जर्जर काया में समेटे हमारी हिन्दी ने एक ऐसा कारनामा तो कर ही दिया कि बांग्ला को छोडकर सारा उत्तर भारत अब हिन्दी में अपनी बातें कहने लगा है।"[89]

शिवप्रसाद जी के भाषा विषयक विचार निश्चित रुप से विचारणीय और अनुकरणीय हैं। "प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हमेशा अपने समय से आगे देखता है। परिणामतः उसका समय उसे ठीक से पहचान नहीं पाता। परन्तु बाद का समय तो उसे स्वीकार करता ही है।"[90] यह बात शिवप्रसाद जी पर सौ प्रतिशत सही हैं।

संदर्भ संकेत

1. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि-संपा.पांडेय शशिभुषण शीतांशु, पृ. ४६१.
2. ¾ÖÆüß, ¯Öé. 462
3. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी प्राक्कथन, पृ.०१
4. भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य - डॉ. विवेकी द्विवेदी, पृ.१५
5. x¾Ö¬ÖÖ¯ÖxŸÖ - ›Ö. x¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆü, ¯Öé. 18
6. साक्षात्कार (अप्रैल - जून १९९०), पृ. १९ (वागर्थ मई १९९९), पृ. १३
7. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृ. ३९३
8. ¾ÖÆüß, ¯Öé. 393
9. कथाकार शिवप्रसाद सिंह - कामेश्वर प्रसाद सिंह, पृ. ०३
10. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - सत्यदेव त्रिपाठी, पृ. ३९३
11. ¾ÖÆüß, ¯Öé. 397
12. कथाकार शिवप्रसाद सिंह - कामेश्वरप्रसाद सिंह, पृ.०२
13. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - सत्यदेव त्रिपाठी (साक्षात्कार), पृ. ३९४
14. शिवप्रसाद सिंह - संपा. अरुणेश नीरन (मेरी जवाबदेही), पृ.१०-११
15. शिवप्रसाद सिंह - सृष्टा और सृष्टि संपा. पांडेय शशिभुषण शीतांशु
16. वही. डॉ. वासुदेव सिंह का लेख, पृ. ४०५ (डॉ. शंभुनाथ पांडेय का लेख), ¯Öé. 395
17. शिवप्रसाद संपा. - अरुणेश नीरन.शिवप्रसाद सिंह के लेख से (मेरी जवाबदेही), ¯Öé.10
18. अक्षर भारत नई दिल्ली सोमवार दि - २१ अगस्त २००० (रुपसिंह चंदेल का लेख)
19. मेरे साक्षात्कार शिवप्रसाद सिंह (विश्वनाथप्रसाद जी से हुई बातचीत), पृ. १४८
20. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य (सत्यदेव त्रिपाठी (शि.सिंह से लिया गया

साक्षात्कार), पृ.३९७

21. शि. सिंह - संपा. अरुणेश नीरन.(कृष्णबिहारी मिश्र का लेख), पृ. ३०
22. जनसला दिल्ली ४ अक्टुबर १९८८ को कृष्णदत्त पालीवाल लेख, पृ. ०६
23. शि. सिंह - सृष्टा और सृष्टि संपा. - पांडेय शशिभुषण शीतांशु डॉ. महेन्द्रनाथ दुबे का लेख पृ. ३६
24. क्या कहूँ कुछ कहा न जाये - शि.सिंह,पृ.११६
25. मेरे साक्षात्कार - शि.सिंह, पृ. १७१
26. वागर्थ (मई-१९९९) राजी सेठ का लेख, पृ.१३ अक्षर भारत २१ अगस्त २००० रुपसिंह चंदेल का लेख, पृ. ७०
27. कथाकर शिवप्रसाद सिंह - कामेश्वर प्रसाद सिंह,पृ.०३
28. मेरे साक्षात्कार - शि.सिंह विश्वनाथ प्रसाद से बातचीत, पृ. १४१
29. शिवप्रसाद सिंह संपा. अरुणेश नीरन, पृ. ३७
30. ¾ÖÆß, ¯Ö. 40
31. साहित्य अमृत नवम्बर १९९८, पृ.२५
32. कथाकार शिवप्रसाद सिंह - कामेश्वर प्रसाद सिंह, पृ.०४
33. राष्ट्रीय सहारा १३.२५.१० १९९८
34. बीहड पाथ के यागी - संपा. - प्रेमचंद जैन, पृ.४९
35. शिवप्रसाद सिंह संपा. - अरुणेश नीरन राजेन्द्रप्रसाद पांडेय, पृ.३७
36. सारिका पत्रिका ०१ फरवरी १९८० पृ.१५
37. सत्यदेव त्रिपाठी, शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य, पृ.३९८
38. मानसी गंगा-शिवप्रसाद सिंह बीडा उठाइए निबंध से, पृ.१४१
39. अलग अलग वैतरणी - शिवप्रसाद सिंह पृ.४८६
40. शिवप्रसाद सिंह का कथासाहित्य - सत्यदेव त्रिपाठी, पृ.३९९
41. कथाकार शिवप्रसाद सिंह - कामेश्वर प्रसाद सिंह, पृ. ५,६
42. ´Ö•Öx¿Ö´ÖÖ - x¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö.101
43. मेरे साक्षात्कार. शि.सिंह, उमेशप्रसाद सिंह, संजय गौतम से बातचीत पृ.४९

44. शिवप्रसाद सिंह- सृष्ट और सृष्टि, संपा. पांडेय शशिभुषण शीतांशु, पृ. ४७५
45. शिवप्रसाद सिंह संपा. - अरुणेश नीरन पृ.३०
46. किस किसको नमन करु - शि.सिंह. (अंधेरी रात का गुलाब निबंध से), ¯Ö.49
47. शिवप्रसाद सिंह - संपा. अरुणेश नीरन, शिवप्रसाद सिंह (मेरी जवाबदेही), ¯Ö.10
48. मंजुशिमा - शिवप्रसाद सिंह, कठिन है डगर पनघट की, पृ.०७
49. अम्रता - शिवप्रसाद सिंह भूमिका (कहता हूँ ताकि सनद रहें)
50. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शि.सिंह, पृ.१३
51. अक्षरा - अप्रैल जुन १९९५ - आत्मा साक्षात्कार, पृ.०९
52. शिवप्रसाद सिंह - सृष्टा और सृष्टि संपा.- पांडेय शिशिभुषण शीतांशु, पृ.५८
53. बीहड पथ के यात्री - संपा. प्रेमचंद जैन, पृ. ४३६
54. लेखक का समाजशास्त्र - डॉ. विश्वंभरनाथ गुप्ता, पृ. ०५
55. कथादेश. नवम्बर १९९८, पृ.१९
56. राष्ट्रीय सहारा १९९८. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के लेख से
57. आजकल, मार्च १९९३, पृ. ०९
58. बीहड पथ के यागी - संपा. प्रेमचंद जैन प्रस्तावना (नमन करु मैं), पृ.०९
59. शिवप्रसाद सिह सृष्ट और सृष्टि, संपा.-पांडेय शीतांशु - डॉ विवेकी राय, पृ. 95
60. बिहड पथ के यात्री - संपा.प्रेमचंद जैन प्रस्तावना (नमन करु मै), पृ.०८
61. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह, पृ.८०
62. बीहड पथ के यात्री. संपा-प्रेमचंद जैन प्रभाकर माचवे का लेख, पृ.६३
63. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह पृ.६९
64. शिवप्रसाद सिंह - संपा-अरुणेश नीरन, रामकली सराफ का लेख,पृ.१६०
65. ´Ö•Ö×¿Ö´ÖÖ - ×¿Ö¾Ö¯ÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö.110-111
66. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह, पृ.११८

67. गली आगे मुडती है - शिवप्रसाद सिंह, पृ.८८
68. ¾ÖÆß, ¯Ö.149
69. ×¤ü»»Öß ¤ü¸ü Æü - ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 396
70. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह, पृ.२३
71. खालिस मैज मे - शिवप्रसाद सिंह, पृ.०१
72. हिंदुस्थानी, जनवरी,जून १९९१, पृ.११३
73. साब्जा पग कथा कहे - शिवप्रसाद सिंह, पृ.६१
74. ¾ÖÆß, ¯Ö.30
75. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शि.सिंह, पृ.७७
76. खालिस मौज में-शि.सिंह - लोकतंत्र का मृग मरीचिका,पृ.१०-११
77. वही कृतज्ञता खतरनाक होती है निबंध, पृ.६५
78. हिंदुस्थानी लोकतंत्र विशेषांक जनवरी - जून १९९९, पृ.११२
79. अक्षरा - अप्रैल जून १९९५, पृ.०९
80. ×¾ÖªÖ¯Ö×ŸÖ - ×¿Ö.ØÃÖÆü,¯Ö.28
81. ×¤ü»»Öß ¤ü¸ü Æü ×¿Ö.ØÃÖÆü, ¯Ö.392
82. मेरे साक्षात्कार शि.सिंह, पृ.५३
83. आधुनिक परिवेश और नवलेखन शि.सिंह, पृ.२१
84. शिवप्रसाद सिंह - सृष्टा और सृष्टि संपा. पांडेय शशिभुषण, पृ.८५
85. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शि.सिंह, पृ.५५
86. खालिस मौज में - शि.सिंह, पृ.१०६
87. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शि.सिंह, पृ.६३-६४
88. ¾ÖÆß, ¯Ö.61
89. साब्जा पत्र कथा कहे - शिवप्रसाद सिंह, पृ.६०
90. राष्ट्रवाणी जुलाई अगस्त -२००२ डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे के साक्षात्कार, ¯Ö.28
91. साहित्य अमृत - नवम्बंर १९९८, पृ.२५

92. बीहड पथ के यात्री - संपा. प्रेमचंद जैन, पृ.३७४
93. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह, पृ.१९-२०
94. शिवप्रसाद सिंह - संपा.-अरुणेश नीरन, पृ.२३
95. मेरे साक्षात्कार-शिवप्रसाद सिंह-पाठको से प्रश्नोत्तर, पृ.१८
96. मेरे साक्षात्कार - किरणचंद्र शर्मा से बातचीत, पृ.९६
97. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी पृ. १८२
98. भाषा नवम्बर दिसंबर २०००, पृ.९५
99. आलोचना, अक्टुबर दिसंम्बर १९८५, पृ.६५
100. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह (विवेकी राय से बातचीत) पृ. १४
101. शि.सिंह - सृष्टा और सृष्टि-संपा. - पांडेय शशिभूषण शीतांशू पृ. २२६
102. कथादेश नवम्बर - १९९८ हिमांशु जोशी का लेख, पृ. १७
103. व्यास सम्मान-संपा.बिशन टंडन-डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी का लेख, पृ.९०
104. बीहड पथ के यात्री - संपा-प्रेमचंद जैन, पृ.८५
105. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह,पृ. ५५
106. मानसी गंगा - शिवप्रसाद सिंह, पृ.२२
107. किस किसको नमन करु - शिवप्रसाद सिंह पृ.२४
108. पौधा निर्वाक खडा है - शिवप्रसाद सिंह, पृ.६०
109. खालिस मौज में - शिवप्रसाद सिंह 'मेरी बातसे'
110. मेरे साक्षात्कार - शिवप्रसाद सिंह, पृ.८८ के आधार पर
111. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - शिवप्रसाद सिंह, पुरोवाक से
112. शिवप्रसाद सिंह- सृष्टा और सृष्टि संपा. पांडेय शाशिभुषण शीतांशु, पृ.५३२
113. घटियाँ गूंजती है - शिवप्रसाद सिंह, पृ.९५
114. उत्तर योगी - शिवप्रसाद सिंह, पुरोवाक से
115. शान्ति निकेतन से शिवालिक- शिवप्रसाद सिंह, पृ.०५
116. ´Ö•Ö×¿Ö´ÖÖ - ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 105

द्वितीय अध्याय

डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य विधा का उद्‍भव और विकास

प्रस्तावना :-

2.1 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास साहित्य का उद्‍भव और विकास

2.1.1 अलग अलग वैतरणी

2.1.2 गली आगे मुडती है

2.1.3 नीला चाँद

2.1.4 ¿Ö»ÖÂÖ

2.1.5 ´Ö•Öx¿Ö´ÖÖ

2.1.6 †Ö¸ŸÖ

2.1.7 कुहरे में युध्द

2.1.8 x¤»»Öß ¤¸ Æ

2.1.9 वैश्वानर

2.2 डॉ. शिवप्रसाद सिंह के कहानी साहित्य का उद्‍भव और विकास

2.2.1 अंधकूप (सम्पूर्ण काहनियाँ - १)

2.2.1.1 अन्धकूप

2.2.1.2 ¤Ö¤ß ´ÖÖ

2.2.1.3 बरगद का पेड

2.2.1.4 हीरों की खोज

2.2.1.5 महुवे के फुल

2.2.1.6 नयी - पुरानी तस्वीरें

2.2.1.7 कर्मनाशा की हार

2.2.1.8 ¤‰ú ¤Ö¤Ö

2.2.1.9 ´Ö×•Ö»Ö †Ö¸¡ ´ÖÖŸÖ

2.2.1.10 मास्टर सुखलाल

2.2.1.11 पोशाक की आत्मा

2.2.1.12 चितकबरी

2.2.1.13 उसकी भी चिट्ठी आई थी

2.2.1.14 मुर्गे ने बाँग दी

2.2.1.15 उपधाइन मैया

2.2.1.16 आर-पार की माला

2.2.1.17 कबूतरों का अड्डा

2.2.1.18 उस दिन तारीख थी

2.2.1.19 प्रायश्चित

2.2.1.20 ¯ÖÖ¯Ö•Öß¾Öß

2.2.1.21 ^¯ÖÆÖ¸¡

2.2.1.22 वशीकरण

2.2.1.23 ¿ÖÆß¤¡ ×¤¾ÖÃÖ

2.2.1.24 केवडे का फूल

2.2.1.25 ÃÖ¯Ö¸Ö

2.2.1.26 भग्न प्राचीर

2.2.1.27 हाथ का दाग

2.2.1.28 ¸¡ŸÖß

2.2.1.29 बेहया

2.2.1.30 माटी की औलाद

2.2.1.31 गंगा-तुलसी

2.2.1.32 ´Ö¸¡Æ»ÖÖ

2.2.1.33 बिना दीवार का घर

2.2.1.34 आदिम हथियार

2.2.1.35 बिन्दा महाराज

2.2.1.36 कहानियों की कहानी

2.2.1.37 अन्धकूप

2.2.2 एक यात्रा सतह के नीचे (सम्पूर्ण कहानियाँ भाग - २)

2.2.2.1 एक यात्रा सतह के नीचे

2.2.2.2 नन्हें

2.2.2.3 इन्हे भी इन्तजार हैं

2.2.2.4 ¬Ö»Ö †Ö¸ü ÆÃÖß

2.2.2.5 ™ü™ü ŸÖÖ¸ü

2.2.2.6 ²ÖÆüÖ¾Ö - ¾Ö×¢Ö

2.2.2.7 शाखामृग

2.2.2.8 सुबह के बादल

2.2.2.9 आखिरी बात

2.2.2.10 ताडीघाट का पुल

2.2.2.11 धतूरे का फूल

2.2.2.12 परकटी तितली

2.2.2.13 आँखे

2.2.2.14 बीच की दीवार

2.2.2.15 पैटमैन

2.2.2.16 खैरा पीपल कभी न डोले

2.2.2.17 खेल

2.2.2.18 कर्ज

2.2.2.19 टूटे शीशे की तसवीर

2.2.2.20 अरुन्धती

2.2.2.21 मैं कल्याण और जहाँगीरनामा

2.2.2.22 प्लास्टिक का गुलाब

2.2.2.23 किसकी पाँखे

2.2.2.24 ¬ÖÖ¸Ö

2.2.2.25 चेन

2.2.2.26 †¬Ö¸Ö ÆÃÖÝÖÖ Æ

2.2.2.27 जंजीर, फायर ब्रिगेड ओर इंन्सान

2.2.2.28 बेजुबान लोग

2.2.2.29 हत्या और आत्महत्या के बीच

2.2.2.30 एक वापसी और

2.2.2.31 राग गूजरी

2.2.2.32 ÝÖÖ

2.2.2.33 बडी लकीरें

2.2.2.34 भेडिये

2.2.2.35 तकावी

2.2.2.36 कलंकी अवतार

2.2.2.37 मुरदासराय

2.2.3 अमृत (सम्पूर्ण कहानियाँ भाग - ३)

2.2.3.1 मरना एक पेड का

2.2.3.2 श्रृंखला

2.2.3.3 काला जादू

2.2.3.4 चरित्रहीन

2.2.3.5 सुनो परीक्षित सुनो

2.2.3.6 शरीफ लोग

2.2.3.7 प्रमाणपत्र

1.4.3.8 †´ÖŸÖÖ

1.4.3.9 आदमखोंर पैंथर

1.4.3.10 एक और देवयानी

1.4.7.11 अमोक्ष

2.3 शिवप्रसाद सिंह जी के नाटक साहित्य का सामान्य परिचय

2.3.1 घाटियाँ गूंजती है

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य विधा का उद्‌भव और विकास

प्रस्तावना :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह की रचना यात्रा का श्रीगणेश सन. १९५१ ई.मे. हुआ। शिवप्रसाद सिंह जी की पहली कहानी अक्तूबर १९५१ में 'दादी माँ' नाम से अज्ञेय द्वारा सम्पादित प्रतीक में प्रकाशित हुई। यह ग्रामीण जीवन पर आधारित कहानी थी और इसमे डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने स्वानुभूत सत्य एवं भोगे हुए यथार्थ की मार्मिक कथा को वाणी दी थी। इस कहानी के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है"- मैने पहली कहानी (दादी माँ) किस मूड में या प्रेरणा या मन:स्थिति में लिखी यह तो आज स्पष्ट नहीं पर मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि उसमें इकाई के निजी अनुभव की प्रमुखता थी।"[1]

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का रचना क्षेत्र विस्तृत है। शिवप्रसाद सिंह जी एक गंभीर अध्येता होने के कारण कथासाहित्य, नाटक, निबंध एवं समीक्षा को अपनी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया और इन विधा के क्षेत्रों में उन्होंने महत्त्वपूर्ण बहुमूल्य सृष्टि करके हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने जीवनी एवं संस्मरण भी लिखे हैं। रचनात्मक साहित्य में कथा लेखन तथा निबंध लेखन में उनकी समान गति रही है, परन्तु उनका सर्वाधिक प्रिय रचना क्षेत्र कथा साहित्य ही रहा हैं। उपन्यास एवं कहानी दोनों विधाओं में गुण एवं परिमाण की दृष्टि से उनका लेखन उदात्त रहा हैं और वे हिंदी संसार में एक मूर्धन्य कथाकार के रुप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने नौ उपन्यास एवं पचासी कहानियाँ तथा दो नाटक लिखे हैं। शिवप्रसाद जी का रचनाकाल सप्तम दशक से शताब्दी के अन्त तक अथवा उनके जीवन की अंतिम साँस तक फैला हुआ है। शिवप्रसाद सिंह जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से भारतीय इतिहास की नूतन एवं जीवन्त व्याख्या की है। उनके गद्य साहित्य के उद्‌भव एवं विकास के सन्दर्भ में पहले उनके उपन्यास साहित्य का उद्‌भव और विकास यथाक्रम यहाँ प्रस्तुत है।

२.१ डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास :

2.1.1 अलग अलग वैतरणी :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में का पहला उपन्यास है। इसका प्रकाशन लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा सन १९६७ में प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व इसके सत्रहवें अंश का प्रकाशन 'सारिका' एवं सत्ताइसवें अंक का प्रकाशन धर्मयुग में हुआ था।

इस उपन्यास में कुल सैंतीस अध्याय हैं और यह प्राय: पाँच सौ पृष्ठों का दीर्घकाय उपन्यास है। "इस उपन्यास पर लेखक कई बरसों तक काम करते रहे। कई बार काटा-पीटा और रद्दोबदल किया, तब जाकर उपन्यास का अंतिम रुप तैयार हुआ। इस अंतिम रुप से भी लेखक संतुष्ट नहीं थे, पर कहीं न कही तो विराम देना ही था"[2]

'अलग अलग वैतरणी' भारतीय ग्रामीण परंपरा को चित्रित करने वाला महाकाव्यात्मक उपन्यास है। आजादी मिलेने के बाद भारतीय गाँवों में आये परिवर्तनों को रेखांकित करने वाला पहला सशक्त उपन्यास 'अलग अलग वैतरणी' ही है। डॉ. अरुणेश नीरन के शब्दों में "अलग अलग वैतरणी का फलक बहुत व्यापक हैं और लेखक ने आजादी के बाद बदलते हुए गाँव की एक समग्र और प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करने की कोशिश की है।"[3]

शिवप्रसाद सिंह जी ने उत्तर प्रदेश के करैता गाँव को समस्त भारतीय गांवों के प्रतिनिधि के रुप में ग्रहण करके अत्यन्त यथार्थवादी एवं विचारोत्तेजक चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास का संबंध ग्रामीण जीवन से हैं। यह व्यक्ति विशेष की कहानी न होकर सम्पूर्ण गांव के लगभग दो दर्जन ग्रामीण परिवारों की कहानी अत्यन्त संश्लिष्ट रुप से बनी हुई हैं। इस उपन्यास में लगभग ३७ अध्याय हैं और लगभग दस प्रकार से कथा का प्रभाव 'पैनेलस' से होकर एक प्रतिनिधि भारतीय ग्रामीण समाज को चित्रित करता है। भारत गांवों मे बसता है, इसलिए इस उपन्यास की पृष्टभूमि में अंकित करैता गांव आधुनिक भारत का जीवन्त प्रतिरुप हो गया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने जितने बडे फलक को लेकर घटनाओं दुर्घटनाओं, पात्रों सांस्कृतिक रुढीओं, कृतियों और विवेचनाओं को एक स्थल पर रखकर चित्रित किया है, वह उनके सक्षम शिल्पी का भी परिचायक है।

'अलग अलग वैतरणी' में उत्तर प्रदेश के एक गांव करैता की कहानी है। 'अलग अलग वैतरणी' भूतपूर्व बाबुआन जमींदार - परिवार के टूटन की कहानी हैं जिसका युवक वंशधर गांव की असफल रहाइश में उबकर शहर भाग जाता हैं। छावणी के बाबुआन जैपाल सिंह और गांव के धनी जमींदार सुरजू सिंह की पुश्तैनी शत्रुता है, जिसके मूल में इन परिवारों के युवक और युवती-देवपाल और राजमती की प्रेम बलि है। यह शत्रुता एक नए युग के अनुरुप विकसित होती हे। जैपाल सिंह परिवर्तित परिस्थिति के अनुरुप पैंतरे बदलते हैं और अपने बडप्पन को संभाले रखते हैं। परन्तु उनके उत्तराधिकारी बुझारथ के सम्बन्ध में डोमन चमार की बेटी सुगुनी को एक दिन छावणी पर पाकर उन्हें ऐसा धक्का लगा कि उठ नही पाए। एक गौरवपूर्ण अध्याय समाप्त हो गया। आगे गिरावट, छल-छदम हीन मंसूबे और अंधी लागडाट चलती हैं, जिसके किचड में सम्पूर्ण गांव सराबोर है।

ऐसे में शहर से पढाई समाप्त करके करैता में आया बुआरथ का छोटा भाई विपिन उसका साथी देवनाथ भी डाक्टरी पास करके गांव में जमने का प्रयास कर रहा है। दोनों के मन में गांव के प्रति स्नेह है। विपिन्न करैता का जीवन देखकर बहुत दुःखी होता है। यहाँ किसानों का शोषण है, मजदूरों की गुलामी है जातिवाद है, सांप्रदायिकता है। पुष्पा का घर बार नीलामी पर चढने से बचा लिया। किसी की बहु-बेटी की इज्जत लूटी जा रही है। गांव में न स्वास्थ्य हैं, न सुख। अनैतिकता, अन्याय, अनाचार, सीमा को लाँघ चूके हैं। गांव नरक बन गया है। इस नरक से कौन पार करायेगा? गांव के लोग यह सब कुछ देखते हुए भी इतने हताश उदास हैं कि उन्हें जैसे सॉप सूंघ गया हो। यह परिस्थिति बदलने का प्रयास विपिन्न करता है, पर अंत में वह भी इस नरक से दूर भाग जाता है। इस प्रकार 'अलग अलग वैतरणी' में," ग्राम्य जीवन के अलग अलग नरकों का जो दस्तावेज प्रस्तुत है उसमे सभी छटपटाते हैं, कोई उसे स्वर्ग में बदल नहीं सकता। जो बदलने की कोशिश करेगा विपिन्न की तरह टूटकर गाजीपुर डिग्री कालेज में अध्यापकी कर लेगा।"[4]

केवल विपिन्न ही गांव से पलायन नहीं करता, यहाँ से खलील चाचा, जग्गेसर चौधरी, बिंदेसरी लुहार, सुरजितवा, झिनकु, मास्टर शशिकांत देवनाथ पटनहिया भाभी,

सभी करैता को छोड़कर चले जाते हैं। जो जो अच्छा है, काम का हैं करैता को छोड़कर जा रहे हैं। यह सब देखकर विपिन्न के साथ-साथ पाठक के मन में भी प्रश्न उठता है", फिर गांव का क्या होगा?" लेखक की ओर से जगन मिसिर उत्तर देते है," गांव का क्या होगा? गांव कोई आदमी है कि उसका कुछ होता रहेगा ? अरे भाई, यह तो खेमा है कभी उखड़ता है। कभी गडता है कभी बुरे दिन आते हैं। कभी बिगड़ता है, संवरता है। असली चीज तो धरती है। आप क्या समझते हैं कि अब दुनिया को धरती से कोई मतलब नहीं रहा? धरती ही सब कुछ देती है विपिन्न बाबू। उसके बिना आदमी का गुजर नहीं। यह पक्की बात है। खेमा खराब होगा। तो इन्तजाम बिगडेगा। धरती से जरुरी चीजों का मिलना बन्द होगा। हाय तोबा मचेगी तो झख मारकर खेमा दुरुस्त करना होगा। नहीं करोगे तो मरोगे। है कि नही।"[5]

स्वतंत्रता मिलने और जमींदारी प्रथा समाप्त होने के पश्चात गांव की जनता विशेषकर किसानों ने समझा था कि उनका सौभाग्य उदय होगा। अब जिंदगी चैन से कटेगी, अत्याचार और अनाचार समाप्त होगा परन्तु उनकी यह आशा दुराशा में बदल गई। जमींदारों के जूतों से रौंदे जाते थे बडे लोग अपने से कमजोर गरीबों को सताते हैं लूटते हैं। अपने ही भीतर के लोग खोल ओढकर डाकू, लुटेरे और जालिम बन बैठे। पुलिस व्यवस्था में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पटवारियों नें भी अपनी बेईमानी जारी रखी। पंचायतों की स्थिति और बिगड गई। धर्म और समाज के ठेकेदार भ्रष्ट सरकारी अफसर, व्यापारी सबने मिलकर एक नहीं अनेक नरकों का निर्माण किया। गांव के जीवन में एक नही बल्कि अनेक वैतरणी बहने लगीं जिन्हें पार करने का प्रयत्न गांव की जनता करती तो है, परन्तु बीच में ही दम टूट जाने, हिम्मत हारने और भग्न-ह्दय के कारण नगरों की ओर दौडती है। गांवो में रहते वे हैं, जो वहाँ रहना तो चाहते हैं पर रह नहीं पाते । गांव की इस त्रासदी का चित्रण बृहद चित्र फलक अलग अलग वैतरणी में हुआ Æ...

शिवप्रसाद सिंह जी ने उपन्यास में भोजपुरी संस्कृति का जीवन्त आईना प्रस्तुत किया है। दो हजार की आबादी वाला करैता गांव भारतीय गांवों का प्रतिनिधित्व कर रहा है। लेखक ने इसमे नये परिवेश नये मूल्यों के बीच गांव की सही पहचान को दिखाया

है। आज गांव अलग अलग प्रकार की समस्याओं को लेकर बुरी तरह टूटता हुआ बिखर रहा है। धीरे-धीरे अच्छे लोगों के रहने के लायक नहीं रहा है, जिसके परिणाम स्वरुप अच्छे लोग उसे छोड़कर शहर की तरफ भाग रहे हैं।

'अलग अलग वैतरणी' के सम्बन्ध में श्री कुवरपाल सिंह का यह कथन अत्यधिक महत्तवपूर्ण है-" अलग अलग वैतरणी से गुजरना उस बदलाव से गुजरना है, स्वतंन्त्रता के पश्चात बडी तीव्रता के साथ घटित हो रहा था। उच्चतर और महत्तर जीवन मूल्यों के जो मानक राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में जनता ने अपने बलिदानों और संघर्षो से स्थापित किए थे तथा साम्राज्यवाद के विरुध्द जूझते हुए धर्म, भाषा क्षेत्र आदि के भेदों से उपर उठकर जिस प्रकार सांस्कृतिक एकता का परिचय दिया था, वह गौरवशाली परंपरा स्वातंन्त्र्योत्तर काल में छिन्न-भिन्न हो गयी। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन की विसंगतियँ और विकृतियँ खुलकर सामने आने लगीं। व्यक्ति के संघर्ष और उनके सोच का दायरा सिमटने लगा। 'अलग अलग वैतरणी' हमें परिवर्तन की इस असहज तथा दु:खद प्रक्रिया का एक प्रामाणिक तथा आत्मीय परिचय देती है। उसकी गहरी पहचान कराती है।"[6]

2.1.2 गली आगे मुडती है :

'गली आगे मुडती है' यह शिवप्रसाद सिंह जी का दूसरा उपन्यास है। नैशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली द्वारा १९७४ में प्रकाशित किया गया है। इसमे कथाकार ने ग्रामीण परिवेश छोडकर एक नया आयाम उद्‌घाटित किया है। यहाँ वे सामाजिक सन्दर्भ के स्थान पर सांस्कृतिक सन्दर्भ को लेकर चले हैं। यह वस्तु और शिल्प दोनों के स्तर पर नया मोड है। उपन्यास की रचना स्वतन्त्र चिरादिम और चिरनूतन सांस्कृतिक नगरी काशी को केन्द्र मे रखकर की गई है। डॉ. शिवप्रसाद सिंहजी का मुख्य उद्‌देश्य गंगा की कमर पर रखे संस्कृति के इस लबालब भरे कलश को सही ढंग से प्रस्तुत करने का इस प्राचीन नगर की बदलती हुई संस्कृति को बांधने का रहा है। आधुनिक बनारस केवल पण्डे पुजारियों का ही नही है। 'गली आगे मुडती है' ने किसान मजदूर के बाद तीसरी शक्ति युवा आक्रोश को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। परन्तु रचनाकार यहाँ

इस आक्रोश को राजनीतिक पृष्ठभूमि में न देखकर सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में चित्रित करता Æ...

'गली आगे मुडती है' उपन्यास कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से 'अलग अलग वैतरणी' से भिन्न है। गली आगे मुडती है, में काशी का सांस्कृतिक चित्रण तथा युवा आक्रोश को उदघाटित किया गया है। आज युवा वर्ग के असंतोष और विद्रोह को लेकर राजनेता, समाजशास्त्री, शिक्षाविद आदि सभी चिंतित हैं लेखक की प्रामाणिक मान्यता है कि " युवा एक शक्ति है। नयी पीढी के हाथ में ही भविष्य है। भले ही वे हाथ अभी कमजोर हों, भले ही कच्चे और बेडौल हों पर इसमें संदेह नहीं कि भविष्य को मोडने का कार्य इन्हीं हाथों संपन्न होगा।"[7]

'गली आगे मुडती है' उपन्यास का कथानायक रामानन्द जो बनारस की एक-एक गली से परिचित है, अन्त में जाकर किरण के दरवाजे से निराश मन:स्थिति में लौटते समय गोलधर की भूल भुलैया में भटक जाता है। सुविधामय जीवन बिताने की चाह एवं मन की अपरिपक्वता उसे कहीं का नहीं रहने देती है। रामानन्द स्कालरशिप लेकर विद्‌वान बनने का ख्वाब देखता है, तो टाप न कर पाने पर नेतागिरी करके रोब गलिब करना चाहता है। जीवन साथी के चुनाव में भी निश्चय ही दृढता के अभाव में कभी जयन्ती तो कभी किरण के पीछे भागते हुए अन्त तक डॉवाडोल रहता है और कहीं का नहीं होता है। यही हालत सभी युवा छात्रों की है।

'गली आगे मुडती हैं' बहुआयामी सांस्कृतिक उपन्यास है। इसमें कथाकार जीवन के विविध स्वरों और सामाजिक शक्तियों के दवाब से प्रभावित होती गहरी मर्मव्यथा के रंगो में घुली प्रेम कहानी पेश करता ही है, जटिल संत्रास के नीचे फैली भ्रष्टाचार की काली छाया के बीच उगती उभरती प्रतिभा की हत्या, व्यापक असफलता और क्रमिक टूटनपूर्वक आत्मनिर्वासन जैसे आधुनिकता के वैयक्तिक सत्य का साक्षात्कार भी वह साहस के साथ करता है, कथाकार ने अपनी समस्या का सीधा साक्षात्कार शुध्द साहित्यिक अंदाज से किया है। इसलिए युवा आक्रोश जैसे विषय को चित्रांकित करने के लिए पृष्टभूमि में उसने राजनीति नहीं संस्कृति को रखा है। वास्तव में उपन्यास के इस मुख्य पात्र की जीवन व्यापी असफलता का कारण संस्कृति के भीतर से उठने की

प्रक्रिया है।

छात्र आंदोलनों के अनेक कारणों को भी चित्रित किया गया है। शैक्षणिक क्षेत्र में, व्यापक छल, धोका है। रामानन्द ने एम-ए मे प्रवेश लेते समय माँ से बिनती की थी, "अम्मा सिर्फ दो साल और। तुमने जैसा इतना खून पिलाया थोडा और। मैं डाक्टर बन जाऊँ अम्मा बस तेरा सारा दु:ख, दरिद्र दूर हो जायेगा।"[8] परन्तु विश्वविद्यालय की राजनीति के परिणामस्वरुप रामानंद का सपना सपना ही रह जाता है। १९६७ में सारे देश में भाषा आंदोलन ने गति पकड ली थी। अंग्रेजी हटाव का नारा बुलंद था। काशी उस आंदोलन का केंन्द्र था। अंतरात्मा का अहम सवाल मानकर हजारों छात्र सडक पर उतरे। उन्होंने नारा दिया,"अंग्रेजी में काम न होगा फिर से देश गुलाम न होगा।"[9] भ्रष्टाचार और बेकारी आज देश में हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार अपनी सीमाओं को तोड चुका हैं। सारा देश उससे त्रस्त है, परेशान है। उपन्यास में हरिमंगल के माध्यम से इस विद्रोह को लेखक ने बड़े प्रभावी ढंगसे चित्रित किया है।

सारा युवा आक्रोश सेक्स में सिमटा पडा है। जहाँ देखों वहाँ सेक्स की चर्चा। रामानंद अपनी बहन आरती की सहेलियों को देखने के लिए घर में ही छिप जाता है। वह एक ही साथ जयंती और किरण से प्रेम लडा रहा है। दूसरी ओर छात्र नेता माथुर आरती को फुसलाकर घर से भगा ले जाता है, अपनी हवस पूरी होने के बाद उसे छोड भी देता है। शाम के समय गंगा पर नौकाएँ रिजर्व करके मँझधार में जाकर यौन सुख का आनंद उठाने वाले युवाओं की भी कमी नहीं है। यह सब देखकर ही जयंती प्रश्न करती है कि," सारा युवा आक्रोश सेक्स में ही क्यों सिमट कर रह गया है? कोई कवि बनने चला तो बुभुक्षित पीठी के नाम पर सेक्स का शिकार हुआ, चित्रकार बनने चला तो अश्लील, नंगे और भद्दे बनाने लगा। सर्वत्र एक ही मुद्रा है, जिसके बीच में अंकित है एक लडकी।"[10] सेक्सपर प्रश्न करनेवाली जयंती जब घर आकर रामानंद को बाहों में भर लेती है तब यह समस्या और भी भयानक लगने लगती है। सेक्स की इस मार से लेखक ने किसी को भी अछूता नहीं रखा है, हरिमंगल को भी नहीं। तब प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच हमारी युवा पीठी इतनी गिर चुकी है? क्या वह अपने दायित्व से, अनजान है?

कुल मिलाकर 'गली आगे मुडती है' उपन्यास काशी के वर्तमान जीवन का जीवन्त लेखा जोखा है-" पौराणिक, ऐतिहासिक कथाओं के उल्लेख द्वारा उपन्यास को आधुनिक काशी का जीवन्त दस्तावेज बनाया है।"[11]

प्राय: साढ़े - तीन सौ पृष्ठों के इस उपन्यास की नुक्कड सभा (भूमिका) में रचनाकार ने इसकी रचना के विषय में स्वयं लिखा है, "काशी का नाम युवा-आक्रोश के साथ बदनामी की हद तक जुड गया है। मैने काशी को ही उपन्यास का केन्द्र बनाया है। काशी के बारे में स्वर्गीय श्री प्रेमचंद ने सन १९३३ ई मे. हंस का अक्तूबर-नवम्बर का अंक 'काशी' नाम से प्रकाशित किया। वह अपने समय का अद्‌भुत प्रयत्न था।"[12]

इस उपन्यास को लिखने में लेखकीय व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और सामाजिक दायित्व के जिस कशमकश से मैं गुजरा उसने मेरी आत्मा पर पूरी छाप डाल दी है। काशी न केवल विभिन्न प्रान्तीय लोगों का जीवित संगम है, बल्कि नाना प्रकार की वेशभूषा और बोली-भाषा का भी विचित्र गुलदस्ता है।"[13]

डॉ. शशिभुषण पाण्डेय शीतांशु इस कृति के विषय में लिखते है," गली आगे मुडती है शिवप्रसाद जी का दूसरा उपन्यास है। इसका 'लोकेल बनारस है। वहाँ का शैक्षणिक - अकादमिक परिवेश और छात्र आन्दोलन इसका मुख्य कथ्य है। युवा आक्रोश को वाणी देना लेखक को अभीष्ट रहा है। आत्मकथा की शैली में लिखा गया यह उपन्यास काशी में रहने वाले हर प्रकार के समाज को निरुपित करता है। वर्णनात्मकता से आगे संवादात्मकता इसकी विशेषता है। बीच-बीच में पौराणिक ऐतिहासिक कथाएँ भी चलती रहती है। फिरभी इसके नाभि केन्द्र में समसामयिकता ही विद्यमान रहती है। इसमें गंगा को कई-कई रुपों में देखा गया है। बाढ़ के भी अनेक चित्र हैं। पर बड़ी बात यह है कि यह उपन्यास शिवप्रसाद जी को ऐतिहासिक - भौगोलिक उपन्यासकार के रुप में प्रतिष्ठित कर देता है।"[14]

२.१.३ नीला चाँद :

'नीला चाँद' डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का तीसरा उपन्यास है। इसका प्रकाशन १९८८ में ई. में हुआ। उनके उपन्यासों में यह सर्वाधिक चर्चित उपन्यास रहा है, जिसे

महाकाव्यात्मक उपन्यास भी कहा गया। 'नीला चाँद' के माध्यम से। काशीत्रयी का यह दूसरा उपन्यास मध्यकालीन काशी पर लिखा गया है। अतः इसमें इतिहास का आ जाना स्वाभाविक हैं। शिवप्रसाद सिंह जी भी कहते हैं," काशी के अतीत में जाना है तो इतिहास से किनाराकशी क्या संभव है और कैसे है?"[15] परिणाम स्वरुप इतिहास के क्षितिज पर 'नीला चाँद' उदित हुआ और उसने सामान्य पाठकों से लेकर विद्वान समीक्षकों तक सब को मोहित कर दिया। इसीलिए तो इसे साहित्य अकादमी शारदा सम्मान तथ व्यास सम्मान जैसे पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

काशी-त्रयी का प्रमुख उददेश्य है काशी का सांस्कृतिक चित्रण प्रस्तुत करना। 'नीला चाँद' मध्यकालीन काशी या विदेशी आक्रान्ताओ के पर्व की काशी के ऐतिहासिक वृत्त को लेकर लिखी गयी कृति है। स्वयं उपन्यासकार ने 'सिर्फ एक मिनट (भूमिका) में लिखा है," मैं मध्यकाल की वह काशी देखना चाहता था जो विदेशी आक्रांताओं के पहले थी। मुझे तदनुरुप किसी ऐसे समय को ढूँढना था जिसने त्रिकंटक को भी हिला दिया हो, जहाँ, 'धगद धगद ज्वलम' के भीतर नंदीश्वर के ज्योर्तिलिंग ने विशाल स्तंभ की तरह धरा और आकाश को जोड दिया हो। वह समय मिल गया, जब कर्ण कलचुरी ने देव वर्मा चंदेल की हत्या की। पूरी जुझौती रौंद कर कर्णमेरु प्रासाद में अपने चारणों द्वारा नयी बिरुदावली सुनी यानी 'कालः कालंजराधिपतये' कालंजर अधिपति का काल। गाहड़वाल कर्ण के पिता गांगेयदत्त के जमाने से ही मन मसोस कर रह गए, क्योंकि उन्होंने आवश्यक अश्वों और आरोहियों से अपने को सज्जित नहीं किया था। लक्ष्मी कर्ण ने अपने पिता की ही तरह गाहडवालों को मामूली सामन्त मानकर हमेशा दबाए रखा। उस समय की काशी है यह यानी ईसवी १०६० की।"[16]

'नीला चाँद' उपन्यास का प्रमुख पात्र कीरत अर्थात कीर्तिवर्मा चंदेल सम्राट विद्याधर के पौत्र विजयपाल का बेटा और देववर्मा का छोटा भाई है। "जुझौती (आज का बुदेंलखण्ड) पर चंदेलों ने लगभग साढ़े सात सौ वर्ष राज्य किया था।"[17] चंदेलों का इतिहास संघर्ष का इतिहास है। विद्याधर अपने कर्तृत्व के कारण संपूर्ण उत्तरापथ पर छा गये थे। परन्तु उनका पौत्र देववर्मा उनकी परंपरा को चला न सका। वह प्रशासन से उदासीन था। तटस्थता और सह अस्तित्व उनकी राजनीति के मुलाधार थे। उसका

मानना था कि यदि मैं किसी दूसरे राज्य की सीमा का अतिक्रमण नही करता तो मेरे राज्य की सीमा का भी अतिक्रमण नही करेंगा। अत: उसने अपने राज्य की सीमाओं को असुरक्षित छोड दिया था। परिणाम यह हुआ कि विद्याधर ने जिस गांगेयदेव को अपना दास बना लिया था उसी के पुत्र कलजुरी ने ध्यानस्थ देववर्मा की हत्या कर दी। कीरत के ही शब्दों में, "मेरे भ्राता की हत्या इसलिए हुई, क्योंकि वे दस वर्षों तक प्रजा से कटे रहे। उन्होंने गाँव, पुर, नगर, जंगल, उदयान नदी नाले सब से अपना संबंध तोड' लिया ऐसे निष्क्रिय राजा की प्रजा यदि स्वयं हत्या कर देती तो भी मुझे आश्चर्य न होता"[18]

जिस राज्य का शासक गुप्तचरों से मिलने के लिए समय नहीं निकाल पाता उसे तो पराजित होना ही था। उसकी पत्नी ही सवाल किया करती थी कि क्या यह आवश्यक है कि राजगद्दी पर जेष्ठ व्यक्ति का अयोग्य पुत्र ही बैठे ? उसे देव वर्मा की नियति पता थी। इसलिए वह बार-बार कीरत को शासक हात में लेने के लिए कहती रही। कीरत को उसने पुत्र की ममता से पाला था। जुझैती के लिए अब वही आशा का केन्द्र था। कल्याण का सेतु था। अमावस्या का चंद्र था। परन्तु बडे भाई के होते हुए राजगद्दी पर बैठने का अनार्य कार्य कीरत कैसे कर पाता ? अत: वह भाभी जी की अनुमति लेकर उत्तरापथ की यात्रा पर चल देता है। वेश बदल कर संपूर्ण उत्तरापथ के विभिन्न प्रान्तों में नगरों में घूमता रहा। उद्थांड में उसे खबर 'मिली कि जुझौती आग की लपटों में है। वह तुरंत जुझौती पहूँचा।

कीरत ने जब जुझौती में कदम रखा तो उसके स्वागत के लिए अनेक कठिनाइयाँ तैयार थीं। देववर्मा की हत्या हो चुकी थी। उनके शव के साथ भाभी जू सती हो गयीं थी। खजूराहों आग की लपटों में था। कर्ण की सेना हाहाकार मचा रही थी। कीरत हताश होकर सब देख रहा था उस स्थिति में भी चंदेलों के सेनापति गोपाल भट्ट ने अपने रक्त से कीरत का राज्याभिषेक किया। कीरत के पास इतना सैन्य सामर्थ्य नहीं था कि वह तुरंत शत्रू पर आक्रमण कर दे। उसे थोडा समय चाहिए था। कल की विजय के लिए आज पीछे हटना जरुरी था। अत: उसे कुछ दिनों तक छिप कर रहना आवश्यक था। शत्रू से बचने का सब से उत्तम स्थान वही है जहाँ शत्रू का निवास हो इसलिए कुछ साथियों के साथ वह कर्ण की राजधानी काशी की और बढ़ा।

कीरत काशी में गाहड़वाल आर्य रज्जुक की मदद से छद्म बेश में एक पांथशाला में रुकता है। पांथशाला काशी के दूसरे राजा गाहड़वाल चंद्रदेव की थी। गाहड़वालीं को कर्ण के पिता गांगेय दत्त के समय से ही मामूली सामंत का जीवन जीना पड़ रहा था। अब चंदेलों का और गाहड़वालों का एक ही शत्रू था लक्ष्मी कर्ण अर्थात कर्ण कलचुरी। कीरत जानता था कि अहिंसा, शत्रू से घिरे व्यक्ति के लिए नहीं है। वह सवाल करता था, "हमारी संस्कृती हमें सिखाती है कि धोखा मत दो, पर क्या यह भी कहीं लिखा है कि आक्रांता के हमले की प्रतीक्षा करनी चाहिए और अपनी सैन्य शक्ती को खंडशः होने के लिए बर्बरों के सामने झोंक देना चाहिए? क्या यह रणनीति नही है कि आक्रमक को चढ़ाई करने का अवसर देने के पहले उस पर उसकी राजधानी पर, उसके सैनिक ठिकानों पर सीधे टूट पड़ना चाहिए"[19]

काशी में कीरत और उसके साथी नाम और वेश बदलकर रह रहे थे। परन्तु काशी जन पर कर्ण द्वारा होने वाले अत्याचारों को देखकर कीरत अधिक दिन तक छिपकर नहीं रह पाता। उसको सामने आना ही पड़ता है। उसका अमात्य अनंत रणनीति के तहत कर्ण के दरबार में अंतू सिंह नाम धारण कर सेनापति के पद संभाल लेता है। अत: वहाँ की खबरें कीरत तक पहुँचने लगीं दूसरा सहकारी कृष्णमिश्र काशी की जनता मे जाकर उनकी भावनाओं को कीरत तक पहुँचाने लगा। चंद्रदेव गाहड़वाल का पौत्र युवराज गोविन्द तथा आर्य रज्जुक भी उसकी मदद के लिए आगे आता हैं। अत: कीरत अपनी संघर्ष की रणनीति बनाने में जुट जाता है।

काशी में दो राजा थे। एक कर्ण और दूसरा गाहड़वाल चंद्रदेव। गांगेय दत्त से गाहड़वालों ने कभी संधि की थी इसीलिए दोनों राजाओं की राजधानी काशी बनी थी। परन्तु कर्ण ने गाहड़वालों का जीना मुश्किल कर रखा था। वे अपना रक्षण कर पाने में असमर्थ थे तो कीरत की मद्द क्या कर पाते? उनकी प्रजा दु:ख और दरिद्रता में जीवन जी रही थी। गरीब गब्बर नट को कलचुरी सैनिक बार-बार प्रताड़ित करते हैं। कर्ण का समर्थक विनायक भट्ट गाहड़वालों में आस्था रखनेवाले बलदेव ओझा का बार-बार अपमान करता है। गुवाल पल्ली भी दो भागों में बँट गयी थी। उत्तर पट्टी वाले कर्ण के साथ थे। इसलिए आर्थिक दृष्टी से संपन्न थे। दक्षिण पट्टी वाले गुवाल भूख से मर जायेंगे

पर नृपति चंद्रदेव का साथ न छोडेंगे। कर्ण के अत्याचारों के कारण काशी के व्यापारी भी दु:खी थे। विग्रहपाल के मुँह से कर्ण का नाम सुनते ही काशी का प्रसिध्द तंतुवाय रुपचंद्र क्रोध में कहता है। "कर्णदेव राजा नहीं, राक्षस है। उसके नायक घोडों से आते हैं और तंतुवायों की पूँजी, शाटियाँ और काशीकुत्तम लूट कर ले जाते हैं।"[20] कर्ण के सैनिकों का नाम सुनते ही वैशिक वीथिका में घबराहट निर्माण हो जाती हे। कलानेत्री सुनंदा आत्महत्या ही कर लेती अगर कीरत उसकी इज्जत न बचाता। इतना ही नहीं, मंदिरों के पूजारी, साधु आदि भी कर्ण के'अन्याय, अत्याचार' से मुक्त नहीं थे।कर्ण अपने शत्रूओं को खोजने नंदीश्वर को घेरा डालता है। उसका सेनापति गजदंत कलचुरी पूजारी को रक्त पात की धमकी देता है। महायोगिनी शीला पर कुलटा, विद्याधर की रखैल होने का आरोप किया जाता है'। एक नहीं, अनेक घटनाएँ अनेक प्रसंग। कर्ण का तो सिध्दांन्त था- "राजकाज युधिष्ठिर बनकर नहीं चलाये जाते हैं। सुयोधन बनकर चलाये जाते हैं।"[21] ऐसे में न्याय की अपेक्षा रखना ही गलत बात थी। नृपति चंद्रदेव कमजोर थे, दुर्बल थे। प्रजा कर्ण के खिलाफ खून का घूँट पीकर रह जाती।

उस समय काशी में अन्याय-अत्याचार और आतंक अपनी चरम सीमा पर था। तंत्र-मंत्र के नाम पर नैतिक अनाचारों में जनता और सैनिक लिप्त थे। अपनी साधना के लिए बज्रयानी सुन्दर युवतियों का अपहरण कर लेते थे। नृपति चंद्र के आश्रय में पल रही प्रतिहार सोमेश्वर देव की पुत्री गोमती का भी अपहरण किया गया था। उसे तो कीरत बचा लेता है, परंन्तु सब की रक्षा उसके भी बस की बात नहीं थी। उधर शंकुधारा के तट पर अवस्थित विशाल शाक्त मठ में कापालिकों के अनाचार चलते रहे। वहाँ भैरव-भैरवियाँ आकर मदिरा-मांस का सेवन करते हुए चक्रार्चन में भाग लेते थे। यायावर वृत्ती के कृष्ण मिश्र जब वहाँ पहुँच जाते हैं तो उनकी रक्षा हेतु कीरत को सामने आना पड़ता है। कीरत के हाथों कर्ण का एक सेनानायक मारा जाता है। कर्ण अपने अज्ञात ¿Ö¡Ö ÃÖ ×“ÖØÝÖÝÖ ÆÖ ˆŠÖ…

उधर जैजाक में कीरत का सेनापति गोपाल भट्ट अपनी पूरी शक्ति लगाकर कलचुरी सेना से लड़ रहा था। कर्ण की सेना कालंजर सहित आठ - आठ दुर्गों को घेरा डालकर लड़ रही थी। परन्तु उन्हें यश नहीं मिल रहा था। कर्ण को तो चक्रवर्ती राजा

बनने की जल्दी थी। आने वाली शिवरात्रि तक वह सप्तम चक्रवर्ती की घोषणा करने वाला था। उनके अधीनस्थ राजा, सामंत सभी को काशी में आमंत्रित किया जाने वाला था। उससे पहले हर हालत में कर्ण कालंजर को जीतना चाहता था। परन्तु गोपाल भट्ट ने उसके सारे मंसूबे ध्वस्त कर दिये। उसकी बहुचर्चित (आत्मघाती) सेना को सेनापति गोपाल भट्ट ने ऐसा रौंदा कि उसे भागने का मौका भी नहीं मिला। कई अश्व और अस्त्र हाथ लगे। जुझौती की प्रजा को लेकर वह शत्रू से लड़ रहा था। उसका तो स्वप्न था "हम केवल जुझौती को शत्रूविहीन ही नहीं करेंगे, बल्कि राजराजेश्वर विद्याधर के साम्राज्य' में सम्मिलित पूरे क्षेत्र पर भगवा ध्वज लहरायेंगे।'[22]

श्री माँ शीलभद्रा वसंत पंचमी पर आने वाला अपना जन्म दिन हर साल काशी में मनाती थी। इस बार भी वह काशी पहुँचती है, परन्तु कर्ण का चाटुकार विनायक भट्ट उसे अपमानित करता है, चरित्रहीन होने का आरोप लगाता है। विनायक के साथ आये भाड़े के टट्टू श्री माँ को पत्थर मारते हैं। श्री माँ मूर्च्छित उनकी रक्षा के लिए खड़े आर्य रज्जुक की कर्ण का सेनापति अश्वगंध हत्या करता है। छिपा हुआ कीरत संतप्त होकर प्रचंड पर स्वार होकर अश्वगंध पर आक्रमण करता है। करालेद्र के एक ही वार में अश्वगंध मारा जाता है। कर्ण संतप्त होकर केदारोश्वर घाट पहुँचता है। श्री माँ के शव को बंधु-बांधव हीन घोषित करके गंगा में फेंकने की धमकी देता है। परन्तु श्री माँ पर प्रेम करने वाली जनता का क्रोध देखकर उसे पीछे हटना पड़ता है।

इस घटना से कीरत का कर्ण के खिलाफ संघर्ष शुरु हो जाता है। देवदासी मीनाक्षी की रक्षा करते समय कर्ण का प्रिय दामाद जातवर्मन कीरत के हात लग जाता है। कर्ण का दूसरा दामाद विग्रहपाल के कहने पर कीरत जातवर्मन की मुक्तता कर देता है। परन्तु जातवर्मन के कर्णमेरु पहुँचते ही कर्ण ने गाहड़वाल दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। कीरत इसके लिए तैयार ही था। कीरत ने बब्बर नट के कबीले की सहायता से जहरीले बाणों से कर्ण की सेना को तहस नहस कर दिया। कर्ण को भी बंदी बना लिया जाता है। उधर कलानेत्री सुनंदा को बचातें समय कीरत ने कर्ण के पुत्र यशःकर्ण को भी बंदी बना लिया था। चंद्रदेव ने स्वप्न में भी नहीं देखा था कि उसका शत्रू उसके कारागृह में बंदी के रुप में रात काटेगा। लेकिन कीरत के कारण यह संभव हुआ।

कीरत चाहता तो कर्ण का वध कर सकता था। पर विद्याधर का पौत्र अनार्य आचरण कैसे करेगा? वह कहता है, "मुझे उनका वध नहीं करना था, क्योंकि उन्होंने बाहर से जो अतिथि आमंत्रित किये थे वे कहते कि विद्याधर के पौत्र ने अनार्य आचरण किया, उसने अपने पितामह को भी ताख पर 'रख दिया।'[23] अतः कीरत ने शिवरात्री के पूर्व कर्ण को मुक्त कर दिया। परन्तु शत्रू शत्रू है। अतः चक्रवर्ती की घोषणा के लिए आयोजित उत्सव में कीरत दुर से ही ऐसा बाण चलाता है कि उसका बहुमूल्य मुकुट चार ख>ð में विखंडित हो जाता है। अपने अतिथियों के सामने कर्ण यह अपमान सह नहीं पाया। अतः उसने जुझौती पर पूरी शक्ति के साथ आक्रमण किया। परन्तु कीरत भी अंतिम संघर्ष के लिए तैयार था। अब उसके पास पर्याप्त सेना थी। उसके साथ गोपाल भट्ट, अनंत, सूरज गोंड बब्बर नट और तमाम 'जुझौती की प्रजा थी'। चारों ओर से कलचुरी सेनापर चंदेल सेना ने ऐसा आक्रमण किया कि कर्ण और उसके पुत्र यशःकर्ण को भागने के लिए रास्ता नहीं मिला। जैसे तैसे भागने में वे सफल रहे। कीरत ने उनका पीछा किया। उसनेभागते बाप-बेटों पर बाण चलाया। कर्ण की पीठ में बाण घुस गया। यशःकर्ण भी गिर पड़ा। पूर्व वचन के अनुसार कीरत ने उन दोनों को चालुक्य नरेश सोमेश्वर को सौंप दिया। कर्ण कलचुरी से जुझौती मुक्त हुई। कीरत का संघर्ष सफल हुआ।

कीरत के संघर्ष में प्रजा का बल भी देखने को मिलता हैं। सामंतशाही में राजा की हार-जीत से प्रजा को कोई लेना देना नहीं होता परन्तु चंदेल सम्राटों ने प्रजा के साथ इस प्रकार का रिश्ता स्थपित किया था कि प्रजा को राजा की लड़ाई अपनी लड़ाई लगती थी। राजा प्रजा की नींद सोता है, प्रजा की नींद जगता है। कीरत आदिवासी प्रजा की मनियाँ देवी को अपनी कुलदेवता मानता है। इसीलिए डॉ. बच्चन सिंह कहते हैं,- "कीरत सामंत होकर भी जनता का प्रतिनिधित्व करता हैं।"[24] कीरत अच्छी तरह से जानता है कि "राजा का आकर्षण भूमि से नहीं प्रजा से जुडना होता है। तुम्हारी अपनी प्रजा तुम्हारेसाथ नहीं है तो तुम्हारी रक्षा कोई नहीं कर सकता।'[25] प्रजा का दुःख राजा ने अपना दुःख समझा था। राजा पर मर मिटने वाली प्रजा थी।

कीरत की संघर्ष गाथा का दूसरा नाम है दृढ इच्छाशक्ति। कीरत के मन में यह इच्छाशक्ति जगाने का काम भी माँ करती है। माँ का स्पर्श आंतरिकता में खोयी इच्छाशक्ति

को जगाने का काम करती हैं। यह इच्छाशक्ति इन पात्रो में अकेले लड़ने का संकल्प निर्माण करती है उन्हें पता है कि " जिसके ³ÖßÖतर जागृत प्रबल इच्छाशक्ति ÆüÖ वह देवता का प्रतिनिधि होता है।"[26]

कीरत कहता है "मैने सत्ताईस वर्षो की इस लंबी आयु में बार - बार देखा है कि, संकट में न भगवान का नाम जप काम करता है न ग्रहावरोधी अंगूठियों से कुछ सिध्द होता है, न तो रुद्राक्ष की, स्फटिक की मालाएँ सहायक होती हैं न तो तंत्र-मंत्र कुछ बदल पाते हैं, न तो बाबा, सिध्द पुरुषों का आशीर्वाद कवच बन पाता है। बस सहायक केवल एक वस्तु होती है। वह है इच्छाशक्ति की दृढता। वह अंधकार में चपलता बनकर छलकती है, धनुष्य में वेध्य को चीरने के लिए झुकती है, मार्वी में टंकार के लिए मचलती है, मै उसी शक्ति का उपासक हूँ। जो बाहर नहीं मेरे भीतर है। अगाध अतल में प्रवाहित हो रही है। यही दृढ इच्छाशक्ति उसका कवच हैं।"[27]

कृति के अंत में सारी अदृश्य शक्तियों को लेकर एक बार फिर अंतिम रुप में दृढ अविश्वास के जरिए आधुनिक दृष्टि का उद्‌घोष किया गया है और 'नीला चाँद' आम को भी अमोघ इच्छाशक्ति के साथ जोडकर व्याख्यायित कर दिया गया है-"बेटे जैसे हर व्यक्ति के अंदर एक आंगन होता है, एक तुलसी चौरा होता है, वैसे ही सब के छोट-मोटे आकाश में एक 'नीला चाँद' भी होता है। ढकोसलों से नहीं नियति को जानने वाले दाम्भिकों की भविष्य वाणियों से नहीं, तू खुद कालिमा में डुबकर अपने मन के आंगन में जगमगाता 'नीला चाँद' देख लेगा, उसका नाम है आमोघ इच्छाशक्ति।"२८ किन्तु यह सब भी एक महा साध्वी कहती है। तो क्या उस जमाने में भी ऐसी आधुनिक दृष्टि समपन्न साधु-साध्वियाँ हुआ करते थे और तब श्री माँ की जाग्रत साधना को किस रुप में आंका जाय। इस प्रकार प्रस्तुत कृति में आधुनिकता के स्वर अंतरतर से फूटत हैं, वे बाहर से थोपे नहीं गए हैं और उनकी रचनात्मकता कुछ एक निवार्य सीमाओं के वाबजूद एक सशक्त सृजनात्मकता का उदाहरण बन चुकी है।

2.1.4 ¿Ö»ÖÂÖ :

'शैलूष' शिवप्रसाद सिंह का १९८९ ई.में प्रकाशित बहुचर्चित उपन्यास है।

शिवप्रसाद सिंह जी के चौथे उपन्यास 'शैलूष' का मूल प्रतिपाद्य है - विस्थापित नट जाति को सामान्य नागरिक के रूप में स्थापित करना। इसीलिए इसमे जयरामपेशा नटजाति को चिरकाल से दर-दर ठोकरें खाने की नियति से निकालकर उन्हें एक जगह का बाशिंदा बनाया गया है और गृहस्थ जीवन में प्रतिष्ठित किया गया है।

लेकिन यह इतनी आसानी से नही हो गया है। विरोधी शक्तियाँ अनेक रूपों में कई - कई तरह से इन्हें रोकने की कोशिश करती है, जिसके चलते बड़ी जबर्दस्त लड़ाइयाँ लडनी पड़ी हैं। इस लडाई के साथ ही उपन्यास में नटों के जीवनेतिहास, उनकी संस्कृति व विश्वास आदि के साथ ही समकालीन परिवेश भी साकार हो उठा है। अब इन्ही पक्षों की प्रस्तुति की प्रामाणिकता और संगति का विवेचन ही 'शैलूष' के मूल्यांकन का आधार बनेगा। इसमे चित्रित लड़ाई कितनी वास्तविक है, इसकी परिणतियाँ कितनी संभाव्य है इसमे आये कार्य व्यापार कितने यथार्थ है, इसमें उभरता परिवेश कितना युगसम्मत है, लेखक की स्थापनाएँ कितनी विश्वसनीय है और प्रयुक्तियाँ कितनी तर्कपूर्ण आदि का विश्लेषण ही मूल्यांकन के आधार को प्रस्तुत करेगा।

'शैलूष' में नट जाति का जीवन ही कृति की प्रेरणाभूमी है और उसी के विकासेतिहास का शोध ही इस रचना का स्त्रोत भी है। अपनी मानसिक प्रेरणा के संदर्भ में लेखक ने 'आत्मन' के (भूमिका) में बताया है, 'शैलूषों'(नटों) के हक की लडाई मैने दस वर्ष की उम्र में अपने चाचा की छावणी गोइसीपुर में देखी थी। मैने आर-पार की माला, जो नटो पर लिखी बहूचर्चित 'आर पार की माला' शीर्षक मेरे प्रथम संग्रह का शीर्षक बनी। फिर करैता के खलिहान में इन शैलूषों के डेरे तो हर वर्ष गर्मी के दिनों में उतरते ही थे मैने उनको वहाँ भी देखा। इनकी लडाई में हमेशा शरीक रहा। वह लडाई मेरे जेहन में उतरती गयी। नये रूप में रूप बदलकर हमेशा एक ही दृश्य दिखता रहा - पराजय,पुलिस के डंडो के नीचे लहूलुहान होते जरायमपेशे वाले शैलूष रात में भी मेरी चादर खींचकर चिल्लाते रहे- "कब तक ऐसी हमारी कथा-व्यथा को छिपायें रहोगे ?" मैं इस दु:स्वप्नों को कागज पर उतारे बिना शांति नहीं पा सकता था।"[29] †Ö¸¡ ¾ÖÆß कागज पर उतरा है 'शैलूष' के रुप में

शिवप्रसाद सिंह ने शैलुष की कथा में सोद्दश्ये, पर सहज रुप से नट जीवन को

लगभग संपूर्णता में उकेरा है। परम्परा प्राप्त जीवन से लेकर वर्तमान जीवन की सारीं प्रवृत्तियाँ इसमें समा गयी हैं और भावी संकेत भी उभारे जा सके है। इस तरह यह पक्ष गतिशील रुप में चित्रित हुआ है। स्पष्टत: उनका जीवन इतना कष्टमय है कि कई-कई दिन एक दाना तक गले में नही पहूँचता। इस 'क्राइसिस' को साधना के रुप में साध लेते हैं- नट लोग। तभी तो लल्लू काका चाय पीकर कई-कई दिन रह लेते हैं। और असंभव लगता है, पर इसी का फायदा उठाते हुए शायद लेखक ने दस दिन तक ननकू को बिना खिलाये रखा तथा सभी कार्य स्वाभविक रुप से कराता रहा। यहाँ तक कि भूखे-प्यासे गाकर वह आल्हा का दंगल भी जीत लेता है। रोजी-रोटी का साधन तो पूर्णत: आकाशीवृत्ति पर निर्भर है। कुछ नहीं तो भीख भी माँग लेते हैं ये लोग। और हाँ, रोजी-रोटी के लिए शोर मचाना भी उनकी आदत थी। "मसलन जब दस गंदेली नट्टिनें अगर किसी बखरी के द्वार पर पहुँचती तो चिल्लाती- भूख लगी है माताजी जल्दी दे दो। अगर उन्हें तुरन्त भीख नहीं मिलती तो वे कहतीं-"दे दे जल्दी, नहीं तो तेरे चौकट पर हग देंगे, मूत देंगे।"[30] भीख का यह विचित्र तरीका नट्टिनों की अपनी विशेषता है, पर नट ऐसा नहीं करते। वे आल्हा गा गाकर घरों से कुछ ना कुछ लेते रहते है। प्राय बडे घरों में ही ऐसा करते है। शैलूष में ऐसे बबुआनों के खत्म हो जाने का उल्लेख तो है, पर ढोल बजा-बजाकर चलते - चलते हर घर से भिक्षा माँगने वाले आज के नटों का जिक्र नहीं है। किसी भी जाति की बारातों में बिना बुलाए भी जाकर दो-एक चौकडी आल्हा गाना सुनाकर कुछ न कुछ ले ही लेते हैं।

रोजी-रोटी के और भी बहुत से कार्य है। कुछ नहीं रहा तो, जंगलो से पत्ते तोडकर खदोने और पत्तल बनाकर बेच लाते है। परती पर फैली पोरसे बराबर की घासे काट-काटकर बाजारों में बेचने का कार्य भी कर लेते है। जो बहुत गरीब है ऐसे नट खेलकूद रस्सी पर चलना आदि अनेकों करतब दिखाकर रोजी-रोटी कमाते हैं। इन सबसे भी पूरा न पडने पर गंदे जानवरों के भोजन में शामिल हो जाते है. किसी तरह से अपना पेट पाल लेते। सांडा, सॉप, गोह की धाले, केंचुले इकटठा करके इन्हें महेगे दामों पर बेच देते, गिध्द केचुले और दूसरे पंछियों के तेल की सही दवा बनाकर बीमार मर्दो को फॅसाने का धोखाधडी जैसा धंधा भी कर लेते हैं। उनकी औरते लोगों के गर्भ

गिराने और गर्भ को बचाने की अचूक दवाएँ भी देती तथा नामर्दो और बाँझपन मिटाने की दवाइयाँ भी बेचती अफीम बेचने का धंधा तो पुराना ही है। अब वे आधुनिक नशीले पदार्थ भी बेचने लगे है। जेठरी इसी में पकडी जाती है ब्राउन सुगर, रमैस आदि.। इस धंधे में ये लोग बडी जातियों के लोगों के साथ अब मिलकर धंधा कर लेते हैं। नौजादिक-जेठरी इसका उदाहरण है। पैसे लेकर हत्या-आगजनी गुण्डागर्दी करने वाले करीमन व सलमा जैसे लोग भी है। लडकियाँ चुराने का धंधा तो इनका पुराना है। गोरी-चिट्ठी लडकियों से नस्ल बदलना इनका इरादा हुआ करता। लेकिन नटों ने कभी मासूम बच्चों का पैसे के लिए कत्ल नहीं किया, जिसके लिए करीमन की भर्त्सना उसकी बेटी भी करती है।

नटों की पहचान कबीले के रुप में होती है। वे रुक गये तो कबीला, और चलने लगे तो काफिला। बंजारा जीवन है इनका। आग लगने पर जो सब संपत्ति उसे लेकर जुडावन का कुनबा बाहर निकल आया था- जानवर, बक्से, गुदड, खिलौने, वरना महिष की सींग के रंग-बिरंग पंछी। इस प्रॉपर्टी को भैसों पर लादे इस गांव से उस गांव, इस जंगल-पताड से उस तक की यात्रा ही उनकी जीवन-पध्दती रही है। इसका सही चित्र मिलता है 'शैलूष' में कई जगहों पर भैसों पर लदी सवटियाँ और गूदड-बहंगी पर सींक के बडे पिंजरों में बंद मुर्गे-मुर्गियाँ लाल रंग की रावल मुनियाँ, हाँडियों में कसमसाते गेहुँअन (साँप) पिंजरे में बंद नेवले, इठलाती हुई नट-कन्याएँ और लहंगापटोर में लिपटे बंदर-बंदरियाँ भैंसें चली, बन्दर - बन्दरियाँ चले माटी की हाँडी में बंद गेहुअन से लेकर धामिन तक साँपों को बहंगी पर लादे प्रौढ नट चले। गुदना गोदने वाली युवती नट्टिनें चली। अवैध हमल गिराने के लिए अफीन और दूसरी जडी-बूटियाँ बेचने वाली निडर नट-कन्याएँ चली। छेड-छाड करने वालों को छुरे की नोंक पर नचाने वाली नृत्य-कुशल शैलूष छोकरियाँ चलीं। यही है उनका जरायमपेशा जीवन। नाच-गान तथा महुअर आदि बजाकर कलाबाजियाँ दिखाकर लोगों को कुश्ती लडना सिखाकर ये लोग जनजीवन में अपनी पहचान स्थापित कर सकें हैं।

सावित्री मौंसी के कहने पर जुड़ावन का कबीला लगभग सभी कामों को छोड चुका है। अच्छे कार्यों को अपनाने की प्रेरणा सावित्री मौंसी देती है। नट लोगों के जीवन

में इस सुधार की आवश्यकता है। शराब पीना तक छोड दिया है उस कबीले के लोगों ने समय के अनुसार छूट दी जाती है। उन्हें रेवतीपूर की परती पर अधिकार जमाकर पट्टा में मिली अपनी जमीन पर खेती करने की प्रेरणा सावित्री मौंसी से मिलती है। लेकिन अंत तक उन्हें खेती करने आती नहीं। जमीन मिलने पर जुग्गीसिंह उन्हें खेती करना सिखाते है।

जीवन की विभीषिकाओं के बीच भी शैलूष पुत्रों के स्वाभिमान उनके विश्वास उनकी परम्पराएँ एवं मान्यताएँ भी बरकरार है। मखदुम बाब और दुर्गाकाली दोनों की पूजा दिखाकर लेखक ने इस बंजारे समुदाय को हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतिनिधित्व भी दिया है जो प्रासंगिक रुप में भी श्लाघ्य हैं- नट जीवन का चित्रण तो ही है। लल्लू काका कुछ वैद्यकीय इलाज करते है, पर पूरे नट-समुदाय में मरीमसात की पूजा से रोगों के इलाज का विश्वास व्याप्त है। ओझा से गोवरधन अपने बेटे को ठीक कराना चाहता है। उसे डॉक्टर की दवा पर विश्वास नहीं है। गरीबू ओझा गोरया महावीर की पूजा करता है मुर्गा काटता है, सूअर भी काटता है। सब कुछा ओझा लोग उड़ा जाते है। दैतरा का नाम लेकर वे भूत भगाने का मंत्र पढते हैं। इस अंधविश्वास को भी दिखाया गया है। दो सौ रुपये सफाचट कर गये और ननकू-मनिक ने आकर उनके सारे चमत्कार की कलई खोल दी। अंधविश्वासों का एक पूरा जखीरा है, उनके यहाँ। रेवती की परती के अंधविश्वास तो पूरे गांव पर छाये हैं। वहाँ की दतौन तक कोई नही तोडता, घास नहीं काटता ¸Æ लेने वाला धोबी हैजे से मरता है, तो भी सब उसे रेवती का क्रोध ही समझते हैं। लेकिन रुपा वहाँ की रेह लेती है। घुरफेकन सारी परती को काटकर जोतवा देता है। उसका विनाश भी होता है। क्या रेवती माँ के शाप से ही सबसे अधिक बुध्दिवादी, वैज्ञानिक सोच वाली सावित्री मौंसी भी तो कहीं न कहीं इनमें आस्था रखती है। तभी तो वह सारस्वत के शुभ एवं कल्याण के लिए काले धागे में लटकी सोने की तावीज देती है, जो नथिया बंजारिन नाम की है। सारस्वत जैसा पढा-लिखा अफसर उसे धारण भी करता है। यह स्थिति आज भी शिक्षितों एवं मार्क्सवादियों में भी देखी जाती है। सावित्री सुरेंन्द्र के कहने का पूरा विश्वास करती हुई यह समझती है कि बिजली गिरे पेड को छूने से ही इसके पोते बकुल की मृत्यु हुई है। पढे-लिखे अशिक्षित अंधश्रध्दा के बलि जा रहे

है। बकुल की मृत्यु मौंसी का शहर से गाँव आते हुए उस पेड़ को छूना और सुरेन्द्र शुक्ल की वहाँ पर पहली बार मुलाखत होना इन सभी बातों से अंधश्रध्दाओं की मान्यताओं को ¯ÖÂ™ß ×´Ö»ÖŸÖß Æî…

'शैलूष' उपन्यास के आधार पर नट जीवन की जो तस्वीर बनती है, उससे ऐसा विश्वास होता है कि वहाँ छोटे-बडे का कोई लिहाज नही है। पिता को भी बेटियाँ साले, हरामखोर की भाषा में बातें करती हैं। करीमन से सलमा तो करती ही है। परन्तु सब्बो मौंसी द्वारा प्रशंसित-प्रशिक्षित रुपा भी पिता बसावन से ऐसे ही बात करती है। बसावन अपनी बेटी रुपा के चरित्र पर ऐसे आक्षेप करता है, जैसा वह बाप न होकर उसका खाँटी दुश्मन हो। पटनी के अलावा प्यार करने निभाने एवं संबंध बनाये रखने की पध्दति भी प्रचलित है। बेला के रहते जुड़ावन सावित्री को लाया भी और उच्च घरानों की लडकियों से शादी करने की कोशिशों को नट समाज में विशेष मान्यता प्राप्त थी। शायद सब्बों मौंसी के कारण या जैसे भी जुड़ावन कबीले में अब ऐसा नहीं है, पर जुड़ावन के दोनों बेटे ननकू मयनवा से सरजू सलमा से अपना संबंध बनाये है। यह सभी को मालूम है। शादी के मामले मे काफी स्वातंत्र्य है। मानिक से रुपा का प्रेम विवाह ही हुआ है। धंधे के लिए भी शरीर-विक्रय होता है। इसे मजबूरी दिखाकर प्रस्तुत किया गया है। जुड़ावन सरदार के कुनबे के अलावा और जगहों पर तो इसका ज्यादा ही बोलबाला है। सलमा तो थानेदार की हम बिस्तर होकर पुलिस चौकी से छूट जाती है। जेठरी का भी मामला सब स्वच्छंद ही है। इसी तरह शरीर-पावित्र्य का बहुत भेद दिखता नहीं।

शादी के तरीकों में बहुत सारी पध्दतियों का उल्लेख हुआ है। लेन देन की चर्चा का अहसास भी है, पर प्रगतिशील चिंतन के प्रभाव में वह खत्म होता दिख रहा है। "काका तुम आज पूरे कबीले को बुलाकर ऐलान कर दो कि अब शादियों में लडके वाला पूरे कबीले के लिए भोजन बनाकर एक साथ बैठकर सबको शादी की खुशी में खिलायेगा। आज से मेहर बंद। आज से फिजूल खर्ची बंद। आज से शादी-ब्याह के भोज-भात में अलग-अलग सिध्दा बाँटना बंद।"[31] अलग-अलग सिध्दा इसलिए बाँटी जाती है कि नट के एक परिवार के लोग दुसरे परिवार का छूआ नहीं खाते, परन्तु लगता है सावित्री मौंसी इस प्रथा को भी बंद करा ही देगी। वह तो नटों के मुस्लिम एवं हिन्दू

समुदायों के बीच भी इस सिध्दांत की स्थापना करती है कि मजहब के नाम पर किसी के साथ ऐसा सलूक नहीं होना चाहिए, जो गैर वाजिब हो। नौजादिक द्वारा नट-कन्याओं में पुरुषों से मिलने की झिझक का जिक्र करने पर जो उत्तर लल्लू काका देते है, वह पूरे समाज के नारी-पुरुष संबंधों की व्याख्या करने वाला है। नट कन्याएँ भी छुरेबाजी में इतनी तेज हैं कि रुपा रोज बाजार आती जाती है, लेकिन किसी की मजाल नहीं कि बदसलूकी करने की हिम्मत हो। सब्बों ने उन्हें तमाम पुरानी बातों को छोडकर नये सभ्य समाज जैसा बनाने की कोशिश की है, पर बेइज्जती बर्दास्त करने वाला नपुसक नहीं बनाया है। एक प्रसंग में जुड़ावन परिवार की दो बहुओं को आपत्तिजनक स्थिति में पराये पुरुष के साथ मिलकर फोटो खिंचाते समय पकडा जाता है। यह आधुनिक सभ्यता के भ्रष्ट लोगों की साजिश का यह नतीजा था। स्वाभिमान, शान को निभाने में नट कबीलों का कोई जबाब नहीं।

'शैलूष' पूर्णता वर्तमान पर आधारित कृति हैं अत: इसमें समसामायिक संदर्भो से संबध्द बातें ही ज्यादा है। जो ज्ञानात्मक बाते भी है, उनकी प्रासंगिकता उन्हें जीवंत बना देती है। खुशी को व्यक्त करने के लिए विशिष्ट अवसरों पर खास तरह के गीतों नृत्यों के माध्यम से भी नट जीवन साकार हुआ है। चैता बधावा, पचरा के अलावा, खेती मिलने पर तथा शादी -ब्याह पर भी गीत नृत्य होते हैं। कबीर के भजन के अलावा गरीबी को व्यक्त करने के लिए गीतों का उल्लेख हुआ है अल्हा गान तो उनका अपना वैशिष्टय ही है। वस्त्राभूषण का विशेष वर्णन नहीं मिलता कुरते पाजामे, छीट के नारी परिधन, एकाध अच्छी सारियों के अलावा फटी सारियों को ही साफ-सुथरी बनाकर पहनने का जिक्र बारबार हुआ है। ऐसे में तो आभूषण का तो प्रश्न ही नहीं उठता हैं। नटों के जीवन के विविध पक्ष उदघाटित अंकित हुए है। यही शैलूष रचना का प्राथमिक उद्देश भी रहा है। जिसमें लेखक को संपूर्ण सफलता निर्विवाद है।

2.1.5 ´Ö•Öã¿Ö´ÖÖ :

'मंजुशिमा' डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का पाँचवा उपन्यास है। मंजुशिमा का प्रकाशन १९९० ई. में हुआ प्राय: दो सौं पृष्टों की यह कृति सत्रह अध्यायों में विभक्त है

और प्रत्येक अध्याय किसी न किसी भाषा की पद्यात्मक सूक्ति या पद्यावतरण से प्रारम्भ ÆÖŸÖÖ Æî…

लेखक ने उपन्यास के प्रारम्भ में एक भूमिका 'कठिन है डगर पनघट की- शीर्षक से दी है, जिसके अन्तर्गत मुख्य रुप से 'मंजुशिमा' के कथ्य की ओर संकेत करते हुए उसकी प्रतिक्रियात्मक कल्पना के सन्दर्भ में खुद लिखा है-"मैने दंभ किया था कि सर्वोत्तम चिकित्सा के लिए जो भी बलिदान करना हो, करुंगा। मैने किया फिर मैं मृत्यु को जीत चुका था, नतमस्तक कर चुका था। पर अन्त में वह जीत गयी। मृत्यु जीती, मैं हारा। पर मैं सन्तुष्ट हूँ। इसीलिए कि मैंने उसे मृत्यु के मुख में जाने से रोक दिया था। क्या हुआ कि वह तीन साल तक ही जी पायी। यह भी बहुत है। अगर मैंने मृत्यु को एक मिनट के लिए भी रोक दिया तो मैं सफल हूँ। मैं टूट गया तो क्या हुआ। मृत्यु भी तो टूट गयी मेरे लिए। मरे कुछ मित्र जो पहले मुझे ठीक-ठाक कहा करते थे। आज कह रहे है कि मैं अहंकारी हूँ। आलोचनाएँ सह नहीं पाता। तुनकमिजाज है। मैं पंत की तरह सोच-सोचकर शांत चित्त से नहीं लिखता। निराला की तरह खौलने लगता हूँ। पता नहीं किस साइत में निराला का अपार्थिव अंश मेरे रक्त में आ गया जो बहुत गडबडी मचा रहा है। निराला जैसी रचना तो सपना ही रहीं, खौलने और तुनकमिजाजी में जरुर उन्हें भी लाँघ गया। चलिए कहीं तो आपने जान बख्स दी। अवगुण भी गिनाये तो एक महाकवि के साथ जोडकर। यही क्या कम है?"[32]

'मंजुशिमा' मंजु की जीवन संघर्ष गाथा है। मंजुशिमा उपन्यास को यथार्थ जीवन की काल्पनिक कथा कहा जाता है। पर शिवप्रसाद सिंह का यह उपन्यास इसके लिए अपवाद है, इसकी सारी घटनाएँ, सारे पात्र यथार्थ की जमीन से पैदा हुए हैं। लेखक की पुत्री मंजुश्री की स्मृति में लिखा गया यह उपन्यास है। मंजुशिमा उपन्यास अपने कथानक एवं अभिव्यक्ति की नवीनता के कारण बहुचर्चित रहा है। लेखक की बेटी मंजुश्री एक दिन अचानक बीमार पड जाती है। डॉक्टरों की जाच-पडताल के बाद पता चलता है कि उसकी दोनों किडनियाँ खराब हो चुकी है। वहाँ से लेकर एक पिता का संघर्ष शुरु हो जाता है, जो मंजु की मृत्यु पर आकर रुकता है। साक्षात मृत्यु से संघर्ष। एक बेटी के लिए संघर्ष। जिस भारतीय समाज में कन्या का पैदा होना ही अशुभ माना

जाता है वहाँ शिवप्रसाद सिंह नाम का पिता ढाई लाख रुपये जुटा-जुटा कर ट्रांसप्लांट करवाता है।"[33] शिवप्रसाद सिंह जी को सब कुछ असंभव दिखायी देता है पर शिवप्रसाद सिंह जी कब हार मानने वाले थे? बेटी को लेकर चिकित्सा के लिए वे दक्षिण भारत में 'क्रिश्चियन कॉलेज अस्पताल', बेल्लोर में आते हैं। बेल्लोर में रहते हुए तरह-तरह के कटु अनुभव आ जाते हैं। तरह-तरह की यातनाएँ सहनी पड़ती... सब कुछ सह लेते हैं अपनी बेटी के लिए। इसमें चित्रित है एक पिता का रोज रोज मरना, मरकर फिर जीना। उपेक्षा, अपमान, दुःख, पीडा, ग्लानि, सब कुछ सहना पडता है बीमार बेटी के बाप को, अतः यह कहानी किसी एक मंजु की नहीं रहती। " यह हर उस घर की कहानी है, जहाँ बेटियाँ हैं, लड़कियाँ है।"[34] कहना न होगा कि शिवप्रसाद सिंह जी ने भारतीय समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

उपन्यास में जो लेखक का जो संघर्ष एक स्वाभिमानी पिता का संघर्ष है। कौन हारा कौन जीता यह सवाल बेमतलब का है। फिर भी मंजुशिमा का लेखक पुरुष है फिर भी उनकी यह कृति साहित्य में नारी के अस्तित्व और व्यक्तित्व को दमित, कुंढित और अस्वीकृत करने की चली आती परम्परा के खिलाफ है। 'मंजुशिमा' कहानी नही है। यद्यपि यह एक क्रम में बहती है। वह दर्द और दर्द को सहने की दुहरी लडी सी मोती की माला है।

विधा के रुप में भी 'मंजुशिमा' उपन्यास चर्चित रहा है। क्या यह उपन्यास है? या आत्मकथा अथवा जीवनी है? शिवप्रसाद सिंह जी तो इसे उपन्यास ही कहते हैं। पर समीक्षकों की दृष्टि में "मंजुशिमा शिवप्रसाद सिंह की अनूठी कृति है। कभी डायरी, कभी संस्मरण, तो कभी आत्मकथा और समग्रतः उपन्यास है- 'मंजुशिमा' इसमें जीवन भी है और कहानी भी लेख, भी है और रिपोर्ताज भी"[35] 'मंजुशिमा' में अमानवीयता के अंधकार को निरन्तर चीरने वाली रोशनी गर्मी देती रहती है। यह इसकी विशेष उपलब्धि मानता Æ…[36]

2.1.6 †ö¸ÿö : (1992)

'औरत' डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का रचनाक्रम के अनुसार छठाँ उपन्यास है। इस

उपन्यास का प्रकाशन सन १९९२ ई.में हुआ। शिवप्रसाद सिंह जी का 'औरत' उपन्यास भारतीय नारी की व्यथा को अभिव्यक्ति देने वाला उपन्यास है। शिवप्रसाद सिंह जी ने "इस नवीनतम उपन्यास के माध्यम से आर्थिक विषमताओं, जातिवाद और सामंती सोच से ग्रस्त समाज पर बहुत सफलता से चोट की है।"[37] उपन्यास का कथानक पूवाचंल की नारी है, नारी भारत के किसी भी प्रांत की, किसी भी धर्म की अथवा जाति की हो, उपेक्षा और शोषण उसके जीवन में समान रुप से मौजूद है।

'औरत' उपन्यास जैसा की शीर्षक से स्पष्ट है कि नारी की व्यथा को प्रमुखता से उजागर करता है। इसका नायक शिवेन्द्र जो समाजशास्त्र विभाग में प्रवक्ता है। शिवेन्द्र का मित्र तथा पीएच.डी. का छात्र प्रेमस्वरुप 'पूर्वाचल में नारी की स्थिति' विषय पर शोध कार्य कर रहा है। उसको लेकर शिवेन्द्र अपने गांव करमूपुरा आता है। ताकि वह पूर्वांचल की नारी की स्थिति अपनी आँखों से देख सके। उसने जो कुछ देखा और नायक शिवेन्द्र से सुना वही 'औरत' का कथानक है।

औरत और वह भी दलित हो तो उसके दु:ख का क्या कहना! उपन्यास में सोनवां, रुपवा, सुखिया, तथा तेतरी के माध्यम से दलित स्त्री का दु:ख चित्रित किया है। सोनवां जैसी सुंदर और गरीब नारी की मजबूरियों का नाजायज लाभ उठाने के लिए सोबरन (सुवर्ण) राय जैसे नराधम मौके का ईंतजार करते रहते है। इसके लिए दाता बनने का नाटक भी करते हैं। सोबरन राय अपने को सोनवां का अभिभावक कहते हैं। लेकिन जब वही सोनवां नारी हक के लिए जागृत होकर मर्दो के बराबर मजदूरी मांगने के लिए सत्याग्रह करती है, तो उसे सजा के रुप में सोबरन राय के बलात्कार का शिकार होना पडता है। सोनवां अनचाहा गर्भ ढ़ोने के लिए मजबूर होती है। लेकिन कब तक इस अनचाही पीडा को वह सहती? अंत में सोनवां आत्महत्या कर लेती है। रुपवां सोनवां की चचेरी बहन थी। हरीश जैसे काम्रेंड के कारण दलित शोषण के विरुध्द खडी हो जाती है। परन्तु सोबरन राय हो या सुदर्शन तिवारी अपने खिलाफ बोलने वालों की बोलती बंद करना अच्छी तरह से जानते हैं। सुदर्शन तिवारी ने गरीब सुखिया पर बलात्कार किया था। रुपवा सुदर्शन को सजा दिलवाने के लिए हरीश की मदद से सबूत जूटाती है। तब सुदर्शन पुलिस की ही मदद से रुपवा का जीवन समाप्त कर देता है।

औरत के जीवन में यातनाओं की कमी नहीं जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका जीवन उपेक्षा और दुःख अपमान से भरा होता है। लडकों की शादी हो, जाये तो परिवार वाले मुक्ति की साँस लेते हैं। शिवेन्द्र स्वयं अपनी बहन सरस्वती और चचेरी बहन राजी के विवाह पर अनुभव करता है। औरत को बदनाम करने के लिए उस पर चरित्रहिनता का आरोप लगाया जाता हैं। सोबरन राय इसे अच्छी तरह से जानता है, राजी अपने दुश्मन की बहन है यह देखकर सोबरन राय उसे चरित्रहीन सिध्द करने के लिए षडयंत्र रचता है। सोबरन राय के साथ राजी का होने वाला ससुर पुरुषोत्तम सिंह भी था पैसों के लिए आदमी कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाता है जैसा कि, पुरुषोत्तम सिंह लालच में आकर औरत को जब चाहे नेक कह सकते हैं, जब चाहे चरित्रहीन कह सकते हैं। लेकिन इस बार सामना था प्रतिभा बंसल से। एक औरत होने के नाते चरित्रहीन कहे जाने का दुःख प्रतिभा बंसल अच्छी तरह से जानती थी। इसलिए वह पुरुषोत्तम सिंह से कहती है, "तुम औरत को बेइज्जती कर सकते हो, क्यों ? जानते हो क्यों? इसलिए कि औरत की शरम का बडा मोल होता है। यही सिखाते रहते हैं सभी। बाप, भाई, यहाँ, तक कि बेटे और बेटियाँ भी। औरत को शरम करने का उपदेश देते हैं सभी।"[38]

सोबरन राय या पुरुषोत्तम सिंह ही नहीं पूरें भारतीय समाज में यह दोष दिखाई देता है। औरत अगर चौखठ के बाहर कदम रखती है तो उसे संदेह की नजर से देखा जाता है। पढी-लिखी तथा नौकरी करने वाली औरत तो इस दर्द को अच्छी तरह से जानती है। औरत उपन्यास में चंद्रा, रोशन तथा प्रतिभा बंसल इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। प्रतिभा का जिस युवक से प्रेम था वह भी मानता था कि चौखठ के बाहर कदम रखने वाली औरत चरित्रहीन होती हैं। समाज ने औरत के ईद गिर्द जो दीवारें खडी की हैं वह धन दौलत से ढह नहीं जाती। बंसल परिवार ने धन दौलत को कभी मंजिल नहीं समझा। उन्होंने अपनी बेटी के सामने खड़ी परंपराओं की दिवारें तोडने में मदद ही की होगी। तभी तो वह पुलिस अफसर बनती है। एकदम अपने पैरों पर खड़ी अपने पर निर्भर। पर क्या वह पुरुष मानसिकता को बदल पायी? शिवप्रसाद सिंह जी कहते हैं, "सुखिया और बंसल में कोई फर्क नहीं है। दोनों की इज्जत का क्या मोल? बंसल को चरित्रहीन कह दो तो, सुखिया की इज्जत लूट लो तो क्या फर्क पडता है"[39]

दहेज के लिए शादी तोड देने वाले समाज में जायदाद के लिए औरत का सिंदूर मिटाना बहुत बडा काम नहीं है। पढी लिखी सुसंस्कृत युवती चंद्रा के पति की हत्या इसी कारण हुई थी। चंद्रा विधवा हो जाती है। विधवा स्त्री का दु:ख और भी भयावह चिंतनीय होता है। चंपा उपधाइन विधवा होने का दु:ख जानती थी। उसके पति की भरी जवानी में मृत्यु हो गयी थी। इसमे उस बेचारी का क्या दोष? वह सवाल करती है कि "यदि मेरा पति भरी जवानी मे चला गया हो तो उसे मेरा कर्मफल कहो, किन्तु इसके लिए हमें अपराधी क्यों बनाता है यह समाज?"[40]

पति की मृत्यु पर स्त्री को अगर जिम्मेदार माना जाता है तो यही न्याय पुरुष पर क्यों लागू नही होता? पत्नी की मृत्यु पर कभी पुरुष को जिम्मेदार माना जाता है? पुरुष को दोष देना तो दूर, पति के पहले स्त्री को मृत्यु बडे,सौभाग्य की बात मानी जाती है। जिस पिता के घर मंगल प्रसंग हो ऐसे मौके पर विधवा को बुलाया नहीं जाता। बिन बुलाये जब चंपा भाई की शादी में चली जाती है तो पिता द्वारा उसे अपमानित होना पडता है। नियति औरत को विधवा बनाती है, परन्तु समाज विधवा को जीते जागते प्रेत ´Ö ²Öß¤ü»Ö ¤üÖÖê Æü…

प्रतिभा, चंद्रा की तरह ही रोशन पर भी चरित्रहीन होने का आरोप लगाया गया था। लेखक कहते हैं, "औरत की कीमत ही क्या है इस समाज में? वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान। वह चाहे हरिजन हो या पठान, सब की एक नियति है।"[41] सांप्रदायिक दंगे हो या युध्द अथवा देश का बटवारा हो, सबसे ज्यादा मार्मिक पीडा बच्ची युवा प्रौढ या वृध्द नारी को ही होती है। यह केवल पूर्वांचल की नारी का ही दु:ख नहीं है, पूरे भारत की नारी का दु:ख है कि उसे उपेक्षा, अपमान और गुलामी का जीवन जीना पडता है। इसलिए उपन्यास का पात्र शोभू कहता है, "आज पूरी दुनिया में हिन्दुस्तान की बदनामी इसीलिए हो रही है कि वह अस्सी करोड जनता वाला देश अपनी चालीस करोड स्त्रियों को गुलाम की तरह ट्रीट करता है।"[42]

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह जी ने नारी की परंपरागत ही सही, व्यथा को बडी सशक्तता के साथ अभिव्यक्ति दी है। लेखक का यह बिल्कुल दावा नहीं है कि जो औरत उपन्यास में व्यक्त हुई है वही नारी की अंतिम और समग्र व्यथा है। लेखक जानते हैं

कि इससे परे भी नारी का दुःख है और काफी है। इसीलिए उपन्यास का नायक शिवेन्द्र अपने मित्र प्रेम स्वरुप से कहता है, "रिसर्चर यह तो सिर्फ एक छींटा है। कभी धार देखना हो तो मेरे साथ पुनः आना करमूमुरा में।"[43] छींटा ही इतना भयानक है तो धार कितनी भयानक और तीव्र होगी, हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

2.1.7. कुहरे में युध्द : (१९९३)

'कहरे में युध्द' शिवप्रसाद सिंह जी का सातवाँ उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन १९९३ ई. में हुआ है। इस उपन्यास के विषय में उपन्यासकार ने स्वयं लिखा है-"यह उपन्यास दो भगों में विभाजित है। पहले भाग का प्रस्तावित नाम 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' ही मुद्रित है। यह उपन्यास लगभग सवा तीन सौं पृष्ठों का सत्ताईस परिच्छेदों में विभाजित उपन्यास है।"

शिवप्रसाद सिंह के इस उपन्यास की भूमिका 'रुकिए आगे भग्नावशेष हैं जिसके माध्यम से लेखक ने ऐतिहासिक जैसे विभिन्न शीर्षको में बैठकर उपन्यासों की समीक्षा के प्रति असहमति प्रकट करते हुए यह व्यक्त किया है कि उपन्यास का उपजीव्य चाहे कोई भी हो उसका कथ्य सत्य पर आधारित होना चाहिए। कौन इस मौन सत्य को कितना अनावृत्त कर सका, परीक्षा इस तत्व की होनी चाहिए। वे लिखते हैं- "धेरा और इतिहास लगभग मिलते जुलते अभिप्राय वाले विरोधी शब्द लगते हों, पर इसमे शक नहीं कि हम जब भी भारतीय वातावरण में अतीत को देखना चाहते हैं। वर्तमान को पहचानने के लिए या इसके आगे भविष्य, की ओर बढने के लिए हमारा इतिहास एक मोटी पर्त जैसा लगता है, जो सत्य के मुख को हिरण्मय पात्र से ढकने की, ढके रखने की छदम प्रक्रिया छोडने को तैयार नहीं लगता। मुझे बार-बार प्रश्न पूछा जाता है कि 'नीला चाँद' की सफलता ने आपको लाचार बना रखा है कि आप आज के समसामयिक परिवेश से टकराना नहीं चाहते ! मैं अब कैसे समझाऊं कि यह प्रश्न कथा साहित्य को बाडे बन्दी में कैद रखने वाले अधकचरे समीक्षकों की लाचारी से उपजा है, जो हिन्दी कथा क्षेत्र में ग्रामीण, आंचलिक मनोवैज्ञानिक ऐतिहासिक आदि शीर्षकों में उपन्यास साहित्य को बाँटकर आसान समीक्षाएँ लिखने में लगे हुए हैं। ऐसे समीक्षकों में

अधिकांशतः मुदर्रिस है मेरे जैसे ही। मैं कृति साहित्यकार की मुहर अपने नाम के साथ नहीं लगाना चाहता, पर निवेदन जरुर करुंगा कि ये चौखटें तोडियें।"[44]

'नीला चाँद' के बाद शिवप्रसाद सिंह जी फिर एक बार मध्य युगीन इतिहास की ओर मुडते है। देश में बढ़ती सांप्रदायिकता लेखक की चिंता का विषय था। अतः उन्होंने सोचा कि " क्यों न इन दोनों समुदायों के संबंधों की तलाश की जाये।"[45] अतः 'नीला चाँद' के बाद उन्होंने पुनः एक बार पराक्रमी चंदेल वंश के इतिहास को उपन्यास लेखन के लिए चुना। चंदेल राजा त्रैलोक्स मल्ल का यह समय है। पर कहानी का नायक कोई चंदेल राजा नहीं, नायक हैं कायस्थ वंशोदभव आनंद वास्तव्य। आनंद वास्तव्य के पूर्वजों ने चंदेल वंश से ही अपना ईमान रखा था।

यह वह समय है जब जुझौती पर ग्वालियर का तुर्क सेनापति मलिक नुसरत तयासी का संकट मँडरा रहा था। वह अपनी विशाल फौंज लेकर जुझौती की ओर बढता है। उसकी सेना में जरीदा सवार भी है, जो खाने के लिए मोहताज है जो उनको जनता को लुटने का लालच दिखाया जाता है। इधर आनंद, राजा अजय हरि देव, अश्वपति मयूख, युवराज भोज तथा प्रजा का पूरा सहयोग प्राप्त कर तयासी को परास्त करता है यह लडाई कई दिनों तक चलती है। नुसरत तयासी की फौज भोली भाली तथा दीन अनाथ, लाचार जनता पर कहर ढोती है। बेतवा पार जरिया में शरणार्थियों के शिविर पर बीस हजार तुरुष्क अश्वारोही टूट पडते हैं। सारे घरों मे लूट खसोट मचती है। युवतियों पर बलात्कार किये जाते है। कइयों को तुरुष्क सेना गुलाम बनाकर ले जाती है। इससे पहले ही सुमेर परिहार ने आनंद की वाग्दता देविका का अपहरण कर तयासी को भेंट कर दी थी। इच्छा न होते हुए भी वाग्दता देविका को मजबुरन तयासी की पत्नी बनना पडता है।

आंनद को इस बात का अहसास हो जाता है कि हम तुरुष्कों से आमने सामने लडाई में जीत नही सकते आनंद युध्द के पुराने तरीको का त्याग करता है। जुझौती की पहाडियों, कंदराओं, घाटियों के भीतर तयासी को आने देता है और अचानक आक्रमण करता है। आनन्द हर बार तुरुष्क सेना पर नयी चाल और नये जोश के साथ आक्रमण करता है। तयासी का सिपहसालार यही सोचकर परेशान है कि, "वह (आनन्द) अपनी

एक चाल को दुहराना जानता ही नहीं। और हर चाल पहले से ज्यादा खतरनाक साबित ÆÖ ¸Æß Æ..."[46]

आनंद तयासी की सेना को दंतिका पर्वतमाला में घेर लेता है। उसी समय तुरुष्क सेना भुख प्यास से बेहाल थी ऐसी स्थिती में आनंद तीन तरफ से आक्रमण करता है तयासी के पास भागने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। पर भागते समय अपनी पीठ पर वाशेक की जहरीली तलवार से बना गहरा घाव भी प्रसाद के रुप में पाता है। जुझौती की प्रजा खुशियाँ मनाती हैं। आनंद जीत से खुश भी है और देविका के अपहरण से दु:खी भी है। अनंद की एक आँख में आनंद के आँसु हैं एक आँख में दु:खाश्रु Æ...

इतिहास के साथ-साथ लेखक ने तत्कालीन समाज, संस्कृति, राष्ट्रप्रेम को भी व्यक्त किया है। लडाइयों के वर्णन करने में लेखक ने बहुत कुशलता दिखायी है। पाठक आगे पढ़ता ही रहता है। शिवप्रसाद सिंह जी ने इतिहास मे प्रवेश करते समय भी वर्तमान को नहीं भूलते। यही रचना की सफलता है।

2.1.8 ×¤»»Öß ¤¸ Æ :

'दिल्ली दूर है' डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का आठवां उपन्यास है। यह उपन्यास सन १९९३ ई.में प्रकाशित हुआ। यह छह सौ से भी अधिक पृष्ठों का दीर्घकाय उपन्यास है, जिसमे इकतीस परिच्छेद हैं। यह उपन्यास "कुहरे में युध्द" उपन्यास का ही उत्तर खंड है। 'दिल्ली दूर हैं'। वास्तव मे ये दोनों उपन्यास 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' शीर्षक से लिखे गये उपन्यास के दो खंड हैं। 'कुहरे में युध्द का नायक आनंद ही यहाँ भी नायक Æ...

शिवप्रसाद सिंह जी ने 'जरा रुककर सोचिए' तथा 'तीन उध्दरण' शीर्षक के अंतर्गत भूमिका में कृति की आधारभूमि का स्पष्टीकरण दिया है। लेखक लिखता है- "प्रेम और मुहब्बत के बीच जिन्दा सर्प लेटा है। सद्भावना और सदाशयता के बीच व्यक्ति स्वार्थ की नंगी तलवारे आड़े रखी हैं। एक दूसरे के सम्बन्ध सूत्र कटते जा रहे हैं तो पूरक बनने की बात महज अखबरों में उछाली जा रही है। परम्परावलंबन के बिना

हम जी नहीं सकते पर इसे पुनः रचने के सपने देखे जा रहे हैं। आज इतनी दूरी और खाई आ गयी है कि एक दूसरे को शब्द सेतु भी जोड नहीं पा रहे है। ऐसे में क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम उन नीवों की जाँच कर लें। जिनको रखते वक्त शायद गारे की जगह माँस के लोथडे, खून में भिगोकर तहियाते गए थे। काम बुरा है क्योंकि खून और मानव शरीर के लोथडे इतने सस्ते नहीं हैं जैसा पहले की तरह आज भी हम माने बैठे हैं। मैं साहित्यकार हूँ कम से कम खुद तो मानता हूँ बाकी मानें या न मानें, मैं हूँ।"[47]

तयासी से जुझौती की रक्षा करने मे आनंद सफल हो जाने के बाद अपने दो साथी मंगलदेव और सोमन बारी के साथ तुर्क वेश धारण कर दिल्ली में प्रवेश करता है। आनंद फार्शी भाषा का आच्छा जानकार था। दिल्ली में आकर वह अब 'सफीउल्लाह बाशा' नाम धारण करता है। उसे देविका की तो खोज तो करनी ही थी, और भी बहुत सारे उद्देश्य को साथ लेकर आता है। संत नामदेव से उसने पूछा था, "मैं तो केवल यह जानना चाहता हूँ कि क्या राय पियौरा के जाने के पश्चात कभी यह दिल्ली हम हिन्दुस्तानी लोगों की बन पायेगी भी या नहीं? मैं हिन्दुओं की नही कह रहा हूँ, हिन्दुस्तानियों की बात है।"[48] इसी उद्देश्य से आनंद दिल्ली आकर जहाँ आरा सराय में रुकता है।

उस समय दिल्ली में काफी उथल पुथल मची थी। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद रजिया को दरकिनार कर रुकनुद्दीन को गद्दी पर बिठाया गया। पर वह ज्यादा दिन तक राजकारभार कर न पाया। रुकनुद्दीन मारा जाता है, रजिया सुलताना बन जाती हैं। रजिया के दरबार मे आनंद 'हिन्दू खान' बनकर स्थान पाता है। हिन्द की गद्दी पर एक स्त्री बैठी है, उसकी मदद करना चाहिए इस उद्देश्य से वह रजिया की मदद करता है, पर हाथ कुछ नहीं आता। इसी प्रकार कथासूत्रकार बल्बन तक चला जाता है।

इसी बीच देविका को खबर मिल जाती है कि आनंद दिल्ली में ही है, वह बडी विवश है, लाचार है, उससे मिल पाना असंभव ही था, पर एक बार देखने की चाह मन मे थी। अब देविका तयासी के बच्चे की माँ है, बच्चों को छोडकर वह आनंद के पास कैसे जा सकती थी? माँ थी वह ! आनंद देविका की मजबुरियों को समझता है। और दीप्ति के साथ शादी कर लेता है। दीप्ति से उसे एक लडका होता है नाम रखा था रुचिर।

चित्रकार हाशिम की बहन नज्मा आंनद से बहुत प्यार करती है। आनंद के लिए उसका त्याग अनन्य- साधारण है। दीप्ति और देविका के चरित्र भी पाठक के प्रशंसनीय रहे है। निराश, हताश, आंनद की मृत्यु बडी दु:खदायी है। आंनद के लिए दिल्ली दूर ही रही। देविका के शब्दों मे, "मै वाशेक की दिल्ली हूँ। मैं हमेशा 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' की जीती जागती मिसाल बनी रही हूँ।"[49] देविका शरीर से विवश थी, आत्मा से नहीं, मन से नहीं। जीते जी वह आनंद की नहीं बन पायी। पर मृत्यु तो दोनों को मिला सकती है। यही सोचकर वह आंनद की चिंता में समा जाती है। उपन्यास का यह अंत पाठकों की आँखों मे आँसू लाये बगैर नहीं रहता।

'दिल्ली दूर है' को हम ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं उन ऐतिहासिक उपन्यासों की तरह यह उपन्यास नहीं है। क्योंकि "इसकी रचना समसामयिक संदर्भो को नजर में रखते हुए की गई है। इसमें अतीत यात्रा के कदमों की आहट और वर्तमान की चीख के स्वर कारगर ढंग से मुखर है।"[50] राष्ट्रीय साम्प्रदायिकता जैसे विषयों पर लेखक ने अपने विचार व्यक्त किये है। इसीलिए डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद के शब्दों में, "यह राष्ट्रीय त्रासदी का महाकाव्यात्मक उपन्यास है।"[51]

2.1.9 वैश्वानर : (१९९६)

'वैश्वानर' यह शिवप्रसाद सिंह जी का अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन १९९६ ई. में हुआ है। शिवप्रसाद सिंह जी मृत्यु समय तक कुछ नये उपन्यास लिखने की योजनाएँ उनके मन में थी, परन्तु उनकी यह इच्छा अपूर्ण ही रह गयी। अत: वैश्वानर उनका अंतिम महाकात्यात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने वैदिक कालीन काशी का चित्रण किया है। आधुनिक काशी से लेकर वैदिक कालीन काशी तक उनका यह रचनात्मक प्रवास निश्चित रुप से अश्चर्यचकित करने ¾ÖÖ»ÖÖ Æî…

'वैश्वानर' याने अग्नितत्व। जीवन में अग्नितत्व का बड़ा महत्त्व है। इस उपन्यास का पात्र शौनक के शब्दों में "अगर यह अग्नितत्व न हो घोर तो कुछ भी न जन्मेगा, न तो पल्लवित-पुष्पित होगा सोमतत्व अन्न हैं रयि है, पर प्राण तो अग्नि के संस्पर्श बिना

पवन में बदल नहीं सकता, इसीलिए प्राण का स्त्रोत वैश्वानर है।"[52]

कथानक की शुरुआत चंद्रवंशीय शौनक काशी में धन्वंतरि की प्रतीक्ष कर रहे थे। उस समय काशी में भयंकर महामारी फैली थी। तक्मा रोग से काशीजन परेशान थे और इससे उन्हें केवल धन्वंतरि ही बचा सकते थे। धन्वंतरि को खबर मिलते ही वे अपने भाई कक्षीवान के साथ तथा भीमरथ, दिवोदास प्रतर्दन आदि परिवार के लोगों के साथ काशी में प्रवेश करते है। धन्वंतरि अपने काम में जुट जाते हैं। काशी के मुंडाजन और किरात जन को बचाने के लिए उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ी। क्योंकि वे औषधि पीने के लिए भी तैयार नहीं थे।

काशी नगरी को सबसे बड़ा खतरा कार्तवीर्य अर्जून से था। अतः युवराज प्रतर्दन के सामने यह सब से बडी समस्या थी। प्रतर्दन काशी की जनता को संघटित करता हैं। राम भार्गव, गुरु दत्तात्रेय, तथा बाबा धन्वंतरि की कृपा से वह काशी राज्य को एक सुरक्षित राज्य बनाता है। इस बीच उसके जीवन में बहुत सारे उतार चढाव आते हैं। गार्गी-याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ, अइय्या सिंधुजा का कृतघ्न व्यवहार, मदालसा से विवाह, बाबा धन्वंतरि की मृत्यु अलर्क का जन्म हैहयों का आक्रमण, असुरों की चढाई, जमदग्नि की मृत्यु, कार्तवीर्य अर्जुन का विनाश, ब्राम्हण क्षत्रिय संघर्ष, भीमरथ का निधन, क्षेमक असुर को दंड, सिंधुजा का अपहरण और माँ दृशद के कहने पर सिंधुजा को छुडाने के लिए आत्मबलिदान-बहुत कुछ है उपन्यास में। इन सारे प्रसंगों को बडे ही भावात्मक ढंग से शिवप्रसाद सिंहजी ने एक माला में पिरोया हैं। प्रतर्दन के मृत्यु समय अपनी पत्नी से कहा गया वचन, "अलर्क से बिना पूछे उसे कभी युध्द के लिए मत भेजना। नहीं तो - नहीं तो वह भी मेरे ही समान-मरे-गा।"[53] यह प्रसंग पाठकों की आँखों में आँसू ला देता है।

वैदिक काल पर किसी साहित्यिक रचना सृजन करना शिवप्रसाद सिंह जी के साहस दृढता और प्रशंसा का काम हैं। ऐसी रचनाओ में सामग्री संकलन की बहुत बडी समस्या होती है। इसलिए हिंदी साहित्य में ऐसे प्रयोग न के बराबर है। शिवप्रसाद सिंह जी का उपन्यास 'वैश्वानर' प्रयोगात्मक और रचनात्मक स्तर पर निश्चित रुप से प्रशंसनीय है।

2.2. कहानी साहित्य उद्भव और विकास (परिचय) :

प्रस्तावना :-

शिवप्रसाद सिंह स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य के प्रतिष्ठित कथा पुरुषों की प्रथम पंक्ति के रचनाकार हैं। कहानी लेखन से ही उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा। सन १९५१ में जब वे बी.ए.के छात्र के रुप में बिरला होस्टेल में रहते थे तब 'दादी माँ' कहानी लिखी थी। उस समय उन्हें १०४ डिग्री बुखार था और दादी माँ की याद आ रही थी। 'दादी माँ' कहानी अक्टूबर १९५१ के 'प्रतिक' में संपादक अज्ञेय की इस टिप्पणी के साथ छपी थी- "जिन्हें कहानी के लिए प्लाट नहीं मिलता वे 'दादी माँ' कहानी पढकर सीखें। मार्ग दर्शन के लिए यह कहानी उनके लिए उपयुक्त हैं।"[54]

शिवप्रसाद सिंह जी ने 'कर्मनाश की हार''उपधाईन मैया' 'आर पार की माला', संपेरा, 'बिंदा महाराज', 'अंधकूप (अंधकूप संपूर्ण कहानियाँ, भाग १'से), एक यात्रा सतह के नीचे' 'इन्हे भी इंतजार है', 'धारा', 'मुरदा सराय', (सभी 'एक यात्रा सतह के नीचे, संपूर्ण कहानियाँ भाग - २ से)', सुनो परीक्षित सुनो, 'अमृता', ('अमृता' कहानी संग्रहभाग -३ से)', आदि एक से बढकर एक ८५ कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ संख्यात्मकता की अपेक्षा गुणात्मकता में श्रेष्ठ हैं।

शिवप्रसाद सिंह जी के इन कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के मूल्यों और आदर्शों में तेजी से टकराहट पैदा हुई उसी का चित्रण शिवप्रसाद जी की कहानियों में है। उन्होंने अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज की व्यथा को सशक्तता के साथ अभिव्यक्त किया है। शिवप्रसाद सिंह जी के सभी कहानियों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है।

2.2.1 अंधकूप - १ सम्पूर्ण कहानियाँ -

2.2.1.1 ¬Ö¸üÖŸÖ»Ö :

प्रस्तुत कहानी में नैना के विवाह के कुछ दिन पश्चात उसके पति का बीमार होना एवं पश्चात् उसकी मृत्यु होना फिर लल्लन की शादी होने का वर्णन है। लल्लन की शादी के उपरान्त नैना का अपने सारे गहने दे देना, इस पर सास एवं लल्लन की

वधु का खुश होना उनकी स्वार्थपरता दिखाता है। वहीं उसके बाद एक दिन लल्लन के बच्चे को लेने से मना करने पर लल्लन की बहु एवं नैना में लड़ाई होना ही उस मुकदमें (बँटवारे के) का आधार बनता है। उसके बाद मुकदमें के दौरान एवं बाद में हरिमंगल का चरित्र खुलकर नैना के सामने आता है और वही पर घरातल कहानी का नाम सार्थक ÆÖŸÖ Æî…

2.2.1.2 ¤ü¤ß ´ÖÖ :

दादी माँ शीर्षक कहानी में लेखक दादी माँ ने व्यक्तिगत एवं स्वभावगत विशेषताओं का उल्लेख किया है। अपनी बीमारी के समय तमाम दवाओं के नाम गिनाने से लेकर दवाइयों बनाने तक फिर किशन भैया की शादी ठीक होने के कारण काम परोजन में उनकी व्यस्तता। रामी की चाची को दिये हुए कर्ज की माफी के साथ ही दस रुपये शादी में व्यय के लिए अतिरिक्त देना उसके व्यक्तित्व में दयाभाव को दर्शाते हैं। आज उन्हीं दादी की मृत्यु का समाचार सुनकर लेखक आवाक् रह जाता है।

२.२.१.३ बरगद का पेड़ :

लेखन ने विनय को एवं शीला को मुख्य पात्र रखते हुए बरगद का पेड़ वाले टीले में छिपी कहानी का वर्णन (राम सिंह सकरवार के) पुत्र वीरेन्द्र की कहानी कही है। जिसमें वीरेन्द्र ने अपनी पत्नी चम्पा के प्रिय तोते के रमेश-रमेश कहने पर उसकी वधु के बाद राजकुमारी ने गढ़ को मिट्टी में परिवर्तित हो जाने का जो शाप दिया था उसी के कारण आज वह बरगद वाला टीला भयावह लगता है। कोई भी शाम ढले वहाँ नही •ÖÖŸÖÖ… एक बार वह शीला के साथ वहाँ गया था और शीला एवं सीरी के झगड़े में उसने सीरी को मारा था, उसके बाद वह बीमार पड गया था। उसके काफी दिन बाद वह ठीक हो पाया था, शीला के साथ हुआ देखकर वह अत्यन्त दुखी होता है। यहीं से वह इस घटना को वीरेन्द्र सिंह वाली उस घटना से जोडता है।

२.२.१.४ हीरों की खोज :

इस कहानी में बोधन तिवारी अत्यन्त गरीबी में जीवनयापन करनेवाले ब्राम्हण थे, उनका दुर्भाग्य था की सूरत से भददे थे,। माँ आठ महीने की उम्र में पागल हो गयी थी। उनकी माँ के कारण ही उनकी एक आँख फूट गयी थी। गांव के ठाकुर के लडके के अन्याय के खिलाफ रामदीन के लिए लडते है, उससे उनकी न्यायप्रियता दिखाई देती है। बोधन तिवारी अपने कामों के कारण बहुत बदनाम है? परन्तु गांव में उनका चरित्र बहुत ही उज्वल है। गांव की चमार जाति की छब्बी बहुत ही खूबसूरत रुपगर्वित युवती है, लेकिन वह विधवा हैं, विधवा जीवन की पीडा को वह सह रही है। बडे पंडित का लडका एक रात को घर में घूस जाता है और छब्बी की इज्जत लूट लेता है। छब्बी की इज्जत लूटने का आरोप बोधन तिवारी पर लगाया जाता है। पंचायत बिठाई जाती है, पंचायत में छब्बी भी मौन रह जाती है। आरोप सिध्द माना जाता है। और बोधन तिवारी को जाति से बहिष्कृत किया जाता है। एक दिन छब्बी को पश्चाताप हो जाता है और वह बोधन तिवारी के पैर पकड लेती है, तिवारी ने भी बडे दिल से उसे माफ कर दिया और उसे किसी प्रकार की कमी हो तो बताने को कहा। उसी दिन से बोधन तिवारी महान सिध्द हो गए।

२.२.१.५ महुवे के फूल :

सत्ती (साविता) को यदि कोई व्यक्ति सत्ती कहता तो उसे बहुत चिढ आती थी। वह तो अपने को सविता ही बताती थी। चम्पा एक मात्र उसकी सहेली थी इन दोनों की दोस्ती इतनी घनिष्ठ थी कि सत्ती की माँ कभी कभी कहा करती थी कि यदि तुममें से एक पूरुष होता तो मैं दोनों की शादी करा देती। उसी गांव में मुसम्मात हरकल्ली रहा करती थी एवं उनका भतीजा हीरा, जिसकी उम्र २५-२६ साल होगी। वह हीरा भी बहुत ही मोटा एवं भदद्‌ा था। धनू भगत का लडका टीमल उसका दोस्त था जो कि बहुत बिगडा हुआ था, उसके कारण हीरा को भी गिनती बिगडे हुवे लडकों मे हुआ करती थी। एक शाम चम्पा को टीमल और हीराने छेड दिया, जिसकी वार्ता चम्पा ने अपनी सहेली सत्ती को सुनायी तो सत्ती ने एक योजना बनाई, जिसके तहत उसने हीरा को

सबक सिखाने सोची। उसी योजना के अनुसार हीरा को चम्पा से मिलाने की बात कही। तो हीरा उस रात सो न सका अगले दिन वह चम्पा के दरवाजे पर पहुँचा तो दोनों ने (चम्पा एवं सत्ती) योजना के अनुसार उसे टुटी चारपाई में आराम से बैठने को कहा वह जैसे ही बैठा धम्म से गिर पडा और दोनों सहेलियाँ हँस पडीं। पर परिस्थितियाँ कुछ ऐसी परिवर्तित हुई कि सत्ती की शादी हीरा से हो गयी। जैसे महुवे के फूल (सत्ती) की मादकता चली गयी हो।

२.२.१.६ नयी - पुरानी तस्वीरें :

कहानी में विपिन मे बाल्यअवस्था से ही बुआ के गुस्से से परिपूर्ण प्यार को देखा था। बुआ का स्वभाव ही कुछ ऐसा था यदि फूफा जी ने किसी का पक्ष लिया तो बुआ ने उसका विरोध किया, फूफा ने विरोध किया तो बुआ ने उसका पक्ष जरुर लिया। एक बार विपिन के हाथ से शीशा टूट गया तो पहले उन्होंने कुछ नहीं कहा परन्तु जैसे ही उन्होंने देखा कि फूफा जी भी उसे कुछ नहीं कर रहें हैं तो उन्होंने एक चाटा लगा दिया। बाद में उसे बुलाकर दुलारने लगी। आज वही बुआ जो की विपिन युवावस्था में उनके गांव महेशपूर जाता है तो वह उसे बिल्कुल ही बदली हुई दिखाई देती है। अब बुआ में न तो गौरी राऊत को डॉटने का तेवर है न ही विपिन को मारने का अब वह असहाय, लाचार सी लगती है, शायद इसका कारण उनकी पुत्रवधु सूरज की पत्नी है, अब तो बुआ जी का व्यक्तित्व, गहन, शान्त, गम्भीर एवं क्षमाशील बन चुका है।

२.२.१.७ कर्मनाश की हार :

प्रस्तुत कहानी में कर्मनाश नदी का नाम है। कर्मनाश नदी में भयंकर बाढ़ आई है। उसी समय गांव की एक विधवा फुलमत ने अवैध संतान को जन्म दिया। धनेसरा चाची बाढ का कारण फुलमत का पाप मानती है। भैरों पाण्डे गांव के पंडित थे। उन्ही का छोटा भाई   कुलदीप है। भैरो मे कुलदीप एवं फुलमत को बाल्टी लेते समय टकराते देख लिया। तभी से वे उन दोनों पर नजर रखने लगे थे। लेकिन एक दिन दोनों को एकान्त में मिलते देखा तो वह आग बबूला हो उठे। लज्जा एवं भय के कारण कुलदीप

ने घर छोड दिया। भैंरो ने कुलदीप को बहुत ढूँढा पर वह न मिला। गाँव के सडी गली रुठी-परंपराओं, अंधश्रध्दा को लेकर चलनेवाले लोगो ने तय किया की फुलमत एवं उसके बच्चे की बलि दी जाए। ताकि कर्मनाशा नदी की बाढ कम हो जाए, तभी भैंरो पाण्डे ने फुलमत के बच्चे को गोद में लेकर कहा यह मेरी बहू है एवं यह मेरे भाई का बेटा है। इसकी बलि कोई नहीं दे सकता है। भैंरो पाण्डे की दृढता देख कोई भी बलिदान नहीं दे पाता है एवं कर्मनाश की बाढ अपने आप कम हो जाती है।

2.2.1.8 ¤‰ú ¤Ö¤Ö :

इस कहानी में जयकरन और वीरेन्द्र गांव के बिगडैल लडके है, जिनका काम ही था शाम को नशेबाजी करके गांव की लडकियों को छेड़ना मात्र है। दुलारी जो गांव की पासी जाति की लडकी है एवं ठाकुर के बगीचे की रक्षक है उसे भी दोनों छेडते है। यह घटना देऊ दादा एवं रग्घू ने देख ली, लेकिन दुलारी ने इज्जत के डर से झुठ बोलकर जयकरन और वीरेन्द्र को बचाया जयकरन जैसे नीच आदमी को जब साँप ने काटा तो धन्नू भगत को बुलाने के लिए माघ की बर्फिली ठण्डक में गए। लौटकर वे स्वयं बीमार पड गए और जयकरन को केवल यह कहकर वे गिर गए कि अब तुम अच्छे हो जाओंगे।

2.2.1.9 ´Ö×•Ö»Ö †Ö¸ü ´ÖÖŸÖ :

इस कहानी में बौड़म गांव में रहने वाला बहुत ही कृशकाय गंदा काले रंग का व्यक्ति है, जो कि हमेशा निराशा में डूबा रहता है, शायद वह निराशा की व्याख्या है। गांव के सभी बाल युवा अबाल वृध्द एवं महिलाएँ उससे मजा लेते हैं, उनके लिए तो वह सिर्फ एक मनोरंजन था। लेकिन किसी को पता भी नहीं था कि वह क्या खाता है, क्या पीता है एवं कैसे जीता है। मिटठू (तानिया का कुत्ता) ही उसका एक मात्र दोस्त था। वही उसके साथ टीले पर रहता था। अचानक एक दिन मिटठू की मृत्यु हो जाती है, तब से वह अपनी कुटिया से बाहर ही निकलता नहीं अब वह कुछ खाता है न पीता है। गांव वाले खामोश रहकर अपनी गलती को मानते हैं कि उनमें से ही किसी ने कुत्ते को जहर दिया है, इसके बाद उसकी भेंट रामू नामक बालक से होती है। रामू की माँ

की मृत्यु हो जाती है। तबसे बौडम रामू को मिटठू कहकर बुलाता है। रामू को भली भाँति स्नेह करते हुए उसकी शादी ब्याह करता है, रामू की शादी के दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो जाती है, जैसे उसको मंजिल मिल गयी हो।

२.२.१.१० मास्टर सुखलाल :

लेखक ने आंगन में घुसते ही मुन्नी के रोने का कारण पूछा तो किशोर ने बीच में ही बताया कि उनके मास्टर सुखलाल की बदली की बिदाई समारोह का था। एक दिन लेखक स्कूल चले जाते है। मास्टर सुखलाल कक्षा तीन के बच्चें को पढा रहे थे। उपर भारत का नक्शा टंगा हुआ था। लेकिन मोती खडा होकर गोदावरी नहीं बता पाया सुखलाल को नौटंकी का बहुत शौक था, एक बार उन्होंने नाटक भी खेला जो भक्त प्रहलाद एवं हिरण्यकश्यप का था। मास्टर सुखलाल आर्ट के बहुत बड़े भक्त थे। लेखक मास्टर सुखलाल की बदली देखने के लिए स्कुल में भी गये। वहाँ जाने पर यह पता चलता है कि सुखलाल की बदली नहीं हुई उन्होंने "पिछले हड़ताल में शरीक थे। इन्होंने माफी नहीं माँगी इसी से बर्खास्त कर दिए गये"[55] तब न जाने लेखक के मन में बहिरु मास्टर के प्रति अनजानी श्रध्दा का भाव उमड आया। मुन्नी की तरह ही मेरा चित्त भी किसी उत्सव और तमाशे के लिए मचल पडा। सामने पडोसिन खडी एक टक मास्टर को जाते देख रही थी। और वह लेखक से पूछती है 'क्योंकि बाबू बहिरु मास्टर सदा के लिए चले गए।

२.२.१.११ पोशाक की आत्मा :

लेखक इस कहानी में शहर के डाक्टर के कल्चरल-क्लब के जलसे में भाषण देते समय पश्चिमी सभ्यता से अपनी चिढ को उजागर कर देता है। एक शाम जब मैं डाक्टर के पास गया हुआ था तो मैंने देखा कि डाक्टर के पैरों को पकडकर शीला रो रही थी जो कि उससे शादी का दबाव दे रही है, परन्तु वह तैयार नहीं है, उसके लिए वह जेनी नामक युवती की कहानी सुनाता है, जिसकी वह मदद करता है,और धीर धीरे जेनी एवं डाक्टर एक दूसरें की तरफ खिंचते चले जाते हैं। एक दिन जेनी शादी की बात करती

है तो वह उसको भी नकार देता है। लेकिन वह कुसुम नामक लडकी की चालाकी एवं कारगुजारी में फँस गया और शादी के लिए उसे बाध्य होना पड़ता है।

२.२.१.१२. चितकबरी :

चितकबरी उस बकरी की कहानी है जो भोला के घर तो फलती है परन्तु रोपन के घर पर आकर बकरी का मृत्यु को प्राप्त होना अत्यन्त दुखद घटना है। जिससे कि रोपन एवं उसका परिवार टूट जाता है। जबकि चितकबरी के लिए उन्होंने अपना दीनधर्म सब छोड दिया था।

2.2.1.13 उसकी भी चिटठ्ी आई थी :-

इस कहानी में विमल एक साधारण डाकिया है जो कि चिट्टियों को पूरे क्षेत्र में पैदल ही बाँटता चला जाता है। प्रीती प्रिंसिपल सूद की लडकी है, जो दिन भर डाकिए का इंतजार करती रहती है। कुछ लोग विमलसिंह के साथ इज्जत से पेश आते हैं तो कुछ लोग विमलसिंह देर से आने का ताना देते हैं। एक दिन पोस्टरमास्टर ने जब डाक खोली, तो उसने एक लिफाफा विमल की ओर बढाया, "विमल ठाकुर अरे भाई ये तो, तुम्हारी बीवी की चिट्टी है।"[56] विमल सिंह ने अपने बीवी की चिट्टी अभी पढी नहीं थी। विमल के मन में शंकाओं का महासागर उमड आता है। दिन भर चिटियाँ बाँटते रहने के बाद जब वह खाली हुआ तब तक ठण्डी शाम आ गई थी तब उसने मुट्टियाँ बाँधकर सीने से चिपका दिया, जहाँ उसकी जेब में चिट्टी पड़ी थी, जिसे अब वह डेरे पर पढेगा।

२.२.१.१४ मुर्गे ने बाँग दी :

इस कहानी में मंगरू लोहार अपने पुश्तैनी काम को अपनाता हुआ लोहारी का काम करता है। मंगरू गांव के ठाकुर एवं अन्य किसानों के हल बनाने एवं उनकी मरम्मत का काम करता रहता था, यही उसकी जीविका थी। सुबह-सुबह ईस्माईल का मुर्गा बाँग देता तो उसकी आँख खुल जाती है, तो वह अपना काम शुरु कर देता है और दिन भर कडी मेहनत के बाद जब वह किसी से मजदूरी माँगता है, तो लोग फसल पर देने की

बात करते है। यहाँ तक कि ठाकुर भी लोगों जैसी ही बात करने लगता है। वह निराश होकर घर लौटता है और रात्रि के विश्राम में अपने आँसुओ के माध्यम से सारा गुबार निकाल दिया। फिर सुबह मुर्गे की बाँग से अपना काम शुरु करता है।

२.२.१.१५ उपधाइन मैया :

'उपधाइन मैया' कहानी में उपधाइन मैया पात्र के माध्यम से कहानीकार ने एक ऐसी विधवा महिला की कहानी को कहा है जो कि अत्यन्त दु:ख में भी अपनी सही राह से विचलित न होकर सदैव दूसरों की सेवा के लिए तत्पर रहती है। चाहे वह किसी का बच्चा बीमार हो या किसी के यहाँ मृत्यु हो गई हो सब की निस्वार्थ सेवा करती रहती है। इसके बाद भी यह समाज अलग-अलग आरोप लगाकर कलंकित करता है। ठाकुर दान में दी हुई जमीन भी जोत लेता है, तब भी वह विचलित नहीं होती और सेवा के लिए तत्पर रहती है। जो उपधाइन से उपधाइन मैया बन जाती है।

२.२.१.१६ आर-पार की माला :

मटरु नट गांव के ठाकुर की कृपा के कारण जमीन पाकर गुजर बसर करता है। अपनी पुत्री नीरु के साथ गांव के किनारे बनी झोपडी में रहता है। नीरु की माँ बचपन में मर गयी थी। जुम्मन मटरु का पुराना मित्र था। मटरु ही अब नीरु का माँ बाप सब कुछ था। जुम्मन का लड़का रज्जब, जिसको बचपन में मोगल कहा करती थी। जुम्मन आज तक मटरु के यहाँ आ रहा था। जुम्मन अपने कुनबे के साथ आ जाता है और नीरु को देख लेता है तो रज्जब के लिए मांग लेता है। दोनों की सगाई हो जाती है, सगुण के रुप में जुम्मन मटरु कों दो सौ रुपये दे देता है। कंजड समाज में लडकी के पिता को दहेज देकर शादी तय की जाती है, जैसे कि रज्जब और नीरु, परन्तु उसी समय ठाकुर की हवेली से चोरी के इल्जाम में जुम्मन और रज्जब जेल चले गए। मटरु पेट की आग बुझाने के लिए अपनी जवान बेटी को ठाकुर की हवेली पर भेज देता है। ठाकुर ने नीरु को देखकर पाँच रुपये दिये नीरु घर आकर रोती रही। इसी बीच जुम्मन और रज्जब जेल से छूटकर मटरु के पास नीरु को ले जाने के लिए आ जाते है। मटरु साफ

इन्कार कर देता है। नीरु रज्जब को सब कहानी सुनाती है। तब रज्जब बहुत दु:खी हो जाता है। फिर भी वह नीरु को अपना जीवन साथी बनाना चाहता है। लेकिन मटरु को ठाकुर ने बेच लिया था इसलिए वह अपनी जवान बेटी को जुम्मन के साथ भेजता नहीं, शिवप्रसाद जी कहना चाहते है की, मटरु नीरु को जुम्मन के साथ विदा करता तो वह भूखा मरता, अंत में जुम्मन मटरु को पैसों की मांग करता है तो ठाकुर पैसे दे देते हैं आर नीरु को हवेली में रख लेते हैं।

२.२.१.१७ कबूतरों का अड्डा :

प्रस्तुत कहानी में हरी भैया और राय जी मित्र हैं। हरी भैया का मकान आज जो सुनसान है, कभी आबाद था। यूँ तो मैंने रायजी, हरी भाई को अकेले ही देखा था, परन्तु कुछ दिनों बाद मैंने सुना कि हरी भाई ने शादी कर ली है। हरी भाई को एक बेटा हुआ जिसका नाम राजीव था। पुत्र प्राप्ति के कुछ दिन बाद हरी भाई चल बसे। देवला भाभी और राजीव अकेले रह गये। राजीव को कबूतरों का शौक उसकी एक सबसे अलग आदत बनी थी। राजीव नन्हें शिशु कबूतरों को उडाने की जिद्द कर रहा था। राजीव इसीबीच बहुत बिगड गया था। घर पर वह महिनों नहीं आता था। शहर में क्या करता था इसके बारे में किसी को जानकारी नहीं थी। सुना था जलसे में भाषण भी देता था। लेकिन राजीव के महीनों घर न आने से देवला भाभी काफी परेशान थी। उन्होंने राय जी को समझाने के लिए कहा लेकिन उस पर राय जी के बातों का असर नहीं हुआ और इसी अंतराल में देवला भाभी चल बसी। आज वह घर कबूतरों का असल में अड्डा बन चुका था। लेकिन देवला भाभी का हाड-माँस का अड्डा जो फिर नहीं बनाया जा सकता है।

२.२.१.१८ उस दिन तारीख थी :

देवी सिंह गांव के साधारण किसान परिवार के थे। बहुत ही मेहनत से धान की बोआई की थी, परन्तु फसल ठाकुर देवनाथ ने काटी। वही मुकदमा बनारस के कचहरी में चल रहा था। उसी मुकदमे की आज तारीख थी। अनपढ आदमी कौन-कौन सी समस्याओं का सामना करना पडता है, उसी के साथ कचहरी के क्लार्क, सिपाही,

वकील किस तरह से आर्थिक शोषण करते यह देवी सिंह के माध्यम से पाठक के सामने लाने का प्रयास किया है। तारीख के लिए देवी सिंह जा रहे थे टिकट लेकर मुश्किल से गाडी पर चढे। बनारस पहुँचे और देखा कि मुख्तार नये मुवक्किल से बातचीत कर रहा है। बहुत देर बाद वकील से मुलाखत हो जाती है। टाइप बाबू कुछ पैसे लेता है, वकील भी पैसे लेता है। शिवप्रसाद सिंह जी ने कचहरी का जीता जागता चित्रण प्रस्तुत किया है। देवी सिंह को अगली तारीख मिली। इस बार की फीस देकर हताश, निराश देवी ØÃÖÆü "Ö»Ö ¯Ö›üÖ…

२.२.१.१९ प्रायश्चित :

इस कहानी में रमेश और रंजना एक दूसरे के प्रति समर्पित पति-पत्नी थे। रमेश कालेज में प्रोफेसर था, और वह शहर के बाहर प्रोफेसर एवं उच्चस्थ अधिकारियों की नई बस्ती में रहते थे। रमेश अपने परिवार में ही हमेशा रहता था। कभी भी घर से बाहर दोस्तो में नहीं जाता था। रमेश - रंजना एवं पुत्र विनय के साथ खाली समय में खेला करते थे। यह बात रमेश के मित्रों को हमेशा खटकती भी थी कि वह कालेज और घर के अलावा मित्रों को तो समय ही नहीं देता। एक दिन रंजना को बुखार आया, बुखार मलेरिया का था, अतः इसी तरह बुखार आता रहा। उसी दौरान रमेश डाक्टर को ले आया और रंजना ठीक हो गयी। वह डाक्टर भी कभी कभार आने जाने लगा गप्पे मारने लगा, रंजना का भी समय निकलता जाता था। रंजना भी उससे मिलने लगी। चर्चा पूरे मोहल्ले में हो गयी कि रंजना व्यभिचारिणी है। रमेश रंजना को बिना डाटे ही विनय को लेकर घर छोड देता है। रंजना अभी भी यह समझ नहीं पाती कि यह गलती उसकी है या नियति की या रमेश की रंजना अब प्रायश्चित कर रही है।

2.2.1.20 ¯ÖÖ¯Ö•ÖßÞÖß :

इस कहानी में बब्बर मुसहर बदलू मुसहर का बाप है। जो चोरी चमारी करता लेकिन था पहलवान। उसका रोब भी था, इलाके के चोर बदमाश भी उससे डरते थे। टूरी जो बदलू मुसहर की बेटी है जिसे उसकी पत्नी ने मरते समय उसकी गोद मे

डालकर मर जाती है। आज टूरी बीमार है और रोकर अपने पिता से कह रही है कि बब्बू चोरी मत करना। बदलू आज यह सुनकर हैरान था। बब्बर को मारने की याद आज बदलू को आ रही है। बब्बर को बचाने के लिए जब बदलू कूदा तो बब्बर ने उसे क्रोध से झटक दिया परन्तु बदलू ने आज ठेकेदार से अपनी पुत्री के इलाज के लिए सिर्फ तीन दिन के बारह आने पैसे माँगे थे किन्तु उसके बदले मिली मार ठीक उसी प्रकार आज टूरी अपने बाप को बचाने कूदी थी। परन्तु बदलू ने बब्बर की भाँति उसे झटक दिया और रोने लगा जब कि वह बब्बर के मरने पर न रोया था।

2.2.1.21 ^¯ÖÆÖ¸¦:

इस कहानी में गुलाबी जात की चमारिन विधवा है जो ठाकुर की हवेली में नौकरानी है। ठाकुर गांव का सरपंच है एवं न्यायप्रिय भी है, परन्तु दूसरों की नजर में। ठाकुर अक्सर ठकुराइन को मारते-पीटते थे। परन्तु ठकुराइन सिसकती थी, रोती कभी नहीं थी। लेकिन यह किसी को भी पता नहीं लगता था। गाँव का कोई भी छोकरा किसी महिला की तरफ आँख उठाकर नहीं देख सकता था। जो देखता था उसे ठाकुर की पंचायत में कोडे बरसते थे। कल खिचडी है, क्या लोगी गुलाबी कहकर ठाकुर ने गुलाबी से छेडखानी की। गुलाबी ठाकुर के इस व्यवहार के कारण गुलाबी सहम जाती है। रात जाडा था एवं कुहरा पड रहा था। गुलाबी अपने साथी बच्चन के साथ मेले में जाने को उत्सुक थी। बच्चन गुलाबी से कहता है मैं तुम्हारा दो बोझ उठा लाऊंगा, तुम आज बोझ उठाने मत चलो। बच्चन ठाकुर का काम छोड़कर जाने को कहता था, गुलाबी ने अपनी कसम दिलाकर उसे जाने से रोका। दूसरे दिन ठाकुर ने बेबात बच्चन को हंटर से मारा। गुलाबी देख रही थी। दोनों ने तय किया कि ठाकूर का घर छोड देंगे, कहीं भी मेहनत करके रहेंगे। इतने में ठाकुर वहीं आ जाता है और गुलाबी से कहता है "क्यों गुलाबी कुछ काम-धाम की सुध भी है या मोहब्बत का नाटक ही होता रहेगा।"[57] गुलाबी ठाकुर से कहती है चले जाओ यहाँ से हम तुम्हारे नौकर नहीं है, गुलाबी का यह कहना अन्याय के खिलाफ उठ खडे हो जाना है। गुलाबी को उपहार स्वरुप दी गयी साडी वापस कर दी और उसे ठकुराइन को देने के लिए कहा और ठाकुर को बहुत भलाबुरा कहा।

२.२.१.२२ वशीकरण :

यह कहानी सास-बहू के चिर-परिचित रिश्ते नींव बनाकर लिखी गयी है। यह कहानी अंत में नया मोड लाती है। भाई की शादी को अभी कुछ माह ही बीते थे भाभी मायके में रहने लगी थी। इसका प्रमुख कारण कुछ घरेलू गलत फहमियाँ थी। मैं (देवर) शहर से सामान लेकर पहुँचा तो मित्रों ने बड़ी बुरी भाषा में बताया कि वे तो चली गयी। मै चला आया परीक्षा समाप्ति के दिन भाई का पत्र मिला जिसमे उसने मुझे बुलाया था। मैं पहूँचा और वहाँ रुककर अनुभव किया कि एक वातावरण की कमी गलत फहमियों से माँ एवं मिन्नी के मन में भी भाभी के प्रति खराब प्रतिमा थी। आज जब भाभी मेरे साथ दुबारा घर आयी तो सारी गलत फहमियाँ दूर हो गई एवं वशीकरण शब्द का प्रयोग मेरे लिए सिध्द हुआ कभी मेरी भाभी के लिए हुआ करता था।

2.2.1.23 ¿ÖÆß¤¤ ×¤¤¾ÖÃÖ :

इस कहानी का कथानक अंग्रेजो के जमाने का है। स्टेशन पर गाडी आते ही एक सैनिक बोगी आयी और फिर पटापट गोलियाँ चली। प्लेटफार्म पर कई लाशे मछली की तरह तडफडाने लगीं। हरी किसी तरह से बच निकलता है। सारे गांव के लोग हरी के कामों से अन्दर ही अन्दर भयग्रस्त है। भयग्रस्त नहीं है तो डेवल देवीचन्द। देवीचन्द्र क्रांतीकारी प्रवृत्ति का था। देवीचन्द काफी दिलचस्प आदमी था। परन्तु उस पर मालगोदाम लूटने का आरोप लगाया गया था। देवीचन्द को पकडने का वारण्ट भी निकल चुका था। सेठ गिरधरदास भी क्रांन्तिकारी प्रवृत्ति के थे परन्तु वे बाद में पुलिस के गवाह बने। देवीचन्द के खिलाफ गवाही दी और देवीचन्द को राजद्रोह लूटपाट आदि के अपराध के लिए पाँच साल की सख्त सजा हुई। आज शहीद दिवस के जुलूस में सबसे आगे कस्बे के प्रसिध्द समाजसेवी गिरधरदास थे, जिसके कारण एक सच्चे क्रान्तिकारी को सजा मिल गयी है। सबसे पीछे धूल के गुबार में खोये देवीचन्द। यही थी असल क्रान्तिकारियों की पहचान।

२.२.१.२४ केवडे का फूल :

इस कहानी में अनिता अपने मामा के यहाँ पढाई के लिए रहती है। मामा के यहाँ का स्कूल अच्छा था। जिस दिन अनिता मामा के गाँव से आनेवाली थी सबके ओठों पर एक ही नाम था अनिता। आने के बाद वह अपने को बहुत दिनोंतक सामान्य न रख सकी। कुछ सालों के बाद अनिता की शादी अत्यधिक संपन्न परिवार में हुई पर जिसके साथ शादी हुई वह लडका आदतो से अत्यन्त बिगडा था, जिसके कारण अनिता हमेशा दु:खी रहती थी। अनिता मैके चली आती है। मैके आने का कारण किसी अन्य को मालुम न था। अनिता हमेशा उदास रहती थी। सरोज इसका कारण जानना चाहता था। गांव में अनिता के पिताजी की बेईज्जती होने लगी थी। शादी शुदा बेटी घर में रहे तो पिता गांव मे सीना तानकर चल नही सकता। सरोज अनिता के दु:ख की वजह जान लेता है अनिता कहती है "वह पुरुष नही है सरोज, जो अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा भी नहीं करत सकता वह मुझे बेचना चाहता है बदलना चाहता है फूटे बर्तन की तरह"[58] अनिता के पति ने पत्र में लिखा था- तुम्हें मैं पैरो की जूती से अधिक कुछ नहीं समझता। तुम्हे वह सब करना पडेगा, जो मैं कहुँगा। तुम्हें अपने को मेरे समाज के लिए बदलना होगा, तुम मेरी ही नहीं, मेरे मित्रों तक के लिए मोरंजन का साधन हो, फिर भी अनिता उस नरक-कुण्ड में पिता की इज्जत और समाज के बन्धन के नाम पर चली गयी। सरोज अत्यन्त दु:खी हुई। केवडे का फूल जो कि अत्यन्त मोहक सुगन्ध वाला था। एवं अनिता को पसंद भी था उसे केवल कुएँ में डालकर पानी सुगन्धित किया गया।

2.2.1.25 Ãö¯ö¸ö :

इस कहानी में जमींदार ठाकुर के हवस की शिकार के कारण कम्मो आत्महत्या कर लेती है। इसका दर्दनाक वर्णन इस कहानी में किया गया है। बक्कस की लडकी कम्मो की शादी नबी के लडके बशीर से कर दी थी। जैसी कम्मों वैसा ही बशीर, दोनों का जोडा नटों के कुनबे में देवी-देवता की तरह पूजा जाता। नटों की लडकी, अवैध हमल गिराने के लिए छिपे-लुके अफीम का रोजगार करने वाली युवती औरतों के सामने दिल खोलकर भद्दे मजाक नटों की औरतें करती है। बशीर ने मन मे ठान लिया कि

बदला तो लेंगे ही और एक साल के बाद ठाकुर के परिवार का नाश करने की पूरी-उम्मीद के साथ फिर इसी गांव को वापस लौटे। बक्कस कुनबा गांव में आया तो पुरुषोत्तम पांडे उन्हे धमकाकर भगा देते है। साँप छोडने के लिए बक्कास ने बशीर से कहा। बशीर ने साँप को छोडा भी परन्तु ठाकुर के पुत्र एवं पत्नी को देखकर उनका स्नेह देखकर बशीर साँप को वापस बुला लेता है एवं बशीर की मृत्यु होती है।

२.२.१.२६ भग्न प्राचीर :

इस कहानी में महाराज महेन्द्र ने राजकुमारी से नया विवाह किया। इस विवाह से सम्बन्धित एक ताम्रपत्र कौशाम्बी की खुदाई के दौरान मिला, जिसे डाक्टर गुप्ता ने संभालकर रखा। यह पत्र वह अपने घर आयी मिस गोयल को सुना रहे थे एवं उसी पत्र पर चर्चा भी कर रहे थे। तभी नौकर ने भोजन के लिए आवाज दी। भोजन के लिए आवाज सुनकर मिस गोयल जाने लगी तभी उन्होंने शाम को फिर मिस गोयल को बुलाया शाम को मिस गोयल डाक्टर साहब सुशीला टहलते-टहलते जौहरी की दुकान के सामने से निकले। जौहरी से डाक्टर साहब की पहचान थी। जौहरी ने उनको बुलाया और एक अति सुन्दर हार दिखाया परन्तु वह तीनों उसे लेने का टाल दिया। लेकिन इसी बीच जौहरी ने मिस गोयल की आतुरता को जान लिया। डाक्टर ने उसे पत्नी से बिना बताये खरीदा एवं मिस गोयल को उपहार के रुप में दे दिया। यह बात सुशिला को मिस गोयल के गले में हार देखकर मालूम हुआ। सुशिला के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। सुशिला अब नौकरी करने लगी है, और स्वाभिमान के सथ जिंदगी जीने लगी। नौकरी की बात पर डाक्टर के दिमाग में ताम्रपत्र वाली राजकुमारी के प्रति आदरभाव जाग उठा और वे स्तब्ध रह गए।

२.२.१.२७ हाथ का दाग :

इस कहानी में रेखा को विपिन बनारस से एक पत्र लिखता है। वह पत्र उस धर्मशाले की घटनाओं के विषय में लिखता है, जिसमे वह रहता था। चौकीदार के अनुसार उसके सामने वाले मकान में एक तरुणी रहती है जो पेशेवर है। विपिन ने भी

देखा और उस औरत से मिला भी। परन्तु उसने उसे बिना काम के पाँच रुपये दिये और और उसकी हथेली का काला दाग देख, लिया। उसी धर्मशाला में बगल में जो महाशय अपनी कामधेनु पत्नी के साथ रुके थे वे विपिन के पास आ गये और वार्तालाप होने लगा। दूसरे दिन सुबह वे फिर आये और बात हस्तरेखा पर अटक गयी। उसी बीच मैं उनका हाथ देख रहा था कि उनकी पत्नी आ गयी तभी उन्होंने पत्नी का हाथ मेरे हाथ में दे दिया, जैसे ही मैंने वह हाथ देखा तो काला दाग दिखा। यह जानते ही कि मैंने वह दाग देख लिया है वह स्त्री झेंपकर कमरे से बाहर भागी। ऐसे अकर्मण्य पति जो काम-धाम से वास्ता नहीं रखते एवं उनकी पत्नियाँ कामधेनु हैं तो वे हजारों गन्दे काम ही करती होंगी।

2.2.1.28 ¸ÿÖß :

इस कहानी का सम्पूर्ण वातावरण गंगा नदी के किनारे का है। बाढ के कारण नुकसान एवं नदी के फायदे दोनों ही इस क्षेत्र में मौजूद हैं, सुमेरु मल्लाह गांव के चौधरी हैं और अक्सर पंचायत करने अन्य गाँवो में भी जाते है। सुमेर मल्लाह ने अपने बडे बेटे की शादी गंगा के साथ की। शुरुआत में वह ठीक-ठाक रही, परन्तु उसको कोई सन्तान न होने से सारी बुरी बातों का ठीकरा उसी के माथे फोडा जाता रहा। इस सम्पूर्ण महाभारत को पडोसी देवर भाभी अक्सर सुना करते थे। बहुत दु:ख झेलने के बाद वह माँ के घर चली गयी। मायके में भी उसे बाधिन एवं माँ दोनों ने बाँझ कहकर दुत्कार दिया। तब वह गंगा मैया के पास गई और गंगा मैया ने शरण दी। एक साल बाद जब देवर घर आया, तो उसने देखा कि नदी की रेती में झोपडी में गंगा निवास करती है और उसी के साथ उसका परिवार भी। आज वह गंगा मैया की कृपा से गर्भधारण कर चुकी Æ…

2.2.1.29 ²ÖÊÖ :

इस कहानी में सुभागी की शादी देवा गन्हरपा के साथ हुई थी। उस गांव में ग्यारह-बारह घर गन्हरपों के थे। परन्तु उनके घरों में ज्यादातर गाना बजाना ही होता

था कोई बडा गायक नहीं बना, इससे उनको रोजी रोटी मिलती है। सुभागी देवा के मरने के बाद अपनी नवजात पुत्री तारा को लेकर शहर आ जाती है। तारा चौदह साल की हो जाती है तब तक वह शहर में रही किन्तु मजबुरी के कारण वह फिर गांव वापस आ जाती है। शहर में गाने नाचने वाले पेशेवरों को बाहर निकाला जा रहा था। गांव आने के बाद सुभागी ने झुम्मन दादा की मदद से पुराने घर को ठीक-ठाक किया और घर में रहने लगी। सुभागी हर रोज गंगा स्नान करने जाती थी साथ में तारा भी चली जाती कभी मन न हुआ तो घर में बैठ जाती, माँ स्नान करके आने तक घर का काम करती। घूरे पंडित जमींदार केशोबाबू के खास आदमी थे। केशोबाबू का लडका कामता है। सुभागी भजन किर्तन को भी जाती थी। देवत्थानी एकादशी को मंदिर में दर्शन के दौरान महंत रामचन्द्र के भजन गाने की घटना के समय ही केशो बाबू और कामता के साथ तारा एवं सुभागी के रुप का केशो बाबू दीवाना हो जाते है। केशो बाबू सुभागी से कहता भी है "मैं बडा परेशान हूँ जब से तुम्हें देखा है, नींद हराम हो गई है, कल रात मैं सो न सका। मैं तुम्हें परेशान नहीं करुंगा मेरी सारी सम्पत्ति, जायदाद, सब तुम्हारी ÆÉü.ŸÖãÖ•ÖÖê□úÆÉêÖß ´ÖÃÖ¯ÖÖ□ú¡ üÖê□úÖêŸÖ¯ÖÖÕüÆÉê"[59] सुभागी ने तारा के जीवन को नरक से बचाने के लिए केशो बाबू को दुत्कारा जिसका बदला केशो बाबू ने तारा की इज्जत से खेलकर लिया। कामता भी अपने पिता की तरह सुभागी के प्यार में पागल हो जाता है। माँ बाप सभी को सुभागी के लिए छोड देता है। झुम्मन दादा के प्रयासो के कारण तारा की शादी तय हो जाती है। आज घूरे पंडित सुभागी से कामता को छोडने की बात करने आये थे। केशो बाबू भी आ जाते है। केशो बाबू कामता को छोडने के लिए सुभागी से सौदा करने आते लेकिन खाली हाथ वापस लौट जाते है। सुभागी तारा की बात केशो बाबू से कहती है, और केशो बाबू से खरी खोटी सुनाती है। तारा को पुत्र हुआ था इस खबर से सुभागी अत्यधिक प्रसन्न है एवं कामता के आने पर भी वह दरवाजा नहीं खोलती। कामता चला गया सुभागी को पल्ले के पीछे छोड कर वह देख न सका कि उसके खारे आँसुओं से सने होठों पर कितनी पवित्र मुस्कान थी।

२.२.१.३० **माटी की औलाद :**

इस कहानी का प्रमुख पात्र टीमल कुम्हार है, जो मिट्टी के बर्तन बनाकर उन्हे सुखाकर बेचता है। तिन्नी उसकी लडकी है एवं सरजू लडका है। सरजू और तिन्नी की माँ की मृत्यु हो जाती है। सरजू की माँ ने मृत्यु समय टीमल के हाथों में सरजू को सौंपते हुए वचन लिया था कि सरजू को कोई कष्ट न होने पाए। टीमल ने भी वचन के मुताबिक कोई कसर नहीं छोडी थी। यहाँ तक कि मिडिल की पढाई की जिद को भी पूरा किया। लेकिन सरजू अपने कमजोर दिमाग की वजह से फेल हो गया। टीमल फेल होने के बाद भी अपने पिता के कामों मे कोई हाथ नहीं बटाता टीमल और तिन्नी दिन भर माटी के बर्तन बनाकर उसे सुखाते रहते थे। बाप-बेटों में अक्सर कहा सनी होती थी। टीमल कहता भी है कि "हम माटी की औलाद है, माटी की; कष्ट, दु:ख भले सहें, हम कभी मिट नहीं सकते।"[60] टीमल अपना पुरखों से चला आ रहा धंधा छोडने के लिए तैयार नहीं है और नयी पीढी का सरजू उसे अपनाने के लिए तैयार नहीं है। एक सूखे दिन में बारिस को देखकर जब उसने अपने बेटे को पुकरा तब सरजू ने मना कर दिया और दोनों में फिर बहस शुरु हो गयी। टीमल ने तिन्नी से हुक्का माँगा और पीने लगा। खाना खाते समय फिर बाप-बेटे में झगडा हुआ। सरजू ने खाना नहीं खाया और उसी दिन सुबह वह घर से निकल गया और चार-पाँच महीने बाहर रहकर खाली हाथ वापस आया। फिर बाप-बेटे में कहा सुनी हुई, लेकिन इस बार सरजू कुछ हाथ बँटाने लगा। बरसात के बाद एक दिन गांव के जमींदार का सीरवाह झगडू आया और हवेली में आने के लिए कह गया। हवेली में जाने के बाद सब काम जमींदार ने टिमल को बताये। सरजू भी साथ में था जमींदार टीमल से पूछ पड़े कौन है। तब टीमल ने जबर्दस्ती पालागी करायी। दोनों बाप-बेटे लौट आये और सब बताये हुए काम पूरा करके जमींदार के घर पहुँचे तो सामान में जमींदार की बहुओं ने तमाम गलत कमियाँ भी बताई, इतना दिल लगाकर काम किया फिर भी कमियाँ निकली गई जिसे सरजू बर्दाश्त न कर पाया और बोल पडा। उसके बाद टींमल ने सरजू को थप्पड मारा और मजदूरी में मिले मात्र छै रुपये लेकर चला आया। उस रात वह लडके को मारकर बहुत दु:खी रहा।

२.२.१.३१ गंगा तुलसी :

इस कहानी में सुनील की माँ गाँव के जमींदार बच्चन के घर में खाना बनाकर अपने पुत्र का पालन-पोषण करती है। विद्यालय में पढते समय उसे राजा भैया जो गाँव के जमींदार का लडका है। उसकी मार एवं अपमान झेलना पडता है। एक दिन उससे न रहा गया और राजा भैया और उसके मित्रों से लड गया। सात साल का सुनिल घर आकर माँ से पूरी बात बताता हैं। इसके बाद वह अपनी पढ़ाई शहर में करता है और बी.ए. करने के बाद जब वह अपने गाँव आया तो उसे विधवा ब्राम्हणी जो सुनिल की माँ और बच्चन जमींदार के नाजायज सम्बन्धों की जानकारी होती है। सब लोग कहते है कि उसने यह सब बेटे, की पढाई के लिए किया। सुनिल को अपनी माँ से नफरत हो जाती है। मुंशी चाचा सुनिल को पत्र लिखते है जिसमें उन्होंने लिखा था माँ अन्तिम साँसे ले रही है। तब सुनिल गाँव वापस आ जाता है। सुनिल का हृदय परिवर्तन उस समय होता है जब माँ कहती है क्या तुम नाराज हो। सुनिल लडखडाकर गिर जाता Æ और जो गंगाजल माँ के मुंह में डालने के लिए ले जा रह था वह पैरों पर गिर पडता है।

2.2.1.32 ´ö¸Æ»öö :

मरहला कहानी में खुनखुन फाटक बन्द करता है? खेलता है और गाडियों को झंडी दिखाता है। गाडियों के आने जाने के समय तमाम बच्चे जिसमे बिरलखा भी था फाटक के ऊपर सवारी करके चरखी झूले का मजा लेते है। बआई और भराई के समय खुनखुन भैया एवं खुनखुन दादा खोलो करके गुमटी पर किसानों का आना जाना लगा रहता था। गूंजा उसी गांव की रहने वाली लडकी है जो हलवाई की दुकान पर दूध पहुंचाती है और जलेबी आदि लेकर खुनखुन की गुमटी पर आती है। थोडी प्यार भरी नोकझोक के बाद खुनखुन गूँजा के जाने के बाद जलेबी खाता। फसल के समय सभी खाद्य अन्न गांव वाले खुनखुन को दे जाते जिसे कटहिया गाडी का ड्रायव्हर सुमेर गाडी को प्लेट फार्म पर लगाकर खुनखुन के साथ खाता-पीता और बदले में थोडा कोयला उतार जाता था। एक दिन गूँजा की शादी खुनखुन से होती है, अब तो गुमटी का सन्नाटा टूटकर खुशियों में बदल गया था। गुमटी में हर कोई रुकता था। सुमेर तो अब

कोयले के साथ मूंगफली भी लाता था। एक दिन गूँजा खुनखुन को धोखा देकर सुमेर के साथ चली गयी और जाते समय खुनखुन की पहली मरी हुई पत्नी को बुरा भला कह गयी। खुनखुन मन ही मन पहली पत्नी के विषय में कडवी बाते सुनकर टूट जाता है। एक दिन गाँव की अंधी तपेसरी की गाय को फोरटीन अपट्रेन से बचाने के चक्कर में खुनखुन गंभीर रुप से घायल हो जाता है। लेकिन गाँव वालों की आत्मीयता से वह भावविहल हो गया और उसके मन में जो अकेलापन था वह दूर हो जाता है।

२.२.१.३३ बिना दिवार का घर :

इस कहानी में बताया गया है कि विपिन जयपूर के एक होटल में अक्सर रुकता था और उसी होटल मे छै साल से नोकरी करने वाला नौकर विपिन की सेवा करता था पर चाय के साथ टोस्ट नहीं है वाली बात को वह हर बार दोहराता था। खाना लाने की बात कहकर चला जाता था। घुमनें जाते समय विपिन को एक भिखारिन मिली जिसके हाथ में दुधमुँहा बच्चा था, बच्चा बीमार होने की बात कहकर वह भीख माँगती है। विपिन के काफी झटकने के बाद भी इकन्नी ले लेती है और अपनी कहानी बताती है। फिर शाम को मदारी अपने बच्चे को चादर पर लिटाकर गर्दन काटने का खेल दिखाता है और इस खेल के द्वारा लोगों से पैसे लेता है। विपिन होटल वापस आया तो मैनेजर कमरा बदलने की बात कहता है। विपिन की मन ही मन गुस्सा आ जाता है। मैंने देखा कि मेरे कमरे में एक मंजनू टाइप के मिया और कोई तीस साल की युवती बैठी थी जो अत्यन्त फैशनेबल कपडों में थी। विपिन की दवा की शीशी वही रह गई थी। मैंने सभ्यता के साथ वह शीशी ली और अपने कमरे में चला आया। उपर आया तो पारिख भाई और विमला भाभी के बगल मे मेरा कमरा था। विमला भाभी हलुआ लेकर आ गयी और खाने लगी और खिलाने लगी रात को जब मैं पेशाब करने के लिए नीचे गया तो मैंने देखा कि मैनेजर और मेरे पुराने कमरे के पास कोई फुसफुसाहट हो रही है तो मुझे पता चला कि इस होटल में क्या-क्या गलत धंधे हो रहे हैं। दूसरे दिन विमला भाभी और पारिख भाई भी चले गए। जाते समय वे मुझसे यह कहकर चले गये कि अपनी शादी में हमें जरुर बुलाना और यह कमरा हो सके तो जल्द से जल्द खाली कर देना। लेकिन उन्हें

क्या पता मेरी इस बेदीवार जिन्दगी वाले घर से क्या लेना देना जिस पर कोई रोने वाला नहीं।

२.२.१.३४ आदिम हथियार :

इस कहानी में हुकुम सिंह गाँव के जमींदार है। गाँव के चौधरी का लडका श्यामलाल जो शहर में से किसी आशा नमक विजातीय लडकी से विवाह कर लिया और उसे गाँव लेकर आता है। कैरा जो गाँव का ही रहने वाला है और श्यामलाल का मित्र भी है। कैरा पानी पीने के बहाने उसे देख लेता है और गाँव के जमींदार हुकुम सिंह से सारी बाते बता देता है। हुकुम सिंह सभी बाते रस ले लेकर पूँछते हैं और श्यामलाल को मजा चखाने की सोचतते हैं। श्यामलाल भी मन ही मन अपने कर्म पर घर वालों से डरता हैं परन्तु लाचार है। श्यामलाल अपने मित्रों से सारी बाते बताते हैं और सलाह चाही, तब सब ने विरोध किया। तब श्याम लाल बहुत ही निराश हो जाता है। गाँव में ठाकुर ने पंचायत बुलाई। तभी श्यामलाल के मित्र रामनाथ, राजू, बिन्देसरी एक शर्त पर साथ देने के लिए तैयार हो जाते हैं कि यदि तुम हुकुम सिंह से भिड़ जाओ तो हम तुम्हारा साथ देंगे। श्यामलाल ने काफी देर बाद हाँ कह दी। पंचायत के दिन सभाकक्ष में भीड लगी थी। पंचायत शुरु हुई। श्यामलाल से उत्तर प्रतिउत्तर में हुकुम सिंह से बहस होने लगी, श्यामलाल को ३०७ दफा में फँसने जैसी धमकियाँ भी दी गयीं, फिर भी श्यामलाल विरोध करता रहा। श्यामलाल को उसके तीनों साथियों ने भी साथ दिया। अन्त में हुकुम सिंह चुप होकर सिर नीचे कर लेते हैं। पंचायत में बैठे सभी लोग श्यामलाल के आदिम हथियार को देखकर ठहाके लगाता है और सभी लोग बाहर आ •ÖÖŸÖ Æ…

२.२.१.३५ बिन्दा महाराज :

इस कहानी का प्रमुख पात्र बिन्दा महाराज न स्त्री है न पुरुष। वह हिजडा है। एक हिजडे की जिन्दगी में किस प्रकार की घटनाएँ घटित होती हैं। यही इस कहानी का मुख्य कथानक हैं। घुरबिनवा गाँव का ही एक लडका है जो बिन्दा महाराज को अक्सर

सजने-सँवरने के बाद छेडता था और फिर बिन्दा महाराज की गालियों का शिकार होता था। गाँव के दीपू मिसिर से ही सिर्फ बिन्दा महाराज प्रेम करते थे। करीमा जो उसका भतीजा लगता था, जो ढोलक बजाता था और बिन्दा महाराज नृत्य करते थे। आज गाँव के ठाकुर के नवजात लडके की बरही में बिन्दा महाराज को नाचने गाने के लिए बुलाए गए। बिन्दा और करीमा सजधजकर ठाकुर के घर गये। तमाम हँसी मजाक और फब्तियाँ सुनते हुए नाचगाना खत्म करके अपना नेग लेकर आते समय दीपू मिसिर मिल गये और अपनी लत्ती मारने वाली आदत को अजमा लिया। बिन्दा महाराज गिरते-गिरते बचे। थोडा नाराज हो गये, परन्तु मिसिर ने मना लिया। फिर मिसिर ने वाजिद अली शाह की हिजडों की फौज का किस्सा सुनाया कि किस प्रकार वह फौज युध्द का मैदान छोडकर भाग जाती है। करीमा के मुँह से आज उसके बाप के कहे शब्द हिजडों और शोहदा न बनने की बात कही। उन्होंने करीमा को थप्पड मार दिया। उसी दिन से भाई ने घर से निकाल दिया। इस गाँव आये तीन चार महीने हुए हैं। सब ओर दिपू मिसिर और बिन्दा महाराज के प्यार के किस्से थे। वह प्रेम करता था परन्तु दीपू मिसिर के बच्चे से। एक दिन दीपू मिसिर का बच्चा बीमार हो गया। बिन्दा महाराज कुछ दवा लेकर मिसिर के घर गए लेकिन मिसराईन भला बुरा कहकर वहाँ से भगा देती है। अगले दिन मुन्ना मर गया। गाँव में यह बात फैल जाती है कि, बिन्दा महाराज के शाप के कारण ही मुन्ना मर गया। बिन्दा महाराज उसी दिन बीमार पड़ गए अपने कमरे में कराह रहे थे कि घुरबिनवा आया और कराहतें महाराज को देखकर अन्दर जाकर उनके सिर को स्पर्श किया। बिन्दा महाराज ने आँखे खोलकर देखा घुरबिनवा है फिर उसे भगाया। घुरबिनवा महाराज को देखते-देखते बाहर हो गया।

२.२.१.३६ कहानियों की कहानी :

इस कहानी को प्रेमचंद की 'बूढी काकी' प्रसाद की 'मधुवा' अज्ञेय की 'रोज' जैनेन्द्र की 'जान्हवी', यशपाल, की 'तुमने क्यों कहा कि मैं सुन्दर हूँ', आदि कहानियों को आधार मानकर उन्हीं के पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। बूढी काकी की उम्र साठ के पार हो गयी है। आज वह बहुत खुश थी क्योंकि उनकी दायादी के घर

शादी थी और उसमें उनके भतीजे डॉ. विवेक राम अपनी पुत्रियों माया, रोज, जाहनवी के साथ काफी लम्बे अन्तराल के बाद गाँव आ रहे थे। माया और रोज शादीशुदा हैं। जाहनवी अविवाहित है। माया को अपनी सभी घटनाएँ जो गाँव से सम्बन्धित हैं याद थी। जाहनबी बूढी काकी को कहानी सुनाने को कहती है। काकी उसे राज और अप्सरा की कहानी सुनाती है जिसमें अप्सारा ने दो शर्ते रखी थीं। एक तो उसके मेमनो की सरक्षा एवं दूसरा वह राजा को कभी नग्न न देखे। माया इसे बिल्कुल इम्प्रैक्टिकल कहती है, क्योंकि पहली शर्त तो ठीक है परन्तु दूसरी असम्भव रोज तो शादी को समझौता ही मानती है बल्कि जाहनवी उसे समर्पण का दर्जा देती है। इन तीनों के वाद-विवाद के बाद कहानी फिर शुरु होती है। एक दिन गंधर्व उस अप्सारा के मेमनों को चुरा लेते हैं। अप्सरा रोने लगती है और राजा को धिक्कारती है। राजा चोरों को देख लेता है, किन्तु उन्हें पकड नहीं सकता। क्योंकि दूसरे समझौते से बँधा है। अप्सरा की धिक्कार सह नही पाने के कारण उठ जाता है, अचानक बिजली चमकती है और अप्सरा उसे नग्न देख लेती है और अन्तर्धान हो जाती है। फिर तीनों में बहस होती है। अन्त में जाहनवी ने पूछा कि राजा ने शादी कर ली होगी। काकी बोली उसने ऐसा नहीं किया वह तो राजा पुरुखा था जो उर्वशी के लिए दर-दर भटकता रहा। तब तक मधुवा नामक अनाथ लडका रोता हुआ आया। तीनो फिर उस लडके को लेकर लडने लगीं। तभी काकी ने एक लड्डू निकाल कर लडके को दिया वह चुप हो गया। काकी ने अपनी पोतियों से कहा तुम लोग बडी बाते करती हो लेकिन एक रोते लडके को चुप नहीं कर सकती.

२.२.१.३७ अन्धकूप :

'अन्धकूप' कहानी में अन्धा कुआँ, जिसमें कि, प्रेतात्माओं की रहने की बात लगभग हर गाँव में होती रहती है। सुचित को पत्र लिखते हुए सोमू बताता है कि मुन्नी के पत्र में उससे गाँव आने का अनुरोध है। मुन्नी की चिट्ठी पाकर मेरी आँखों से आँसू गिरने लगे। सोमू के साथ रहना शायद भाग्य को मंजूर न था अत: पैसों के अभाव के कारण पढ़ाई छोडनी पड़ी। छबिया गाँव में रहने वाली युवती है जो कि सोमू को चाहती है और सोमू से उसे गर्भ ठहर जाता है। सोमू के मन में यह डर है कि यह बात किसी

न किसी प्रकार से माँ और मुन्नी को मालूम हो गयी है। सोमू का मन ग्लनि से भर जाता है क्योंकि मुन्नी ने पत्र में यह लिखा था कि आप जैसे रहना चाहें रहें लकिन गाँव आ जाएँ। सोनी भाभी जब दुल्हन बनकर आयी तो मैने उनको देखने की कभी इच्छा नही की, परन्तु थी वह बहुत सुन्दर एक दिन मैंने किसी का रोना सुनकर मुन्नी से पूछा कि कौन रो रहा है तब उसने बताया सोनी भाभी फिर पूरी बात का पता चला कि चाची तो भाभी को दहेज को लेकर मारती है। सोमू के मन में सहानुभूति जगी और मैं सोनी भाभी के लिए चाची से लड पड़ा। उसके बाद भाभी ने मुझे नाहक परेशान न होने की बात कही। फिर मैंने उन्हें एक पत्र लिखा, जिसके उत्तर में उन्होंने मुझे बिना क्रोध समझाया। किन्तु मारपीट का सिलसिला चलता रहा तभी दूसरा पत्र मैंने लिखा। दूसरे पत्र के प्रत्युत्तर में सोनी भाभी ने कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर ली। मैंने शायद वह जिन्दा हो यह सोचकर उन्हें कुएँ से निकाला लेकिन सोनी भाभी मर चुकी थी। सोमू कहता है कि हर गाँव में एक अन्धा कुआँ क्यों होता है, "हमारे कुएँ पानी की मिठास या शीतलता के लिए प्रसिध्द न होकर प्रेतात्माओं के लिए मशहूर क्यों होते है?"[61]

2.2.2. एक यात्रा सतह के नीचे (सम्पूर्ण कहानियाँ भाग - २)

२.२.२.१ एक यात्रा सतह के नीचे :

इस कहानी में अवधू का पढ़ा लिखा होने के बावजूद भी बेरोजगार होना और उसकी बेरोजगारी पर घरवालों का उपेक्षामय रवैया ही कहानी का मूल कथ्य है। अवधू नोकरी की तलाश में बार-बार शहर चला जाता है। लकिन अवधू को नौकरी नहीं मिलती पढ़ा लिखा युवक बेरोजगार होने के कारण घर में पड़ा रहता है। अपने माँ बाप के सामने अवधू अपनी पत्नी से बात तक नहीं कर सकता। संयुक्त परिवार की मर्यादाओं के कारण दोनों खुलकर बात भी नहीं कर सकते अवधू और शोभा एक दूसरे को उपेक्षित समझने लगते है। अवधू को लगता है कि, शोभा ही संसार में एक ऐसी वस्तु है जो सब प्रकार से उसकी है, उसके अधिकारी को कम-से कम इस एक जगह न तो कोई चुनौती देने वाला है और न वहाँ अपनी योग्यता के लिए उसे विशेषज्ञों से प्रमाण-पत्र ही चाहिए। एक बेरोजगार युवक की छटपटाहट को व्यक्त किय गया है।

२.२.२.२ नन्हों :

प्रस्तुत कहानी में प्रमुखता से तीन पात्रों का निर्वाह किया गया है। जिसमें प्रमुख रुप से नन्हों, सहुआईन, मिसरी लाल है। मिसरी लाल विकलांग है, परन्तु उसकी शदी राम सुभग मिसरी लाल का ममेरा भाई को दिखाकर नन्हों के साथ होती है। नन्हों भी अपना भाग्य समझकर मान लेती है। नन्हों के पिता को इस बात की जानकारी होते हुए भी शादी कर देते है। लडकी पिता पर बोझ होती है, आर्थिक परिस्थिती के कारण नन्हों एक दूसरे को चाहते हैं परन्तु सामाजिक बंधन के कारण एक नहीं हो पाते। मिसरी लाल की असमय मृत्यु के बाद नन्हों अकेली रहती है। गाँव में किर्तन सुनने के लिए रामसुभग के सामने चली जाती है और रात देर से लौटती है। नन्हों रामसुभग से कहती है "इतनी कलक होती है तो पहले ही ब्याह कर लिया होता। इस तरह डॉट रहे हो लाला, जैसे मैं तुम्हारी जोरु हूँ। खबरदार फिर कभी आँख दिखाया तो"[62] रामसुभग रात को ही कलकत्ता भाग जाता है। पाँच साल के बाद रामसुभग पत्र के माध्यम से वापस आने की जानकारी देता है। रामसुभग और नन्हों दोनो दिन-रात बाते करना उनका काम था। रामसुभग गाँव जाने की बात करता हैं, तब नन्हों मुँह-देखाई में दिया हुआ रुमाल वापस दे देती है। रामसुभग ने धीरे से रुमाल ले लिया। नन्हों उसका जाना देख न सकी। नन्हों ने किवाड़ तो बंद कर लिया, पर साँकल न चढ़ा सकी।

२.२.२.३ इन्हें भी इन्तजार है :

लेखक ने इस कहानी से समाज में उपेक्षित डोम जाति का चित्रण कबरी और मंगरा के माध्यम से किया है। शादी ब्याह, पडे, जनम का उत्सव हो या मरन का श्राध्द कबरी अपनी बूढ़ी माँ के साथ जरुर दिखायी पड़ती। कबरी की माँ जूठे पत्तलों से पूडियों के टुकडों, बची-खुची तरकारियों मिठाइयों के चूरे और दही-चीनी के सीरेको काछ-काछकर अलग-अलग हॉड़ियों में जमा करती जाती इस प्रकार से डोम जाति अपना उदर निर्वाह करती है। कबरी की शादी मंगरा से हो जाती है। कबरी के साथ गाँव के जवान, बुढे छेडखानी भी करते है लेकिन कबरी हँसी मजाक में ले लेती है। शादी-ब्याह में बिन बुलाये जाकर नाचना गाना इनका पूराणा धंधा है। सब लोग कहते हैं डोमो को

जूठा खाने की आदत है। इसी बीच मंगरा की मृत्यू हो जाती है। अकाल के दिनों में कबरी को कोई भीख भी नहीं देता। कबरी अपने बच्चे के लिए अब जी रही हैं। निमोनिया से बच्चा मर जाता है तो कबरी, पागल हो जाती है। कबरी अपनी अभावग्रस्तता से लडती रही और अंत में पागल हो जाती है।

2.2.2.4 -ö»ö †ö¸ ÆÃöß :

इस कहानी में कथानायक लेखक के मन में उस चमकती हुई टीन की चरखी को लेकर मन मे कई प्रकार की आशंकाएँ उठती हैं। लेखक चिंता में पड जाता है कि उसे देखे या न देखे लेकिन थोडी हिम्मत बनाकर नजदीक जाकर देख लेते है फिर भी लेखक को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। अन्त में बालक आकर चरखी को अजूबा समझकर गड़ढे में गिरी हुई चरखी निकाल लेता है। लेखब की हरकत पर हँसते हुए बालक चला जाता है।

2.2.2.5 ™™Ÿöö¸ :

इस कहानी में श्यामा एक सीधी-सादी युवती है, उसके पिता सेना में नायक थे। उन्हें १९१८ के युध्द में वीरता से लडने के लिए पदक मिला और आजीवन सरकारी पेंशन। श्यामा के बाप से लेफ्टनेन्ट की पुरानी दोस्ती है। लेफ्टनेन्ट का बेटा मनोहर श्यामा के पिता को ताऊ कहता है। श्यामा और मनोहर में हँसी मजाक में दोनों एक दूसरे के करीब आ जाते है। एक दिन नायक पेंशन लाने शहर चला जाता है, उसी रात श्यामा मनोहर को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर देती है जिसके कारण वह गर्भवती हो जाती है। मनोहर श्यामा से कहता है कि, "नीचे जमीन और ऊपर आसमान गवाह है। मैं सदा के लिए, तुम्हारा हूँ।"[63] झुठे वादे कसमे लेकर मनोहर वहाँ से चला जाता है। अपनी बेटी की इज्जत को नायक ने लेफ्टनेन्ट के पैरों पर रखा, पर उसने गरीब से ब्याह करने से साफ इन्कार किया बाप को बेइज्जती से बचाने के लिए गर्भवती श्यामा घर से भाग जाती है। उसे एक लडकी हुई जिसका नाम शिला रखा। श्यामा नाच गाकर तथा अपने शरीर का सौदा करके पैसा इकटठा करती रही। शीला को मौंसी के पास रख लेती है।

आज शीला की शादी थी। शादी के वक्त श्यामा वहाँ पर आ जाती है। शीला ने अपने पिता से श्यामा के विषय में पूछा तो पिता ने उसे मौंसी बताया। श्यामा छत पर थी। शहनाईयाँ बज रही थी। फेरे के वक्त एक व्यक्ति बोला-"बन्द करो, यह सब। ब्याह नहीं होगा। वह व्यक्ति शीला के बाप से कहता है इसकी माँ वेश्या है जो आपके छत पर बैठी है। यह सुनते ही श्यामा ने छत से लुढ़ककर अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर ली।

2.2.2.6 ²ÖÆÖ¾Ö - ¾Ö×¢Ö :

इस कहानी में बिहारी एक नाच गाने वाला व्यक्ति है जो कि अपनी आदत एवं शौक से लाचार है। कई बार उसके पुत्र एवं भोलूराम चौधरी ने उसे यह काम छोड देने की बात समझायी लेकिन वह माना नहीं। लेखक के यहाँ भी उसने काम किया किन्तु दो बार वह भाग गया, अन्त में वह साधु होकर भी नाचते हुए भजन-कीर्तन करने लगा। लेखक के मँझले भाई द्वारा बनारस के घाट पर देख लेता है। मँझले भाई ने उसे डाँटा लेकिन वह न सुधरा।

२.२.२.७ शाखामृग :

इस कहानी का नायक लक्खी लाल के लिए ही शाखामृग शब्द का प्रयोग किया गया है। सम्पूर्ण कहानी में लक्खी लाल अपने को स्थिर रखने में सफल नहीं होता है। वह अपनी जीविका के साधनों में समय-समय पर परिवर्तन करता रहता है, एवं उसका रहने का ठिकाना भी निश्चित नहीं जो कि समय के अनुसार परिवर्तन करता रहता है। बेलभद्दर उसी के गाँव में रहने वाला एक व्यक्ति है जो कि चालीस साल की उम्र में भी बाल ब्रम्हचारी है। लक्खी लाल ने सब काम किए लेकिन कोई भी काम दो तीन महीनों से ज्यादा नहीं कर सका। लक्खी लाल की शादी हो जाती है। कुछ ही दिनों में अपनी घरवाली को पीटकर पिंजडे में बन्द कर दिया। लोग-बाग तमाशा देखने आये और निराश होकर लक्खी लाल को गालियाँ देते लौटने लगे। अंत में लक्खी लाल अपनी औरत के कारण एक ही जगह रहने के लिए विवश हो जाता है।

२.२.२.८ सुबह के बादल :

इस कहानी में दिनू गाँव का चंचल लडका है, जो किसी भी व्यक्ति से मजाक के स्वर में बात करता है। डाक मुन्शी सुदामा पासिन की चिट्ठी दिनू के हाथ से भिजवाते हैं, और बदले में सुददो काकी के पास से आम लाने को कहते हैं। पंडित घुरेलाल जो वैद्यकी करते हैं, दवा को बनाने में उनका पूरा परिवार व्यस्त रहता है। सुदामा पासिन गाँव के किनारे एक बगिया में रहती है, उसे एक लडका था जो उसे छोडकर चला गया था। सन्तान के नाम पर दूसरा कोई नहीं था। दीनू सुददो को चिट्ठी देकर एक आम लेता है और वह आम अपनी बहन राजी को देता है। राजी ज्वर से तडप रही थी। दीनू की माँ दीनू पर बहुत क्रोधित होती है और वैद्य को बुलाने के लिए कहती है। दीनू वैद्यजी के पास चला जाता है और रोते हुए राजी के ज्वर की बात बता देता है और घूरे पंडित को घर ले आता है। दवा देकर घूरे पंडित लौट आते है। बादल घनें हो जाते है, वर्षा होने लगती है डाक मुन्शी घर पर आ जाते है, दीनू से आम वाली बात पूछते है और जाने लगते है। वे जाते समय उनका पैर गुठली पर पड़ने से फिसल जाता हैं। इस बात पर दीनू ताली बजा-बजाकर हँसता है।

२.२.२.९ आखिरी बात :

इस कहानी में हरखू पंडित एवं फुन्नन मियाँ की प्यार भरी नौक-झोंक एवं पुराणे किस्सों का वर्णन हैं। जिसमे बात घोडों की नस्ल से शुरु होकर उसके सईसों में मुकाबले मदन, पाण्डेय, बख्तावर और पहलवानों के मुकाबले देवा पहलवान एवं हमीदा पहलवान की लडाई, हमीदा को कामरान पर पूरा विश्वास था लेकिन कामरान हमीदा का विश्वासघात करता है। जहर लगी बाल्टी में दूध देता है जिसके कारण हमीदा की मृत्यु हो जाती है।

२.२.२.१० ताडीघाट का पुल :

इस कहानी में बिसू महाराज लकडी का धंधा तो गोलू के साथ दिखाने के लिए करते थे। लेकिन उन लोगों का मुख्य कार्य तो अफीम और गाँजे की तस्करी का था। बिसू

महाराज के पुत्र तिलक को यह बात उनके निधन के बाद गोलू बता देता है। तिलक बाप के कामो के कारण बहुत दु:खी होता है। तिलक की माँ यह सब जानती है। कमली तिलक की ओर आकृष्ट होती जाती है। उनके पूर्व पडोसी मिसिर जी की पुत्री पुष्पा घर आती है। मॉ उससे तिलक की शादी करना चाहती है। परन्तु तिलक इससे पहले ही अपने प्रेम का इजहार कमली से कर चुका है। लेकिन उसका वह प्रेम गम्भीरता युक्त प्रेम नहीं है। पुष्पा के घर तिलक लेकर माँ शादी की बातचीत करने चली जाती है लेकिन निराश वापस लौट आती है। तिलक सरी स्थिति को समझ लेता है और घर से निकलकर पुल पर आ जाता है और वह अपनी तुलना उस पुल से करता है जो कि पानी कम होने पर अवागमन के लिए बिछा दिया जाता है एवं पानी अधिक होन पर समाप्त कर दिया जाता है।

२.२.२.११ धतूरे का फूल :

इस कहानी में नोरेन बाबू की चाय की दुकान स्टेशन पर थी। नोरेन बाबू चाय की दुकान के अकेले मालिक एवं नौकर थे। स्टेशन पर ही रेलवे क्वार्टर्स बने थे वहीं से एक पगडंडी जाती थी। उसी चाय की दुकान पर स्टेशन मास्टर बैठा करते थे। शीला स्टेशन मास्टर की लडकी है, जिसका मानसिक विकास उसकी उम्र के अनुरुप नहीं हो पाया है। स्टेशन मास्टर हेड मास्टर के पुराने परिचित हैं। ट्यूशन मास्टर लडकी की मानसिक अविकसित होने की बात को जानते नहीं थे। ट्यूशन मास्टर को पहले दिन ही अजीब अनुभव आया, किन्तु उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया और पढ़ाना जारी रखा। मास्टर बिहारी का दोहा पढ़ा रहे थे, एक आकस्मिक घटना घटित हुई पशु-पक्षियों का मिलन देखकर लड़की का ताली पीटकर हँसना और मास्टर का डाँटना शीला का हृदय परिवर्तन कर देता है। शीला में लज्जाशीलता, शिष्टाचार आ जाता है। इसके बाद मास्टर साहब धतूरे का फूल लेकर शीला के यहाँ जाते है। शीला की माँ मुस्कराती हुई बोली। "आज तो आप बड़ा अच्छा फूल ले आये। मेरे लिए ले आये। देंगे क्या? उनकी आँखों में अजीब तहर की उदासी भरी याचना थी।"[64] ´ÖÖÃ™¸ü ÃÖÖÆü²Ö “Ö²ÖÖŸÖ¸ü ÃÖê Æîü ^»™ü ¯ÖÖ¾Ö »ÖÖ™ü •ÖÖŸÖÖ Æîü…

२.२.२.१२ परकटी तितली :

इस कहानी में लेखक कथा नायक है और वह जब सडक पर घूम रहा था, तभी अचानक वर्षा होने लगी। शीत ऋतू में अचानक वर्षा किसी को भी अच्छी नहीं लगती। लेखक वर्षा से बचने के लिए एक मकान के आगे टीन की छत में रुकता है। तभी चमक के साथ बिजली कडकती है और वह सहमकरअन्दर भागता है। उसी समय अन्दर से आवाज आती है कि अन्दर आ जाइए। वह अन्दर जाता है तो देखता है कि उसे अन्दर बुलाने वाला कोई नहीं बल्कि बीस-बाईस साल की एक तरुणी है। लेखक कमरे में बैठकर एक चित्र पर निगाहें टिकाता है और उसी चित्र के विषय में उस युवती से पूछताँछ करता है। लेखक पूछता है कि आप ने यह चित्र कब बनाया। उसके चेहरे पर उदासी छा जाती है। लेखक क्षमा माँगते है लेकिन लडकी कहती है कि मैं दु:खी नहीं हुई हूँ। वह बताती है कि यह चित्र उसने अपनी शादी के साल आज से तीन साल पहले का। आप जानते हैं मसूरी कितनी सुन्दर जगह है। वहाँ की पूरी रौनक किसी भी आदमी को कुछ कर सकने की ओर प्रेरित करती है। उन्हीं दिनों मन में आया एक तस्वीर खींच लूँ। एक कोने में वीणा रखी हुई थी। लेखक के अनुरोध पर वीणा बजाती है और उस चित्र को देखकर दर्द भरी तान छेडती है। वह गाए जा रही थी। उसके गाने में एक दर्द था। उसके गाने का हर शब्द उसके आहत हृदय की किसी व्यथा का बोझ लिये, घायल भौंरे सा दीवारों से टकराकर सर धुनता था। उसी समय भयानक व्यथा से जैसे कोई कराह उठा। लेखक ने देखा कि दक्खिन वाले कमरे में एक पुरुष अत्यन्त दयनीय अवस्था में मूर्छित लेटा है वह युवती उसके चेहरे पर पानी की पट्टी करती है। वह होश में आता है तो वह युवती रोने लगती है। "मसूरी में जब से मोटर लड़ी और मेरी यह हालत हुई तब से आज तक तुम मेरी इस जीवित लाश के साथ जलती रहीं। रानी, तुमसे क्या मैं तुम्हारा गाना भी छीन लूँ?"[65] और वह फिर बेहोश हो गया। लेखक के मन ´Ö ¾ÖÆüß ×“Ö¡Ö ^³Ö¸ü †ÖÝÖÖ Æü…

२.२.२.१३ आँखे :

इस कहानी की कथावस्तु एक छोटे से कस्बे की है। लेखक उस कस्बे के एक

इष्टर कालेज में हिन्दी अध्यापक के रुप में नियुक्त था और उन्होंने वही एक बस्ती में एक मकान किराये पर लिया था। मकान के पास दो दुकानें थी, जिसमें एक थी सुरेबा चाची की और दूसरी थी गुलाबों की। स्टाफ-रुम में बैठे दो-चार अन्य जन भी उनकी रहने के गली को लेकर दया-भरी मुस्कराहट में खिल उठे लेखक अजीब अनजानी अशंका से दबता चला गया। एक दिन गुलाबों उनके जीने से नीचे आ रही थी और वे ऊपर चढ़ रहे थे। तभी उनकी मुलाकात हुई थी। सुरेबा और गुलाबों दोनों एक दूसरे से अक्सर लड़ा करती थी। लड़ाई के दौरान वे दोनों सभ्यता की सीमा लाँघ जाती थीं। गुलाबो के चरित्र को लेकर सुरेबा तमाम बाते कहती थी। गुलाबों अपने पति को छोडकर यहाँ बेस्वागीरी कर रही है और सुरेबा गुलाबों को इसी तरह की बातें करती है। पास के ही गाँव के चौधरी बलईसिंह हमेशा वहाँ आते जाते हैं। गुलाबों और बलई सिंह के अवैध सम्बन्ध है। मास्टर साहब की पत्नी ने एक दिन यह सब अपनी आँखो से देखा। एक दिन गुलाबो को दो पुलिस वाले रिक्शे पर बिठाने का प्रयास कर रहे थे। उसी बीच गुलाबों और पुलिस वालो की हाथापाई में गुलाबों की साडी पुलिस के हाथ में आ जाती है और गुलाबो पूरी नग्न हो जाती है। यह सब उसके पति के इशारे पर पुलिस वाले कर रहे थे। गुलाबों की माँ ने रोते हुए मास्टर साहब से पुलिस वालो के हाथों से बचाने के लिए अनुरोध करती रही। मास्टर साब उसे टाल देते हैं। शाम को गुलाबों, बलाई सिंह के साथ रिक्शे पर बैठकर आ गई।

14 मई से विद्यालय बन्द होना था। १३ मई को ही सारी तैयारियाँ पूर्ण हो गयी थी। परन्तु मास्टर साहब की पत्नी का स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया। दाई को पास बिठाकर मास्टर साहब डाक्टर को बुला लाये। डाक्टर ने दवा दी शाम तक ठीक हो गई। मास्टर साहब ने लौटकर जब देखा तो कमरा धुला था। चादर बदला था। पत्नी के कपडे धुले फैले थे और यह सब काम गुलाबों ने किया था। गुलाबो ने फिर नमस्ते उसी फुसफुसाहट भरे अन्दाज में किया और चली गयी। १४ मई को निकलने से पहले अपनी पत्नी से बोले कि गुलाबों को बुलाना, लेकिन गुलाबों न आई। मास्टर साहब रिक्शे पर बैठे हुए गुलाबों की दुकान की तरफ आँखे किये रहे, जिसे वे कभी देखते न थे। लेकिन गुलाबों की दुकान बन्द थी। गुलाबों और उसकी माँ घुमने के लिए बाहर चली गयी थी।

२.२.२.१४ बीच की दीवार :

इस कहानी में बाबू लहरी सिंह बीस - बाईस साल का नवयुवक है जिसने बड़े भाई की बेवजह मार से ऊबकर पंचायत से बँटवारे की बात की थी। पंचायत ने फैसला करने से पूर्व लहरीसिंह को इसका कारण पूछा, जिसे उसने बेवजह मारपीट ही बताया। लहरी सिंह स्वतन्त्र रहने की बात पर अडा रहा तो पंचायत ने निर्णय उनके पक्ष में दे दिया। आँगन के बीच में दीवार खडी हो गयी। दो बैल मिले लहरी की घरवाली एवं माँ उनके साथ रहने लगी। पहले वर्ष की फसल होते ही लहरी ने अपनी सजावट एवं घर उपयोगी सामान खरीद डाले, परिणाम यह हुआ कि साल भर खाने को पूरा नहीं हुआ। छोटी-छोटी बात पर भी लहरी सिंह पत्नी को मारपीट करता था। पत्नी की हालत दिन-ब-दिन कमजोर होती चली जा रही थी, उसी में ज्वर आ गया वह मियादी ज्वर था। बीच की दिवार के पास ओखली लगाकर अक्सर दुलहिया एवं भाभियों की बातचीत हुआ करती थी। लेकिन लहरी देखता तो अपनी पत्नी को बेतहाश मारता था। ज्वर से पीडित पत्नी की चीख-पुकार सुनकर बडे भाई को रहा न गया वे दीवार फाँदकर आए और लहरी को खूब पीटा एवं मंझले भाई से गाडी लाने को कहा और बहू को बनारस ले जाकर इलाज कराने के लिए साठ (६०) रुपये दिये। साथ में लहरी को भी भेजा। पन्द्रह दिन बाद बहू ठीक होकर घर लौटी तो फिर लहरी ने अपनी पत्नी और भाभियों को बात करने से कभी नहीं रोका। लहरी को अपने किए पर पश्चाताप भी हुआ।

२.२.२.१५ पैटमैन :

इस कहानी का पात्र मुनुवाँ बहुत ही शरारती लडका था उसका छोटा भाई नन्हकू बहुत ही सीधा साधा था। पैटमैन शिवजोगी के छह बच्चों में से यह दोनों जीवित थे। उनकी माँ सिजोगी बो अधेड उम्र की औरत थी। शिवजोगी रेलवे में अपने पैटमेन काम के प्रति पूरी तरह से समर्पित व्यक्ति थे। कभी-कभी उनकी अत्यधिक कार्य समर्पण की भावना से लोग उनकी हमेशा हँसी उडाते थे। वे अपने बडे बेटे की शरारतों से सदैव चिन्तित रहा करते थे। बडे चाचा चौकीदार थे, सिजोगी से उनके अच्छे संम्बन्ध थे। अक्सर वह अपने चाचा से बडे बेटे की शरारतों के बारे में कहा करते थे। सिजोगी एक

दिन स्कूल चले जाते हैं तो उन्हे बेटे की तमाम शिकायतें सुनने को मिलीं तो उन्होंने बेटे को बहुत मारा पीटा। जब शिजोगी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के पश्चात मुनुवाँ में सुधार आया और उसने अपनी माँ से कहा कि तुम रोओ मत मैं अब शैतानी नहीं करुँगा एवं अपने भाई का ध्यान रखूँगा तुम्हारा ध्यान रखूँगा। इतना कहकर वह रोने लगा तो माँ ने भी रोते हुए उसे गले लगा लिया।

२.२.२.१६ खैरा पीपल कभी न डोले :

पुरुषोत्तम काका, तुलसी बुढिया, जगरोपन साहू, जाऊ खटिक की तरह लोग खैरा पीपल को कैसे भूलते हैं, यही इस कहानी का सार है कि जब तक यह जिवीत थे तब तक इनके बगैर गाँव था ही नहीं लेकिन मरने के बाद इनको कोई स्मरण तक नहीं करता। परंतु अभी यह पीपल है तो गाँव के लडके कैसे घेरा बनाकर गीत गाते हैं। कथाकार ने हरी के माध्यम से गाँव के यथार्थ वातावरण का चित्रण किया है। गाँव में अभी भी अंधश्रध्दा ने जड पकड़कर रखा है। लल्लू के बाबूजी, पुराने विचारों को अभी भी छोडने के लिए तैयार नही है। लल्लू की औरत प्रसव वेदना से तडप रही है फिर भी उसे डाक्टर के पास लेकर नहीं जाते। लल्लू के बाबूजी कहते हैं कि "दक्खिन पट्टी के ठकुराने की बहू बच्चा जनने अस्पताल जाए, इससे तो यही अच्छा है कि वह चिल्ला चिल्लाकर जान दे दे।"[66] अस्पताल जाना अपने शान के खिलाफ मानते हैं। आज वह खैरा पीपल नहीं है। उसी जगह सिवचन साहू की चाय की दुकान है एवं छोटा सा ग्रामीण बस स्टाप। उसी पर कैरा और जगिया गाँव के दो आवारा लडके बैठते थे। कैरा को उसके पिता हमेशा कामचोर कहकर मारते थे। दीना चाचा को खूब मालूम था कि इसे कुछ अकल नहीं, आखिर जायेगा भी कहाँ, बस कैरा की दौड खैरा तक। लेकिन आज कैरा के दिल पर चोट गहरी थी। घर के सभी सदस्य बाहर आकर कैरा के गाँव छोडने का तमाशा देखते रहे। बस आयी बस मे कैरा बैठा लेकिन बस चल दी, और कैरा नही उतरा। उसने खिडकी से एक बार दीना चाचा की ओर देखा और आँखे फेर लीं। दीना बो चाची की ऑखों से आँसू टपक पडे।

२.२.२.१७ खेल :

इस कहानी में राम बाबू और किशन बाबू एक दूसरे के पडोसी है। किशन बाबू के पुत्र का नाम पप्पू है थोडा वाचाल है। राम बाबू को दो पुत्र हैं दिनेश, और राजेश। किशन बाबू का पुत्र पप्पू बीमार हो जाता है दिन ब दिन कमजोर होता जाता है डाक्टर बताते हैंद्यद्य कि उसको टायफाइड हो गया है। किशन बाबू के पास पैसे तो थे ही नहीं, इसलिए राम बाबू से उधार पैसे ले लिये। पप्पू और दिनेश राजेश में हमेशा खेल खेल में झगडा हुआ करता था। एक दिन राम बाबू उन्हीं रुपयों का तगादा करने किशन बाबू के यहाँ आये तो पप्पू ने उन्हें कोई महत्ता न देते हुए वापस कर दिया, तब तक किशन बाबू ने राम बाबू की आवाज सुनी तो उन्होंने बुलाया। राम बाबू ने पैसे के लिए एक माह का समय देते हुए तमाम भली बुरी बातें कहीं। उसके बाद एक बार पप्पू का झगडा दिनेश एवं राजेश से हुआ। लेकिन पप्पू मार खाता रहा वह कुछ न बोला, यह सब तमाशा किशन बाबू देख रहे थे, बल्कि पिता के पूछने पर कि किसने मारा है, कुछ नहीं बताया।

२.२.२.१८ कर्ज :

प्रस्तुत कहानी में जगपती और रामपती दो सगे जुडवाँ भाई हैं। जगपती शरीर से मजबूत और रामपती शरीर से कमजोर है। जग्गू एवं रामू के पिता की मृत्यु जन्म के थोडे दिनों के पश्चात हो गयी। उन दोनों के भरण पोषण का भार उनकी माँ अर्थात देवला काकी पर था । देवला काकी ने जी तोड मेहनत कर दोनों को बडा किया। लेकिन आज तक जग्गू और रामू की शादी नहीं हुई थी। जग्गू बड़ा था। उसने अपने पूर्वजों का सारा कर्ज अदा करके जमीन छुड़ा ली थी। अपनी शादी अब नहीं हो सकती क्योंकि जग्गू की उम्र ढल चुकी थी। उसने अपनी दो बीघे जमीन में से एक बीघा जमीन पर ५०० रुपये कर्ज एवं ५०० रुपये बतौर बिक्री के लिए, एवं अपने छोटे भाई रामू की शादी की। अब उसकी जिम्मेदारियाँ बढ़ गई थी अब वह पहले जैसा हँसमुख भी न रहा। वह सब परिस्थितियों को समझते हुए ज्यादा मेहनत करने लगा और इसी ज्यादा मेहनत के कारण बीमार गिर जाता है। बीमारी के कारण अत्यन्त कमजोर हो गया था। रात-दिन

घर में पडा रहता था। तभी घर में छोटे मेहमान का आगमन हो जाता है। छोटे बच्चे के प्रेम एवं उत्साह ने जग्गू की सारी बीमारी एवं कमजोरी का हरण कर लिया। फिर से जग्गू हरा-भरा हो गया। नये जोश के साथ काम करने लगा।

२.२.२.१९ टूटे शीशे की तसवीर :

इस कहानी में कथाकार ने स्वयं को भी एक पात्र के रुप में चित्रित किया है। उसकी पत्नी कामिनी एवं सुरेश सगे भाई बहन हैं। कामिनी बडी एवं सुरेश छोटा है। कामिनी एवं सुरेश अपने अपने किस्म के हठधर्मी हैं। सुरेश अपनी बहन की शादीं के एक साल बाद अपनी बहन के घर आया हुआ था। उसके जीजा ने एक पुरानी मेज जो कि ऊपर रखी हुई थी उसे नीचे भण्डारगृह में रखवा दिया था। यह कामिनी को बाद में पता चला तो वह गुस्से से आग-बबूला हुई। सुरेश ने उसका विरोध किया, तो कामिनी ने उसे बहुत भला-बुरा कहा। कामिनी के पास सुरेश की जो तसवीर थी उसे हर दिन साफ करती थी, उसी तसवीर को इस प्रकार फेंकी कि उसका शीश टूट गया परन्तु उसकी तसवीर सुरक्षित बच गई। इस घटना से दोनों भाई-बहनों का बोलचाल बन्द हुआ जो जीवन पर्यन्त शुरु न हो पाया। यहाँ तक कि सुरेश की मृत्यु का समाचार पढ़कर भी उसकी आँखो मे आँसू तक निकले नही। कामिनी ने चाकू से अपनी हथेली काट ली परन्तु एक भी आँसू न निकला।

२.२.२.२० अरुन्धती :

कहानी के प्रमुख पात्र छोटे सरकार घर पर उनकी पत्नी (बडकी बहू) के अलावा उनकी माँ उनके छोटे भाई की पत्नी एवं नौकर हीरा रहता था। बडकी बहू अत्यंन सुन्दर थी, परन्तु केश सजावट एवं रंग-ढंग से कुछ बंगाली महिला लगती थी। बडकू बहू ने अपनी कार्यकुशलता से अपनी सॉसू माँ का दिल जीत लिया। सासू तुलसी के सामने हर दिन दीया जलाते समय केवल पौत्र की माँग किया करती थी जिसे बडकू बहू जानती थी। हीरा का बडकी बहू के प्रति निश्चल अनुराग एवं बडकी बहू का हीरा के प्रति गाँव वालो में चर्चा का विषय बन जाता है। फिर एक दिन छोटे सरकार ने हीरा को

बुरी तरह मार पीटकर घर से निकाल दिया जिससे कि न चाहते हुए भी बडकी बहू सहन कर लेती है। इसके बाद हीरा ने रेल से कटकर आत्महत्या कर ली। इसके बाद यह पता लगता है कि बडकी बहू गर्भवती है। समाज के झूठे आरोपों से बचने के लिए बडकी बहू न चाहते हुए भी विवश वश अपना गर्भपात करवा लेती है। जिसके कारण बडकी बहू पूरी तरह से टूट जाती है। बडकी बहू को वशिष्ठ एवं अरुन्धती वाली कथा, जिनका सप्तर्षि-मण्डल में स्थान है याद आ जाती है।

२.२.२.२१ मैं कल्याण और जहाँगीरनामा :

इस कहानी का प्रमुख पात्र दया हास्टेल के एक कमरे में रहकर पीएच.डी. कर रहा है। हास्टेल में दया का भोजन एवं नाश्ता मेस से एक परिचारक चरन लेकर आता है। दया चरन को हमेशा डाँटा करता था। फिर मेस महाराज दया को शान्त करते थे एवं चरन को थोडा समझाते थे, इसके बाद मेस महाराज से गर्म चाय माँगता था एवं दया समान्य हो जाता था। दया सिगरेट पीता हुआ या तो उसके धुएँ की जाली को देखता था, या फिर बाजरे के खेत को जिसकी जवान बालियाँ हवा की लहर पर दूधिया गन्ध बिखेरती इधर उधर गरदनें हिलाकर झूम रही हैं, या फिर उस लड़की को जो अब तितलियाँ पकड़ना भूलकर एक कलोर बाँछे की पीठ को शपथपा रही है। एक दिन चरन दरवाजे पर ठक-ठक की आवाज करता है तो दया चरन को अन्दर आने का आदेश करता है वह आज बहुत उदास है, लाख पूछने पर भी वह नहीं बताता परन्तु रोने लगता है। थोडी देर बाद चरन अपना काम समेटकर चला जाता है। उसके बाद फिर ठक-ठक की आवाज आती है दया कहता है कि अब क्या हुआ तो वह कहता है कि वो मेमसाब आयी है दया कहता है कौन? दया अन्दर नहा रहा था उसने दरवाजे के ऊपर से चाभी दे दी। कमरे में तृप्ती थी, जो एक विशेष बात के लिए दया को आमंत्रित करने आयी थी। बातचीत में दया के घर का पता पूछने पर दया का नाराज होना तृप्ती के समझ में नहीं आता है। तृप्ती के जाने के बाद जहाँगीरनामा पढ़ने लगता है। अचानक होस्टल के कोर्ट यार्ड में शोर मचता है। जाकर देखने पर पता चलता है कि चरन का मामला है जिसे बाबू डी.पी. एन सिंह एवं उसका ससुर सुनवाई कर रहे हैं। चरन अपनी मायके

से गौने में वापस न आ रही बीबी को बहुत प्यार करता है। उसी के सन्दर्भ में दया ने जहाँगीरनामा के पृ.७२३ पर लिखी एक घटना सुनाई है और उसे अपनी तृप्ती एवं अपनी पत्नी और बच्चे की इबारत वाले पत्र की याद आ जाती है।

२.२.२.२२ प्लास्टिक का गुलाब :

यह कहानी मधु, विपिन, और रामेन्द्र तीन पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती है। मधु, विपिन, रामेन्द्र मित्र हैं। मधु थोड़ी विचित्र स्वभाव की लड़की है। रामेन्द्र मधु को बाजार चलने के लिए कहता है। विपिन से भी कहता है क्योंकि मधु विपिन की पसन्द की कायल है। तीनों बाजार गए। विपिन ने एक टेबल लैम्प खरीदा, चितकबरे साँप के बदन जैसा। स्टैण्ड और उसमें जुडे हए चार फन सर्पमुखी चार बल्ब लगते थे। रामेन्द्र ने एक अर्धनग्न चमकदार नारी की मूर्ति से बना स्टैण्ड वाला लैम्प खरीदा। मधु ने विपिन के लैम्प को बहुत ध्यान से देखा तो रामेन्द्र ने लैम्प बदलने के लिए कहा तो विपिन ने मधु को उपहार में वह लैम्प दे दिया। मधु ने वह लैम्प लिया और घर जाकर उस पर लगा प्लास्टिक का गुलाब निकालकर उसे विपिन को लौटाया। परन्तु उसने एक पत्र रख छोड़ा जिसमे उसने कहा कि लैम्प लौटा रही हूँ क्योंकि मैं नहीं चाहती कि इस लैम्प के सतरंगी प्रकाश में सुहागरात बिताने वाली मधु पर हमेशा व्यंग्य किया करे और वह बुध्दू वह प्लास्टिक का गुलाब रख लेता है क्योंकि वह सुन्दर है पर है बेकार, किसी काम का नहीं। तुम्हे याद करने के लिए यह सही प्रतीक होगा।

२.२.२.२३ किसकी पाँखे :

यह कहानी सत्ती के पैर में लगी ठेस से शुरु होती हैं। सत्ती जब बाबा के साथ गाँव जाता है तो अशरफ चाचा उसे हाथ का सहारा देकर उतारने की कोशिश करता है फिर इशारे से उसकी चोट के विषय में जानकारी लेता है। अशरफ चाचा और जमीरन चाची गाँव में जब आते हैं तो भुतही छावनी खुलती है और उसे लीप-पोत कर उसे साफ किया जाता है। जब मैं स्कूल से घर आता जाता तो नौकर मुझे उठाकर चाची के पास ले जाते और पुवे खाने को देती हैं। यह सब मेरे बड़े होने तक चलता रहा। महरी मेरी

माँ से यही कहती रहती कि सत्ती को छावनी पर जमीरन के यहाँ न भेजा करो। जमीरन चाची को चार बच्चे हुए जिनमें से एक भी जीवित न बचा था। लेकिन जमीरन चाची मुझे बहुत प्यार करती थी। जमीरन चाची बुठऊ चाचा की वजह से हिचकती थी। जमीरन चाची ने मेरी शादी में आने की बात कही। लेकिन वे शादी में चाहते हुए भी न आयी । शादी में आए केवल अशरफ चाचा उन्हीं ने पूरा इंतजाम किया। उसके पश्चात बुढऊ चाचा की मृत्यु हुई, जिससे अशरफ चाचा बहुत दुःखी हुए परन्तु अपने को सँभालते हुए उन्होंने कार परोजन कराया। फिर अशरफ चाचा को मन्दिर के चनदे और देवीपूजा में उन्हें शामिल न किए जाने से एवं धर्मू भाई ज्ञानू पंडित की चन्दा न लेने के लिए सहमति देखकर अशरफ चाचा गाँव छोडकर चले गए। आज उनकी मृत्यु का समाचार सुना परन्तु वह तो उस हवा के सम्बन्ध में सोचकर जिसमें सफेद पाँखे उडकर आती हैं जिन्हें वे (माँ) परी के पंख एवं जमीरन चाची फरिश्ते कहती है। परन्तु मैं आज तक यह न समझ पाया कि ये पँख फरिश्ते के हैं या परी के।

2.2.2.24 -ÖÖ¸Ö :

इस कहानी में लेखक कथानायक के रुप में अपने गाँव के किनारे सत्ती मैया के पास रहने वाले तिउरा नाम वाली लड़की के परिवार का यथार्थ चित्र खिंचते हुए देवनाथ जिस आढ़त में मुनीम का काम करते थे। जब लेखक दुबारा गाँव वापस आया तो तिउरा के झोपडी के पास कोलाहल सुनाई पड़ा। लेखक की माँ ने लेखक से अनुरोध भी किया कि तिउरा को गोंदुंवा के हाथों से बचा ले। तिउरा का दोष सिर्फ इतना था कि वह लाल ब्लाऊज एवं साडी पहने थी। जो कि गोंदुवा को नागवार गुजरा। लेखक काफी दिनों से गाँव नही गये थे। आज वह पत्र लिख रहे थे अपनी नौकरी लगने पर पत्र के उत्तर में पिताजी ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी। आज मैं फिर वही खुशी लेकर गाँव जा रहा था। प्लेट फार्म पर उतरते ही तिउरा एक बच्चे को कंधे से चिपकाए भीख-माँगते दिखाई पड़ी, मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ, वह खिड़की से सटकर बैठे व्यक्ति से भीख माँगने लगी। तभी मैं गाँव की ओर चल पड़ा यह सोचते हुए जहाँ कभी सत्ती चौरा के पास तिउरा की झोपडी थी वहाँ अब सन्नाटा है।

२.२.२.२५ चेन :

इस कहानी में बनारस रेल्वे स्टेशन से उतरते ही लेखक को देखकर रिक्शेवाले ने विश्वविद्यालय की ओर जाने को पूछा। लेखक बैठ गया और ×¸क्शा चलने लगा। थोडी दूर ही चला होगा कि रिक्शे की चेन उतर गयी। उसने ¬ÖßÎरे से चेन चढ़ाई फिर चला इस प्रकार पूरे सफर के दौरान उसके रिक्शे की चैन कई बार उतरी। इस चेन उतारने चढ़ोनके किस्से में लेखक उसके परिवार के बारे में पूछते Æî तब रिक्शे वाला बताता है कि बडे भाई की निमोनिया के कारण मृत्यु हुई है. ¯ÖßÔछे दो बच्चे माँ पाँच लोगों को पोसने का काम करना पड़ता हैं। लेखक उसकी पारिवारिक स्थितियों को जानकर अत्यन्त दु:खी होते Æî †Ö¸ü “Ö¯Ö ¸üÆî •ÖÖŸÖê Æïü…

2.2.2.26 †¬Ö¸ü Ö ÆüÃÖÖŸÖÖ Æî :

इस कहानी में कथानायक के रुप में लल्लू भैया है। जैसे ही वे स्टेशन पहुँचे कि कुली की आवाजों से स्टेशन भर गया था। उस कोलाहल में अचानक सामने से अर्जून पाण्डेय, जो कुली का काम कर रहे थे, वे आते हैं और लल्लू भैया को बाहर चलने के लिए पूछते हैं। मैंने (लल्लू भैया) सहमति दे दी, मैंने और उन्होंने एक दूसरे को पहचान लिया था। अर्जून पाण्डेय बहुत ही अच्छे व्यक्ति थे। उनका गाँव के बच्चे से लेकर बूढ़े तक सबके साथ स्नेह का व्यवहार था। मुझको याद है कि फददू काका की झोपड़ी में अक्सर उनकी बैठक हुआ करती थी। हम सब स्कूली बच्चों से अक्सर वे अंग्रेजी में बातचीत करते थे, उसी फददू काका की झोपडी में अर्जून पाण्डेय के परिवर में कोई न था, माँ थी वह भी चल बसी थी। जमीन परती हो गयी थी। स्टेशन मास्टर बंगाली था। उससे अच्छा व्यवहार बनाकर अर्जून पाण्डेय ने पोर्टर की नौकरी पा ली थी और टूटी फूटी अंग्रेजी भी बोलने लगे थे। पोर्टर से वे धीरे-धीरे स्टेशन मास्टर का भी काम देखने लगे थे। एक दिन के हुए हादसे के कारण उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया था।

मैं गाँव से स्कूल पास करके बनारस विश्वविद्यालय पहुँच गया था। एक दिन अचानक पाण्डेय वहाँ पहुँचे। मैंने कैण्टीन से नाश्ता-पानी का इन्तजाम किया और गाँव और उनका हालचाल पूछा। उन्होंने बताया कि कलक्टर एवं कमिशनर के बच्चों को

पढ़ाते हैं फिर उन्होंने मेरे आफिस में क्लार्क की जगह काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। जिसमें वे असफल रहे, ऐसी तमाम बाते वे बताते हैं। आज अचानक पत्नी ने मुझसे यह पूछ ही लिया और मुझे यह कहना पड़ा कि वे तो नीरे गप्पी ही हैं।

२.२.२.२७ जंजीर, फायर ब्रिगेड और इंसान :

इस कहानी के कथानयक शाम को एक दिन घूमते हुए सामने मकान में आग लगी दिखाई पड़ती है। वह मकान एक बडे पैसे वाले बाबूजी का था। मकान मालिक की चीत्कार भी सुनाई दी। मेरा कोट कहते हए वे नीचे भागे आ रहे थे तभी मुझे लगा कि वे बहुत बेशकीमती कोट की बात कर रहे है। फिर अचानक उनकी नजर अपने नौकर पर पड़ती है तो वे फिर मेरा कोट कहकर चुप रह जाते हैं। वह नौकर कूदकर कोट निकालने जाता है तभी किसी ने कडक आवाज के साथ कहा कि आपको शर्म नहीं आती है, अपने एक कोट के लिए उसको भयंकर आग की लपटों में जाने के लिए कह दिया था। तभी खतरे का सायरन बजाती फायर ब्रिगेड आयी। फायर ब्रिगेड के आदमी झटके से नीचे उतरकर अपने अपने काम में लग गये। सभी लोगो ने आधे घण्टे बाद पहुँचने के लिए तमाम वाद-प्रतिवाद किया। तभी सामने की खिडकी से नौकर कूदा और बेहोश हो गया। अपने शरीर का उसने उस कोट को बचाने कवच की तरह प्रयोग किया। मकान मालिक सिर्फ कोट को देखते रहे। उनके मन में कोई भाव उस नौकर के प्रति न आया। तभी एक रिक्शेवाले ने उसे रिक्शे पर लादकर अस्पताल पहुँचाया। इस पर एक किस्से का उल्लेख किया गया है कि जैसे जबलपुर के एक क्लार्क ने हैद्राबाद के निजाम को दो रुपयों का मनीआर्डर भेजा, जो उसकी खराब आर्थिक स्थिति सुधारने के x»Ö<...

२.२.२.२८ बेजुबान लोग :

इस कहानी में मैं जैसे ही मुगलसराय स्टेशन पर उतरा कि टैक्सी वालों की लूट-खसोट देखकर हतप्रभ रह गया। मैं उस टैक्सी में ड्राइवर के द्वारा बोरे की तरहफेंक दिया गया जिसमें पहले से ही अनेक सवारियाँ मौजूद थीं। जिनमे पाँच पीछे और चारआगे £Öà...

आगे की दो सवारियों ने दो दो रुपये दिये थे। लेखक अपने ग्रामवासी सर्वजीततिवारी के बारे में सोचता रहा। लखिया धोबिन से उनके लडके का प्रेम था जिसके चलते उन्होंने लखिया को कोडों से पीटा था। इस मारपीट के बाद लखिया के पिता गोविन्द लखिया को ले गया। सर्वजीत तिवारी का बेटा पिता के खिलाफ विद्रोह करता है। तभी यात्रियें ने टैक्सी रोकने को कहा। किसी यात्री ने कुछ चुभने की बात कही। सर्वजीत ने गोइडे वाले खेत को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। लड़ाई - झगड़े की आशंका को देखते हुए दोनोंपक्षों की तैयारी थी। फिर भी दस गुना लगान देकर उस खेत की बात तय हुई। तभी फिर वही लड़का चिहुँका और उसने जो सज्जन सज्जन के साथ आए थे उनसे रोष व्यक्त किया। तभी मियाँ साहेब बोले कि किसी ने कहा कि-

"आजाद मुझ को कर दे ओ कैद करने वाले मैं बेजुबां हूँ कैदी तू छोड़कर दुआ ले।"[67]

२.२.२.२९ हत्या और आत्महत्या के बीच :

इस कहानी में लेखक इलाहाबाद जा रहा था। रामनाथपुर स्टेशन के पास एक युवती के द्वारा आत्महत्या किए जाने से ट्रेन रुक जाती है। सारे यात्री जाकर देखते हैं और अपने विचार व्यक्त करते है। मैं भी जाकर देखता हूँ एवं इसे आत्महत्या ही कहता हूँ। पूरी घटना को लेखक अपनी शोभा बुआ की घटना से जोड़ता है। शोभा बुआ के साथ बचपन से गंगा स्नान करने के लिए जाता था। शोभा बहू की उम्र उसके पिता की उम्र से काफी कम थी। लेखक के पिता उसे हमेशा पढ़ने के लिए प्रेरित किया करते थे। लेकिन दसवी फर्स्ट क्लास करने के बाद न पढ़ सकी। उनका कारण यह रहा कि उनकी शादी तय हो गयी थी, उनका पति हाईस्कूल फेल था। लेखक के पिता एवं शोभा बुआ में अत्यधिक आत्मीय सम्बन्ध थे पर वे अवैध न थे। परन्तु उनके ससुराल तक अवैध सम्बन्धों की चर्चा थी। इस कारण से उनके पति शोभा बुआ के साथ हमेशा मारपीट करते थे। गौने में वे जाने के लिए तैयार न थीं, इसके लिए उन्होंने पिताजी से भी बात की पर कोई हल न निकला, फिर ऐन गौने वाले दिन उन्होंने ट्रेन से कटकर आत्महत्या कर ली।

२.२.२.३० एक वापसी और :

इस कहानी की कथावस्तु के अनुसार भारत-पाकिस्तान युध्द की शुरुआत हो चुकी थी। छुट्टी पर गए सैनिकों के घरों पर छुट्टी निरस्त और वापसी का तार पहुँचना शुरु हो गया था। रेडियों से भी खबरें देनी शुरु कर दी गयी थीं। नवजादिक भी सेना में नौकरी करता है और छुट्टी पर घर आया था। पुत्र पप्पू की मिठी आवाज उसके कानों मे गूँज रही थी। तभी ट्रांजिस्टर पर खबर सुनकर उसका चेहरा उदास हो जाता है, उसमे वह हिम्मत नहीं है कि वह अपने जाने की खबर अन्दर अपनी पत्नी एवं माँ को कह सके। डाकिया तार लेकर आता है और नौजादिक को तार देकर चला जाता है। नवजादिक उसे अपने भाई कामता को देता है और कहता है कि घर में सबको बता दे। कामता घबरा जाता है। नवजादिक उसे समझाता है।

"कामता ! पप्पू को घर दे आओ।" नवजादिक उसे देख रहा था, जब कामता की यह हालत है तो औरतों की क्या होगी।"[68]

टेंगरी सिंह को जैसे ही दिन का अखबार देता है वे अखबार पढ़ते हैं तो लाहोर से दूरी की खबर पढ़कर वे दुःखी होते हैं। वही झम्मन चौधरी और मनकू सिंह भी बैठे है। झम्मन चौधरी एवं टेंगरी सिंह का विवाद होता है। झम्मन चौधरी चले जाते है। टेंगरी सिंह से दिनवा नवजादिक को टीका लगाकर विदा करने की बात कहता है। वे लोग जुलूस की शक्ल में जाकर उसे माला पहनाते है। रास्ते मे फिर झम्मन और टेंगरी सिंह की नोकझोंक होती है। टेंगरी सिंह नवजादिक के हाथ में बँधे गंडे के विषय में पूछता है। मन ही मन विचार करता है कि डाकिया दिनबा से तार पढ़ते ही वजादिक का चेहरा उतरने लगता है, यह बात सत्य है। दूसरे दिन सुबह तीन बजे नवजादिक अपनी रेजीमेन्ट को रवाना होता है तो अचनक उसकी पत्नी दहाडे मारकर रोने लगती है और पैर पकड लेती है वह भटककर बाहर आ जाती है और स्टेशन की राह पकड़ लेता है।

२.२.२.३१ राग गूजरी :

इस कहानी के पात्र पगला बाबा को लेकर सभी भिखारी स्टेशन पर बैठा करते थे। कोई उसे पत्थर मारकर परेशान करता था, तो कोई उसे चिढ़ाकर। पगला बाबा बडे

प्रात:काल निकलता। घुटनों तक धोती ऊपर फटी पुरानी पर साफ हाफ कमीज। कमर में बँधा चादर का फेटा। हाथ में जाने कब का इकतारा और उसका गूजरी राग का स्वर। यह उसका रोज का क्रम था, वह हर दरवाजे पर एक क्षण रुकता था, कुछ मिल गया तो ठीक, वह हठी नहीं था। अचानक लेखक के मन में उसका अतीत जानने की इच्छा होती है। वह इधर एक दो दिन से नही आ रहा था। अत: मैं उधर गया फिर वह मुझे लेकर उस महिला के पास गया, उसके दुत्कारने के बाद भी वह पगला बाबा उत्तेजित नहीं हुआ। फिर वह लौट अया। "थोडा जानकर, थोडा अनजाने, भी। हमेशा ही ऐसा होता है। वह हँसी-खुशी में भले ही गुस्सा रहे, गाली बके: पर मैं बीमार हो जाऊँ तो सिरहाने बैठकर रोती रहती है। कितनी देखभाल करती है। कितनी व्याकुल लगती है। और क्या चाहिए खोखा बाबू आप ही कहिए। मुझे न स्वामिनी चाहिए न बाँदी। मुझे सह्यात्री चाहिए खोखा बाबू सहयात्री मनेर मानुष। बस।"[69] ·और अस्वस्थ हो गया तो उस भिखारिण ने उसकी सेवा की और रोती रही फिर, वह पगला बाबा गाता हुआ निकला लेकिन आज वह प्रसन्न था।

2.2.2.32 Ÿöö :

तो कहानी के कथानक में मेले में हुई नौटंकी बाते शोभा, उदयी आदि करते है। उसमें गाये गये गाने के विषय में शोभा उदयी एवं टीमल चाचा चर्चा करते हैं। शोभा टीमल चाचा का मजाक उड़ाता है। तीनों में बहस होने लगती है। उदयी शोभा सिंह को औरत को मारपीट करने के लिए पुलिस का भय भी दिखाता है। उदयी गाँव के लोगों को धमकी दिया करता था। लेखक स्वयं अपने परिवार की बात कहता है, वह सरुप की दुकान की बात कहता है और सभी गाँववालों के साथ मिठाई खाकर एवं बँधवाकर लाता है। उदयी और उसके पिता मुंशीजी का झगड़ा होता है और बहस होने पर उदयी अपने पिता के सामने समर्पण कर देता है।

२.२.२.३३ बडी लकीरें :

इस कहानी की कथा में मैं निठल्ला है। एम.ए. पास करके बेकार बैठा है। अकाल

के बाद चन्द्र प्रभा का बाँध सूख गया था, फसल बरबाद हो गयी थी। बाबूजी ने व्यंग्यत्मक तेवर में कहा कि खप्पड उठा लो-भीख भी माँगोगे तो अपना पेट तो चल जायेगा...। मैं काफी उदास था, माँ ने कहा आज दरवज्जे न जाओगे तो मैंने काका के दरवज्जे सोने की बात कही थी, रात को दीपा आई थी। मैं न चाहती थी कि दीपा आए क्योंकि आज तक वह किसी दबाव में दीपा जडमशीन ही साबित हुई थी।

मेवालाल ग्राम प्रधान मोती लाल का लड़का था, ग्राम सुधार के लिए टेस्ट वर्क की स्कीम आई थी। आज ग्राम समिति की बैठक थी, मैं भी कभी-कभी मोती लाल का विरोध किया करता था। श्रीकान्त मेरा समर्थन किया करता था एवं राम खेलावन सिंह विरोधी। हर काम करने के लिए मुझे थोडा विरोध झेलना पड़ा। मैं मँगरु बो भौजी के पास मजदूरों के लिए गया, वहाँ जाने के बाद पता चला कि श्रीकान्त एवं मेवा लाल पहले कहकर आए हैं, फिर भी मंगरु बो भौजी ने विश्वास दिलाया कि मैं तीस-चालीस आदमियों के साथ पहुँच जाऊँगी। घर पहुँचते ही बाबू जी ने मुझे उस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया और उसके पीछे की साजिश को बताया। मुझे रात भर नींद न आई, दूसरे दिन स्कूल की इमारत पर पहुँचा तो लड़के चोर-चोर कहने लगे। तभी मास्टर जी आ गए, एक लड़की ने मेरा हाथ पकड़ लिया। हाथ पकड़ने वाली लड़की झुगिया थी। मास्टर जी मोतीलाल प्रधान थे। मेवा लाल ने कहा कि "श्रीकान्त जानते होंगे कि तुम गाँव में घूमकर टेस्टवर्क के खिलाफ बोलोगे, इसी वास्ते यह नाटक रचाया कि तुम न चार सौ रुपिया इकट्ठा करोगे न नमूना दिखाओगे। दिखा भी दिया तो किसका काम अच्छा है, ई तो पंच लोग ही तै करेंगे न? चलो-चलो, खाओ-पीओ-मजूरे तो नहीं सरेख आये?"[70] मैं चोरी नही कर रहा था मैं तो एक बड़ी लकीर खींचना चाहता था। एक हाथ में शिकार लटकाया, एक हाथ से बन्दूक उठाकर कंधे पर रखी और मुस्कराता हुआ बोला- "कहो भैया, नमूना नही दिखाया तुमने ? बाबू बड़ी आस लगाये थे कि पढवैया लोग गाँव और देश का उध्दार करेंगे।"[71]

२.२.२.३४ भेडिये :

इस कहानी में सुहेल सिंह एवं दीना सिंह की दुश्मनी बहुत ही खतरनाक थी।

सुहेल सिंह गांधीजी के अनुयायी एवं अहिंसावादी तत्वों को लेकर चलते है। सुहेल सिंह के दो भाई थे अनमोल एवं देवाल एक पुत्र था भोलू। भोलू गाँव के लडकों के साथ पढ़ने जाता था। भोलू को दीना सिंह तीन बार स्कूल जाते समय रास्ते में खींचकर मार चुके थे। तीसरी बार का मारना भोलू को नागवार गुजरा, उसके दोनों भाई अनमोल एवं देवल लाठियाँ लेकर दीना को मारने पहुँच गये। दीना को बहुत मारा तब वहाँ बैठा मुंशी भागकर ग्राम प्रधान को बुला लाया, उन लोगों ने ग्राम प्रधान दीना एवं सूरज घबडा गए और सुहेल सिंह से समझौता करने पहुँच जाते है। "कदम भेड़िया है अनमोला! ऊ जो न करै। प्रधान जी कौनो जुगुत सोच के हमारी जान बचाओ। अब कान पकड़ते हैं, इन भेडियों के पास कभी नहीं जायेंगे।"[72]

२.२.२.३५ तकावी :

इस कहानी का शीर्षक 'तकावी' यानी सरकारी कर्ज जो कि सूखा या बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के नागरिकों को दिया जाता है। शंकर सिंह दो भाई थे, बडे भाई खेती का काम करते थे, छोटे थे शंकर सिंह जो कि लगान, कोर्ट कचहरी आदि देखते थे। दोने भाइयों में अब बँटवारा हो गया था, तो गाँववाले कहा करते थे कि शंकर सिंह क्या खेती का काम करेंगे। बाढ़ के बाद 'तकावी' की घोषणा हुई। गाँव के अधिकांश लोग तकावी लेने के लिए चल पडे। शंकर सिंह तकावी लेना चाहते ये लेकिन पत्नी को कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। तभी बेटी पियरिया का पत्र त्योहार भेजने के विषय में आया। तब बड़ी हिम्मत करके उन्होंने रामू की माँ से तकावी- के लिए अनुमति माँगी। अनुमति मिलने के बाद वे तकावी लेने गए। तकावी के ढ़ाई सौ रुपये मिले, वे साड़ी एवं अन्य कपडों के साथ कारतूस भी ले आए। कपडे तो रामू की माँ को दिखाए लेकिन कारतूस लाया हुआ तब समझ में आया जब वे दूसरे दिन शिकार से लौटा। चौती फसल आने के बाद सरकारी महकमा ऋण वसूली के लिए आ धमका, परन्तु फसल अच्छी न होने के कारण शंकर सिंह तगादगीरों को लौटाते रहे। अन्त मे शंकर सिंह ने जमीन गिरवी रखकर तकावी के रुपये दिये और बोले- "सारी दुनिया ही तकावी पर चलती है, क्या वे एक क्षण वैसी ही देखते रहे और बिना रसीद की प्रतिक्षा किये चल दिये। समझे?"[73]

२.२.२.३६ कलंकी अवतार :

इस कहानी में रोपन वारी परसडीहा का रहने वाला है। भेंदू सिंह गाँव का जमींदार है। रोपन बारी की जीविका के रुप में कुछ खेती एवं लोगों के यहाँ सुख-दु:ख के क्रियाकर्म से मिला धन। जमीन तो उनकी बिटिया की शादी में चली गयी थी। भेंदू सिंह ने ही वह जमीन ले ली थी। भेदू सिंह के पुत्र की शादी में भी उसे या किसी प्रजा को भी कपड़े आदि न मिले थे। भेदू सिंह के बडे पुत्र की मृत्यु शादी के एक साल के भीतर हो गयी थी तो उन्होंने मृत्यु का आरोप रोपन का कार्य ठीक से न करने पर लगाया। जिससे रोपन काफी दु:खी हुआ। रोपन ने उधर न जाने की कसम खाई थी। वह सिर्फ घनश्याम के पास ही बैठता था, और सुखसागर सुना करता था। एक दिन अचानक एक घुडसवार को उधर जाता देख उसके दिमाग में घुडसवार के रुप में भगवान वाली कथा याद आयी, वह भी पीछे-पीछे दौड चला, वहाँ बहुत देर बाद भेंदू सिंह ने उसे बताया कि वे देवल के देखनहार है। लेकिन उस बीच भी सेवा टहल की रोपन बारी को किसी ने खाने तक के लिए न पूछा। जब वह घुडसवार चला गया तो मुन्नू बाब ने पोटली थमाते हुए अपनी अम्मा का संदेश दिया।"मैं मुन्नू बाबू हूँ। यह लो मेरी अम्मा ने दिया है। तुम खाना नहीं खाये हैं न? मेरी अम्मा ने कहा धीरे से रोपन को दे आओ। और देखो दादा न देखने पाये। लो भाई मैं तो चला। आज हमारा घोडा बीमार Æ..."[74]

२.२.२.३७ मुरदा सराय :

इस कहानी का प्रमुख पात्र हरी जैसे ही घर के अन्दर चला जाता है तो पत्नी को चारपाई पर अस्त-व्यस्त देखकर थोडा चौंक जाते हैं और पूछा क्या तबियत ठीक नहीं है? दो तीन बार में भी कोई जवाब न मिला तो फिर से करेदा तो पत्नीने सांकेतिक जवाब दे दिया। पत्नी का जवाब पाकर चचिया को बुलाने के लिए गया। चचिया ने आने की सहमति तो दी लेकिन मुझे घर न जाने की हिदायत भी दी। बहुत देर बाद मैं घर पहुँचा तो पत्नी ने चोटी खोलने और लाकेट उतारने को कहा, यह काम कर ही रहा था कि चचिया ने भी खूब सुनाया। मैं फिर वहाँ से चला आया। कुछ देर बाद चचिया ने

बताया कि बहू चली गयी। मैं अवाक रह गया और काफी समय पत्नी के पास रोता रहा। मैं उस नवजात शिशु को चचिया की गोद में देकर पत्नी के अन्तिम कार्य के लिए पाँच व्यक्तियों के साथ चल पड़ा। रास्ते में रात्रि होने पर मुरदा सराय में रुका वही पर एक अन्य व्यक्ति खाना बाकर खाकर सो गया और बचा खुचा सूरदास को दे दिया। सब कार्य सम्पन्न करने के बाद घर पहुँचा तो चचिया फिर दहाड मारकर रोने लगी। नवजात बच्चे की मृत्यु का समाचार बता दिया, फिर बच्चे को कपड़े में लपेटकर पत्नी का लाकेट, बच्चे के कपड़े आदि लेकर मुरदा सराय की तरफ चल पड़ा, वहीं मैंने सूरदास को फिर देखा शायद वह पहचान न पाया उसके साथ सुलक्खी भी थी। मैं दिन भर इधर - उधर घूमता और शाम में मुरदा सराय में रहता और उस गठरी को हमेशा चिपकाए रहता। सभी आने-जाने वाले कहते-रहते कि पता नहीं कौन है। कोई कहता कभी मस्जिद में पानी, पीता है, कभी मन्दिर में सभी काम आश्चर्यजनक है। भीख भी नहीं माँगता, सुलक्खी सामने धूप में बैठी थी, आज उसने श्रृंगार किया हुआ था। वह मुझे देखकर जाने क्यों शरमा गयी। मैं एक ओर निकल गया चुपचाप मैं इस सराय से निकल जाना चाहता था कि तभी एक मोटे पर सधे हुए कण्ठ की आवाज ने उढ़ते पैरों को बाँध लिया।

2.2.3. अमृता-३ सम्पूर्ण कहानियाँ (३)

२.२.३.१ मरना एक पेड का :

मरना एक पेड़ का इस कहानी में जिस पेड़ के मरने की बात कही गयी है, वह पेड़ पाकड का है। पाकड़ का पेड़ इस कहानी के मुख्य पात्र 'परमेसर' या परमेश्वर बाबू का प्रतीक है। पेड़ो में पाकड़ ही एक ऐसा पेड़ है जो अलग-अलग मौसमों एवं समयों में अलग-अलग तरह के एक या एक से अधिक रंगों से नहा उठता हैं और उसका उपयोग करके कहानी में कथ्य बातों एवं कुछ मन:स्थितियों तथा पसंदगियों के लिए रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी थी। परमेसर के जीवन के दो महत्त्वपूर्ण प्रसंग इसी पाकड़ पेड़ से जुडे हैं, जिनसे परमेसर का जीवन इस रुप में परिणत हो गया। वैसे इस परिणति की स्पष्ट गवाही कहानी नहीं देती, कहानी के दो प्रमुख प्रसंग है १९६७ के आन्दोलन में युवा परमेसर का पी.ए.सी. का लाठी खाना तथा दूसरा है रेखा से वहीं

मिलना या मिला करना। परन्तु ये प्रसंग अस्पष्ट से हैं रेखा एवं परमेसर का मिलना 'प्रेम है भी नहीं भी' के बीच जिस तरह झूल रहा है उसी तरह आन्दोलन में लाठी खाने जेल जाने की वजहों बेवजहों में झूल रहा है।

२.२.३.२ श्रृंखला :

इस कहानी की मूल कथा जाति प्रथा से है। राठौर वंशी कन्या बिरजा का परगासी काछी से प्रेम और प्रेम का प्रतिफल बिरजा को गर्भ ठहरता है। वे दोनों एक दूसरे से विवाह करना चाहते हैं। लेकिन कुलमर्यादा के लिए राठौर वंशी पंचायत दोनों को खत्म कर देने का फैसला देती है। लेकिन सूबेदार पाण्डेय नामक नवयुवक इस कहानी के प्रमुख खलनायक ललता सिंह है। जो ललता सिंह के बेटे शादी में तीन लाख दहेज स्कूटर, टी.वी., रुम कूलर आदि चीजें लेता है। विवाह के अभी दो महीने बीते होंगे कि दासियों नौकरानियों द्वारा प्रचारित बात गाँव में आग की तरह फैल गई ललता सिंह की बहू गर्भवती है। नोना चमाइन को पाँच सौ रुपया दक्षिणा देकर उनहोंने गर्भपात कराया और अपनी डूबती नाव को बचा लेने में सफल हुए। ललता सिंह की पुत्र वधू रामदेवी बकेना गाय तरह निष्फल पड़ी रही। बहू को बनारसी अस्पताल में ले गये कोई दोष नहीं था दोष था बेटे देवल में संतान पैदा करने वाले जीवाणू है ही नहीं। लेकिन ललता सिंह वंश वृध्दि के लिए सोवरन को बहू के साथ संभोग करने लगाते है। जिससे उनके घर में नन्हें शिशु ने कदम रखा। पांडे ने ललता सिंह को पंचायत के सामने बेनकाब कर दिया। पांडे कहता है कि यह श्रृंखला अभी आगे जायेगी। धैर्य की जरुरत है। चैतन्य बने रहना ही कर्तव्य है।'[75]

२.२.३.३ काला जादू :

काला जादू इस कहानी में उन ढ़ोंगियों, लम्पटो एवं धूर्त लोगों का वर्णन है जो अबोध भोले भाले लोगों द्वारा पूजे जाते हैं, गाँव में पूजे जाने वाले व्यक्ति हर प्रकार के अनैतिक आचरणों में लिप्त रहते है। आचार्य कमलाचरण ऐसे ही ज्योतिषी एवं तांत्रिक हैं तथा भृगुसंहिता के ऐसे ही अन्य जानकार हैं, पंडित सूरज त्रिपाठी। इनका भण्डाफोड

करता है पदभूषण जो स्नातकोत्तर छात्र है जो वैज्ञानिक एवं तर्क पूर्ण दृष्टि रखता है। पदभूषण के चाचा त्रिलोकी सिंह जब यह जानते हैं कि किस तरह से समाज को बेवकूफ बनाकर इन ढ़ोंगी महात्माओं ने हजारों रुपये ठग लिए तो वे कमलाचरण को लातों घूसों से मारते हैं। भूषण बोला "आप लोग अंधविश्वास में झूलते रहना छोड दीजिए। कभी रहा होगा यह असाध्य रोग जिसकी दवाएं न मिलने से इसे भूत-प्रेत, पिशाच आदि की खुंटी पर टांग दिया गया होगा। अब यह असाध्य रोंग नहीं है। हमें तर्क अंधविश्वास के द्वंद्व में लाचार होने की जरुरत नहीं है।"[76] विशालाक्षी का कुष्ठ रोग तो डाक्टरी ईलाज से ठीक हो सकता है। लेकिन अंधविश्वास के कारण ढ़ोंगी बाब के पास ले जाते हैं फिर विशा को कुष्ठ हो जाने के बाद माथूर विशा से शादी के लिए साफ इन्कार कर देता है। विशा का हर परेशानी में साथ देता है भूषण और विशा भूषण की हो जाती है। विशा के घरवाले के सामने हर एक प्रकार की परेशानियाँ आ जाती है और किस प्रकार अंधविश्वास दूर होता है, यही इस कहानी का मुख्य कथानक है।

२.२.३.४ चरित्रहीन :

रेणु एम.ए.की छात्रा है। रेणु को उसके मकान मालिक का बेटा सुरेश प्यार करता है, जब यह वाब लड़के के पिता को ज्ञात होती है तो वह उसे डाँटते है और सुरेश से कहते है कि रेणु के साथ शादी करने का सपना भूल जा। उन्होंने अपने किराएदार की लड़कियों को चरित्रहीन कहा है। अन्त में रेणु का विवाह सूरज जैसे समझदार ग्रामीण युवक से होता हैं। विवाह के बाद सुरेश फिर रेणु से छेडखानी करता है, जिस पर रेणु उसे फटकार देती है, तुरन्त ही सुरेश मकान खाली कराने को कहता है। सूरज एवं रेणु मकान खाली करके जाने लगते हैं तभी सूरज एवं सुरेश में बहस हो जाती है। "चरित्रहीन कौन है? वह जो किसी मासूम लड़की को शादी के पहले आलिंगन में बाँधने की नीचता करता है या वह जो इस कदर कमीने आदमी को ठोकर मार देती है।"[77] ‡ÃÖ तरह वह सुरेश को चरित्रहीन सिध्द कर देता हैं।

२.२.३.५ सुनो परीक्षित सुनो :

प्रस्तुत कहानीमें मुख्य रुप से अर्जून एवं अश्वत्थामा के बीच जो महाभारत युध्द हुआ उसकी कथा का वर्णन है। गुरु द्रोण ने छल और धोके से एकलव्य से गुरुदक्षिणा के रुप में अँगूठा माँगा, क्योंकि गुरु द्रोणाचार्य अर्जून को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर कह चुके थे। एकलव्य धनुर्धर विद्या में अर्जुन से भी आगे निकल गया था। अश्वत्थामा ने किस प्रकार से अग्णिबाण का प्रयोग किया एवं अर्जून ने ब्रम्हअस्त्र का प्रयोग किया। इन अस्त्रों के प्रयोग के पश्चात उसके क्या दुष्परिणाम हुए उसी को परीक्षित देखते हुए कलियुग को परिभाषित कर रहे हैं। परीक्षित अर्जून की पुत्रवधु उत्तरा के गर्भ में अश्वत्थामा के बाणों से श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित किए जाते हैं। यह शीर्षक इसलिए रखा गया है क्योंकि परीक्षित का समय द्वापर का अन्त एवं कलयुग का प्रारम्भ है।

२.२.३.६ शरीफ लोग :

शरीफ लोग यह कहानी पढ़ते समय ऐसा लगता है कि यह कहानी बेरोजगारी पर लिखी कहानी है परन्तु बाद में यह स्पष्ट हो जाता है। एम.ए. पास युवक हरीश को नौकरी न मिलना स्थानीय स्कूल के बी.ए. पास हेडक्लार्क को पिछडी जाति का होने के कारण आरक्षण में नौकरी मिली। हरिश एम.ए. करने के बाद भी उच्च जाति को नौकरी के सीट ही नही थे। उच्च जाति में पैदा होना क्या यह हरिश का दोष है। चंद्रप्रकाश ने कई गलतियाँ की थी, रेवा यादव की भी होमवर्क की गलतियाँ थीं। हरिश रेवा यादव से प्रेम करने लग जाते है सारे गाँव वालो को, पता चल जाता है तब सुमेर सिंह (पिता) ने कहा, "आजकल आशनाई चल रही है? और तुम्हारे जैसा बदचलन आवारा सारे जहान में खोजे से नहीं मिलेगा। लड़कियों के स्कूल का क्लार्क कह रहा था कि कोई मास्टरनी आयी है नयी नयी जिससे तुम इष्क कर रहे हो। रोज उसके 'कुवाटर' पर जाते तुम्हे शरम नही आती।"[78] हरिश रेवा यादव की और खिंचता चला जाता है, और हेडक्लार्क चंद्रप्रकाश को बहुत, ही पिटाई होती है। तब से चंदर को स्कूल की इमारते अनजान जैसी प्रतीत होती है। हरिश को लग रहा था कि बेहूदे आरक्षण का उन्होंने जवाब दे दिया है।

२.२.३.७ प्रमाण पत्र :

इस कहानी में कलक्टर ठाकुर गजराज सिंह बड़ा ही शैतान किस्म का व्यक्ति है। वह पूरी कहानी में अन्य किसी को तो नहीं सताता है परन्तु अपनी बेटी को उसकी इच्छाओं के खिलाफ जीते रहने को मजबूर करता है। वह उसकी शादी उसके बचपन के मित्र प्रेमी चन्द्रवंशी ठाकुर सोमेश्वर से नहीं करता है। गजराज सिंह उमा की शादी सूर्यवंशी राणा श्याम सिंह से करना चाहता है। जिसको उमा पसंद नहीं करती है। इसी कारण उमा का नर्वस ब्रेकडाऊन होता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। डॉक्टर लंबी साँस लेकर बोले "ठाकुर गजराज सिंह अपनी बेटी के कातिल तुम हो।"[79] श्याम राणा डॉक्टर को कहते हैं,"उसकी मृत्यु का प्रमाण-पत्र तो बना दीजिए।"[80]

2.2.3.8 †´ÖÝÖ :

अमृता इस कहानी में प्रमुख पात्र के रुप में अमृता जो ठुकरायी प्रेमिका, परित्यक्ता पत्नी, कुँवारे मातृत्व को निभाती है। 'अमृता' में नायिका अमृता की मरणासन्न अवस्था में 'मैं' बनारस से कलकत्ता पहुँचता है क्योंकि उसे युवाकाल में किया हुआ अपना वादा निभाना है। अमृता मैं के दोस्त की बीबी थी, बाद में सुधीन भट्टाचार्य की रखेल बनकर रहती है। मैं के साथ भी भोग्या की बात चली थी।

अमृता ठाकुर से कहती है।"सुनो ठाकुर, नारी अगर कुवारा मातृत्व ढ़ोती है तब भी शिशु यीशु को जन्म देती है अविवाहित मातृत्व ढ़ोती है तो यशोदा बन जाती है, किन्तु ये दोनों शब्द आज पुरष की दुनिया में पाप बन गये है?"[81] †´ÖÝÖ †×¾Ö¾ÖÖ×ÆüŸÖ मातृत्व से ग्रसित है। अमृता आगे चलकर वह शरीर संबंधो को नकारकर नारी के प्रति प्रेम में परिणत हो जाती है। 'अमृता में अमृता अलग अलग रुपों में सामने आती है। अमूर्त प्रेम की तमाम परिस्तितियों का विवेचन अमृता कहानी मे स्पष्ट हो जाता है।

२.२.३.९ आदमखोर पैंथर :

'आदमखोर पैंथर' कहानी में जमीनदार बाबू सिधारी सिंह की शोषक प्रवृत्ति के साथ-साथ रिश्वतखोरी, निम्न जाती का शारीरीक शेषण छोटी बड़ी जातियों में अपने

फायदे के लिए मिली भगत को प्रमुखता से यह कहानी उजागर करती है। बाबु सिधारी सिंह ने शकूर मियाँ के बेटे सुलछना का सरेआम कत्ल किया फिर भी शकूर मियाँ थाने में रिपोर्ट लिखाने तक नहीं जाते। ठाकूर सिधारी सिंह के इस अमानवीय कुकृत्यों को छिपाने के लिए हरिजन नेता रामदेव, सुहेल और थानेदार को रिश्वत देकर खरीद लेता है। चमार लोग बगावत पर आ उतरे थे चमारोंने ठाकुर की कोठी को घेर लिया था। थानेदार कहता है कि "चुप रहो शकूर, तुम पहले ही सारे कार्ड दिखा देते हो, पूर्वांचल पैंथर तो तब आता है जब जनता सही बात जानकर पुलिस के जुर्म के खिलाफ खुलेआम सर उठाती है। अभी ये लोग पक्के पैंथर नहीं बने है। इन्हें शान्त करने के लिए पाँच लफ्ज काफी हैं।"[82]

ठाकुर सिधारी सिंह की रखैल हमेशा साथ रहनेवाली हमबिस्तर नौकरानी सुरसतिया का तो शारीरिक शोषण तो करता ही है साथ में सुरसतिया की बेटी बड़की का भी शारीरिक शोषण करता है। इसके लिए सुरसतिया भी साथ देती है। सुरसतिया मनसा से कहती है कि "तुझे अब नहीं बकसूंगी, नीच कुतिया तू मुझे दोस लगावत है। मैं सिधारी की जांघों के नीचे सोवती हूँ हरामजादी, तू यह भी नहीं जानती दोगली की सिधारी ही तेरा बाप है, और वही होगा तेरा खसम भी। वही जेठरी का भी बाप था। वही जेठरी का खसम भी था।"[83] इस तरह सुरसतिया की अब आदत बन जाती है कि अपनी जनी बेटी के पाप की कमाई खाती है।

थानेदार, शकूर मियाँ ठाकुर के गुनाहों को दबाते है और अंत मे सुरसतिया को भी अपने आचरण पर पश्चाताप भी होता है।

२.२.३.१० एक और देवयानी :

'एक और देवयानी' इस कहानी में आंतरजातीय विवाह को सड़ी गली अंधश्रध्दा रुढ़ी परंपरा के कारण विरोध किया जाता है। इस कहानी में स्त्री प्रमुख पात्र के रुप मे नंदिनी पुरष पात्र के रुप में नंदिनी के पिता आचार्य आद्याप्रसाद और सुनिल हैं। आचार्य आद्याप्रसाद एक पहाड़ी पंडित हैं, जो एक ब्राम्हण हैं। सुनिल क्षत्रिय है। सुनिल और नंदिनी एक दुसरे से जी जान से चाहते है। सुनिल और नंदिनी अंतर्जातीय विवाह करना

चाहते हैं। सुनिल नंदिनी से कहता है कि तब क्या? अपने पिता को भेजो । कहो उनसे कि तुम मेरे बिना जी नहीं सकते। नंदिनी गुस्से में बोली "तुम्हें भ्रम है। सच तो यह है कि न तो तुम्हारे पिता हम दोनों की शादी चाहते हैं, न मेरे पिता। आना तो लड़की के पिता को ही पड़ता है। यही दस्तूर है। है कि नहीं।"[84]

सुनिल और नंदिनी इन दोनों की शादी के लिए दोनो के माता-पिता की अनुमति नहीं मिलती इसलिए दोनों घर से भागकर किसी मंदिर में जाकर शादी कर लेते है। घर से भाग जाने की घटना पेपर में छप जाती है। जिससे दोनों परिवारों की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचता है। सुनिल के पिता ने मुकदमा कर देने की धमकी भी दी। कहा कि तुम और तुम्हारी लड़की मेरे बेटे को फँसा कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हो। अपनी चरित्रहीन बेटी को मेरे पुत्र पर लादना चाहते हो। आचार्य जी ने कहा "यह मेरे जिंदगी का अंत है शांतीलाल। मैं यदि पुत्र से छल जाता, पत्नी से छला जाता, पुत्री से छला जाता तो इतना दु:ख नहीं होता। मैं तो एक व्यक्ति में आस्था रखता था, आज मेरी आस्था ने छला है मुझे। ईमानदार छल करे तो धारणा बदलनी पड़ती हैं। शिष्य छल करे तो वत्सलता बदलनी पड़ती है, पर आस्था छल करे तो काया बदलने के अलावा कुछ भी शेष नहीं बचता।"[85] अपनी रुढी परंपराओ में आस्था रखने वाले आचार्य आद्याप्रसाद आंतरजातीय विवाह के कारण अपनी काया को ही बदलना चाहते हैं।

२.२.३.११ अमोक्ष :

'अमोक्ष' इस कहानी में शिवप्रसाद सिंह जी ने बुरे कर्मो का फल बुरा ही होता है। बुरे कर्म करने वालों को मोक्ष नहीं मिल पाता। इस कहानी का प्रमुख पात्र सुब्बा चौधरी जो गांव को छोड़कर शहर चला जाता है। शहर में जाने के बाद पिता शुभराज ने पहले लड़की की शादी धूम-धाम से की दुसरे लड़की की भी शादी धूम-धाम से करता हैं। लोग अचंभे में थे कि पहली शादी में हजारों रुपए खर्च करने के बाद भी उसकी आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ रही। और दुसरी शादी तो दहेज देकर तय हुई थी। एक दिन शुभराज से कल्लू कलवार ने पूछ ही दिया सुब्बा बनारस में पढ़ाई करता है वहाँ कौन सी लक्ष्मी बरस गयी कि वह बटोर-बटोर कर तुम्हें भेजता है।

शुभराज सुब्बा से काम धंदे के बारे में पूछता है तो मेरा काम भी एक जगह से दूसरी जगह सामान पहुँचाना ही है। सुब्बा स्मगलिंग एवं उससे जुड़े अन्य गलत पेशों से बहुत सी धनराशि जमा करता है। लेकिन बुरे कर्मो का फल हमेश बुरा ही होता है। अलका की शादी में सुब्बा के शहरी मित्र अतिथि बनकर आये। सुब्बा के दोनों भाइयों ने भी बाप को झटकार दिया "हमारे गुरुजी कहते हैं कि देश की नई पीढ़ी को रसातल की ओर बुड़ढ़े ले जाते है। वह परिवर्तन सह नहीं सकते।"[86]

सुब्बा के शहरी स्मगलर दोस्तो ने शोभा के साथ बलात्कार किया शोभा का सफेद लहंगा खून मे डूबा था। शोभा सुब्बा के एक दोस्त के कमरे में मिली। सुब्बा को कुष्ठ हुआ जिससे उसके सारे बदन में कीडे पड़ गये थे। सारा बदन सड़ गया ऐसा भोगा ऐसा भोगा कि उसकी यातना देख कर तो लगता था भैया कि स्वर्ग नरक सब यहीं भेगना पड़ता है। इतने पाप और इतने प्रायश्चित के बाद वह तो अब मोक्ष पा गया होगा ना?

"मरने के बाद क्या होगा कोई नहीं जानता, पर इतना सत्य है कि जब तक जीवात्मा को शोभा के आक्रान्त चेहरे की सिकुड़ने भय से विस्फुरित ऑखो में वहशी शक्लें याद रहेंगी तब तक तो मोक्ष संभव नहीं। अगर सुब्बा की जीवात्मा अपने पाप के लिए प्रायश्चित करके पाप को भुला दे, उसे लगे कि पाप का दंड़ भोग लिया तो संभव है। पर यह हो भी जाय तो उस अत्याचारी की तामसी छाया शोभा की आँखों की पुतलियों में जब तक प्रतिबिंबित रहेगी अमोक्ष का कोई विकल्प संभव नहीं है।"[87]

२.३ डॉ. शिवप्रसाद सिंह के नाटक साहित्य का उदभव और विकास (सामान्य परिचय)

प्रस्तावना :

डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी ने नाटक साहित्य में उतनी रुचि नही दिखाई है, जितनी उपन्यास और कहानी साहित्य में दिखाई है। डॉ.शिवप्रसाद सिंह जी ने कुल दो ही नाटकों पर कलम चलाई है। घाटियाँ गूंजती हैं और अश्मक का फूल इन नाटकों की मूल पृष्ठभूमि युध्द पर आधारित है। विदेशी आक्रमणकारियों के दमन चक्र को तोडने का प्रयास लेखक ने अपने नाटक के माध्यम से किया है। युध्द के समय भारतीय जनता की, एकता का प्रतिनिधिक रुप नाटक में देखने को मिलता है।

२.३.१ घाटियाँ गूंजती है :

बीसवीं सदी में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना हिरोशिमापर अणू-बमका गिराया जाना थी, इसमें शायद ही कोई सन्देह करे। इस घटनाने पूरे विश्व में एक अजीब उथल-पुथल खड़ी कर दी। इस आघातने हमे मनुष्य जातीके भविष्यपर फिरसे सोचने-विचारनेकी प्रेरणा दी। बीसवी सदी के उत्तराध्र्द में एक ऐसी घटना भी घटी है, जो हिरोशिमाके विनाशसे कहीं अधिक भयंकर और अणुशक्ति के दुरुपयोग से कहीं अधिक जघन्य रही है। यह घटना है भारत के साथ चीनका विश्वासघात। यही नाटक की कथा का आधार है।चीनी शासक न केवल तानाशाह, निरंकुश और क्रूर है बल्कि विकट रुपसे छद-छदम में माहिर भी है। चीनी शासक बड़ी आसानी से सचको झूठ और झूठको सच में बदल देते हैं। भारत की पूरी सीमा पर फैले युध्द-क्षेत्रकी सबसे हृदयविदारक घटना थी, बोमादि लाका पतन। १६-१७ नवम्बरको रात के समय चीनी सेनाएँ छिपकर दिराड़जंगकी घाटीको पार करके बोमादि लाकी बस्तीपर टूट पड़ीं। १८ नवम्बर रविवार के दोपहर बाद चीनियों का बोमादि लाके कस्बे पर कब्जा हो गया, जो बगीचों का नगर कहा जाता है। सारा देश पीड़ा और आत्मग्लानिकी आगमें लहर उठा। चीनियोंको बोमादि लाके पासका गुप्तमार्ग कैसे मालूम हुआ? चीनी सेना के मार्ग को रोकने का वीरतापूर्ण कार्य हमारी सेना ने किया। इस संदर्भ में लेखक पार्श्वभूमि में कहते है- "से लाके पास ब्रिगेडियर होशियारसिंह और उसके समरधनी जवानोंने आगे बढ़कर मोर्चेसे कतराती हुई चीनीसेनाके मार्गको रोकनेका जो वीरतापूर्ण प्रयत्न किया और मातृभूमिकी रक्षाके लिए इन मुट्टी-भर भारतीय वीरोंने अपने प्राणों की जैसी आहुति दी वह हमारे इतिहासकी अविस्मरणीय घटनाके रुपमें ज्वलन्त अक्षरों में अंकित रहेंगे।"[88]

यह सार परिवेश इस नाटक का आधार है। स्पष्ट ही दो सहस्त्र मील लम्बी सीमापर होनेवाला युध्द, इसकी बीभत्स लीलाएँ, देशकी एकता और अडिग संकल्पकी शक्ति, अपमान और ग्लानिका रोमांचकारी भाव, शत्रुकी कृतघ्नता, उसका छल-छदम, राजनीतिक प्रचार, भारतीय जनता के स्वयम्भू शुभचिन्तक, चीनियोंका पाखण्ड, शांति का नाम लेनेवाले लूटोरों की खोखली भाषा, अफ्रो-एशियन एकता को ठोकर मारनेवाले नृशंस शत्रुकी लच्छेदार मित्रता-वाणी, किसी भी एक नाटक में कभी न सिमट सकनेवाली

सामग्री है। नाटक की पृष्ठभूमि के संदर्भ में लेखक कहते हैं- "इस पृष्ठभूमिपर संघर्षरत भारतीय राष्ट्रकी आत्माका पूर्ण प्रकाश प्रस्फुटित हो सके। यह पूरे राष्ट्रके लिए अग्निमें अवभृथ-स्नानका पर्व है इसमें जो कुछ अनावश्यक, जीर्ण-शीर्ण अनुपयोगी, कल्मषपूर्ण और निरर्थक होगा, वह बच रहेगा। इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रका यह अवशिष्ट ज्वालासे अक्लिन्न तेजस्क रुप पहलेसे कहीं अधिक भास्वर और प्रकाशपूर्ण होकर चमक उठेगा।"[89]

संकट के समय हमारे देश में एकता नहीं होती, ऐसा कहा जाता है। लेकिन चीन ने हमारे देश पर आक्रमण किया तब ऐसी अद्‌भूत घटना घटी है। इस संदर्भ में विवेक रोज से कहता है- "सच रोज मुझे तो कभी आवेशमें लगता है कि यदि इस पूरे देशकी जनताको एक जगह पा जाता तो उसके चरणों- में शीश नवा देता, कहता कि देवता तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी हिम्मत धन्य है, तुम्हारा साहस बेजोड है। तुम्हारे चरणोंपर लाख-लाख कवि, पत्रकार बुध्दिजीवी कुर्बान हैं।"[90] संकट में एकता ही हमारे देश का गौरवगान है।

संदर्भ संकेत

1. 'मुरदासराय' - ›Ö. शिवप्रसाद सिंह, भूमिका (कुछ न होने का कुछ), ¯Ö. 10
2. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह (तट चर्चा) में
3. शिवप्रसाद सिंह - संपा. अरुणेश नीरन, पृ. ६२
4. हिंदी उपन्यासों का शिल्पविधान - डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा, पृ. २३४
5. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह (तट चर्चा) में, पृ. ४८६
6. शिवप्रसाद सिंह - (साम्प्रदायिकता का आर्थिक परिप्रेक्ष्य और अलग-अलग वैतरणी - लेख), श्री. कुँवरपाल सिंह का लेख, पृ. ६१
7. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह (नुक्कड सभा भूमिका से)
8. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४०
9. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२७
10. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६३
11. गली आगे मुडती है - बनाम उपन्यासों की गली का नया मोड (लेख) मान्धाता राय का लेख
12. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, (नुक्कड सभा भूमिका से)
13. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, (नुक्कड सभा भूमिका से)
14. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि संपा. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' (सृष्टा जिसे मैं जानता और सृष्टि जिसे मै पहचानता हूँ - लेख), पृ. ४९
15. अक्षरा - (अप्रेल - जून १९९५), डॉ. शिवप्रसाद सिंह, आत्म साक्षात्कार, पृ. ७७
16. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, 'सिर्फ एक मिनट' भूमिका से
17. हिंदुस्तानी (अक्तूबर-दिसंबर १९८९) अभिलेखों मे चंदेलकला, अर्चना त्रिपाठी, ¯Ö. 72
18. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०४
19. नीला चाँद - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 19
20. नीला चाँद - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 431

21. नीला चाँद - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 347
22. नीला चाँद - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 476
23. नीला चाँद - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 423
24. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह, पृ. ४७८
25. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ०३
26. नीला चाँद - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 139
27. नीला चाँद - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 376-77
28. नीला चाँद - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 534
29. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, आत्मन भूमिका से, पृ. १५
30. ¿Öî»ÖÂÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 181
31. ¿Öî»ÖÂÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 243
32. मंजुशिमा : डॉ. शिवप्रसाद सिंह, कठिन है डगर पनघट की प्रस्तावना से, पृ. ०७
33. मंजुशिमा : डॉ. शिवप्रसाद सिंह, कठिन है डगर पनघट की प्रस्तावना से, पृ. ०६-७
34. बीहड़ पथ के यात्री संपा - प्रेमचंद जैन, नाहिद जी का लेख, पृ. २४९
35. शिवप्रसाद सिंह संपा. - अरुणेश नीरन, मंजुशिमा : मृत्यू से साक्ष्य दामोदर खडसे, पृ. ९१
36. शिवप्रसाद सिंह, परिशिष्ट - मंजुशिमा पर दो प्रतिक्रियाएँ, पृ.- २१५, २१६
37. †Ö¸üÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ±ú»Ö¯Ö ÃÖê
38. †Ö¸üÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 51
39. †Ö¸üÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 123
40. †Ö¸üÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 185
41. †Ö¸üÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 105
42. †Ö¸üÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 181
43. †Ö¸üÖ - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Öé. 208
44. कुहरे में युध्द : डॉ. शिवप्रसाद सिंह, रुकिए आगे भग्नावशेष हैं- भूमिका से, पृ.९
45. मेरे साक्षात्कार - डॉ. शिवप्रसाद सिंह पृ. ९४

46. कुहरे में युध्द : डॉ. शिवप्रसाद सिंह, रुकिए आगे भग्नावशेष हैं - भूमिका से, पृ.२६०

47. ×¤»»Ößü ¤¸ Æ : ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 6-7

48. ×¤»»Ößü ¤¸ Æ : ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 567

49. ×¤»»Ößü ¤¸ Æ : ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 603

50. ×¤»»Ößü ¤¸ Æ : ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, °»Ö¯Ö ÃÖÖ

51. प्रकर (जनवरी १९९५): डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद का लेख, पृ. २६

52. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८

53. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५१२

54. मेरे साक्षात्कार - डॉ. शिवप्रसाद सिंह-किरनचन्द्र शर्मा बातचीत, पृ. ९६

55. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८०

56. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९५

57. अन्धकूप - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५५

58. अन्धकूप - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७९

59. अन्धकूप - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१०

60. अन्धकूप - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२२

61. अन्धकूप - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २८३

62. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २८

63. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४८

64. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९७

65. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०३

66. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३५

67. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२६

68. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २३७, ३८

69. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २५१

70. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६५

71. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६६

72. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७४

73. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २८४

74. एक यात्रा सतह के नीचे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २९२

75. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 37

76. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 54

77. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 74

78. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 108

79. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 122

80. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 122

81. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 136

82. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 156

83. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 153

84. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 172

85. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 176

86. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö.185

87. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 187

88. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८

89. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८

90. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५३

तृतीय अध्याय

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष

3.1 भारतीय वर्ग-संघर्ष की पृष्ठभूमि

3.2 भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष का प्रादुर्भाव

3.3 वर्ग-संघर्ष का सिध्दांत

3.4 वर्ग-संघर्ष और डॉ.शिवप्रसाद सिंह का गद्य

3.4.1 उपन्यास साहित्य में वर्ग-संघर्ष

3.4.2 कहानी साहित्य में वर्ग-संघर्ष

3.4.3 नाटक साहित्य में वर्ग-संघर्ष

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के
गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष

प्रस्तावना :-

मानव-समाज में वर्ग-संघर्ष सार्वकालिक और सार्वभौमिक रहा है, पर प्रत्येक देश और समाज में इसके स्वरुप में कुछ भिन्नता रही है। कार्ल मार्क्स व्दारा वर्ग-संघर्ष को व्यवस्थित रुप से व्याख्यायित करने से पूर्व वर्ग-संघर्ष, वर्ग-स्वार्थ के रुप में जाना पहचाना जाता था। वर्ग-स्वार्थ में प्रत्येक वर्ग अपने स्वार्थ की बात सोचता था, जो प्रमुख रुप से आर्थिक स्थिती से उत्पन्न होते थे। प्रत्येक आर्थिक वर्ग की न केवल आवश्यकताएँ भिन्न होती थी, अपितु अनके सांस्कृतिक और नैतिक स्वार्थ भी भिन्न होते थे। मार्क्स व्दारा प्रतिपादित यह सिध्दान्त आज भी सार्थक है कि वर्ग-स्वार्थ से वर्ग-संघर्ष और वर्ग-संघर्ष से वर्ग युध्द उत्पन्न होता है।

भारतीय वर्ग-संघर्ष का आधार समाज की वर्ण-व्यवस्था रहा है और उच्च वर्णों को प्राप्त विशिष्ट अधिकारों के प्रति निम्न वर्ग में सदा कुलबुलाह रही है। दास प्रथा का प्रचलन भी वर्ग-भेद का ही अंश था। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न लोग दास रखते और उनका शोषण करते थे। अत: आर्थिक परिस्थितियां समाज में विभिन्न वर्गो और उनके संषर्घो के स्वरुप का निर्धारण करती हैं। वर्ग-संघर्ष की दो अवस्थाएं होती हैं। प्रथम, ऊपर से शांत दिखाई देने वाले ज्वालामुखी की तरह शोषित, पीडित और अभावग्रस्त वर्गो के मन में क्रोध और घृणा का लावा उमडता-घुमडता रहता है। व्दितीय, इस अवस्था में फुटने वाले ज्वालामुखी की भाँति शोषित वर्ग की घृणा, विद्रोह, हडताल, प्रदर्शन, हिंसा आदि में फूट पडती है। साहित्य समाज-सापेक्ष होता है। अत: साहित्य में वर्ग-संघर्ष का चित्रण होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष मुखरित हुआ है।

3.1 भारतीय वर्ग-संघर्ष की पृष्ठभूमि :-

सृष्टि के आरम्भिककाल में मानव आर्थिक दृष्टि से भले ही समत्व को प्राप्त रहा

हो, किन्तु विचारों की दृष्टि से वह अवश्य ही विषमता को प्राप्त रहा होगा। मानव-मन में निहित इन स्वाभाविक विचारों की भिन्नता से शनैः शनैः समाज में अर्थ-वैषम्य की स्थिति उत्पन हुई। प्राचीनकाल में भी वैचारिक विषमता के कारण शास्त्रार्थ का आयोजन किया जाता था और जो विद्वान विजयी होता था, उसे शर्त के अनुसार धन-संपदा इनाम के रुप में दी जाती थी। कभी कभी उस समय भी उस धन के पीछे विद्वानों में संघर्ष हो जाता था। इस प्रकार समाज में स्वयं ही समागत अर्थ-वैषम्य की इस स्थिति ने प्रत्येक समाज और व्यक्ति में समाविष्ट विचारों की भिन्नता को और अधिक सम्पुष्ट किया। इसी के साथ उनके ह्रदय में संघर्ष एवं विरोध की भावना को भी जन्म मिला। अस्तु, समाज अति प्राचीनकाल से ही वर्ग-संघर्ष एवं वर्ग-विरोध रुपी सर्पिणी व्दारा ग्रसा जाता रहा है। कार्लमार्क्स ने विभिन्न वर्गो के पारस्परिक संघर्ष की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि-"उत्पत्ति के साधनों के लिए ही व्यक्तियों में पारस्परिक संघर्ष पैदा होता है।"[1]

श्री हीरालाल पालित ने लिखा है "वर्ग संघर्ष उत्पादन शक्तियों से उत्पन्न सम्बन्धों का परिणाम है, अतः वर्गयुक्त समाज के लिए वर्ग-संघर्ष एक प्रेरक शक्ति का काम करता है ।"[2] श्री भगवतशरण उपाध्याय जी ने भारतीय वर्ण-व्यवस्था को ही वर्ग-व्यवस्था का बदला हुआ रुप मानते हुए इनके आरम्भ के सम्बन्ध में लिखा है "भारतीय वर्णों का आरम्भ कब और किन कारणों से हुआ, यह बताना कठिन है, पर इसमें सन्देह नहीं कि संभवतः इनके कारण भी वे ही रहे होंगे जो अन्य देशों में वर्गों के उदय और विकास के रहे हैं। इन कारणों में मुख्य आर्थिक रहे है, इसे स्वीकार करने में शायद किसी को आपत्ति न होगी।"[3]

डॉ. मुंजुलतासिंह ने वर्ग-वैषम्य एवं सामाजिक विकृति का कारण एकमात्र धन को मानते हुए लिखा है, धन के ही कारण समाज में वर्ग-संघर्ष है और धन ही सामाजिक शक्ति सबलता का परिचायक है।"[4]

साधारणतया वर्ग-संघर्ष से अभिप्राय किसी समान वर्ग मे परिव्याप्त आर्थिक एवं वैचारिक वैषम्य से है। प्रथमतः प्रत्येक वर्ग अर्थ की दृष्टि से समान ही होता है, किन्तु कालान्तर में वैयक्तिक स्वार्थपूर्ण विचारक भिन्नता की प्रबलता के कारण उस वर्ग में

सहज ही संघर्ष एवं विरोध की भावना समुत्पन्न हो जाती है। इस वैयक्तिक विचारधारा से वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना को समाज में बढावा मिला, जिसकी रक्षार्थ संघर्ष हुए, जो वर्ग-संघर्ष की भावना के मूल स्त्रोत हैं। कार्लमार्क्स ने कहा है-"अभी तक घटित सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।"[5] वर्ग-संघर्ष के सिध्दान्त के प्रतिपादन का श्रेय कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक व एंजेल्स को है इनमें से भी प्रमुख रुप से कार्लमार्क्स को। इन दोनों लेखकों ने १८५९ में "दास कैपिटल" के अन्तर्गत कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो में इस सिध्दान्त का उल्लेख किया था।"[6]

भारतीय वर्ग-संघर्ष जहाँ तक इसकी पृष्ठभूमि का सम्बन्ध है, यह एक अति प्राचीन परम्परा है। लेकिन आधुनिक समाज में जहाँ एक ओर वैभवशाली लोगों और सम्पत्तिहीन लोगों के बीच या पूंजीपतियों एवं मजदूरों के बीच प्राप्त वर्ग-विरोधों तथा वहीं दूसरी ओर हमारी उत्पादन क्षमता में फैलती अराजकता को प्राथमिकता देने का सुपरिणाम है। इसकी सैध्दान्तिकता के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि आधुनिक वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ में उस रुप में हमारे सामने आता है, जिसे देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके स्थापन में १८ वीं शताब्दी के महान् फ्रांसीसी दार्शनिकों मोरेली एवं मैवली का अव्दितीय योगदान है। इन दार्शनिकों को उस समय के वैचारिक वर्ग का प्रतिनिधी माना जाता है।

फ्रांस के लिए जिन महापुरुषों ने क्रान्ति का बिगुल बजाया, उन्होंने किसी भी प्रकार का बाह्य प्रभुत्व स्वीकार नहीं किया। इसी के साथ उन्होंने धार्मिक प्राकृतिक विज्ञान सम्बन्धी राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं की कठोर आलोचना की उनका विचार था कि-"प्रत्येक वस्तू को विवेक के न्यायालय में अपने अस्तित्व का वर्चस्व सिध्द करना पडता है।"[7]

वर्तमान समाज में व्याप्त अन्धविश्वास अन्याय विशेषाधिकारों और अत्याचारों के स्थान पर चिरन्तन सत्य शाश्वत न्याय प्रकृति पर आधारित समानता और मनुष्य के जन्म सिध्द अधिकारों की स्थापना होनी चाहिए।

समाज में वर्ग-संघर्ष सदैव से रहा है और आज भी है। पूंजीवादी अभिजात वर्ग एवं शोषित निम्न वर्ग के संघर्ष को ही शोषित की प्रगति मानते हुए एफानसेव ने लिखा

है-"जितना ही अधिक वर्ग-संघर्ष होगा, उतना ही पुराने मूल्यों के बीच नए मूल्य (वैल्यूज) स्थापित होंगे, और इस प्रकार समाज की व्यवस्था में प्रगति आएगी।"[8]

इसी पूंजीवादी अभिजात वर्ग एवं निम्न वर्ग के संघर्ष के साथ शोषकों और शोषितों का, धनी और गरीब मजदूरों का संघर्ष भी था। आधुनिक समाज में शोषण अपनी चरम सीमा की ओर उन्मुख हो रहा है। चाहे राजनीतिक अथवा धार्मिक संस्थान हो, सामाजिक अथवा शिक्षण संस्थाएँ हों, सभी जगह संघर्ष वर्गभेद, गुटबन्दी इत्यादि दिखाई पडती है।

वाद-विवाद के भंवर में पडकर यह इन्द्रधनुषी समाजवाद अलग-अलग संघटक तत्त्वों के नुकीले कोनों नाले में पडे हुए कंकडो की तरह घिस-घिसकर जितना ज्यादा चिकना होता जाता है, उतना ही इसे तैयार करना आसान हो जाता है। मार्क्सवादी व्याख्या में यह बात अन्तर्निहित थी कि मार्क्स एवं एंजेल्स ने एक से अधिक बार कहा था कि समाजवादी क्रान्ति सबसे पहले औद्योगिक रुप से विकसित देशों में ही होगी, हीगेल ने एशिया के सैनिकवादी राज्य में विश्व-इतिहास की आत्मा को साकार होते देखा है। उसके व्दन्दात्मक इतिहास दर्शन को पूर्णतया उलट देनेवाले कार्लमार्क्स को उन्नत पूंजीवादी देशों में सर्वहारा क्रान्ति के माध्यम से इतिहास की समाजवादी निर्यात सिध्द होती प्रतीत हुई। "यानी मार्क्स के युग में दुनिया के सिरमौर बने हुए उन्नत पूंजीवादी देश ही, समाज-विकास के मार्क्सवादी नियम के अनुसार समाजवादी क्रान्ति के भी अग्रदूत होने वाले थे, नयी समाजवादी सभ्यता के निर्माताओं और उन्नायकों के रुप में उनकी स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहने वाली थी।"[9]

इसी बीच अठारहवी शताब्दी में फ्रांसीसी दर्शनशास्त्र के साथ-साथ नवीन जर्मन दर्शनशास्त्र का अभ्युद्य हुआ, जिसका चरमोत्कर्ष हीगेल के व्दन्व्दवाद के रुप में विकसित हुआ।"[10] इसके अन्तर्गत समस्त जगत् की गति, परिवर्तन रुपान्तरण और विकास का निरुपण किया गया है। सन १८३१ में "लियो में मजदूरों का सर्व प्रथम आन्दोलन था। "७ अक्टूबर सन १८८४ को साढें तीन लाख लोगों ने कनाडा में एवं १ मई सन १८८६ को शिकांगों में ८ घण्टे काम करने की मांग को लेकर संघर्ष किया। इतना ही नहीं, सन १८९० में इंग्लैण्ड, फ्रांस, रुस आदि देशों में श्रमिकों की मांगों को

लेकर हडताल कर दी गई।"[12]

जिस प्रकार एक ओर यूरोप के उन्नत देशों में आधुनिक उद्योगों का विकास हो रहा था, तो दूसरी ओर बुर्जुआ वर्ग का नव-प्रभात राजनीतिक प्रभुत्व मजबूत होता जाता था। इतिहास को नए दृष्टिकोण से देखने पर पता चलता है कि प्राचीन सारा इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास रहा है। संघर्षशील सामाजिक वर्ग अपने काल के आर्थिक संरचनात्मक सम्बन्धों से उत्पन्न होते हैं। समाज की आर्थिक संरचना ही वह वास्तविक आधार मानी जा सकती है। जिसे आरम्भ करके हम किसी ऐतिहासिक युग की कानूनी एवं राजनीतिक संस्थाओं तथा धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों के ऊपरी ढाँचे की व्यवस्था कर सकते हैं।

सहयोग प्राप्त करने का साधनसंघर्ष हो सकता है, लेकिन संघर्ष पर समाज की बुनियाद डाली जाए, इतना ही नहीं, अपितु हमारे सर्वांगीण विकास का आधार संघर्ष में ही माना जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। संघर्ष की भावना कोई नवीन नहीं है, वरन् इसका दिग्दर्शन प्राचीनकाल में भी होता है।

डार्विन महोदय की मान्यता है कि संघर्ष पशुता का लक्षण है और सहयोग मानवता का अर्थात् मनुष्य के स्वभाव में संघर्ष और सहयोग दोनों समानुरूपेण परिव्याप्त है। अगर प्राणी मानवता के विरुध्द आचारण करता है तो वह पशुता की कोटि में गिना जाता है। संघर्ष-सिध्दान्त के आविष्कारक के रुप में डार्विन महोदय का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। इस सिध्दान्त के व्दारा उन्होंने हमें उस मानवीय पाशविकता में सहयोग प्रदान किया, जिधर हमारी प्रगति अवरुध्द हो सके।

आधुनिक युग में ' एक्सप्लायटेशन' अर्थात् विकास का जो चारों ओर बोलबाला है, वह संघर्ष सिध्दान्त का सबसे विध्वंसकारी अवयव है। हमने युरोपी संस्कृति से ग्रहण किया है-मात्र निकृष्ट तत्त्व। अर्थात् निम्न वर्गीय सिध्दान्त। आज हम अपने अस्तित्व के लिए पूर्णरुपेण पश्चिम पर आधारित हो चुके हैं। केवल हमारी शिक्षा ही पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नहीं है, अपितु हमारा रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान इत्यादि सभी कुछ इससे प्रभावित हो चुका है।

समाज परिवर्तनशील है। समय के साथ परिवेश बदलते है और इसी के

परिणामस्वरुप समाज ने यह सिध्द कर दिखाया है कि युरोप में सब कुछ सोना (गोल्ड) नहीं है। इसमें अन्य तत्त्व भी समान रुप से आच्छादित हैं। महात्मा गांधी ने स्वर्ण के साथ विद्यमान अन्य तत्त्वों को उभारकर आकारहीन तत्त्वों को साकार बनाया। इतना ही नहीं, यूरोप की बुराइयों को भी स्पष्ट किया। लेकिन हमारे समाज में संघर्ष का जो विष घुल चुका था, उससे हम वंचित न रह सके। आज वही संघर्ष अपना तांडव नृत्य प्रस्तूत कर रहा है।

कार्लमार्क्स की इतिहास दृष्टि के अनुसार मनुष्य समाज विकास के विभिन्न चरणों में से गुजरता हुआ आज की स्थिति तक पहुंचा है, भले ही यह सामाजिक विकास इरादतन न हुआ हो, भले ही वह अबाध भी न रहा हो, परन्तू इतिहास की शक्ति उसे आदि साम्यवादी युग (दास युग) जब कठोर निरंकुश राज्य थे। सामंती युग से आज के पूंजीवादी युग तक लायी है, इन सभी युगों में इतिहास की एक खास गति रही है, "पैदावार की शक्तियाँ"। पैदावार के कुछ विशेष तरीके और ढंगो को "पैदावार की शक्तियाँ" कहा गयी और जो निरन्तर (लगातार) विकास शील रही हैं, इन पैदावार का शक्तियों की टकराव होता रहा है।" पैदावार के सम्बन्धों यानी स्वामित्व के रिश्तों से यह टकराव ही वर्ग-संघर्ष का मूल है, मार्क्स ने कहा है- "अब तक का सारा मानव इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास रहा है।"[13]

धनवान एवं निर्धनों, शक्तिशाली एवं निर्बलों, पूंजीपति और मजदूरों का शोषण तो आज की पृष्ठभूमि में भी रहा है। प्राणियों में एक-दूसरे को खा जाने की भावना रही है, क्योंकि संघर्ष की आधारशिला को अविश्वास का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। समाज में व्याप्त अविश्वास की भावना ही इसका मूल कारण रही है।

3.2 भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष का प्रादुर्भाव :-

भारतीय मनीषियों के व्दारा समाज में वर्ण-व्यवस्था की गई थी। आगे चलकर आश्रम-व्यवस्था का निर्माण किया गया, जिसमें मुख्य थे-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। लेकिन आधुनिक युग में न तो वर्ण-व्यवस्था ही सफल हो सकी है और न आश्रम व्यवस्था ही। आज समाज में किसी प्रकार की व्यवस्था नाम की वस्तू जीवित

नहीं है। आज हमारे समाज में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संघर्ष अपना घर बना चुका है। वर्तमान समाज में वर्ण-व्यवस्था या आश्रम-व्यवस्था के नाम पर मात्र खोखलापन रह गया है।

जैसे वर्ण-व्यवस्था, जाति व्यवस्था में परिवर्तित होने लगी, वैसे ही समाज में अनेक वर्ग विकसित होने लगे। आज उसी परिवर्तन का ही यह सुपरिणाम है कि जातिगत, वंशगत, समुदायगत, व्यवसायगत, राष्ट्रगत आदि विविधवर्ग आपना रुप लेकर उपस्थित हैं। समाज में इस वर्ग संघर्ष की प्रजनित करने में व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। केवल प्रजनन ही नही, अपितु इसको सींचने, बढावा देने, फुलित-फलित करने में इनका अप्रतिम सहयोग रहा है। "दूसरे शब्दों में वर्ग-संघर्ष केवल सिध्दान्त मात्र नहीं था, वरन् कार्य करने का सिध्दान्त था; जिसे इस रुप में १८ वीं और १९ वीं शताब्दी में समाजवादी आन्दोलनों व्दारा सव्ीकार किया गया।"[14] इस सम्बन्ध में डॉ.बी. बी. मिश्रने लिखा है-"मनुष्य की आर्थिक असमानता ही मुख्य रुप से सामाजिक विभेद को प्रभावित करती है, यद्यपि यह पूर्णरुपेण उसका निर्धारण नहीं करती। यह आर्थिक असमानता मूलत: उस सम्बन्ध के अन्तर से उत्पन्न होती है, जो एक व्यक्ति या व्यक्ति-समुदाय की सम्पत्ति अथवा उत्पादन और वितरण के साधनों के साथ होता है। यदि एक व्यक्ति जमींन का मालिक है, तो वह अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक महत्त्व प्राप्त करने लगता है। परन्तु इसके विपरीत यदि वह केवल पराई जमीन पर खेती करने वाला है, तो वह स्वयं को सामाजिक दृष्टि के अधोगत पाता Æ..."[15]

समाज में व्याप्त वर्गों के सम्बन्ध में प्रसिध्द विद्वान जी. डी. एच. कोल की मान्यता है कि-"वर्ग वास्तव में अनेक केन्द्रीय बिन्दुओं के चारों ओर स्थित व्यक्तियों का इस रुप में एकत्रीभाव है कि प्रत्येक केन्द्र के निकटवर्ती व्यक्तियों के विषय में विश्वासपूर्वक यह कहा जा सके कि वे वर्ग विशेष के सदस्य हैं, परन्तु जो केन्द्र से दूरी पर अवस्थित है, फलत: उसे पूर्णरूपेण किसी एक वर्ग में नहीं रखा जा सकता और ऐसे भी लोग हैं जिन्हें शायद ही किसी वर्ग में स्थान दिया जा सके।"[16] लिंग भेद एवं आयु के आधार भी भरतीय समाज में वर्ग-संघर्ष उत्पन्न करने में सक्रिय रहे हैं। सामाजिक वर्ग

समान हितों के लोगों को लेकर उनके उद्देश्यों की पूर्ति हेतु स्वयमेव उपस्थित होते रहते Æ...

अर्थ-नीतियों पर आधारित हमारी सामाजिक व्यवस्था में पग-पग पर संघर्ष देखने को मिलता है। संघर्ष का जन्म वैषम्य के व्दारा होता है। विषमता के अभाव में संघर्ष का प्रादुर्भाव कठिन ही नहीं असंभव है। डॉ. सुरेन्द्रनाथ तिवारी ने भारतीय समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष की चर्चा करते हुए लिखा है, "आज के जीवन में अर्थ ही एकमात्र विषमता का मूल कारण है। अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नये वर्गों का प्रादुर्भाव भी हुआ है।" फलतः वर्ग-चेतना और वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रुप से प्रतिध्वनित हुआ हैं।"[17] डॉ. गणेशन के मतानुसार- "सामाजिक उपन्यासों में प्रौढता उनको माननेजिनमें समाज के विकास को प्रभावित करने वाली प्रेरक एवं अवरोधक शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष का अध्ययन किया गया हो। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर तो यह संघर्ष सदा रहा है और उसी मानवता का इतिहास निहित Æ..."[18]

भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष की भावना कोई नवीन नहीं है। इसकी चर्चा हमें भक्तिकालीन साहित्य में भी मिलती है। भिन्न-भिन्न संप्रदायों में आपसी वैमनस्य (मत विरोध) देखने को मिलता है। यह पारस्परिक संघर्ष ही धार्मिक वर्ग-संघर्ष का प्रजनन कर्ता है। यही आगे चलकर विराट रुप धारण कर लेता है। कबीरदास जी ने जातिभेद और वर्ग विषमता का सशक्त खण्डन करते हुए लिखा है -

"जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरिको भजै सो हरि का होई।"

धार्मिक विषमता का खण्डन करते हुए लिखा है-

"अरे इन दोउन राह न पाई, हिन्दुन की हिन्दुवाई देखी तुरकन की तुकराई"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष प्राचीनकाल से ही प्रारम्भ हो चुका था, जिसका मुखरित रुप आज सर्वत्र दिखाई पड रहा है। वर्ग-संघर्ष का उपन्यासों में यथार्थ वर्णन किया गया है। अद्यावधि लिखित इतिहास इस बात का साक्षी है कि सभ्य समाज सदैव वर्गों में विभाजित रहा है। कार्लमार्क्स और एंजेल्स व्दारा सन् १९८४ में लिखे गए "कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो" में वर्ग-

संघर्ष के सिध्दान्त का प्रतिपादन किया गया। इस मैनिफेस्टो का जितना प्रभाव संसार में हुआ है, उतना शायद ही किसी विचारधारा का हुआ हो। कार्ल मार्क्स और एंजेल्स ने लिखा है कि "अब तक अस्तित्व में आने वाले सम्पूर्ण समाज का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है।"[19] स्वामी करपात्रीजी महाराज ने कम्युनिस्टों की विचारधारा को प्रस्तूत करते हुए लिखा है- "कम्युनिस्ट वर्गकलह विद्वेष या वर्ग संघर्ष को ही वर्ग विकास एवं ज्ञान भण्डार वृध्दि का कारण कहते हैं, साथ ही वर्ग-भेद को ही विकास या उन्नति का लिंग मानते हैं।"[20] डॉ. रांगेय राघव ने समाज में वर्ग-संघर्ष की निरंतरता पर बल दिया है, लेकिन उसके रुप में परिवर्तन होता है। उन्होंने लिखा है, "भारतीय समाज में निरन्तर वर्ग-संघर्ष होता रहा है, किन्तु उसका स्पष्ट स्वरुप वर्ग-संघर्ष के रुप में भारत में प्रगट हुआ है।"[21]

फलतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में परिव्याप्त वर्ग-संघर्ष, वर्ग विद्वेष या वर्ग विषमता नवीन नहीं, अपितु अतीतकाल से चली आ रही एक सामूहिक समर्पित अवधारणा है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसका जो विकराल रुप आज समाज पर आच्छादित हो चुका है या होता जा रहा है, अतीत में इतना व्यापक नहीं था। आज व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच, व्यक्ति और राष्ट्र के मध्य वर्ग-संघर्ष की भावना अपना स्वामित्व स्थापित कर चूकी है, जिसकी अभिव्यक्ति आधुनिक साहित्यकारों ने अपनी-अपनी लेखनी व्दारा सृजित कृतियों के माध्यम से कि है। इस दृष्टि में सामाजिक स्थिति के यथार्थ अंकन में हिन्दी गद्य की उपन्यास-विधा का अन्यतम एवं सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण स्थान है।

३.३ वर्ग-संघर्ष का सिध्दान्त :-

वर्ग संघर्ष के विविध आयामों के अध्ययन के साथ-साथ इसके सिध्दान्त का सम्यक ज्ञान अति आवश्यक है। जब कोई शक्तिशाली शक्ति अपने से कमजोर शक्ति को दबाकर उसके शोषण में निमग्न हो जाती है और वह चरम सीमा की ओर उन्मुख होने लगती है तो निर्बल शक्ति के अन्दर भी एक प्रेरणा जाग्रत होती है, जो उसे हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज बुलन्द करने के लिए प्रतिवाधित कर देती है। क्रमशः जब वह

अपनी आवाज को सामूहिक रुप में उठाना चाहता है तो तदनुरूप उस शोषण के खिलाफ उठायी गयी आवाज को दबाने का प्रयास किया जाता है। फलत: एक ओर शोषण के खिलाफ आवाज बुलन्द का प्रयास और दूसरी ओर उस आवाज के कुचलने के प्रयास के फलस्वरुप वर्ग-संघर्ष की स्थिति हो जाती है। भले ही पृथक्-पृथक् क्षेत्र क्यों न हो।

भारतीय वर्ग-संघर्ष एवं पाश्चात्य वर्ग-संघर्ष की अवधारणाओं में पर्याप्त विषमता देखने को मिलती है, इतना अवश्य है कि भारतीय वर्ग-संघर्ष, पाश्चात्य वर्ग-संघर्ष से प्रभावित है और रंग में मिलता जा रहा है। जहाँ पाश्चात्य देशों में वर्ग-संघर्ष विघटनकारी शक्तिों की ओर उन्मुख रहा, वहीं भरतीय वर्ग-संघर्ष सदैव समन्वयवादी सिध्दान्त की ओर उन्मुख रहा है। इसमें सदैव पारस्परिक सहयोग, सामंजस्य, सद्भावना बनाए रखने का स्तुत्य प्रयास किया गया, भले ही उसके पूर्ण-परिपालन में सफलता न मिली ÆÖ…

मनुष्य समस्त सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है और उत्पादक शक्तियों एवं उत्पादन सम्बन्धों की विरोधी प्रवृत्तियों का परस्पर संघर्ष भी मनुष्यों के चिंतन परक प्रवृत्ति के कारण होता है। डॉ. जनेश्वर वर्मा ने वर्ग-संघर्ष के लिए मनुष्य को ही उत्तरदायी ठहराते हुए कहा है कि "मनुष्य की कृतियाँ ही इतिहास का निर्माण करती है। कर्म इच्छाओं के व्दारा संचलित होते है। इच्छाएं विचारों का प्रतिरुप है। विचार मनुष्य की उन सामाजिक परिस्थितियों का ही प्रतिबिम्ब है जिनके अन्तर्गत वह रहता है और जो उसे हर समय घेरे रहती है। सामाजिक परिस्थितियाँ उत्पादन के ढंग अथवा आर्थिक परिस्थितियों व्दारा निर्धारित होती हैं। आर्थिक परिस्थितियाँ ही समाज में विभिन्न श्रेणियों और उनके संघर्षों के स्वरुप को निर्धारित करती हैं।"[22] ऐतिहासिक अध्ययन के लिए वर्ग-संघर्ष की उपादेयता का प्रतिपादन करते हुए एंजेल्स ने लिखा है, कि "आधुनिक इतिहास में कम से-कम यह तो सिध्द ही हो चुका है कि समस्त राजनीतिक संघर्ष वास्तव में वर्ग-संघर्ष ही है। और स्वतन्त्रता के लिए चलने वाले वर्गो के अपने विशिष्ट राजनितिक स्वरुप को रखते हुए भी-क्योंकि प्रत्येक वर्ग संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष है-अंतत: आर्थिक स्वतंन्त्रता केप्रश्न से •Ö> ¦ Æ< Æ…"[23]

फ्रेडरिक, एंजेल्स ने अपनी प्रसिध्द पुस्तक "समाजवाद वैज्ञानिक और काल्पनिक" में भी वर्ग संघर्ष का सिध्दान्त आर्थिक कारणों पर आधारित माना है। उन्होंने लिखा है, "आदिम समाजवाद को छोडकर मानव जाति का सारा अतीत इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है और हर समाज के संघर्षशील वर्ग उस काल के उत्पादन और विनिमय की अवस्थाओं से या एक शब्द में कहें तो उस काल की आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न होते Æi..."[24] अतएव यदि उत्पादन पध्दतियों में यदि असंगतता की जगह सहयोग, सद्‌भाव एवं विचार विनिमय का समावेश हो जाय तो शायद भावी समाज में भी किसी प्रकार का वर्ग-संघर्ष नहीं रहेगा। सामाजिक व्यवस्था में आन्तरिक वैमनस्यता की व्यापकता को वर्ग-संघर्ष के ही माध्यम से प्रकट किया जा सकता है।

आदिम पंचायती व्यवस्था जो बिल्कुल श्रेणी विहीन थी, लेकिन सभ्यता के फलस्वरुप उसमें अनेक श्रेणियों का प्रादुर्भाव हो गया। जो कबीले एक साथ मिलजुल कर काम करते एवं खाते थे, उनके उत्पादन-पेशे परिवर्तित हो गए और उनकी आवश्यकताएं बढने लगी। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू परस्पर, लडाइयाँ होने लगीं। जो पराजित हो जाता था उसे गुलाम बनाकर उससे मनमाना कार्य कराते थे और अपनी इच्छानुसार उसे भोजनादि देते थे। इस प्रकार समाज सामाजिक कार्यों में विभाजन के साथ-साथ स्वयं भी विभाजित हो गया। समाज में स्वत: ही दो श्रेणियों का सूत्रपात हो गया, प्रथम जो दूसरों की कमाई से स्वं लाभ उठाते थे और दूसरे वे, जो दूसरों का काम करने के लिए विवश थे, अस्तु इनको शोषक और शोषित कह सकते हैं। यहीं से समाज में सर्वप्रथम श्रेणियों का आरंभ होता है। इस दास प्रथा के अन्त हो जाने पर सामन्तवादी प्रथा का आगमन हुआ। इसके अन्तर्गत भी शोषण कम होने की अपेक्षा बढता ही गया। लेकिन सामंतवादी व्यवस्था के लिखाफ हर देश में किसानों के विद्रोह का प्रमुख स्थान रहा। इस सामंतवादी व्यवस्था को उखाड फेंकने में उभरते हुए तत्कालीन पूंजीपति वर्ग ने अपना सहयोग प्रदान किया। फलत: स्थिति का लाभ उठाते हुए अगुआ पूंजीपति वर्ग ने समाज के शोषण के लिए नवीन वर्गों का सूत्रपात किया। जहां उन व्यवस्थाओं में शोषण प्रत्यक्ष रुप में होता था, वहीं आज इस पूंजीवादी वैज्ञानिक युग में शोषण अप्रत्यक्ष रुप से हो रहा है। "इस प्रकार वर्ग विहीन समाज के

साध्य को प्राप्त करने के लिए वर्ग संघर्ष को एक अनिवार्य साधन के रुप में स्वीकार किया जा सकता है तभी इसे शोषण से छुटकारा पाने की आशा की जा सकती है।"

3.4. वर्ग संघर्ष और डॉ. शिवप्रसाद सिंह का गद्य :-

प्रस्तावना :-

मानव उत्पत्ति के साथ ही संघर्ष की शुरूआत हो जाती है। मानव को हर अवस्था में संघर्ष करना पडता है। संघर्ष ही मानव का क्रियान्वित मूलभूत अंग है। मानव को जन्म से लेकर अंतिम साँस तक संघर्ष करना पड़ता है। मानव को जीवन जीते समय अलग-अलग समस्याओं का सामना करना पडता है, उसी समस्याओं का समाधान की उपज ही संघर्ष है। मानव जीवन के संघर्ष का प्रतिकात्मक रुप ही साहित्य है। मानव उत्पत्ति के साथ ही साहित्य की निर्मिती हुई और तब से लेकर आज तक मानव रोटी, कपडा और मकान के लिए क्षण-प्रतिक्षण संघर्ष करता आया हुआ दिखाई देता है। मानव संघर्ष के प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देते हैं।

वर्ग संघर्ष यह मानव उत्पत्ति के साथ ही मानव का अविभाज्य घटक बनकर आया है। हर काल में मानव को संघर्ष करना पडा है। मानव समाज में सदियों से लेकर आज भी समाज मूलतः दो वर्गो में विभाजित है। एक शोषक वर्ग, दूसरा शोषित वर्ग इन दो वर्गो में अविरत संघर्ष चला आया है। इन संघर्षो को वाणी प्रदान करने का काम साहित्यकारों ने किया है।

शिवप्रसाद सिंह जी के गदय-साहित्य में वर्ग संघर्ष का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। वर्ग संघर्ष की दरी को कम करने का प्रयास भी शिवप्रसाद सिंह जीने अपने-गदय साहित्य के माध्यम से किया है। संघर्ष यह मानव की आस है जो कभी खत्म हो नहीं सकती, उसी प्रकार वर्ग संघर्ष भी कभी खत्म हो नहीं सकता, लेकिन वर्ग संघर्ष की जो तीव्रता की दरी है, दरी को निश्चित रुप से कम किया जा सकता है।

वर्ग संघर्ष की तीव्रता की दरी को कम करने का प्रयास ही शिवप्रसाद सिंह जी का गदय-साहित्य रहा है। उपन्यास, कहानी, नाटक साहित्य के माध्यम से सिंह जी ने मानवता का संदेश दिया है । जब तक मानव मन में पनपने वाला संघर्ष जड से

निकलता नहीं तब तक पूरी तरह वर्ग संघर्ष खत्म हो नहीं सकता। शिवप्रसादजी का गदय-साहित्य वर्ग संघर्ष का जीता जागता उदाहरण है।

शिवप्रसाद सिंह जी के साहित्य में वर्ग संघर्ष कूट-कूटकर भरा पड़ा है। जमींदार, ठाकुर लोगों व्दारा किये जानेवाले अन्याय, और अत्याचार शोषित वर्ग चुपचाप सह लेता था, लेकिन शिवप्रसाद जी ने अपने साहित्य में अब शोषित वर्ग भी जमींदार लोगों का खुलकर विरोध करते हुए दिखाये गये हैं जो शोषक वर्ग की पुख्ताह दिवारों में सुरूंग लगाने का काम करते हैं। "अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास मे बीसू लोकगीत के माध्यम से संदेश देता है कि-"जमाना तेजी से बदल रहा था जमींदारी की पुख्तैनी पुख्ता दिवारे एक हल्के धक्के से ही जमीन पर आ रहीं। देखते ही देखते करैता का पूरा माहौल बदल गया। आसामियों ने खानदानी लाज-शर्म छोडकर जमींदार की छावनी से अपना रिश्ता तोड लिया। अब कभी दशहरे के मौके पर आसामियों की भीड जुहार करने नहीं आती। न ही कभी छावनी के मुख्य व्दार पर रखा बडा-सा परात नजराने के रुपयों से खनकता ही। अहीरों ने दही-दूध, कोईरियोने साग-सब्जी, मल्लाहों ने मछलियाँ, जुलाहों ने मुरगी और गडेरियों ने सलामी में खस्सी देना एकदम बन्द कर दिया।"[25]

इस प्रकार परिवर्तन सृष्टि का नियम है, और इस नियम के अनुसार शोषित वर्ग में भी परिवर्तन आना अनिवार्य है। उसी परिवर्तन के कारण आज का शोषित वर्ग जमींदार के सभी बंधनो को तोड देता है और एक नई क्रांती की सूचना देता है। जो शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास साहित्य की बहुत बडी उपलब्धि है। निम्न समाज खुलकर जमींदार वर्ग का विरोध कर रहा है। जो पहले सामने जाना या बात करने से डरता था, लेकिन आज नहीं, यह शोषित वर्ग के मन मे हुआ बहुत बडा परिवर्तन है। जो सिरिया अपने पेट की आग बुझाने के लिए पोखरे में मछली पकडने जाता है, तब बुझारथ सिंह उसे पकड कर मारपीट करते हैं, तो सिरिया बुझारथ सिंह से कहता है- "गाली मत बको बुझारथ भाई, जे बा से हम नान्ह जात नहीं है। जमींदारी टूट गयी। पोखरा पंचायत का है।"[26]

सिरिया जैसा आदमी भी ठाकुर बुझारथ सिंह का खुलकर विरोध कर रहा है, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी उन्मूलन कानून की देन ही है। उच्च वर्ग और

निम्नवर्ग में सीधा टकराव हो रहा है। कभी अर्थ के लिए कभी राजनीतिक स्वार्थ, के लिए तो कभी कामवासना के कारण वर्ग संघर्ष निरंतर जारी है।

"शैलूष" उपन्यास मे भी वर्ग संघर्ष उभरकर सामने आया है। सब्बो चाची घुरफेकन तिवारी से कहती है याद रख, यह लडाई निहत्थे लोगों की है, खाली नटों की नहीं, सारे भूमिहीन भूखों के खिलाफ चला अपनी तोपे और बंदूकें और उसका नतीजा भी भोगने के लिए तैयार रह जा। तब घुरफेकन तिवारी सब्बो को कुलटे, भ्रष्टे शब्दों का प्रयोग करता है। तो जुडावन नट का सारा कुनबा उसे मारने के लिए दौडता है।

"आज तेरा खून हम देखकर रहेंगे नीच, जुडावन चिल्लाया, 'रुक जा, अगर असल बामन है, तो रुक जा। तू दोगला है रुसालाँ के रन में पीठ दिखाकर भाग रहा Æ..."[27] परती के छोटे से टुकडे के लिए यहाँ वर्ग संघर्ष दिखाई देता है। आदिवासी नट भी अपने अधिकार के प्रति जागरुक दिखाई देते है। जो अन्नदाता है जब वही अन्नदाता गलत कदम उठाता है तो उसका पूरी शक्ति के साथ विरोध करते हैं। जिसके कारण अपने आपको बचाने के लिए तिवारी को भाग जाना पडता है। यह एक आदिवासी नट जाति में आया हुआ नया परिवर्तन है।

"शैलूष"उपन्यास के हर एक पात्र के मन में वर्ग संघर्ष की चेतना भर पडी है। तिवरी थानेदार को अर्थ के बल पर नटों को गिरफ्तार तो करवा देता है, लेकिन संघर्षमय चेतनावाली सब्बो के सामने परताप भी हतबल हो जाता है। सब्बो अमिरत के हाथों से पत्र का टुकडा परताप को देने को कहती है "- "सब्बो ने उस कागज के टुकडे पर लिखा था,' बेटा परताप, जो गरीबो के मुंह की रोटी छीनता है, उसके सामने उसकी रुचि के अनुसार परसी हुई थाली भी छीन ली जाती है। क्योंकि शोषण के एक के ऊपर एक कई स्तर होते हैं।"[28] अन्याय-अत्याचार और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का काम सब्बो करती है। शोषण का दमन चक्र साईकील की चैन की तरह होता है और इस शोषण चक्र को तोडने का काम सब्बो मौंसी अपने सत्कर्म से करती है।

"नीला चाँद, उपन्यास में विनायक भट्ट के आश्रम में आश्रम के नाम पर चल रहे स्वैराचार वृत्ति का पर्दाफाश किया है। विनायक भट्ट आश्रम में आये शरणाथियों के गरीबी का गलत फायदा उठाता है, और अपनी कामवासना की तृप्ति करता है।"

जाति-जाति में भी वर्ग संघर्ष देखने को मिलता है। रोहिणी अर्थ प्राप्ति के लिए आश्रम चली जाती है और विनायक भट्ट का शिकार बन जाती है। रोहिणी ब्राम्हण कन्या है फिर भी विनायक भट्ट उस पर बलात्कार कर देता है, तब रोहिणी विनायक भट्ट से कहती है- "किन्तु शुद्र तूने जो मेरा शीलभंग किया, कौमार्य लूट लिया, उसके लिए मैं बिना दंड दिलाये शांत नहीं बैठूंगी। मैं जानती हूँ कि अपने को धर्मध्वज का दंड समझने वाले तेरे उत्कोच पर पलने वाले श्वान कुछ नहीं करेंगे। मैं यह भी जानती हूँ कि याचना से जिनकी चिदग्नि बुझ गयी है, जिनके भीतर अग्नि की जगह कीचड भरा है, वे एक असहाय ब्राम्हण कन्या के आरोप को मिथ्या घोषित कर उसके व्यवहार (मुकदमों) को झूठा आरोप कहकर मुझे ही दंडित करने लगेंगे।"[29]

विनायक भट्ट के पास अर्थ था, प्रतिष्ठा थी इसी के बलबुते पर वह सबको खरीद सकता है। जो शोषित है उस पर ही आरोप लगाया जा सकता है, उसे ही दंडित किया जा सकता है। यह रोहिणी को पूरी तरह से पता है, फिर भी ऐसे दुराचारी लोगों को समाज के सामने नंगा करना चाहती है। यह रोहिणी का अस्सीम साहस है।

'मुर्गे ने बाँग दी' कहानी में मंगरू को उसके काम की मजदूरी कोई समय पर देता नही। काम तो सभी करवा लेते है। गाँव का ठाकुर भी मजदूरी देने को टाल देता है। गरीब मंगरू चाहकर भी ठाकुर के खिलाफ विद्रोह करता नही। मंगरूने ठाकुर से मजदूरी के लिए लाख मिन्नतें पर सब बेकार। मंगरू दिल से चाहता है कि विद्रोह करे पर गरीबी उसे विद्रोह करने से रोक देती है। ठाकुर यहाँ पर मँगरू का अप्रत्यक्ष रुपसे आर्थिक शोषण करता है और कहता है-"यह कोई पहला साल नहीं है। बीस वर्षो से वह उनका हल बनाता है, फिर इसी साल कौन नयी बात हो गयी जो वे बाप दादा के जमाने से आती हुई बात को तोड दे। अरे दस दिन में बिगडता ही क्या है।"[30] इस प्रकार ठाकुर मजदूरी टाल देता है। जो एक प्रकार से ठाकुर मँगरू का आर्थिक शोषण ही करता है।

"उपहार" कहानी में ठाकुर नौकर बच्चन और गुलबी प्रेम करते हैं। ठाकुर गुलबी को उपहार के बल पर अपनाना चाहता है, लेकिन गुलबी तो बच्चन से प्रेम करती है और ठाकुर को ठुकरा देती है। ठाकुर यह अपमान सह नहीं पाता और बच्चन को मारपीट करता है, बच्चन तो ठाकुर के खिलाफ विद्रोह करता नहीं। लेकिन गुलबी ठाकुर से

कहती है-"जाके अपनी घरवाली की खाल खींचो ठाकुर, वही दरबे में बन्द मुर्गी की तरह ओठ सिये तुम्हारा जुलुम सहेगी, काहे से कि तुम उसे चारा देते हो। अपना क्या? हाथ-पाँव चला के दो रोटी कहीं से भी कमा लेंगे। तुम्हारी धौंस सहनेवाले कोई और होंगे ÆÖ..."[31] इस प्रकार गुलबी खुलकर ठाकुर का विरोध करती है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा अब खुद स्त्री कर सकती है। जो सदियों से सतायी हुई अबला नारी है। लेकिन उसमे भी अब नया परिवर्तन दिखाई देता है।

"सँपेरा" कहानी में पापजीवी नट भी अपनी आत्मरक्षा के लिए प्राण भी दे सकते है। जमींदार के मन में कभी यह खयाल भी न आया होगा। जमींदार के कारण ही कम्मो अपनी अस्मत को बचाने के लिए मौत को गले लगाती है। उसी दिन बक्कस ठाकुर से बदला लेनी की ढान लेता है। "खलिहान वाले पेड के नीचे से अपना डेरा लेकर जब बक्कस चला तो उसके मन में तरह-तरह के विचारों की आँधी उठ रही थी, उसके जीवन का बस एक ही उद्देश्य था: ठाकूर से कम्मो की मृत्यू का बदला।"[32] ठाकुर के अवैध कामवासना ही बक्कस को ठाकुर से बदला लेने के लिए मजबूर करती है।

"कलंकी अवतार" कहानी में रोपन गांव मे हर एक का काम करता है। भेदूसिंह का हर काम करता है। रोपन भेदूसिंह और गांव वालो का नौकर जैसा काम करता है, अपने घर गृहस्थी के लिए ज्यादा समय दें नही पाता। अपनी लडकी की शादी के लिए भेदूसिंह से तीन-सौ रुपये करज में लेता है तो भेदूसिंह रोपन का खेत नीलाम कर रुपये वसुल करता है-"लडकी की शादी में तीन सौ रुपये के करज मे घर का पुश्तैनी खेत नीलाम हुआ। लाख रोने-गिडगिडाने पर भी भेदूसिंह खेत छोडने को तैयार नहीं हुए। नालिश की नीलामी कराई और घूम फिरकर नीलाम खेत भेदूसिंह की जोत में आ गया। वाह रे निआव ! वाह रे फैसला !"[32] रोपन वह गम भी पी जाता है। भेदूसिंह के खिलाफ विद्रोह कर नहीं पाता। जमींदार भेदूसिंह की शोषक वृत्ति उसे खेत नीलाम करा देती है , की शोषक वृत्ति ही उसकी असल जड है।

"इन्हे भी इन्तजार है" कहानी में कबरी और मंगरा के माध्यम से डोम जाति का जीवन जीने के लिए कितना कठीन संघर्ष करना पडता है। खाली पेट एक गांव से दूसरे गांव घूमते है। ताल-पोखरा का पानी सूखकर कीच बन जाता है, पर हमारे लिए तो वही

है। कुएँ पर कोई जाने नहीं देता, मांग के पीवें तो लोग यह भी कहेंगे कि डोम तो खींचकर पानी पीते नहीं। शोषक समाज शोषित वर्ग को न मरने देते हैं, न जीने देते है। शोषण के दमनचक्र में डोम जातियाँ पिसी जा रही थी। मंगरा कहता है-"टेशन पर गुदामों में झारी करने के लिए भी हमें कोई नहीं पूछता मुसहर-चमार गरीब है सही, पर उन्हें करने को नीचा-ऊँचा काम तो मिल जाता है, हम कहाँ जायें सरकार, हमारी देह में तो ऐसी छूत भरी है कि कोई खाद-गोबर फेंकने का काम भी नहीं करने देगा।"[33] इस प्रकार डोम जाति की विडम्बना है, जो जमींदार, ठाकुर कहे जाने वाले लोगों के कारण बनी है।

"श्रृंखला" कहानी में भी राठौरो की झूठी शान जब खोखला हो जाती है। प्रेम करनेवालों को जाति-पाति से कुछ लेना देना नही होता प्रेम तो सर्वोपरी है। दायादी का बेटा परगासी और राठौर कन्या बिरजा प्रेम कर बैठते है। परगासी से बिरजा को गर्भ ठहर जाता है। बिरजा ललता सिंह की जब बहु बन जाती है। गर्भवती होने की बात हवा की तरह गांव में फैल जाती है। ललता सिंह नोना चमाइन को पाँच सौ रुपये देकर गर्भपात करवा लेता है। बिरजा ही वर्ग संघर्ष का कारण बनती है। बदलते जमाने की हवा कुछ अलग है, उस हवा में पुश्तैनी ताकतें डगमगाने लगती हैं। पांडे कहते हैं-"मैने इस देस-देहात के कई लोगों का कतल किया है और कराया है। यह तो शुरूआत है। जमाना बदल गया लेकिन आप जैसे खून चुसने वाले मच्छर पहले से ज्यादा भनभना रहे है। आप परगास और बिरजा को बुलवाइये और हिम्मत हो तो उनसे पूछिये- क्या उन लोगों ने यह सब जवानी के नशे में किया है या पति-पत्नी के रुप में।"[34] †3öß 3öß उच्चवर्ग ऐसे संबंधो को अपनाने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि उनके कुल की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी भले ही किसी अबोध शिशू के प्राण क्यों न जाए। पांडे ललता सिंह जैसे समाज में बैठे लोगों को बेनकाब करना चाहता है, जिससे वर्ग विषमता की दरी ही खत्म हो। पांडे कहते है-"शोषको, पूंजीपतियों के दलालों को हम इतना डरा देना चाहते है कि वे समय रहते चाल-चलन बदलें, उनको बेनकाब कर रहे है कि असलियत को जनता समझे, बिना इसके, देश को गृह युध्द से बचा पाना असंभव है-वैसे लगता है कि यह श्रृंखला अभी आगे जायेगी। धैर्य की जरुरत है। चैतन्य बने रहना ही कर्तव्य

Æ..."[35] "आदमखोर पैंथर" कहानी में सिधारी सिंह जैसे उच्च वर्ग के लोग निम्नवर्ग का खुलेआम शोषण कर रहे हैं। जो उसका विरोध करते हैं, उसकी आवाज ही सदा के लिए बंद कर दी जाती है। सिधारी सिंह मनसा को लेकर जोगिन्दर से कहता है-"क्यों बे जोगिन्दरा, स्साले तू रोज, छिप-छिपकर मनसा से मिलता है। उसे भरमाने की कोशिश करता है अबे छुछुन्दर की औलाद तुझे मालूम नहीं कि गांव में नीम की एक पतई भी सिधारी के हुकुम के बिना हिल नही सकती।"[36] इस प्रकार सिधारी सिंह अर्थ के बल पर मनसा को रखैल बनने के लिए मजबूर कर देता है।

"घाटियाँ गूंजती है" नाटक तो वर्ग संघर्ष का प्रतिक बनकर रह गया है। यहाँ एक विशिष्ट जाति धर्म में वर्ग संघर्ष नहीं अपितु पूरे मानव समूह का वर्ग संघर्ष है। भारत शांति का पतीक है तो चीन अशांति का प्रतीक है। एक शोषक वर्ग है तो दूसरा शोषित वर्ग चीन भारत का आर्थिक सामाजिक राजनैतिक शोषण करना चाहता है। अपने अर्थ और मानव बल के ऊपर भारत को अपना गुलाम बनाना चाहता है। यह भी विश्व में पनपनेवाला वर्ग संघर्ष् ही है।

चीनी शासक न केवल तानाशाह, निरंकुश और क्रूर है बल्कि विकट रुपसे छल-छदम में प्रवीण भी है। वे बडी आसानीसे सचको झूठ और झूठको सचमें बदल देते हैं। वे गरीब और शोषित जनताके प्रति अनिर्वचनीय सहानुभूति से लबालब भरे हैं। वे अपने सभी कुकृतियों कों ऊँचे-ऊँचे आदर्शो के रंगीन मुखोशमे छिपाकर उपस्थित करते हैं। चीनी आक्रमणकारी भोली भाली भारतीय जनता पर आक्रमण कर देती है और भारत के कुछ प्रदेशों पर अपना अधिपत्य स्थापित करते हैं। भारतीय सेना भी उतनी ही ताकद से चीनी सेना पर आक्रमण करती है। चीन भारत पर हमला कर देता है जो तानाशाही का प्रतिकात्मक रुप है ऊपर से दोष भारत को ही देता है।-"इसपर भी चीनी रेडिओ पुकारता है कि भारतने हमारे ऊपर हमला किया, हमारे देश का कितना ही भाग दबा लिया, हमारे ऊपर अत्याचार कर रहा है, हम केवल अपनी दोनों की मैत्रीकी ही सोचकर चुप है .... नहीं तो।"[37] चीनी रेडिओ या शासन हमले का जिम्मेदार भारत को बता ¸ÆÖ Æ...

3.4. उपन्यास साहित्य में वर्ग-संघर्ष :-

डॉ.शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास साहित्य में वर्ग संघर्ष कूट-कूटकर भरा हुआ है। शोषक और शोषित वर्ग का जीवंत चित्रण ही उनका उपन्यास साहित्य रहा है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने 'शैलूष' 'अलग-अलग वैतरणी,' "वैश्वानर" 'कुहरे में युध्द, "दिल्ली दूर है", "नीला चाँद," गली आगे मुडती है, उपन्यासों में वर्ग संघर्ष का सचित्र चित्रण दिखाई देता है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में जमींदारों की जमींदारी जब टूट जाती है तो लोग खुलकर ठाकुर का विरोध करते हैं। करैता गांव के लिए जैपाल सिंह के लौटने की खबर एक बहुत बडी घटना थी, फिर भी मानसिकता में परिवर्तन दिखाई देता है जो समय की मांग है। दयाल महाराज जानते हैं-"क्या बाकी रही उनकी यहाँ। जमींदारी टूटी कि लोगों ने छावणी की ओर मुंह करना भी छोड दिया।"[38] जमींदारी टूटने के बाद आम आदमी जो जमींदारों की चक्की में पिसता जा रहा है। अब वह उसका विरोध कर रहा है। जैपाल सिंह और चमारो में मजदूरी के कारण संघर्ष हो जाता है। जैपाल सिंह जैसे बहुरूपिये कम मजदूरी में ज्यादा काम लेना चाहते हैं, जिससे चमारों का आर्थिक और शारीरिक शोषण किया जा रहा था। देवा चमरोटी का नेता है। मजदूरी के लिए अब हडताल करने लगे हैं। धनेसरी कहती है। "देवकिसुन का मन गंगाजल की नाई निरमल है। उस साल चमारों ने हडताल बोल दी। चार सेर से कम रोजाना मजूरी के बिना कोई हल नही जोतेगा।"

''जैपाल सिंह कहते कि यह सब देवकिसुन की शरारत है। चढते आषाढ पानी बरसा। औझड झडी लागी। धरती गहगहाकर खिल उठी। पर उस साल करैता में बहुतों के हल नघे।''[39] इस प्रकार चमारों ने जैपाल सिंह के खिलाफ हडताल का हथियार अपना लिया लेकिन ठाकुरों के पालतू कुत्ते हडताल को खत्म करने के लिए ठाकुर के कहने पर हडताल करनेवाले गरीब चमारों पर लाठियाँ चलाते है जिससे कि हडताल खत्म हो जाये और वे ठाकुर के खेतों पर हल जोतने के लिए आ जाये। एक दिन सहसा अन्तिम छोरपर पहुँचते-पहुँचते धैर्य का 'स्प्रिंग' टूट गया।

"ठकुराने से पचीसो लाठियाँ निकल प>ì। तालाब, सिवान, रास्ते, सभी तो ठाकुर

के ही थे। इनका उपयोग करने का चमारों को क्या हक भला? चमार और चमारिनों पर बेहद मार पडी। तालाब में नहाती औरतों को झोंटे पकडकर खींचा गया। खेत से घास-पात, सागसालन लाती चमार-लडकियों को दौडकर बेइज्जत किया गया। »ÖÖŠ-›Ö›¡ ¯Ö¸¡ "Ö»ÖŸÖ चमारों के बदन लहुलुहान हो गए।"[40] अपने काम का मुआयना माँगने पर निम्न समझकर उनपर बेदर्दी से लाढियाँ चलायी जाती Æï। जो आज के वर्तमान का यथार्थ है। ठाकुरों के समय मजूरी धान्य के रुप में मिलती थी आज पैसों के रुप में जमींदारी खत्म हुई, भांडवलशाही ने जन्म लिया और भांडवलशाही के ही दलाल राजनेता बने। वर्ग संघर्ष में कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं सिर्फ नाम बदल गया, रवैया वही रहा।

"गली आगे मुडती है।" उपन्यास में भी ज्वलंत वर्ग-संघर्ष दिखाई देता है। सरकारी ऑफिस नौकरशाह के आर्थिक शोषण के अड्डे बन गये हैं। भारतीय शासन प्रणाली के अंतर्गत हर ऑफीस में रिश्वत के नाम पर मजदूरों का आर्थिक शोषण किया जाता है। ए. जी. ऑफिस में हरिमंगल नौकरी करते थे। वहाँ पर ऊपर के अफसर मजदूरों के दस्तखत और अंगूठा सब फर्जी मस्टर रोल बनाया जाता है। और सरकार को गुमराह किया जाता है। काम पूरा होने का रिपोर्ट दिया जाता है। जो सिर्फ मजदूरों के हाथ को काम मिले जिससे रोजी-रोटी मिल सके, लेकिन यह नौकरशाही के तानाशाह मजदूरों तक मजदूरी जाने ही नहीं देते। बीच में ही सब फर्जी मस्टर रोल बनाकर हडप जाते हैं। यह एक नौकरशाह और मजदूरों में उठनेवाला नया वर्ग संघर्ष है, जो आज के नौकरशाह का वास्तव चित्र है। रामानन्द को हरिमंगल कहता है-"अरे यार मिट्टी फेंकने वाले मजूरों की हाजिरी को मस्टर रोल कहते हैं। मुझे मालुम था कि यह मस्टर रोल कैसे बनता है। आधे दर्जन से भी कम आदमी हाथ-पैर की तमाम अंगुलियों के निशान बनाकर फर्जी नाम भर देते है। हिन्दूस्तान और कुछ नही है प्यारे-हजारों पैरों की अंगुलियों से बने निशान का बेहूदा मस्टर रोल है।"[41] आज के हमारे सरकारी अफसरों की यह बहुत बडी विडम्बना रही है कि रिश्वत लेकर काम करने की प्रवृत्ति उपर से लेकर नीचे तक एक जैसी है। ऐसे लोगों के खिलाफ आवाज उठाने की आज सक्त जरुरत है। हरिमंगल सच्चाई की राहपर चलता है तो उसे भी अपनी नौकरी से हाथ धोना पडता है।

शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में भी आज एक नया वर्ग-संघर्ष दिखाई दे रहा है। एक वर्ग अपनी मातृभाषा बोलनेवाले का है, तो दूसरा वर्ग अंग्रेजी भाषा बोलने वाले लोगों का है। अंग्रेजी का दिखावा करनेवाला जो वर्ग है वह अपने आप को समाज से अपने को अलग मानता है। खुद को सर्वश्रेष्ठ समझता है। यह बुध्दिजीवी वर्ग, अदृश्य वर्ग संघर्ष ही है। दूसरों को निम्न और खुद को श्रेष्ठ समझना। इस वर्ग से निबटने का तरीका भट्टाचार्य बताते हैं-"तरीका है वर्ग-संघर्ष उस वर्ग का पूर्ण विनाश जो भाषा, क्षमता, या संपत्ति के जोर से पूरे भारत को समझहीन ही बनाए रखने के लिए तत्पर है।"[42]

अंग्रेजी भाषा जाननेवाले लोगों का वर्ग पूरे भारत देश को अनपढ, गवार, समझते है, x•ÖÃÖÃÖ कि विद्यादान के पवित्र क्षेत्र में भी संपत्ति के बल पर शिक्षा दी जाती है। दिन-ब-दिन आम आदमी अनपढ बनता जा रहा है और संपत्ति संपन्न लोग उच्च विद्या प्राप्त कर अपना अलग वर्ग बना रहे है। शिक्षा की धारोमदार उनके ह£Ö ¤üß •ÖÖ ¸üÆüß Æü…

"शैलूष" उपन्यास में घुरफेकन तिवारी और नटो में भूमि के लिए वर्ग संघर्ष होता है। भूमिहीन नटों को सरकार व्दारा दी गई जमीन को घुरफेंकन तिवारी हडपना चाहता है। सब्बों मौसी घुरफेंकन तिवारी को आगाह करती हुई नतीजा भोगने के लिए तैयार रहने को कहती है। तब घुरफेंकन कहता है मैं तैयार हूँ, कुलटे भ्रष्टे ! तब जुडावन चिल्लाया-"रुक जा, अगर असल बाभन है, तो रुक जा। तू दोगला है स्सालाँ कि रन में पीठ दिखाकर भाग रहा है।"[43] नट भी अब अपने अधिकारों के लिए घुरफेंकन तिवारी के खिलाफ विद्रोह कर, अपना हक छीन लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। Æü´ÖÖ¸üÖ ³ÖÖ¸üŸÖ देश अलग-अलग जाति-जनजातियों में बटा है। हर एक जाति के वर्णसंस्कार अलग-अलग, फिर भी हमारा देश एकसंघ है। सब्बो मौसी मानिक से कहती है- "वह केवल शैलूष कन्या नहीं है जिनको धरम-धुरंधरों ने नाच-गाकर खेल-तमाशा दिखाकर रोजी-रोटी चलाने वाली एक जाति मान लिया है। वर्णसंकर भारत तो क्या, सारा विश्व हो चुका है। अपने खून को शुध्द बताने वाला तानाशाह जब चुल्लू भर पानी में डूब मरा स्वस्तिक पताका लटक गयी जब तो यह गधा घुरफेंकन कहां टिकेगा।"[44]

सब्बो मौंसी मनिक से कहना चाहती है कि अब जमींदारी खत्म हुई, गरीबों का खून चुसने वाले जमींदारों की जमींदारी, नामशेष होती जा रही है। उच्चवर्ग का दिन-

ब-दिन पतन होता जा रहा है। उच्च वर्ग की अवस्था भी निम्नवर्ग के लोगों जैसी ही हो रही है जो कार्लमार्क्स के समाजवाद की उपज मानी जा सकती है।

घुरफेकन तिवारी सौ एकड जमीन पर ट्रेक्टर चला रहा था। चमारों की साठ एकड जमीन तो हडप लिया और आज यदि अपनी जमीन पर चमार कब्जा नहीं कर लेगे तो उनके परिवार को, कुनबे को, टीन की कटोरी में भीख माँगने के अलावा कोई राह नहीं बचेगी। मनवां चिल्लाती जाती है, तुम्हारी जमीन छीन रहे हैं, नट नहीं, तिवारी नटों का तो उन्होंने बहाना बनाया ताकि पहले उनकी जमीन हडपें, तब तुम्हारी। चमारों के झुंड के झुंड लाठी, बल्लम, गडासा और भाला, लेकर आते हुए घुरफेकन देख लेता है। तब वह बशीर मियाँ से अपने प्राणों की रक्षा करने की याचना करता है-"अरे बशीर मियां, नजीर मियां,तिवारी चिल्लाये, मेरी जान खतरे में है, रक्षा करो भगवान, रक्षा करो।"[45] तिवारी खानदान की शान-शौकत खत्म होती जा रही है। जो दूसरों की रक्षा करने वाले अब खुद की भी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं।

"कुहरे में युध्द"उपन्यास ऐतिहासिक होते हुए भी समाज में प्रचलित जाति-प्रथा स्पष्ट रुप से निखरित होती है। मानव जन्म के साथ ही वर्ग-संघर्ष की शुरूआत होती है। कौनसा भी काल इससे अछूता नही रहा है। ब्राम्हणें को ईश्वर समान माना जाता था। ब्राम्हण अपने स्वार्थ के अनुसार उनका आचरण होता था। निम्न जनता को गुमराह करके अपना उदरनिर्वाह करते थे। आचार्य शर्मन त्रेलौक्य मल्ल से कहता है। ब्राम्हण क्षत्रियों का शिष्य नहीं बनता तब त्रेलौक्य मल्ल कहता है-"आप फिर अनुचित बक रहे हैं ब्राम्हण। ज्ञान जिसके पास हो, उसे पानें में लज्जा का अनुभव करना, आप ही बता रहे थे अभी। तुर्को से ज्ञान सीखने का परामर्श और एक क्षण के भीतर ब्राम्हण शब्द का घटाटोप अर्थ आप ही समझा रहे है, मैं नही। आवश्यक समय पर अन्तर्राष्ट्रीयता का आवरण और दूसरे ही क्षण निकृष्ट जाति-प्रथा का समर्थन क्योंकि ऐसा करने वाला जाति-प्रथा के व्दारा महत्तम बनाया जाता रहा है, इन दोनों में आप कैसे तालमेल बनाए ¸ÆŸö Æ ?"[46]

"ब्राम्हणों का जातिगत व्देष-भाव ही वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है। सदियों से इन्ही लोगों ने आम जनता को अनपढ और गवारा रखा है। ज्ञान के नाम पर वर्ग-संघर्ष

का विषैला जहर समाज में फैला रखा है।"

आनंद वाशेक के समय दास प्रथा का प्रचलन था। दासों की जिन्दगानी किडों-मकोंडो से भी बदअत्तर थी। राजा जो चाहता है , उसी प्रकार का कर्म दासों को करना पड़ता था। दासों का क्रय-विक्रय किया जाता था। जानवर से भी खौफनाक जिन्दगी दासों की थी। सुमतिदास इसके संदर्भ में कहता है-"यह भी विडम्बना थी राजा, दासवृत्ति के विरुध्द श्रेष्ठी के मन में कोई आक्रोश नही था, जैसे यह प्रथा ईश्वरीय विधान हो। आक्रोश था मात्र दासों के प्रति बुरे व्यवहार पर। चलिए आज के युग में यह 3ÖÌ 2Ö>Ì 2ÖÖŸÖ £ÖÌ..."[47] दासों के दु:खो की कोई सीमा न थी न उनके दु:ख पर सोचने वाला भी कोई नहीं था। दासों नें राजा के प्रति खुलेआम व्रिदोह तो नही किया। लेकिन उनके मन में राजा के प्रति आक्रोश है। यह वर्ग-संघर्ष का बिम्ब ही है।

त्रेलौक्य मल्ल के चचेरे भाई सफलक आदिवासीयों पर अन्याय बहु-बेटियों पर अत्याचार करता है तो आदिवासी सरपंच का बेटा चन्द्रभूषण सुफलवा से प्रतिशोध लेना चाहता है। त्रेलौक्य मल्ल से कहता है- "अरे सुफलकवा नीच भी तो राजवंश का न है भैया? उसने हमारी लुगाइन के अंग मे मिर्चा ठूंसा। नवछर बहू-बेटियों की लाज लुटवायी, हमरे पंख पखेरू गोरु डांगरे छिनवा लिए। हम तो भइया ओही घरी सेनापति जी से कहत रहे कि हम अन्न जल से मर रहे हैं तो मरने दो। हमें बचावें के लिए तुम कब तलक हियां रइहौं।" ऊ ना माने न। लड गए ओहि राछस सरवा सुफलक से। अब राजा आए है तो का करेंगे? हमारी बहू-बेटियों की लुटी लाज लौटा पायेंगे? छह सौ साल से येह राजवंश का नमक खाये, कीसी नमक को लजाया हमने? हम गोड, भर नट का सेना के आगे-आगे नाही दौडत रहे? अइसी सांसत हम कभी नाही भोगे, राजा? तुम्हारे राज में शान्ति से जीना दुभर होई गवा ! अब जो बचा है बोहू को लुटवाय लो। हमारी गरदन छुडवा दो येह फँसरी से बस। और कुछ न चाही।"[48] राजा सुफलकवा के अन्याय और अत्याचार का विरोध आदिवासी गोड जमात करती है। त्रेलौक्य मल्ल से सुफलकवा ने जो बहु-बेटियों की इज्जत लूटी उसका हिसाब मांगती है। जो पहले अपने राजा के सामने सीना तानकर खडे नही हो सकते थे। वे आज राजा से न्याय मांग रहे हैं। राजा से न्याय मांगना गोडों के मन में प्रतिशोध की भावना का प्रतिक है। "वैश्वानर"

उपन्यास में काशी के इतिहास और पूरा इतिहास के रचनात्मक लेखन के माध्यम से उकेरते शिवप्रसाद सिंह का यशस्वी उपन्यास वैश्वानर है। इस उपन्यास में धन्वन्तरि ने सिध्द कर दिया कि महामानव बनने के लिए राजपरिवार में जन्म लेना विडम्बना है। वैश्वानर उपन्यास की पृष्ठभूमि ज्वलन्त प्रश्न में वर्ग-संघर्ष के संदर्भ में उनका कथन- "यह कितने आश्चर्य का विषय है कि आज भी एक ओर संयुक्त राष्ट्रसंघ, युनेस्को जैसी संस्थायें विश्वमानवता का सपना संजोती है उसी को अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग करनेवाले पाँच बडे देश पूरी मानवता को धनी अमीर और गरीब अविकसित देशों के शिविरों में बाँट कर बाजार के नाम पर गरीबों को लूटने का धंधा करते हैं। आज से छह सहस्त्र वर्ष पूर्व भारत के ऋषि न केवल विश्वमानुष की कल्पना करते थे बल्कि विश्वमानुष शब्द का सीधा प्रयोग इस बात का साक्ष्य देता है कि उनके सामने संपूर्ण मानव जाति अपनी निजी पारिवारिकता के स्नेह-सूत्र में बँधी हुई थी।"[49] हर युग में दो विरोधी प्रवृतियाँ हमेशा से विद्यमान रही हैं। एक प्रवृत्ति मानव कल्याण की तो दुसरी मानव कल्याण का विनाश करनेवाली प्रवृत्ति धन्वन्तरि मानव कल्याण का प्रतिक मात्र है। कार्तवीर्य मानव कल्याण के विनाश का पतीक है। ऋषि शौनक और कक्षीवान के अपहरण के समाचार से धन्वन्तरि धनुष्य की तरह तन गये बोले, "अगर तामसिक शक्तियाँ मुझसे लडने के लिए उठी हैं तो मैं वैश्वानर की पवित्रता की रक्षा में तिल बराबर डिगनेवाला नहीं हूँ।"[50] यहाँ भी सात्विक प्रवृत्ति और तामसी प्रवृत्ति के माध्यम से वर्ग-संघर्ष को स्पष्ट किया गया है।

कार्तवीर्य साम्राज्य विस्तार के लोभ में मानव की मानवता को भी भूल जाता है, और सभी प्रदेश को रक्तरंजित कर देता है। मानव की अमोघ इच्छाशक्ति मानव के पतन का कारण बन जाती है। इस संदर्भ में प्रतर्दन कहता है- "इसलिए कि वहाँ बहुत भयंकर युध्द चल रहा है और यदुवंशी हैहयों ने गांधार से लेकर सप्तसिंधू तक के क्षेत्र को रक्तरंजित कर दिया है। युध्द में पहली बार एक ऐसे तमस् का बीभत्स रुप सामने आया है कि मैं उसकी विषिशिका का वर्णन नही कर सकता। बलात्कार, हत्या, अग्निदाह की पैशाचिक कृत्य पूरे पश्चिमोत्तर भारत को राख में बदल चुकी हैं। कार्तवीर्य को तो इतना भी विवेक नहीं रहा कि उसके इस भयानक कुकृत्य से उसके सगे भाई

द्रहयु ही प्रजा और आर्यजन जलती लपेट में पतंगों की तरह कूद कर भस्म हो रहे है। कितना नीच होता है मनुष्य, जब उसकी चेतना का केन्द्र माता पृथ्वी को अधिक से अधिक पददलित करके अपनी साम्राज्य सीमा में अधिक से अधिक प्रदेशों को मिलाने का पैशाचिक लोभ जगाता है। तब यही सब घटता है।"[51] साम्राज्यवाद की लालसा मानव को मानव से राक्षस बना देती है।

"नीला चाँद" उपन्यास मध्ययुगीन काशी का विस्तृत फलक है। मध्ययुगीन काल में भी भारत पर तुर्को ने आक्रमण किया। हर युध्द में सबसे ज्यादा किंमत आम आदमी को ही चुकानी पडी है। राजसत्ता और साम्राज्यवाद के दलदल में गरीब आदमी पिसता जा रहा था। कीरत यह सब देखकर कहता है-"पुर, गांव, सब इनकी धार्मिक उन्मतत्ता की भेंट चढेंगे। मंदिर टूटेंगे, प्रासाद जला दिये जायेंगे। बर्बर तुर्क सैनिक सुन्दर और स्वस्थ महिलाओं से विवाह कर लेंगे, या रखैल के रुप में स्वीकार कर लेंगे, शेष लोग गजनी और मध्य एशिया के बाजारों मे नीलाम किये जायेंगे। हमारे सामने दो ही विकल्प है या तो लडते हुए वीरगति को प्राप्त करो या इनके धर्म को स्वीकार करके इनके आश्रित बन जाओं।"[52]

तुर्को ने मध्यकाल में पूरे भारत देश मे अपना अधिराज्य स्थापित किया था। छोटे-छोटे राजाओं को साम्राज्य की लालसा में आपस में लड़ाकर क्षीण कर दिया था, और अपनी छत्र-छाया मे लिया था। तुर्को के खिलाफ बुलंद आवाज उठाने का सफल प्रयास कीरत करता है। तुर्क अन्याय का प्रतीक है तो कीरत न्याय का प्रतीक है। सत्य और असत्य की लडाई में जीत हमेशा सत्य की होती है। तुर्को के भय से भयभीत जनता के मन मे रोशनी जगाने का काम कीरत करता है।

कीर्तिवर्मा अपने भाई देववर्मा के आग की लपटें अभी खत्म ही नहीं हुई थी कि तुर्क सेना आक्रमण पर आक्रमण करती जाा रही थी। महमूद पहले से दूनी शक्ति के साथ समूचे उत्तर भारत को रौंदते हुए चन्देलों से जा टकराया। चन्देलों के अतिरिक्त ऐसा कोई भी नहीं था जो उसे रोक सके। तीन दिन तक ग्वालियर दुर्ग के लिए युध्द होता रहा और अन्त में उसका पतन हुआ। फिर महमूद ने कालंजर को घेर लिया। भारतीय राजाओं में एकता न होने के कारण महमूद का साम्राज्य दिन-ब-दिन बढता ही

चला जा रहा था, ऊपर से कीतिवर्मा के भाई का वध। भारतीय जनता जाति-पाति के बंधन में बंधकर अपनी-स्वतंत्रता खो चुकी थी। ऐसी स्थिति में कीर्तिवर्मा दुःखी और उदास हो जाता है। और कहता है- "जात-पांत, सामन्त-भृत्य सैकडों तरह से विभक्त लोग क्या कर पायेंगे ? क्या यह जर्जर ढाँचा तुर्को के अटुट-संगटन और धार्मिक उन्माद को रोक पायेगा।"[53]

"जात-पांत, के बंधन से अपनी स्वतंत्रता, खो बैठी जनता क्या दुबारा तुर्को से एकसंघ होकर सामना कर पायेगी। अगर ऐसा न हुआ तो निश्चित ही पूरे भारत पर तुर्को का अधिपत्य स्थापित हो जायेगा। भारतीय जनता तुर्को के दास बनकर रह जायेगी। यह नतीजा था एकसंघ होकर तुर्को का सामना न करने का। तुर्को के प्रति भारतीय जनता के मन में प्रतिशोध की चिनगारी भरने का काम किर्तिवर्मा करता है।"

3.4.2 कहानी साहित्य में वर्ग-संघर्ष :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के कहानी साहित्य में संघर्ष से जुझता हुआ भारतीय समाज की झलक देखने को मिलती है। लेखक ने बचपण से जो आसपास देखा था सहा था, भोगा था, उसी का रुप उनकी कहानी साहित्य में देखने को मिलता है। आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक शोषण से जुझती हुई जनता का मुखरित रुप ही उनका कहानी साहित्य रहा है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के कहानी साहित्य में भी हर जगह पर वर्ग-संघर्ष देखने को मिलता है।

"हिरो की खोज" कहानी में छब्बी जात की चमार है। चमारों मे इतने साफ सुधरे कम दिखाई पडते हैं। गोरी-चिट्टी तो नहीं, रंग गेहुँआ है। छब्बी विधवा है, उसी का गैर-फायदा बोधन तिवारी उठाता है। छब्बी के गरीबी का फायदा उठाकर उसका शारीरिक शोषण करता है। फिर भी छब्बी कुछ कहती नहीं। बोलती क्यों नहीं हरामजादी। बडे पंडित की आवाज थी। छब्बी का तो रोम-रोम काँप उठा। "उसने चुपचाप बोधन तिवारी की ओर गर्दन हिला दी। वह यह कैसे कहे कि रात में औरत की अस्मिता पर धावा करनेवाला और कोई नहीं बडे पंडित का लडका ही था।"[54] खुद को उच्च माननेवाले पंडित का ही बेटा ऐसा अधर्म करता है। जिससे पंडित की गांव में रही सही इज्जत

निलाम हो जाती है। उच्च-वर्ग ही ऐसा भ्रष्ट आचरण करने लगे तो समाज में किस पर विश्वास किया जा सकता है। सारे समाज को दिशा देने का काम करने वाले ही दिशहीन हो रहे हैं। "मुर्गे ने बाँग दी" कहानी में मंगरू लोहार की दर्दभरी कहानी है। किसानों के लिए हल बनाने का काम तो मन लगाकर करता है, वही उसका उदरनिर्वाह का एक मात्र साधन है। हल बनाने के बाद उसे कोई मजदूरी समय पर नही देता। मंगरू के घर में खाने के लिए कुछ भी नही बचा है। मंगरू की घरवाली कोंसती रहती है। ठाकूर मंगरू से पूछता है- "तेरी औरत लोगों को आँखे दिखाती है और तू मजाक करता है कि हल बनाता है। घण्टे-घण्टे हल टुटे तो फिर मेरी तो खेती हो चुकी।"[55] ÆÞ»Ö बनाने का काम मंगरू का है। हल टुटे तो उसमे दोष किसका है? मंगरू का या हल जोतने वाले का फिर भी ठाकुर मजदूरी तो देता नहीं ऊपर से दोष मंगरू को देता है। जमींदार लोग लोहार का भी आर्थिक शोषण करते हैं।

"आर-पार की माला" कहनी में लेखक ने कुंजड जाति के नटों के दुःख को ऊकेरा है। अपने पेट की आग बुझाने के लिए दर-दर की ठोकरे खानेवाली कंजड जमात।कभी इस गांव तो कभी ¤सरे गांव घुमते रहते है। उनके घर का कोई ठिकाना ही नहीं होता। जुम्मन का कुनबा मटरू के गांव आता है। रज्जब और नीरु की शादी तय हो जाती है। सगुण के रुप में दो-सौ रुपये भी दिये जाते है। लेकिन ठाकुर को यह बात खटकती है। ठकुर थानेदार को रिश्वत देकर जुम्मन और रज्जब को चोरी के जुर्म में गिरफ्तार करवा लेता है। नीरु झ ोंपडी के बाहर खडी विदाई की तैयारी में थी। तभी एक आदमी ने आकर खबर दी कि- "जुम्मन और उसके लडके को थानेदार ने ठाकुर की छावनी पर तलब किया है। नीरु ने यह भी सुना कि ठाकुर की छावनी से रुपये, वर्तन और भी कई सामान चोरी चले गये। चोरी के जुर्म ने जुम्मन और रज्जब को थानेदार ले गये। भैंसे मवेशीखाने गयीं, मुर्गियाँ थानेदार के खानसामे के पास, बकरियाँ लापता हो गयी, कुत्त मारे-मारे फिरे, पूरा कुनबा उजड गया।"[56] शादी के पहले ही नीरु का सपना टूटकर चूर हो गया। जुम्मन और रज्जब ठाकुर का खुलेआम विद्रोह करते है। यही विद्रोह वर्ग-संघर्ष का बीज है।

"पापजीवी" कहानी में शिवप्रसाद सिंहजी ने बदलू के माध्यम से ठेकेदारों के खिलाफ विद्रोह के स्वर को स्पष्ट किया है। उद्योगपती लोग मजदूर लोगों का आर्थिक

शोषण करते है। आर्थिक शोषण का जीता जागता उदाहरण बदलू है। जो ठेकेदारों के खिलाफ आवाज उठाता है तो उसे कुचल दिया जाता है। बदलू ठेकेदार से दोनों हाथ जोडकर कहता है। "मेरी लडकी बहुत बीमार है, मरी जात है, हमें दो सो ठो रुपिया दे दो, मरकर मेहनत करके हम आपका सब चुका देंगे।"[57] फिर भी ठेकेदार को बदलू पर दया नहीं आती। तब बदलू की आत्मा अपने छोटेपन, नालायकी और दीनता पर कराह उठी। बदलू विद्रोह करने पर उतर आता है। आज मानव अपनी मानवीयता को भुलता चला जा रहा है। आर्थिक लोभ उसका एक मात्र कारण रहा है। "सँपेरा" कहानी में लेखक ने जमींदार और नटों के बींच उफलते वर्ग-संघर्ष का यथार्थ चित्रणकिया है। बक्कस नट का कुनबा अक्सर गर्मी के दिनों में इधर आया करता था, नदी पास थी, आसपास बड-पीपल के पेडो की बहुतायत थी, इसलिए नटा का कुनबा महिनों इस गाँव में डेरा डाले पडा रहता। बक्कस की बेटी कम्मों की शादी नबी के लडके बशीर से हो जाती है। जमींदार के गुण्डे की नजर कम्मो पर पड जाती है। जमींदार के गुण्डे कम्मो को उठा लेते हैं। अपनी अस्मत बचाने के लिए कम्मो ने आँचल की खूँट में बँधी अफीम खाकर अपनी मौत कोहँसते हँसते भेंट लिया। कम्मो की मौत का बदला बशीर लेना चाहता है। कम्मो की यादें में वह पागल हो जाता है। बशीर के जीवन का एक मात्र लक्ष्य था, जमींदार की मौत।" नटों को सदियों से सताया गया है। नट जाति उच्चवर्ग व्दारा सतायी गयी है। जमींदार से बक्कस नट व्यंग से भरी तीखी मुस्काराहट के साथ कहता है- "आप भी क्या कहते हैं राजा ! अरे यह सब साँप सताये हैं सरकार ! जहर का दाँत ही कहाँ रह गया इनका, बिना खाये जहर भी तो नहीं बनता-क्या खाकर काटेंगे भला यें।"[58] जमींदार लोगों व्दारा सदा ही सतायी हुई जाति नट रही है। साँप का विषैला दाँत निकालने पर साँप दुर्बल कमजोर बन जाता है, उसी तरह नट जाति भी दुर्बल और कमजोर है। वह जमींदार का कुछ बिगाड नहीं सकती। जमींदार मूँह की आवाज तो बन्द कर सकता है, लेकिन अंतरात्मा की आवाज को कैसे बन्द करेगा। बक्कस के मन में जमींदार के प्रति, ईÖÖ, «ÂÖ और बदले की अतृप्त लालसा संघर्ष को जन्म देती है।

"आदिम हथियार" कहानी में चौधरी का लडका श्यामलाल शहर से आशा नामक लडकी उठा लाया दिखने में बडी खुबसुरत है। श्यामलाल और आशा प्रेमविवाह कर लेते

है। लेकिन यह समाज को मंजूर नहीं। आशा घर से भागकर आयी है। गांव में प्रेमविवाह को मान्यता ही नहीं है। गांव में आशा को लेकर अलग-अलग तर्क-विर्तक किये जाते है। किस जात की है, लडकी, जाँति-पाति के कडे बंधन में जकडा हमारा ग्रामीण समाज ऐसी शादी को क्या मंजूरी देगा? गांव का सभापति हुकूमसिंह पंचायत बुलाता है। सामाजिक वर्ग-संघर्ष की झलक देखने को मिलती है। रामनाथ हुकूमसिंह को पंचायत में जलील करना चाहता है। इसलिए वह श्यामलाल का साथ देने के लिए तैयार हो जाता है। मानव के मन में हर पल स्वार्थ ही बसा हुआ है। यही स्वार्थ सामाजिक वर्ग-संघर्ष की जड है। श्यामलाल पंचायत को लेकर कहता है-"यही है नयी पीढी की क्रान्ति। व्यक्ति से व्यक्ति की लडाई तो बहाना है, लडता है खानदान से खानदान या जात से जात। इसके बाहर कहीं जैसे समाधान है ही नहीं। मैं इन दो दलों के खिलाडियों के हाथ का मुहरा हूँ, मामूली गोटी, जिसे अपनी सुविधा से जो चाहे जहाँ बिठा लेना चाहता है।"[59]

"इन्हें भी इन्तजार है" कहानी में समाज में अस्पृश्य समझी जानेवाली जाति डोम ही रही है। डोम लोगों को कोई काम देता ही नहीं क्योंकि लोगों की इस प्रकार की मान्यता है कि, डोमों को जूठा खाने की आदत है। मजूरी मे भी वह पकाया हुआ अन्न ही लेते हैं। कच्चा अनाज कभी नहीं लेते, क्योंकि चूल्हा-चक्की छूना उनके लिए अपमान की बात है। बाँस की डाली-मोन्हियों से दो समय की रोटी मिल जाती है। डोम लोगों को, कोई भी काम पर रखता नहीं। इस संदर्भ में मँगरा कहता है- "टेशन पर गुदामों में झारी करने के लिए भी हमें कोई नहीं पूछता। मुसहर-चमार गरीब है सही, पर उन्हें करने का नीचा-ऊँचा काम तो मिल जाता है, हम कहाँ जायें सरकार, हमारी देह में तो ऐसी छूत भरी है कि कोई खाद-गोबर फेंकने का काम भी नही करने देगा।"[60]

इसलिए समाज में डोम जाति को अस्पृश्य से भी अस्पृश्य समझा जाता है। वह भी मानव ही है फिर भी उस डोम जाती के साथ इस प्रकार का खिलवाड क्यों समाज करता है? सडी गली रुठि-परंपराओं के नाम पर डोमों का गला घोटा जा रहा है। यह समाज डोमों को मानव बनकर जीने ही नहीं दे रहा है। जानवर से भी बदेत्तर जिंदगी डोम लोग जी रहे हैं। आज के आधुनिक काल में भी समाज का इस प्रकार का व्यवहार

अमानवीय रहा है। पूरे डोम जाति का सामाजिक शोषण किया जा रहा है।

"किसकी पाँखे" कहानी में धार्मिक वर्ग-संघर्ष को देखा जा सकता है। अशरफ चाचा मानवता का प्रतिकात्मक रुप है, तो ज्ञानू महराज धार्मिक जातिवाद के कट्टर समर्थक है, जो मानवता को भूल चुके है। ज्ञानू महाराज धार्मिक अडंम्बर के नाम पर ढोंगी और स्वार्थी प्रवृत्ति के इन्सान है। मजहब के नाम पर मानव-मानव में भेदभाव करके अपना उल्लू सीधा करते है। अशरफ चाचा गाव में इतने घुल-मिल गये थे, कि गाव के हर एक घर को वह अपना घर समझते थे। पर्व, उत्सव, त्यौहार, शादी ब्याह को अपना ही मानकर काम करते थे। लेकिन बुड्ढे पुजारी के मृत्यु के बाद मंदिर के प्रमुख पुजारी ज्ञानू पंडित बनते है। ज्ञानू पण्डित धार्मिक कट्टरवादी थे। अशरफ चाचा ज्ञानू पण्डित से पूछते है कि इस साल किस सबब से देवी के पुजापे में मुझसे चन्दा नहीं लिया गया। तब ज्ञानू पण्डित कहतेहै- "मै देवी माता की पूजा में म्लेच्छ से चन्दा नहीं ले सकता। यह हमारे धर्म के विरुध्द है। जो लोग मन्दिरों को अपवित्र करते हैं उन पर हिलाली ध्वजा गाडते है, उनके पैसे से पूजा नही हो सकती।"[61] मजहब के नाम पर जाति-जाति में झगडा लगाने वाले ज्ञानू पण्डित जैसे लोग आज भी हमारे देश में कदम-कदम पर देखने को मिलते है। धर्मांध लोग भारत की एकता को टुकडों में बाँटना चाहते है।

"तकावी" कहानी में शिवप्रसाद सिंह जी ने भारत कृषी प्रधान देश है। कृषी पर ही सब कुछ निर्भर है। शंकरसिंह सरकार से तकावी के रुप में ढाई सौ रुपये मिलेथे। शंकरसिंह चैती की फसल पर तकावी के पैसे अदा करने की आशा में जीते रहे। लेकिन चैतीकी फसल ने भी किसानों को निराश कर दिया। चैती की फसल पर तकावी वसूलने वाले अफसरों के खेमे गांव में आने लगे। शंकरसिंह ने अभी तक न लगान दी न तकावी का रुपया ही भर पाये। गांव में तहसीलदार के आदमी आने लगे। तब शंकरसिंह रिश्तेदारों के यहाँ जाने लगे। खाने के लिए मोहताज किसान तकावी के पैसे कैसे भर सकता है। लेकिन तकावीके पैसे तो भरने ही पडेगे। सरकारी सिंपाही शंकरसिंह की पत्नी को सुनाकर कहता है-"‡Ã 200¸ हम लोग पन्द्रह जुलाई को आयेंगे। जरा कह दीजियेगा कि उस दिन किसी रिश्तेदारी में न जायें। नहीं बात बिगड जायेगी।"[62] सरकारी सिपाही की धमकी से डरकर शंकरसिंह अपना ढाई बीघा खेत रेहन रखकर ढाई सौ रुपये जुटाकर तकावी वसूलाने

वाले अफसर को दे आते है। सरकार व्दारा किसानों का यह आर्थिक शोषण ही है। इसी शोषण के कारण सरकार और किसानों में वर्ग-संघर्ष देखने को मिलता है।

"कलंकी अवतार" कहानी में रोपन बारी नें जिन्दगी के पचास साल बडे लोगों की खिदमत में गुजार दिये। उन्हें गांव के सभी लडके के जनम, जनेऊ या शादी-ब्याह का ब्योरा मालूम है। दूसरों के सुख में अपनी जिन्दगी लगाकर रोपन को कमी दुख नहीं हुआ। रोपन गांव में सभी का काम करता था। रोपन ने कभी भी अपने धरम को निभाने में आलस नहीं दिखाया। पर फल क्या मिला। गांव में जमींदार लोग मौके की तालश में ही रहते है कि कब कौन उनकी गिरफ्त में आ जाये। रोपन बारी के साथ भी ऐसा ÆÌß ÆÌ†Ö- "लडकी की शादी में तीन सौ रुपये के करज में घर का पुश्तैनी खेत नीलाम हुआ। लाख रोने गिडगिडाने पर भी भेंदुसिंह खेत छोडने को तैयार नहीं हुए करज द्धिया। नालिश की नीलामी कराई और घूम फिरकर नीलाम खेत भेदूसिंह की जोत में आ गया। वाह रे नियाव ! वाह रे फैसला !"[63] रोपन बारी का खेत नीलाम कर भेदूसिंह ले लेता है। आर्थिक लाभ के सामने कोई रिश्ते-नाते मायने नही रखते हैं। जमींदार गरीब लोगों का आर्थिक शोषण करते हैं। और इसी आर्थिक शोषण के कारण वर्ग-संघर्ष की शुरूआत होती है।

"श्रृंखला" कहानी में उच्चवर्ग ने हमारे देश की एकता को खोखला एवं पंगू बना दिया है। जाति के नाम पर समाज को अलग-अलग टुकडों में बाँट रखा है। ललता सिंह जैसे राजपूत वंशीय शोषक वर्ग सदा से हमारे देश में रहे है। ललता सिंह शोषण वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। परगस काछी शुद्र या खेतिहार मजदूर का प्रतिनिधीत्व करता है। ललता सिंह जैसे लोगों ने निम्नवर्ग का आत्म-विश्वास ही तोड दिया है। इस संदर्भ में लेखक कहते हैं- "जाति के नाम पर आज तक किसी को वह अनमोल रतन नहीं मिला जिसे आत्म-विश्वास कहते है। पर हमारे देश में जाति के नाम पर जो होली खेली गयी। वह दुनिया में कही भी नही हुई। शुद्र के अंतर्गत शामिल की जाने वाली लगभग तीन सौ जातियों को इस तरह दुत्कारा गया, भूख से लालायित शुद्र बच्चों के सामने जो रोटी के टुकडे फेंके गये वे, दानवीरों धर्म धुरंदरो के लिए भले ही संतोष दिलाने वाले लगें, पर अक्सर शुद्र शब्द की आड में जीवित मनुष्यों के साथ जो अमानवीय कुकृत्य हुए, ऐसे उदाहरण किसी भी सभ्य देश के समाज में मुश्किल से मिलेंगे।"[64]

जाति के नाम पर शुद्र लोगों पर अन्याय, अत्याचार खुलेआम किये जा रहे हैं। उच्चवर्ग के इस अन्याय, अत्याचर की चक्की में निम्नवर्ग पिसता जा रहा है। लेखक ने यहाँ धार्मिक वर्ग-संघर्ष को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। "प्रमाण-पत्र" कहानी में ठाकुर धरमराज की बेटी उम्मी और चमार हरकीरत का बेटा सोमू प्रेम की डोर मे बंधे हुए हैं। ठाकुर धरमराज अपनी खानदान की इज्जत को किसी भी हालत में बचाना चाहता है। सूरत काका ठाकुर को फटकार देते हैं। आज के जमाने में जमींदारी टूट चूकी है। सूरत काका जमींदार का विरोध करते हुए कहते हैं- "तुम जौन जात हो, हम जानत है। अपने को सूरजवंशी कहत हो। अब सारे दिहात के भर भडभूले भी अपने को सैंगरे कहत है। चलो रे बेटवा, चल खलिहाने में। ई-ससूर अब्बो अपने के जमींदारै बुझत है। हंटर देखाये रहे हे। चमरौधा से अइसी पिटाई कर देवेंगे ससूर पापराज की तोहरे वेलमुंड की सारे बार सफाचट होई जोवंगे, हां !"[65]

आज के जमाने में पूरे हिंन्दूस्तान में नये विचारों की हवा चल रही है। समस्या अंतर्जातीय हद लांघ कर अंतधर्मी हो गयी है। और ई साला है महाइच कि ठाकुर-ठाकुर में बडका-छोटका कौन सवाल पर लड रहा है। नये जमाने में भी ठाकूर अपनी पुरानी मान्यताओं, मान मर्यादा को लेकर चल रहा है। हवा के झोंके के साथ अपने में परिवर्तन लाना जरुरी है। लेकिन ठाकुर परिवर्तन चाहता ही नहीं। चमार भी अब ठाकुर लोगों का खुलकर विरोध कर रहे है। "आदमखोर पैंथर" कहानी में जमींदार सिधारी सिंह की सारे गांव में दहशत है। सिधारी सिंह अर्थ के बलपर गांव की औरतो का आर्थिक और शारीरिक शोषण करता है। सिधारी सिह का गांव में कोई बाल भी बांका नही कर सकता। अर्थ बल पर अनैतिक कुकर्म करता है। सिधारी सिंह मनसा को भोगना चाहता है। मनसा जोगिन्दर से प्रेम करती है। सिधारी के शोषकी प्रवृत्ति का आघात मनसा के मन पर पड जाता है। नींद में मनसा ने ख्वाब देखा। ठाकुर कहता है-"क्यों बे जोगिन्दरा, स्साले तू रोज छिप-छिपकर मनसा से मिलता है। उसे भरमाने को कोशिश करता है। अबे छुछुन्दर की औलाद तुझे मालूम नहीं कि इस गांव में नीम की एक पतई भी सिधारी के हुकूम के बिना हिल नहीं सकती। हरामी सुरसतिया पर मेरा दस हजार कर्जा है। यह स्साली मनसा मेरी बंधुआ मजूरिन है। यह जिन्दगी भर जाँगर ठठाती रहेगी, तब भी वह

कर्जा नहीं चुक पायेगा। इसे बेटी, बेटे होंगे, वे भी इसी तरह जाँगर तोड कमाई करते रहेंगे तब भी कर्जा नहीं चुक पायेंगा। इसके बाद उसके बेटे की शादी होगी। शादी तो मुझे ही करनी पडेगी न? कहां से रुपया लायेगी मनसा। चलो मान लेते हैं। जमाना बदल गया। किफायत से शादी करेगी, पर किफायत करने के लिए इसके पास क्या है? सिर्फ बदन। बस यही तो है न इसकी पूंजी? और स्साले सुन ले तू भी। तू चाहे लाख इनकलाबी बातें कर, रोटी के लिए तो सिधारी सिंह के दरवज्जे के चौकट पर सिर पटक-पटक कर चिल्लाना ही पडेगा-ठाकुर, एक टुकडा...।"[66] मनसा पहले तो माँ से ही विद्रोह करती है। मनसा की बहन जेठरी भी सिधारी सिंह की हवस का शिकार है। मनसा सिधारी सिंह के शोषक प्रवृत्ति का तिखा विरोध करती है।

3.4.3 नाटक साहित्य में वर्ग-संघर्ष :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के सिर्फ दो ही नाटक हैं। 'अश्मक का फूल' और "घाटियाँ गूंजती है।" जिनमे 'घाटियां गूंजली है' नाटक भारत चीन युध्द की दर्दनाक कथा है। चीनी शासक तानाशाही का प्रतिकात्मक रुप है, तो भारतीय शासक गरीब और शोषित जनता का प्रतिकात्मक रुप है। चीनी शासक भारतीय भूमि पर अचानक आक्रमण कर देते हैं, जिनमे गरीब जनता पिसी जाती है।

डॉ. शिवप्रसाद सिह जी नाटक की पार्श्वभूमि में लिखते हैं -"आजके चीनी शासकों ने चीन और भारत की जनताको एक दूसरे के आमने-सामने शत्रू-भावसे खडा कर दिया है। विश्वके करीब आधे जनसमुहका यह पारस्परिक वैर-भाव संसारके इतिहासका अश्रुत्वपूर्व तथ्य है-एक भयंकर, बीभत्स और आत्मको कँपा देनेवाला तथ्य, किन्तू यह तथ्य है और इसे तथ्य मानकर ही इसकी सारी बिभीषिकाओं और ध्वंसलीलाओंको झेलने और समझकर झेलने की आवश्यकता है।"[67]

आज विश्व-मानवताके सामने एक ऐसा तानाशाह राष्ट्र उभरने लगा है जो सह-अस्तित्व और शान्तिमें विश्वास नहीं करता। जो युध्दको अनिवार्य मानता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि युध्द की लपटोमें संसार को झोंक देनेसे ही उसके तथाकथित ऊँचे सिध्दान्तोंका प्रचार प्रसार हो सकेगा। यह एक विषम संकट है। हिटलर की निरंकुश

महत्वाकांक्षाने समूचे युरोपको जिस प्रकार खूनसे नहला दिया, उसी प्रकार आजके चीनी शासक सारे एशियाको लोहू-लुहान बना देनेका मनसूबा बाँध रहे हैं। चीनी शासन के लिए मनुष्यके जीवनका कोई मूल्य है ही नहीं। ऐसे भयंकर दुर्दान्त शत्रुसे जूझने के लिए नियतिने हमारे इस प्राचीन, सांस्कृतिक और शान्तिप्रिय देशको ही चुना यह एक विडम्बना तो है, लेखक पार्श्वभूमि में लिखते हैं -"चीनी शासक न केवल तानाशाह, निरंकुश और क्रूर हैं बल्कि विकट रुपसे छल-छदममें प्रवीण भी हैं। वे बडी आसानीसे सचको झूठ और झूठको सचमे बदल देते हैं। वे गरीब और शोषित जनताके प्रति अनिर्वचनीय सहानुभूतिसे लबालब भरे है। वे अपने सभी कुकृतियोंको ऊँचे-ऊँचे आदर्शोके रंगीन मुखोशमे छिपाकर उपस्थित करते हैं।"[68]

चीनी शासक भारतकी जनता के शुभ-चिन्तक और सहयोगी बनने का नाटक करते हैं और उसे कष्टों से मुक्त कराने के लिए स्वयम्भू उपकारका बाना भी धारण कर चुके हैं। ऐसे बहुरपिये शत्रुको उसके सही रुपमे समझने और दूसरों को समझानेका कष्टपूर्ण कर्तव्य भी नियतिने भारतको ही सौंप दिया है, यह भी बिडम्बना नहीं, सौभाग्य ÆÌ Æ… आज भारत महासत्ता की ओर अग्रेसर हो रहा है। चीनी शासक भारत में अशांति फैलाना चाहते जो कि भारत सरकार आपसी समस्याओं में ही घिरे रहे। चीनी शासक की तानाशाही प्रवृत्ति, भारतीय जनता के साथ छल-छदम करने की प्रवृत्ति भारत की कुछ भूमि हथियाना चाहते हैं। भारत को विकसित होते नहीं देख सकते। चीनी शासक की इस नीति पर कडा प्रहार करते हुए लेखक कहते हैं-"आज सम्पूर्ण एशियामे मनुष्य की स्वतन्त्रता देशों की अखण्डता, जनता का सुख-चैन, विश्वास-आस्था, धर्म-कर्म, न्याय-नियम तथा संस्कृति-सभ्यता संकटमें है। चीनी शासक जानते है कि उनके सर्वग्रासी अभियानमें कोई अवरोध खडा कर सकता है तो भारत ही इसलिए वे किसी भी प्रकार भारतको विकसित होते नहीं देख सकते। हमारी अनेक सम्भावनाओं से भरी योजनाओं मे बाधा डालना, उन्हें सैनिक संभारके दबावके नीचे टूट-फूट जाने के लिए विवश करना ही उनका उद्देश्य है।"[69] इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर चीनी शासकोंने सभी प्रकार के मानवीय आदर्शों की अवहेलना करके, सभी प्रकारके सभ्य जनोचित व्यवहार को ठोकर मारकर हमारे देशपर यह बर्बरतापूर्ण धाबा बोल दिया है। यहाँ चीनी शासकों

की तानाशाही की प्रवृत्ति उभरकर सामने आती है।

भारत वीरों का देश है। भारतीयों में ममता, त्याग एवं वीरता कूट-कूटकर भरी हुई है। जब चीनी सेनाएँ छिपकर बोमदि लाकी बस्तीपर टूट पडी। १८ नवम्बर रविवार के दोपहर बाद चीनियोंका बोमदि लाके कस्बेपर जो बगीचों का नगर कहा जाता है, कब्जा हो गया। सारा देश पीडा और आत्मग्लानिकी आगमें लहर उठा। कुछ चन्द सिपाही वीरतापूर्वक चीनी सेना का मुकाबला करते हैं। भारतीय सेना की वीरता को देखकर लेखक लिखते हैं- "से लाके पास ब्रिगेडियअर होशियार सिंह और उसके समरधनी जवानों ने आगे बढकर मोर्चेसे कतराती हुई चीनी सेना के मार्ग को रोकने का जो वीरतापूर्ण प्रयत्न किया और मातृभूमिकी रक्षाके लिए इन मुट्ठी-भर भारतीय वीरोंने अपने प्राणों की जैसी आहुति दी, वह हमारे इतिहासकी अविस्मरणीय घटनाके रुपमें ज्वलन्त अक्षरोंमें अंकित रहेगी।"[70]

भारत माता पर जब कोई आक्रमण कर देता है, तो भारत में रहनेवाली सभी जन-जातियाँ किसान-मजदूर नेता, व्यापारी एक होकर सामना करते हैं। उस समय उनमें किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं होता, हम सब एक हैं की ध्वनि से अंकित होते हैं। पत्रकार विवेक मोर्चे पर जाना चाहता है। जो कि वहाँ का दृश्य भारतीय जनता को मालूम हो, जिससे भारतीयों के मन में त्याग और साहस निर्माण हो। विवेक कॅप्टेन से वहाँ जाने के लिए जीप की मांग करता है। तब कैप्टन कहता है-"क्यों नहीं, क्यों नहीं। तुम हमारे वीर सैनिकोंके रक्तसे अंकित देशभक्तिकी आँखो-देखी छवियाँ इकट्टी करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने सीधे मोर्चेपर जा रहे हो, और मैं तुम्हारी यह छोटी-सी मदत नहीं कर सकता? बन्धू, यह स्वतन्त्र भारतका पहला युध्द है। इस युध्दका एक-एक सैनिक अपनी मातृभूमि के मान-सम्मान का पहरेदार है। सैनिक, नेता, शासक, पत्रकार, लेखक, किसान, मजदूर और व्यापारी-ये सब जैसे अलग-अलग डिपार्टमेंट हैं, मगर अधीन एक ही हेडक्वॉर्टरके हैं और वह हेडक्वॉर्टर है मातृभूमि -"[71] संकट के समय मे सभी जनता एक हो जाती है। एकता से बढकर कोई दूसरी शक्ति नहीं है। विविधता में एकता ही भारत माता का ब्रिद है।

चीनी शासक भारतीय जनता को अपना गुलाम बनाना चाहते हैं। अपनी शक्ति

के बल पर भारतीय जनता को कुचलना चाहते हैं। चीनी शासक अधर्म का प्रतीक है जो अधर्म के बलपर धर्म को जीतना चाहते हैं। लेकिन आज तक कोई भी धर्म को जीत नही सका है। फादर पिण्टो चीनी शासक की अधर्मी नीति के संदर्भ में कहते हैं- "मैं भी मानने लगा हूँ कि धर्म दो ही हैं, और दोनों एक-दूसरे के बिलकुल विरोधी। एक धर्म है नीति, दूसरा अनीति। एक धर्म है स्वतंन्त्रता, दूसरा गुलामी। एक धर्म है इन्सान, दूसरा शैतान। जो भी नीति-न्याय स्वतन्त्रता, चीनी हमलेका भी हमें सही अर्थ समझना चाहिए 2ö2ö।..."[72] जो मानवता का विरोधी होता है, वह सभी का शत्रू होता है। चीनी सिर्फ भारत का ही शत्रू नहीं पूरे युरोप का भी शत्रू है। चीनी शासक हमको गुलाम बनाकर हमारा शोषण करना चाहता है।

मार्क्सवादी की बडी शिक्षा यह थी कि सत्य-असत्यके निर्णयमें सभ्यता और शिष्टाचारको नहीं झुठलाना चाहिए, तानाशाही, भाषा में बातें नही करनी चाहिए। मार्क्स परंपरा का द्रोही नहीं, संस्कृति और सभ्यता का द्रोही नहीं, द्रेही तो है तानाशाही का मार्क्स वर्ग-संघर्ष को खत्म करना चाहते है। चीनी खुद को मार्क्सवादी कहते हैं लेकिन उनका आचारण तानाशाही जैसा है। मार्क्स की आत्मा जादूगर से कहती है- "तुम? तुम अपने को मार्क्सवादी कहते हो पर बात तानाशाहों जैसी करते हो। तुम अपने को जनता का सेवक कहते हो, पर गला उसीका काटते हो। तुम अपने को समाजवादी कहते हो, पर हिटलर और मुसोलिनी से स्पर्धा करते हो। तुम अपने को पंचशील और सहअस्तित्वका निर्माता कहते हो, पर युध्दको मार्क्सवादके लिए अनिवार्य बताते हो। तुम लाल लिबासमें जल्लाद हो, तुम क्रान्तिके नामको कलंकित करनेवाले लुटेरे हो, तुम बोर्जुवा युध्द-लोलुपों का विरोध करनेवाले स्वयं सबसे बडे युध्द-लोलुप हो। यानी, एक शब्दमें तुम ड्रगॅन नहीं गिरगिट हो।"[73]

चीनी शासक ढोंगी हैं, समय के अनुसार अपनी वृत्ति में परिवर्तन करते हैं। ऐसे जल्लाद शासन से हमेशा हमें सावधान रहना चाहिए।

संदर्भ संकेत

1. हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना, डॉ. प्रताप नारायण टंडन, पृ. ३८
2. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, श्री. हीरालाल पालित
3. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, भगवतशरण उपाध्याय, पृष्ठ. ८३
4. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, डॉ. मुंजुलता सिंह, पृष्ठ क्र. ३६३
5. मेनिफेस्टो ऑफ दि. कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्स एंजेल्स, एंजेल्स / कार्ल मार्क्स - सलेक्टेड वर्क्स, Vol - I प्रोसेस पब्लिशर, मॉस्को, युनायटेड -१८४८ पृष्ठ - ४३
6. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइन्सेस, मॅकमिलियन रेफरन्स, यु. एस. ‹., 2008, ¯ÖÂš 538
7. मार्क्सिस्ट फिलासफी : बी एफानसेव, पृष्ठ २५५
8. एंजेल्स : ड्यूहरिंग मत का खण्डन, पृष्ठ ३२
9. धर्मयुग (४ मई १९८६) सम्पा. धर्मवीर भारती, कार्ल मार्क्स पिछेड हुए लेखक - गणेश मन्त्री, पृष्ठ ३६
10. "जर्मनभावी नव जागृति की क्षीणतम तलहट" सिध्द हुआ है - एंजेल्स : डुयूटरिंग मत का खण्डन, पृष्ठ क्र. २३१
11. "जर्मनभावी नव जागृति की क्षीणतम तलहट" सिध्द हुआ है - एंजेल्स : डुयूटरिंग मत का खण्डन, पृष्ठ क्र. २३१.
12. इन्सीक्लोपीडिया आफ सोसल साईन्सेज, मॅकमिलीयन रेफरन्स यू. एस. ए. 2008, ¯ÖÂš - 539.
13. धर्मयुग (४ मई १९८६) सम्पा. धर्मवीर भारती, कार्लमार्क्स : पिछडे हुए लेखक - गणेश मन्त्री, पृष्ठ ३६.
14. एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेस, वॉल्यूम III, मॅकमिलीयन रेफरन्स यु. एस. ए. २००८, पृष्ठ ५३९.
15. इंडियन मिडिल क्लासेज (१९६१), डॉ. बी. बी. मिश्र, पृष्ठ - ०२
16. स्टडीज इन क्लास स्ट्रक्चर (१९५५), जी. डी. एच. कोल, पृष्ठ - ०१.

17. प्रेमचन्द और शरत चन्द्र के उपन्यास, मुनष्य और बिम्ब डॉ. सुरेन्द्र तिवारी, पृष्ठ२९
18. हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, डॉ. गणेशनन, पृष्ठ २२६-२७.
19. मैनिफेस्टो आफ दि. कम्युनिस्ट पार्टी, (इंग्लिश) १९५५ (मास्को) मार्क्स / एंजेल्स सलेक्टेड वर्क्स Vol - I प्रोसेस पब्लिकेशन मॉस्को, पृष्ठ - ५१
20. मार्क्सवाद और रामराज्य - स्वामी करपात्री महाराज, पृष्ठ २६९.
21. प्रतिदान : रांगेय राघव : दो शब्द, पृष्ठ ५
22. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना : डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृष्ठ. ८४
23. Luduri G. Feurtach and the out come of classical German Philosophy E. Angles Page 1.
24. समाजवाद वैज्ञानिक और काल्पनिक : एंजेल्स मॅकमिलीयन रेफरन्स यू. एस. ए. 2008, ¯ÖÂŠ 27-28.
25. अलग-अलग वैतरणी- डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. २३.
26. अलग-अलग वैतरणी- डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. ३३२.
27. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. २६
28. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. २८
29. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. १७०-७१
30. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ -१, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. १८४
31. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. १५५.
32. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. १८३.
33. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २, डॉ. शिवप्रसद सिंह, पृष्ठ २८७.
34. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ २, डॉ. शिवप्रसद सिंह, पृष्ठ ३७.
35. अमृता - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. २५
36. अमृता - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. ३७
37. अमृता - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. १५१-१५२.
38. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. ६
39. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. २७

40. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिह, पृष्ठ क्र. ३४

41. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिह, पृष्ठ क्र. ४२०

42. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिह, पृष्ठ क्र. ४२१

43. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. ६६

44. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. १०७

45. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. २६

46. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. ७२

47. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र.१९१

48. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २३.

49. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ६२.

50. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११३.

51. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, (भूमिका से ज्वलंत प्रश्न) पृष्ठ XI

52. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११०

53 वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १९४.

54. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. १९.

55. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ क्र. २२.

56. शिवप्रसद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३५.

57. शिवप्रसद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १०४

58. शिवप्रसद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११७.

59. शिवप्रसद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १४८.

60. शिवप्रसद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १८१.

61. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २, डॉ. शिवप्रसाद सिंह पृष्ठ ३७.

62. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २, डॉ. शिवप्रसाद सिंह पृष्ठ १९३.

63. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २, डॉ. शिवप्रसाद सिंह पृष्ठ २८३

64. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २, डॉ. शिवप्रसाद सिंह पृष्ठ २८७.

65. †´ÖŸÖö - ›Öò. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü - ¯ÖéÂšü 23

66. †´ÖŸÖö - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü - ¯ÖÂšü 151-152

67. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ०५

68. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ०६

69. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ०७

70. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ०८

71. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३१

72. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ४२

73. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ६१, ६२

चतुर्थ अध्याय

डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का विवेचन

4.1 डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का विवेचन

4.1.1 बदलते सामाजिक मूल्य

4.1.2 नैतिक मूल्यों का विघटन

४.१.२.१ यौन संबंध

४.१.२.२ उच्च निम्न जातियों के यौन संबंध

4.1.3 संबंधो मे तनाव और उनका विघटन

४.१.३.१ वैयक्तिक संबंध

४.१.३.२ पारिवारिक संबंध

४.१.३.३ दाम्पत्य संबंधो मे विघटन

४.१.३.४ माँ-बाप और संतान के बीच संबंधों में विघटन

४.१.४ ग्रामीण परिवेश मे नारी की परिवर्तित मानसिकता

४.१.४.१ नारी और विवाह

4.2. डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य मे चित्रित आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण

4.2.1 आर्थिक दुरवस्था और उसके कारण

4.2.2 जमींदार वर्ग

4.2.3 सरकारी अफसर

4.2.4 ¯Ö×»ÖÃÖ

4.2.5 दैवी और भौतिक आपदाएँ

4.2.6 बेकारी

4.2.7 रोजी-रोटी की समस्या

4.2.8 जमींदारी उन्मूलन के बाद जमींदारों की स्थिती

4.2.9 नगराभिमुखता

4.3. डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में चित्रित राजनीतिक समस्याओं का विवेचन

4.3.1 राजनीति तथा साहित्य

4.3.2 शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में व्यक्त राजनीतिक स्वर

4.3.3 ग्रामीण परिवेश में नवीन भाव क्रांति

4.3.4 सामंतीय जीवन का विघटन

4.3.5 राजनीतिक अवसरवादिता

4.3.6 गांधीवाद

4.3.7 छात्र आन्दोलन

4.3.8 ग्राम पंचायते

4.4 डॉ. शिवप्रसाद सिंहजी के गद्य साहित्य का धार्मिक विवेचन

4.4.1 ¬Ö´Ö †£Ö <¾Ö ¯Öx¸³ÖÖÂÖÖ

4.4.2 ¬Ö´Ö †Ö¸ Ã×´ÖÖ•Ö

4.4.3 धर्म और बदलते सन्दर्भ

4.4.4 ग्रामीण समाज में व्याप्त आस्तिकता

4.4.5 धार्मिक एकता एवं विकृतियाँ

४.४.५.१ बाहयाचार

४.४.५.२ भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताएँ एवं अन्य अन्धविश्वास

४.४.५.३ भौतिक स्वार्थो की पुर्ति हेतू मनौतियाँ

४.४.५.४ देवी - देवताओं की पूजा

४.५ डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का सांस्कृतिक विवेचन

४.५.१ संस्कृति की परिभाषाएँ

४.५.२ संस्कृति और सभ्यता

४.५.३ भारतीय ग्रामीण संस्कृति के विविध पहलू

4.5.3.1 ×¾Ö¾ÖÖÆ

4.5.3.2 ŸÖß•Ö

४.५.३.३ चरण छूना

4.5.3.4 ¯Ö´ÖÖ»ÖÖ¯Ö

4.5.3.5 ”™ß ²Ö¸Æß

४.५.३.६ पर्व त्यौहार

4.5.3.7 ´Ö»Ö

४.५.३.८ कीर्तन

४.५.३.९ लोकगीत और लोकनृत्य

शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य मे व्याप्त सामाजिक समस्याओं का विवेचन

प्रस्तावना :-

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वस्तुत: वह समाज का एक अभिन्न अंग है। जन्म से ही मनुष्य समाज में रहता है। अपने आचार- विचार, रहन - सहन, भाषा बोली एवं व्यवहार के आधार पर मनुष्य सामाजिक संबंधों का निर्वाह करता है। मानव के बिना समाज के अस्तित्व की कल्पना ही असंभव है। अत: मानव और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है। समाज में रह कर मानव परस्पर सहायोग से अपनी समस्याओं एवं आपदाओं को दूर करने का प्रयत्न करता है। सामाजिक संबंधो के आधार पर ही मनुष्य अपने उद्देश्यों की पूर्ती में भी लगा रहता है।

मनुष्य के स्वभाव एवं व्यवहार के आधार पर समाज में विभिन्नता एवं समानता को देखा जा सकता है। विभिन्नता परिवर्तन का प्रतीक है। परिवर्तन के कारण ही समाज में विभिन्नता दृष्टिगत होती है। इसी के फलस्वरुप मानव के उद्देश्य, आचार - विचार, संस्कार एवं दृष्टिकोन में परिवर्तन हो जाता है।

शिवप्रसाद सिंह के गद्य - साहित्य में ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही परिवेश में मानव जीवन में व्याप्त, कष्ट, संघर्ष, संत्रास, घुटन आदि को विस्तृत रुप प्राप्त हुआ है। ग्रामीण वातावरण में कुंठित एवं घुटते हुए मानव जीवन की विस्तृत झाँकी शिवप्रसाद सिंह के गद्य - साहित्य में देखने को मिलती है।

४.१.१. बदलते सामाजिक मूल्य :-

समाज परिवर्तनशील है। मानव जीवन समाज से पूर्णत: आबध्द है। सामाजिक व्यवस्था के नियमों एंव आदर्शों को ध्यान में रखकर ही मनुष्य को अपना नियंत्रित एवं अनुशासित जीवन व्यतीत करना पडता है। वस्तुत: ये ही आदर्श एवं नियम सामाजिक मूल्य कहलाते है। सामाजिक मूल्य देशकाल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभाव ग्रहण कर आधुनिकता ने सामाजिक मूल्यों में विशेष परिवर्तन लाया है। यह परिवर्तन सामाजिक जीवन का नया मोड कहलाया। आधुनिकता ने पहली बार उन मूल्यों को व्यर्थ

सिध्द किया जो प्राचीन कहलाये जाते थे। आधुनिकता के कारण मानव के दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन आया। वस्तुत: यह परिवर्तन ही बदलते हुए सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ती में सहायक सिध्द हुआ है। इस व्यापक परिवर्तित परिवेश में रचा गया साहित्य युगीन परिस्थितियो को व्यक्त करता है। आधुनिक युग में रचित साहित्य नि:संदेह मध्यकालीन साहित्य से भिन्न रहा है। अपितु ग्रामीण समाज पर भी इसका विशिष्ट प्रभाव है। कृषकों, ग्रामीण स्त्रियों की मानसिकता पर परिवर्तित जीवन मूल्य पूर्णत: हावी हो गए है, जिसके कारण समकालीन समाज में एक नए वातावरण की सृष्टि हुई है, जो बरबस आधुनिक मानव को आकर्षित करती है।

शिवप्रसाद सिंह के गद्य- साहित्य में परिवर्तित जीवन मूल्यों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत हुई है। "अलग अलग वैतरणी" शिवप्रसाद सिंह व्दारा रचित प्रसिध्द, आँचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास में करैता गाँव के ग्रामीण जन - जीवन, वहाँ की कृषक समस्या, नारी - जीवन, जमींदारी, प्रथा, अशिक्षित एवं ग्रामीण पाठशाला की स्थिती आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन कर वस्तुत: लेखक ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नए मोड़ पर खड़ा कर दिया है। प्रस्तुत उपन्यास में झब्बूलाल उपाध्याय का लड़का देवनाथ डॉक्टरी की परीक्षा पास कर डॉक्टर बन जाता है। गाँव वाले देवनाथ के यहाँ मुक्त इलाज कराने के उद्देश्य ÃÖ †ÖÝÖ Æतब झब्बुलाल को एक उपाय सूझता है। वह कस्बे के स्टेशन के पास वाले डॉ. की देखा-देखी देवनाथ के यहाँ आने वाले रोगियों को भी एक रुपया लेकर टिकट देता है और उन्हें बारी बारी से देवनाथ के पास भेजता है। कन्सल्टेशन फीस के एक रुपये की बात वह बड़े गर्व से कहता है- "का? दवाई का हिसाब-किताब डागदर बाबू करेंगे। ऊ पता नहीं तोंहे सुई देंगे कि गोली देंगे कि मिच्चर ? अब तो ऊ जानैं। उसका जो दाम होगा ऊ कहेंगे? ई तो निदान की फीस है, निदान की। नाही समझे? अरे भाई, डागदर तोहें देख-भालकर दवा दारु का यह लागायेगा न? उसकी फीस। समझे न! कानटलेसन की। जानों? हाँ। ई जरा नया जमाना देखो अब, कि अपनी मतारी-भाखा में लोग बात नहीं समझते, कनटलेसन कहो तो पट्ट से समझ लेते है। हाँ भई, तो निकालो एक रुपियाँ"[1]

शहरी प्रभाव के कारण आजकल गाँवो में भी लोग अंग्रेजी शब्दों का उच्चारण करने के प्रयत्न में लगे हैं। झब्बुलाल का अंग्रेजी शब्द (कन्सल्टेशन) का

प्रयोग स्वभाविक है। पुत्र को डॉक्टरी के पेशे से आर्थिक लाभ हो इसीलिए झब्बुलाल उसे कस्बे में प्राईवेट प्रैक्टिस करने का सुझाव देता है।

घाटियाँ गूंजती है नाटक में भी शहरी प्रभाव के कारण क्यूला आदिवासी युवती अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करती है। क्यूला कहती है "लो मेम साहब। अरे तुम ŸÖÖ ¸Ö ¸ÆÌß ÆÖ…"[2]

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में पटनदिया भाभी का स्कुल मास्टर शशिकान्त से अंग्रजी सीखने का प्रयास भी ग्रामीण परिवेश में परिवर्तित जीवन मूल्यों की ओर संकेत करता है। शशिकान्त नियमित रुप से पटनहिया भाभी को अंग्रेजी पढ़ाने आता है। पूर्ण लगन और श्रध्दा से शशिकान्त का पटनहिया भाभी को अंग्रेजी पढ़ाना देख ग्रामीण स्त्रियों, बच्चों, बूढों को आश्चर्य स्वाभाविक है। पटनहिया भाभी का विपिन के यहाँ से उपन्यास लाकर पढ़ना भी इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक शिक्षा-नीती के प्रभाव स्वरुप ग्रामीण युवती पटनहिया भाभी का व्यवहार अन्य स्त्रियों से कुछ अलग ही होता है, उसकी यही इच्छा होती है कि उसका पति कल्पनाथ दसवीं की परीक्षा में सफल हो। वह स्वयं भी इंट्रेंस की परीक्षा देना चाहती है। उसकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसके सास-ससुर भी तैयार होते Æ…

रेलगाडी को लूटने वालों मे पति का नाम सुनकर पहले तो कनिया विश्वास ही नहीं कर पाती फिर तुरंत अपने को सँभाल कर विषय की गंभीरता पर विचार करती है। पति के कुकर्मो से लज्जित होती है, गुस्से में अपने हाथ की चूडियाँ फोड देती है। कनिया का यह कहना कि "चलो छुट्टी हुई। वह मुंह विकृत करके बुदबुदायी, ऐसे मरद से रँडापा ही अच्छा।"[3]

ग्रामीण नारी परिवर्तित मानसिकता का प्रतीक है… आज गाँव भी परिवर्तन का संकेत दे रहा है। नारी आज गाँवो में स्वयं को मर्द के हाथ की कठपुतली मानने का संकेत दे रही हैं। अन्याय और अत्याचार को सहने के लिए आज वह बाध्य नहीं है। वह विधवा का जीवन बिताने को तैयार है किन्तु पति द्वारा प्रताड़ित होना नहीं चाहती।

सारे करैता गाँव में जग्गन मिसिर ही एक ऐसा व्यक्ती है जो परिवर्तित जीवन मूल्यों से विशेष प्रभावित है। डोमन चमार की लड़की सुगनी और गाँव के

प्रतिष्ठित व्यक्ति कहलाए जाने वाले सुरजू सिंह के अनैतिक संबंधों की पोल खुलने पर सारी चमार जाती में हलचल पैदा हो जाती है। चमारों द्वारा पंचायत भी बुलाई जाती है। ठाकुरों औंर चमारों के बीच झगड़ा होता है, बात यहाँ तक बढ़ जाती है कि सुरजू सिंह के घर में सुगनी को स्थान दिलाने का निर्णय चमारों की बटोर पंचायत द्वारा लिया जाता है। ठाकुरों और चमारों में लाठियाँ चलती है, सरुप नामक चमार की मृत्यु हो जाती है। मामला थानेदार तक पहुँचता है। थानेदार द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर सारे गाँव में केवल जग्गन मिसिर ही दे पाता है। जग्गन मिसिर स्पष्टवादी है। गाँव में होने वाले प्रत्येक झगड़े की उसे खबर होती है। थानेदार से जग्गन मिसिर की बातचीत न केवल थानेदार को अपितु ग्राम सभापति सुखदेव राम को भी प्रभावित करती है। वह न्याय के लिए खून-खराबे तक का समर्थन करता है। इस संदर्भ में थानेदार से कहा गया जग्गन मिसांर का निम्न कथन द्रष्टव्य है। "मैं कहाँ कहता हूँ कि जुलुम अन्याय न हो। मैं भी चाहता हूँ साँच-साँच हो, झूठ-झूठ। दूध अलग, पानी अलग। मैं क्या कहता हूँ कि दूसरे की बहू-बेटी की इज्जत पर डाका डालनेवाला बेदाग बच जाये? जहाँ गडबडी हो वहाँ उसको रोकने का उपाय करना पडेगा। मगर ई सब तैश से नहीं होगा। डोमन चमार की लड़की के साथ सुरजू सिंह ने जो किया, उसका बदला लेने के लिए डोमन यदि सुरजू को सोये-सोये गडासा से काट देता तो, मैं उसको खूब शाबासी देता। दरोगा जी उसको पकडकर ले जाते। डामल-फॉसी दे डालते, यह अलग बात है। बाकी मैं मन ही मन उसकी तारीफ करता।"[4]

चमारों द्वारा बटोर बुलाना, चमार जाती की सुरक्षा के लिए अपने चौधरियों को बुलाना, अपनी बिरादरी के लिए नियम कानूनों की माँग करना आदि भी परिवर्तित जीवन मूल्यों का ही परिणाम है। इस प्रसंग द्वारा लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि अब निम्न-जाति कहलायी जाने वाली जातियों मे भी जागृती आ गयी है। उनकी भी अपनी मर्यादा है, वे भी अन्याय के विरुध्द आवाज उठा सकते है।

"शैलूष" उपन्यास में शिवप्रसाद सिंह ने नटों के जीवन को आधार बनाकर कथावस्तु को आगे बढ़ाया है। नटों और जमींदार घुरफेंकन तिवारी के बीच जमीन को लेकर संघर्ष होता है। नटों की जमीन पर अधिकार करने के लिए घुरफेंकन हर प्रयास करता है। पुलिस-थानेदार, इन्सपेक्टर आदि को वह रिश्वत के बल पर

अपनी ओर कर लेता है। पूरा उपन्यास नटों और घुरफेंकन के बीच हुए झगडों, मारकाट, गोलीबारी आदि के वर्णन से भरा हुआ है। नटों का अपनी जमीन की माँग करना, सावित्री का अन्य नट-महिलाओं के साथ जिला अधिकारी के कार्यालय के सामने अनशन करना, अमृत नामक युवक का पढ़-लिख कर उत्तम नागरिक बनने का सपना, मानिक नट का पढ़-लिख कर एक सभ्य टेक्नीशियन बन जाना आदि घटनाओं को लेखक ने यथार्थ रुप प्रदान किया है। इन प्रसंगो के द्वारा लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि नट भी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है।

शहरी वातावरण के प्रभाव स्वरुप मानिक नट एवं उसका मित्र नौजादिक पाण्डेय, लहुरी और जेठरी नाम की नट स्त्रियाँ भी अफीम, ब्राऊन शुगर, हिरोईन और स्मैक का चोरी-छिपे धन्धा करते है। मानिक अफीम का नशा करता है, जिसके कारण उसके फेफड़े खराब हो जाते हैं और डॉक्टर द्वारा जाँच करवाने पर वह दो-तीन महीने का मेहमान होने की बात का पता चलता है। जेठरी भी जेल में रहकर और भी हठ करने लगती है, जेल से छूटने के बाद वह अपनी प्रेमी नौजादिक के साथ अफीम के गैरकानूनी धन्धे को और आगे बढ़ाने की इच्छा प्रकट करती है। सावित्री उसे जब समझाने जाती है तब जेठरी उसे सास न मानकर अपना शत्रू समझती है और उसे गालियाँ देती है। अफीम को हानिकारक वस्तु न मानकर जेठरी अपने व्यापार को आगे बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण उपकरण मानती है। इस अवैध कार्य के समर्थन में परिवर्तित मानसिकता पाठकों के समक्ष आती है।

'औरत' उपन्यास में करमूपुरा गाँव का जमींदार सोबरन सिंह कृषकों का शोषण करता है, अछूत जाति की कन्याओं के साथ अवैध संबंध रखता है, पुलिस थानेदार इन्स्पेक्टर को रिश्वत देता है। उसके इस शोषण को रोकने के लिए गाँव का शिक्षित नवयुवक शिवेन्द्र का पिता सोबरन राय के यहाँ अपना खेत रेहन रखता है, मूल धन एक हजार रुपये अदा कर देने के बाद शिवेन्द्र खेत पर अपना अधिकार माँगता है। सोबरन रॉय खेत में पक रहे अनाज पर अपना अधिकार जताते हैं। इस अपमान का बदला लेने के लिए शिवेन्द्र खेतो में आग लगा देता है, सोबरन राय और उसके साथियों पर मधुमक्खियाँ छोड़ता है, जिससे सोबरन और उसके साथी बुरी तरह घायल हो जाते हैं शिवेन्द्र सोबरन राय को उसके काले कारनामों की सजा देने के लिए उसके कमरे में काला नाग छोड़ता है, जिसे

देखकर सोबरन राय घबराकर पेशाब पाखाना कर अपने कमरे को गन्दा कर देता है। सोबरन राय इतना भयभीत हो जाता है कि उठकर खिड़की और दरवाजा भी खोल नही पाता, जोर-जोर से हनुमान चालीसा पढ़ता जाता है। अन्ततः दो हजार रुपये लेकर रहमान नट उस साँप को बीन बजा कर अपने अधीन कर लेता है। इस घटना के बाद सोबरन राय बीमार पड़ जाता है।

सारे करमूपुरा में एकमात्र पढ़ा-लिखा युवक शिवेन्द्र है। शोषण के विरुध्द आवाज उठाने वाला साहसी व्यक्ती है। ऐसे व्यक्तियों के कारण ग्रामीण समाज में परिवर्तन की आशा की जा सकती है। चमार जाति की लड़की सोनवाँ की मृत्यु का कारण, सोबरन राय ही है। किन्तु गाँव में सोबरन राय की कुदृष्टि सोनवाँ पर पड़ती है और वह अपने लठैतों के माध्यम से सोनवाँ के मुँह मे कपड़ा ठूँस उसका शीलभंग करता है। गर्भवती होने पर सोनवाँ ग्रामीण समाज में बुरी तरह प्रताड़ित होती है। इस अपमान के बदले जहर पीकर वह मर जाना ही ठीक समझती है। शिवेन्द्र की प्रतीक्षा में ही वह अपना जीवन बिताती है, शिवेन्द्र के आते ही वह अपना जीवन समाप्त कर लेती है। इस घटना से प्रभावित होकर शिवेन्द्र सोबरन राय से बदला लेता है। गाँव के जमींदार के प्रति शिवेन्द्र की घृणा स्वाभाविक है। जमींदार को उसके कुकर्मों की सजा दिलाने के लिए शिवेन्द्र द्वारा उठाए गए कदम सराहनीय हैं। यदि प्रत्येक गाँव में शिवेन्द्र जैसे लोग हों तो कृषकों के साथ जमींदार दुर्व्यवहार करने का साहस कभी नहीं कर पाते।

"गली आगे मुड़ती है" उपन्यास में शिवप्रसाद सिंह ने आरती को आधुनिक विचारों वाली युवती के रुप में चित्रित किया है। आरती, शालिग्राम से प्रेम करती है और उसके साथ शादी करने का विचार रखती है। अपनी माँ और भाई से वह अपने प्रेम की बात नहीं बता पाती और शालिग्राम के साथ घर छोड़कर भाग जाती है। दोनों आर्य समाज के मन्दिर में शादी कर लेते हैं। शालिग्राम माथुर, आरती के साथ अधिक समय तक नहीं रह पाता, उसे छोड़ कर भाग जाता है। आरती को अपनी रोजी-रोटी का समस्या को हल करने के लिए एक कन्या पाठशाला में अध्यापिका की नौकरी करनी पड़ती है। अपने दो महीने के बच्चे के पालन-पोषण का भार भी आरती पर ही पड़ता है। आरती स्वाभिमानी युवती के रुप में चित्रित हुई है। परित्यक्त अवस्था में अपने भाई के यहाँ शरण लेना अनुचित मानती है।

उसका भाई आनन्द, जब उसे मिलने आता है तब वह तटस्थ रहती है। अपने विगत जीवन के विषय में वह उससे चर्चा भी करना नहीं चाहती है। शहरी जीवन से प्रभावित आरती परिवर्तित सामाजिक मूल्यों का समर्थन करती है। वस्तुतः आरती के चरित्र के माध्यम से लेखक ने आजकल की स्वतंत्र नारी के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त किया है। जो आज की युवा पीढ़ी में साहस को बढ़ा रहा है। मध्ययुग की अपेक्षा आज के युवा - वर्ग के विचारों में पर्याप्त परिवर्तन आया है।

उपन्यासों के साथ-साथ शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में भी परिवर्तित सामाजिक मूल्यों का चित्रण किया है। उनकी कहानी "एक यात्रा सतह से नीचे" में अवधू की माँ पूर्णतः अर्थ-लोलुप है। वह चाहती है कि उसका पुत्र एक अच्छी-सी नोकरी करे, धन कमाए, अभावों को दूर करे। किन्तु हर बार पूत्र को नौकरी पाने में असफल देख, उसका व्यवहार बदल जाता है। स्वयं अवधू को माँ के व्यवहार से अचरज होने लगता है। वह इस प्रतीक्षा में बहुत देर तक बैठा रहता है कि अब माँ आएगी और उसको भोजन के लिए बुलाएगी - "अवधू सोच रहा था कि अभी-अभी अम्मा लौटकर आएगी और उससे कुछ पूछेगी पर अम्मा बहुत देर तक नही आयी। उसे याद है कि पहले उसके आने पर अम्मा कैसे परेशान हो जाती थी, थाली में गरम पानी भर कर जब तक, वे पैरों को धो न लेतीं, जैसे उन्हें चैन नहीं मिलता। अवधू मना करता तो झिड़क देतीं। गरम पानी से पैर धोने से थकान निकल जाती है।"[5] माँ की उपेक्षा एवं तिरस्कार को वह चुपचाप सह लेता है। घर का वातावरण उसे विचित्र लगने लगा है और वह घर से निकल पडता है, एक अन्तहीन यात्रा पर जहाँ उसे आशा की किरण दिखाई देती है।

शहरी जीवन के प्रभाव स्वरुप आज कल के युवा वर्ग में नवीन विषयों को जानने की उत्सुकता विशेष रुप से परिलक्षित होती है। शिवप्रसाद सिंह कृत "धतुरे का फूल" आधुनिक परिवेश की प्रस्तुत करने वाली कहानी है। शीला तेरह-चौदह साल क चुलबुली लड़की है। अपने स्वभाव के अनुसार वह हर व्यक्ती को अपने शरारतों से तंग करती है। ट्यूशन पढ़ते समय भी वह मास्टर का ध्यान भंग करती है। पढ़ाई में उसका मन नही लगता। पढ़ते समय वह खिड़की के बाहर भी देख लिया करती है। चरवाहों द्वारा गाय और बैल के मिलाप के प्रसंग को लेकर शीला आनंदित होती है, उसे यह प्रसंग तो खेल तमाशा जैसा लगता है। मास्टर भी उसे

समझा पाने में अपने आपको असमर्थ अनुभव करता है। अन्ततः हिम्मत कर मास्टर ÆÛ¾Ö ¿Öß»ÖÖ □ú֋ˆ -Ö ÃÖÖÖÖÖè □ê ×¾ÖÂÖµÖ ´Öë²ÖÖÖÖÖ ÆÔü.."तुम्हे इस तरह की बातें नही करनी चाहिए। तुम एक शरीफ लड़की हो। दुनिया में इस तरह के तमाशे होते ही रहते हैं। इन्हीं से सृष्टि होती है! पशु, पक्षी मनुष्य सभी ऐसा करते हैं। पुरुष और नारी का यही जीवन है। पशु पशु हैं, इसलिए कि इस तरह की चीजों को छिपाकर नहीं करते। मनुष्य मनुष्य है, इसलिए कि उसने सभ्यता का निर्माण किया है, सब कुछ पर्दे के भीतर करता है, ऐसा होता है, होता था और होता रहेगा। इसी से संसार आगे बढ़ता है... उनके यहाँ कोई नियम नही है कोई मर्यादा नहीं है। मनुष्य ने अपने को नियम से बाँधा है। वह सबके साथ ऐसा सम्बन्ध ठीक नहीं समझता, इसलिए शादी होती है, उसका परिवारिक रुप होता है... है... न?"[6] जिसे पूर्णतः जान लेने पर शीला स्वयं को लज्जित अनुभव करती है, अगले दिन से वह भरपूर कपड़े पहना करती है। इस प्रसंग के द्वारा लेखक ने वस्तुतः आज के युवा वर्ग में व्याप्त कुतूहल को व्यक्त किया है। यह आधुनिक दृष्टिकोण का ही प्रभाव है कि चौदह-पन्द्रह साल के लड़के-लडकियों में सेक्स संबंधी प्रश्नो को लेकर कुतूहल एवं सन्देह उत्पन्न होते हैं, जिनकी ओर समाज विशेष ध्यान नहीं देता।

"पोशाक की आत्मा" कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने अमेरिका से लौटकर आधुनिक जीवन व्यतीत करने वाले एक डॉक्टर के आचरण पर प्रकाश डाला है डॉक्टर, औरतों को खिलवाड़ की एक चीज ही मानता है, उससे बढ़कर औरत उसकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं रखती। कुसुम ही एक ऐसी लड़की है जो डॉक्टर के दुश्चरित्र का परदाफाश कर उसके साथ खिचवाए गए अश्लील फोटों को, वह अखबारों में छपवाने की धमकी देती है। कुसुम अन्तरंग और निर्वसन समझेजाने वाले क्षणों के कुछ चित्र डॉक्टर के आगे रखकर उसकी इज्जत को सरेआम नीलाम करना चाहती है, और भी आश्चर्य तब होता है जब पता चलता है कि वे चित्र स्वयं उसके पिता ने खींचे हैं। "जो लड़की इतना बेहया हो कि छाती पर पत्थर रखकर इस अवस्था का फोटो खिंचवाए, सो भी दूसरे से नहीं, अपने बाप से, उसके लिए इज्जत का क्या सवाल? तुम्हारी मक्कारी का परदाफाश करने में मेरी इज्जत ही गयी तो क्या हुआ। आज तक तुम औरत को अपनी आत्मा की पोशाक समझते हो न, आज पोशाक की आत्मा भी देखो।"[7] नवीन मूल्य चेतना के कारण ही पोशाक

समझी जाने वाली एक स्त्री अपनी आत्मा के दर्शन, उस दुश्चरित्र डॉक्टर को कराकर, उसे सही रास्ते पर ले आती है।

"टूटे शीशे की तस्वीर" कहानीं में भाई-बहन के संबंधो को लेखक आधुनिक रुप देता है। कहानी में "मैं" साले की मृत्यु की सूचना बड़े औपचारिक ढंग से कामिनी को फोन पर दे देता है। जवान साले की मौत पर, उसका दफ्तर मे ही रह जाना, कितना अस्वाभाविक लगता है, जब कि पत्नी घर पर अकेली है। इस वर्णन के आधार पर लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि शहरी वातावरण में नैतिक मूल्यों एवं जीवन मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है। पत्नी के दु:ख को बाँटने का कर्तव्य हर एक पुरुष का है। ग्रामीण समाज में आजकल पर्याप्त जागृती चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उनके विचारो में भी परिवर्तन हो रहा है। शिवप्रसाद सिंह ने "उपहार" कहानी में चमार जाती का विधवा गुलाबी के चरित्र-चित्रण द्वारा समकालीन ग्रामीण समाज के इस परिवर्तन का संकेत किया है। गुलाबी को ठाकुर पर गर्व है। किन्तु ठाकुर कामुक प्रवृत्ती वाला पुरुष है। वह गुलाबी पर अपना प्रेम दर्शाते हुए उसकी हर इच्छा को पूरी करना चाहता है। गुलाबी ठाकुर, के चरवाहे बच्चन से प्रेम करती है। इस प्रेम के विषय में ठाकुर को खबर पड़ती है। ठाकुर बच्चन पर घोडे की रातिब चुरा कर बेचने का आरोप लगाकर उस पर कोडे बरसा कर उसे गाँव से निकल जाने का आदेश देता है। वस्तुत: ठाकुर गुलाबी और बच्चन को अलग करना चाहता है। किन्तु गाँव से बाहार जाते हुए बच्चन को गुलाबी रोक देती है, और उसे ठाकुर के यहाँ नौकरी करने से मना करती है। रात के अँधेरे में ठाकुर जब गुलाबी को घर का काम करने का बहाना कर बुलाने आता है तब [illegible]."गुलाबी झटके के साथ मुड़ी और अपनी [illegible] से कागज में लिपटा एक बण्डल उठा लायी, यही है तुम्हारी साडी, यह उपहार अपनी घरवाली को दे देना।" उसने गुस्से से बण्डल ठाकूर के मुँह पर फेंक दिया, "कसाई कहीं का।"[8] वह ठाकुर के अत्याचार को सह नही पाती। गुलाबी के चरित्र-चित्रण में लेखक पूर्णत: सजग रहा है। गुलाबी जैसे स्त्री-वर्ग के आधार पर गाँवों में हो रहे शोषण को रोका जा सकता है। पुरुष होकर बच्चन भी ठाकुर का विरोध नही कर पाता। स्त्री होकर गुलाबी ने जो धैर्य दिखाया, वास्तव में वह प्रशंसनीय है। ग्रामीण स्त्री की मानसिकता भी परिवर्तित हो रही है। बुराई, अन्याय,

अत्याचार शोषण के साधन है "केवडे के फूल" कहानी में लेखक ने अनिता को उक्त संघर्ष से जूझती हुई चित्रित किया है। अनिता अपने पति का विरोध करती है और मायके लौट जाती है। गॉवों में बिन बुलाए लड़की का मायके आना संदेहास्पद माना जाता है। अत: अनिता विवश सो होकर उसे पिता के कहे अनुसार पति के घर जाना पड़ता है।

पति की शर्तो को मानने के लिए अनिता बाध्य हो जाती है। पति का पत्र पढ़कर वह मन-ही-मन दु:खी होने लगती है। "तुम्हें वह सब करना पड़ेगा जो मैं कहूँगा। तुम्हें अपने को, मेरे समाज के लिए बदलना होगा.. तुम मेरी ही नहीं, मेरे मित्रों तक के लिए मनोरंजन का साधन हो... मेरा सारा मतलब तुम समझती हो.. सती धर्म की दुहाई देकर तुम मेरी इच्छाओ को नहीं रोक सकती।"[9] <ÃÖß Ã¡Öß समाज में प्रतिष्ठित जीवन नही बिता सकती। पति की झूठी प्रतिष्ठा एवं मूर्खता के आगे उसे विवश ही बलि का बकरा बनना पड़ता है। सामाजिक बंधनों मे बँध कर अंतत: अनिता पति की इच्छा पूर्ण करने की तत्पर हो जाती है और इस तरह पुरुष के शोषण चक्र में पिसने लगती है।

ग्रामीण समाज में लड़की को भगा लाने पर लोगों में एक हलचल-सी पैदा हो जाती है। "आदिम हथियार" कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने श्यामलाल नामक एक साहसी युवक का चरित्र-चित्रण किया है, जो आशा नाम की लड़की को शहर से भगा लाता है गाँव मे ऐसी बात नहीं छिप सकती। किन्तु श्यामलाल न केवल अपने माता-पिता को धैर्यपूर्वक सारी बात बताता है अपितु ग्राम पंचायत के आगे भी वह इस बात को स्वीकार करने में पीछे नहीं हटता कि आशा उसकी पत्नी है। वह ग्राम सभापति हुकुमसिंह का विरोध करता है। खुले आम उसको विरोध करते देख, कई लोग श्यामलाल का समर्थन करते हैं। ग्रामीण परिवेश में इस प्रकार की घटनाएँ कम ही होती हैं। आधुनिकता का जो प्रभाव ग्रामीण युवकों पर पड़ रहा है... उसके कारण भी वे अपनी इच्छासे अपने जीवन साथी का चयन करने के इच्छुक हैं। अब यह आवश्यक नहीं रह गया है कि ग्राम सभापति या पंचायत से डर कर लोग अपनी कमज़ोरी को व्यक्त करने के लिए विवश हों। भारतीय ग्रामीण परिवेश मे व्याप्त परंपरागत सामाजिक मूल्यों में दरार पड़ गयी है। शिवप्रसाद सिंह की रचनाओं में इस परिवर्तन की एक झलक पाठको के सम्मुख प्रस्तुत हुई है।

४.१.२ नैतिक मूल्यों का विघटन :

सामाजिक आदर्शो एवं नियमों को नैतिकता कहा जाता है। वस्तुत: नैतिकता मानव समाज की प्रमुख विशेषता है। अपने उद्देश्य की प्राप्ती के लिए मनुष्य सदैव प्रयत्नशील रहता है इस प्रयत्न में उसे हमेशा उचित, अनुचित का ध्यान रखना पड़ता है। उचित अनुचित का यह विवेकपूर्ण प्रयास ही नैतिकता कहलाता है। तात्पर्य यह है कि नैतिकता उन सामाजिक नियमों एवं आदर्शों को कहा जाता है जो मानव के व्यवहार एवं आचरण को नियंत्रित करे, जिससे समाज में सुव्यवस्था एवं संतुलन बना रहे। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज मे सुदृढ एवं सुव्यवस्थित बनाने के लिए नैतिकता का विशेष स्थान है। मनुष्य समाज में जन्म लेता है, मनुष्य ही समाज निर्माण में सहायक भी होता है। अपने आचरण द्वारा मनुष्य समाज को प्रभावित करता है, और समाज से वह प्रभाव भी ग्रहण करता है। अपने सद्‌व्यवहार द्वारा मनुष्य समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मानव को सामाजिक महत्त्व प्रदान करनें में जो पारस्परिक गुण होते हैं वास्तव में उन्हें ही नैतिकता कहा जाता है। अच्छे और बुरे की पहचान मनुष्य के व्यवहार से ही होती है। अत: नैतिकता का अभिप्राय मानव के व्यक्तित्व की उन महत्त्वपूर्ण विशेषताओं से है, जिन्हें समाज में उचित माना जाता है। मनुष्य के वे समस्त गुण नैतिकता के अंतर्गत स्थान पाते है जिनके कारण वह समाज में समादर प्राप्त करता है। मनुष्य के आचारण की अच्छी-बुरी पहचान भी नैतिकता के द्वारा ही जानी जा सकती है। सामाजिक परंपराओं, मान्यताओं, रुढ़ियों, प्रथाओं रीती-रिवाजों संगठनों आदि पर ही मनुष्य का नैतिक व्यवहार आधारित होता है, अत: नैतिकता को व्यक्तिगत साधन न मानकर सामाजिक साधन माना जाए तो अत्युक्ति न होगी।

यद्यपि आरंभ से ही नैतिकता सामाजिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंश रही है, तथापि सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ नैतिकता के अस्तित्व में भी परिवर्तन होता आया है। सामाजिक परिवेश में आधुनिकता मनुष्य के स्वभावगत स्वार्थ, यौन-चेतना तथा शहरी-मूल्यों के प्रभाव के कारण भारतीय ग्रामीण परिवेश में नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है। आज के ग्रामीण समाज में परंपरागत नैतिक मूल्यों को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं है। वस्तुत: आज के ग्रामों मे नैतिकता को एक बोझ माना

जा रहा है। वस्तुत: यह परिवर्तन सामाजिक संबंधों के बदलाव के कारण ही अस्तित्व में आया है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य साहित्य में नैतिक-मूल्यों के विघटन के प्रत्येक संदर्भ को उजागर किया है। शहरी परिवेश की अपेक्षा ग्रामीण परिवेश में व्यक्त ये परिवर्तन अपना विशेष स्थान रखते हैं। "अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में कल्पु की पत्नी दीपा जो सारे, गाँव मे पटनहिया भाभी के नाम से प्रसिध्द है, स्वयं के प्रति, पति की उपेक्षा भाव देख कर दु:खी होती है। कल्पु पत्नी से दूर-दूर रहता है, जिससे पत्नी के साथ-साथ उसकी माँ को भी संदेह होने लगता है कि कहीं कल्पु के शरीर में किसी चीज की कमी तो नहीं है। ऐसे में कल्पु की पत्नी, विपिन, शशिकांत एवं डॉ. देवनाथ की ओर आकर्षित होती है। विपिन के घर पढ़ने के लिए उपन्यास माँगने जाती है, शशिकांत जो स्कुल मास्टर है, से अंग्रेजी पढ़ने का बहाना कर, उसे ताकती रहती है, कल्पु का इलाज करने डॉ. देवनाथ जब उसके घर आता है तब कल्पु की पत्नी उसे भी निहारा करती है।†ÖŠ-नों साल के लड़के, जब उसके घर किसी बहाने आते तो,वह उन्हें रंग पानी या कीचड़ डाल कर उनके कपड़े गीले करती है और उनके नग्न शरीर को देखा करती है। "यदि लड़के ने अपने बचाव के लिए छीना-झपटी की, हाथ-पैर चलाए तो बस, यह पटनहिया भाभी के लिए जैसे इशारा होता और वे कमर में हाथ डालकर भगई या धोती, नेकर या जाँघिया खींच कर नीचे कर देती। लड़का लजा कर जमीन में धँस जाता तो भी मुक्ती न मिलती जब तक कि वह सीधे खड़ा होकर ×³ÖÖŸÖß □ú ü□ê ˆ -ÖÃÖê † ¯ÖÖê □ú¯Ö› ê-Ö ´ÖÖÑÖê."[10] यौन-सुख की प्राप्ती के अभाव में पटनहिया भाभी द्वारा किया गया यह व्यवहार पाठकों को अजीब लगता हो किन्तु ऐसे कार्यो से उसे क्षणिक तृप्ती मिलती है। उसी उपन्यास का जग्गन मिसिर अपनी भाभी से अनैतिक संबंध रखता है। बड़े भाई के मृत्यु के पश्चात् जग्गन मिसिर की भाभी सुशीला मायके जाना नहीं चाहती। घर में केवल वे दो ही प्राणी होते हैं, जग्गन मिसिर की बीमरी की हालत में सुशीला उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है, ऐसे में ही दोनों के बीच अनैतिक संबंध स्थापित हो जाते हैं। सुशीला यह नहीं चाहती कि उनकी कोई संतान हो, इसीलिए वह दो-तीन बार गर्भपात भी करवाती है। जग्गन मिसिर इस बात से क्रोधित होता है। "मुझे लोगों के कहने की परवाह नहीं है। और क्या बचा है कहने को? हमारे-तुम्हारे मुँह पर कोई कुछ न कहे, पर पीठ

पीछे सभी कहते हैं कि मैंने विधवा भौजाई रख ली है। इतना सुन लिया, दो बातें और सुन लेंगे। क्या करेंगे लोग? बहुत करेंगे कुजात कर देंगे। बस अपने को तो ÃÖÜÖÖÖ ¸ üÆÖÖ.. ‘ Öü ´Öê‹ □ú ²Ö“ÖÖ † Ö • ÖÖµÖêÖÖ ŸÖÖê ²ÖêÖÖ□Öê □úÖ ÃÖÖÆüÖ Öê • ÖÖµÖêÖÖ."[11] भले ही मिसिर का यह विचार अपने आप में उचित हो, किन्तु सुशीला इसे मानने को तैयार नहीं होती, क्योंकि उसे समाज का भय है। जगेसर पुलिस का सिपाही बनकर जब पहली बार करैता गाँव आता है तब अपनी पत्नी सुभांगी के लिए मोरपंखी साड़ी, साटिन की उठान वाली चोली लाता है, अपनी पत्नी को वह आवश्यकता से अधिक आधुनिक बनाना चाहता है। इसीलिए वह अश्लील तस्वीरों वाली एक पुस्तक भी ले आता है, और कहता है कि- "इसमे लाज निलाज की क्या बात है? करते तो हैं सभी ऐसा, मगर ऊपर से मुँह बनाकर छि:छि: करते रहते हैं। ई सब बड़े-बड़े साहब लोगों की तस्वीरें है। विल्लाइत में छपी है ई किताब। तू का जानों कि कहाँ का हो रहा है? दिन-भर चुल्हा-चक्की। रात में लाज-सरम। ई भी कोई जिन्दगानी है?"[12] जगेसर का स्वयं को आधुनिक कहलाने एवं पत्नी को आधुनिक बनाने का यह तरीका मुर्खतापूर्ण है। ग्रामीण समाज में थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त कर सरकारी नोकरी करने वाले व्यक्ती के रुप में जगेसर का चित्रण हुआ है, जो यह भी नहीं जानता है कि उचित क्या है और अनुचिता क्या है। कुछ कर दिखाने की आकांक्षा से जगेसर अपने सारे कार्यो को नीति-पूर्ण मानता है।

"शैलूष" उपन्यास में लेखक ने सावित्री के चरित्र-चित्रण के द्वारा यह सिध्द किया है कि नारी भी ग्रामीण-समाज में क्रांती ला सकती है। सावित्री तिवारी वंश के प्रतिष्ठित घराने की लड़की थी। सरदार जुड़ावन के साथ घर से भागी वह मरते दम तक जुड़ावन का ही साथ देती है किन्तु जुड़ावन के माध्यम से संतान को जन्म देना वह नहीं चाहती- "मैं पतिता बनकर जी लूँगी। लोगों की गालियाँ सह लूँगी, तुम्हारे प्रेम पर सब कुछ लुटा दूँगी, पर मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती कि मेरे बेटे-बेटियों को लोग दोगला कहे।"[13] अपने परिवार की प्रतिष्ठा का उसे ध्यान नहीं है, प्रेम में वह सब कुछ भूल जाती है और जुड़ावन के परिवार को अपना परिवार मानती है।

शैलूष उपन्यास में जगजीवन नट का अपनी बहु के साथ अनैतिक संबंध के प्रसंग को व्यक्त कर लेखक ने नटों के जीवन पर प्रकाश डाला है। हरिहर द्वारा

कहा गया यह कथन नटों को समाज मे व्याप्त अनैतिकता की ओर संकेत करता है - "वैसे तो तुम्हारा गुप्तांग भी हो गया है जगजीवन भाई, यह मत समझना कि हम तुम्हें बदनाम करेंगे। तुम्हें पतोह के साथ मड़ई में सोए देख चुका हूँ मैं। भइया, यह सब राजा महाराजों के लिए शोक रहा होगा, हम दोनों तो ऐसे अभागे हैं कि • ÖÖÖÖ ´ÖëÆüß ¸üÖ¯ÖÖ ÆüÖê Ö … † ²Ö¯ÖÖüÖ ú üÖ×²ÖÖÆüÖ ÝÖê úÖÖ ïÃÖë“ÖÖëÖ".[14]

"मुर्गे ने बाँग दी" कहानी के ठाकुर की कुदृष्टि के कारण गाँव की स्त्रिया स्वयं असुरक्षा का अनुभव करती है। मंगरु लोहार की पत्नी के विषय में भी ठाकुर अभद्र व्यवहार करता है, मजदूरी माँगने के लिए आये मंगरू से वह कहता है कि- "क्यों रें मंगरु दिन पर दिन तेरी घरवाली निखरती जा रही है। क्या खिलाता है ˆÃÖ ?"[15] इस प्रसंग से पाठक को इस तथ्य का बोध होता कि ग्रामिण नारी आज भी पहले के ही भाँति सतायी जा रही है। अपनी काम-वासना की प्राप्ती हेतु जमींदारों, सेठ-साहुकारों एवं धनी लोग नैतिकता-अनैतिकता पर चिंतन करने के इच्छुक नहीं हैं।

"आर-पार की माला" कहानी में मटरु नट अपने गाँजे-चिलम की लत के कारण, अपनी बेटी नीरु को ठाकुर की छावनी में रुपये लाने के लिए भेजता है। तो नीरु ठाकुर की काम-वासना की शिकार बनती है। "चुप-चाप छावणी की ओर चली गयी। बडी देर बाद नीरु लौटी बुड्ढे के सामने पाँच का नोट फेककर बोली "ठाकूर के पास फुटकल न थे।"[16] इस प्रकार बाप और बेटी ठाकुर के यहाँ नौकर बन जाते हैं। नीरु अपने मंगेतर रज्जब को अपनी विवशता बताते हुए कहती है कि "जानते हो ठाकुर की दो-दो औरते है। मगर उनसे मन नहीं भरता बाप नौकर है तो बेटी नौकरानी"[17] मटरू नीरु का विवाह नही करना चाहता, क्योंकिउसे अपनी सारी आर्थिक कठिनाइयाँ ठाकुर के द्वारा दूर होती हुई दिखाई देती है। विवाह की प्रथानुसार प्राप्त दो सौं रुपये लौटाने में भी मटरु असमर्थ होता है। ठाकुर ही दो सौ रुपये रज्जब के पिता जुम्मन को देता है जिसके कारण मटरु उस कर्ज से भी मुक्त हो जाता है। अर्थ-लोलुप पिता के रुप में यहाँ मटरु का चरित्र-चित्रण हुआ, जो अपनी जवान लड़की को भी अर्थ प्राप्ती का साधन ही मानता है। ग्रामीण समाज में व्याप्त नैतिक मूल्यों के ऱ्हास का चित्रण कर वस्तुत: लेखक ने एक ओर कामुकता का चित्रण किया है तो दूसरी ओर मानव की अर्थ-लोलुपता का उल्लेख

किया है। आज कुछ लोग अपनी मानवता से इतना नीचें गिर गए हैं कि उन्हें उचित - अनुचित का भी विचार नहीं है।

आज के मानव में ईमानदारी का लोप भी हो गया है बेईमानी-मक्कारी के कारण आज का मनुष्य अपनी स्वार्थ सिध्दी को ही प्रधानता दे रहा है। अपने दोषों को दूसरों पर डालना, उसकी आदत बन गयी है। "शहीद दिवस" कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने स्वतंत्रता पूर्व के ग्रामीण परिवेश मे व्याप्त राष्ट्रीय चेतना का उल्लेख किया है। १९४२ ई. के भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने वालों में गिरधरदास नामक व्यक्ति के चरित्र-चित्रण के माध्यम से लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि आज का मनुष्य कितना स्वार्थी हो गया है। सेठ गिरधरदास स्वार्थी सेठ है। "देवीचन्द को मालगोदाम लूटते मैंने अपनी आँखो से देखा" गिरधरदास ने
úÆËÖ, "ÆÉ̈Öçéü úÃ²Öê´Öê•Ööê ãå ûÆ³Öß ˆ ŸÖÖŸÖ ÆÉ Ö ¤ÉÖß"Ö¤üÆËß ˆ ÃÖ ê † ÖãÖ£Öê".[18]
देवीचंद्र जैसे देश-भक्त पर मालगोदाम लूटने का झूठा अरोप लगाकर स्वयं सेठ गिरधरदास अपने काले कारनामों से मुक्त होकर समाजसेवी बनने का नाटक करता है। देवीचंद्र को पाँच साल की सख्त सजा दी जाती है। और जेल में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। सेठ गिरधरदास जैसे व्यक्ति किसी भी समाज के लिए कलंक हैं, जिनकी दृष्टि में अपने स्वार्थ के आगे परंपरागत नैतिक मूल्य कोई महत्व नहीं रखते।

"बेह्या" कहानी की सुभागी को पति की मृत्यु के पश्चात् पुत्री के पालन-पोषण के लिए वेश्या-वृत्ति अपनानी पड़ती है। बेटी के जवान हो जाने पर वह पुन: अपने गाँव आकर बस जाती है। गाँव का ठाकुर केशो बाबू उसे चैन से रहने नहीं देता। वस्तुत: सुभागी माँ बनकर जीवन बिताना चाहती है। अपने वैश्या जीवन से ऊब कर ही वह गृहस्थ-जीवन बितान के लिए गाँव आती है। ठाकुर की कामवासना को पूरा करने को वह तैयार नहीं होती। ऐसे में ठाकुर सुभागी की जवान लड़की तारा को रस्सियों से बाँध कर इसका शील भंग कर सुभागी से बदला लेता है। सुभागी इस घटना से सुन्न रह जाती है। जैसे-तैसे अपने आप पर नियंत्रण रख वह तारा का विवाह कर देती है। ठाकुर से प्रतिशोध लेने के लिए सुभागी पुन:वैश्या जीवन अपनाती है। ठाकुर के इकलोते पुत्र कामता को सुभागी अपने रुप सैन्दर्य के जाल में फँसा लेती है। अपने पुत्र को गलत रास्ते पर जाते देख ठाकुर उसे रोकने

का प्रयास करता है, सुभांगी से विनती भी करता है, किन्तु सुभांगी ठाकुर की विनती को अस्विकार कर देती है - "आप जैसे लोगों ने हमें माँ रहने कब दिया? मॉ के दर्द को समझने की ताकत ही कहाँ बची अपनों में? अपने पर आती है, बाबु साहब, तो माँ बाप के रिश्ते याद आते हैं और दूसरों की इज्जत को रौंदते वक्त आप उन रिश्तों को कभी याद करते हैं, जो बाप और बेटी में होते हैं? निकल जाइए आप यहाँ से। आपका लड़का है, उसे आप रोकिए और मनाइए, मुझको कोई मतलब नहीं। मैं आपके घर में घुसकर आपके लड़के के हाथ-पैर रस्सी से बाँधकर अपनी हविस पूरी नहीं करती।"[19]

सुभागी का ठाकुर के प्रति यह व्यवहार सहज है। अपनी पुत्री के साथ किए गए अत्याचार का बदला लेने के लिए सुभागी कुछ भी करने को तत्पर है। अब नैतिकता का उसकी दृष्टी में कोई मूल्य नहीं है। सुभागी वास्तव में भारतीय ग्रामीण समाज में जन्मी माँ है। "अन्धकूप" कहानी में सोनी अपनी सास द्वारा सतायी जाती है। दहेज की माँग को पूरा कर पाने में सोनी का पिता असमर्थ होता है। इससे सोनी की सास उसे हमेशा तंग किया करती है। दहेज के एक हजार रुपयों को नहीं दे पाने के कारण सोनी का पिता स्वयं को लज्जित अनुभव करने लगता है।सोनी को सास के ताने सुनने पड़ते हैं "बहु लेकर क्यों चाटेंगे ? हम क्या कोई मरमुखे कंगाल, उठाईगीर हैं जो नीच कमीने लोगों के यहाँ शादी न करे तो लड़का जन्मभर कुँआरा रह जायेगाँ? घर भरा पूरा है तो एक-से-एक बाबू अपनी लड़की पहुँचाने को एड़ियाँ रगडेंगे"[20]

सोनी का छोटा भाई जब तीज लेकर आता है तब सोनी की सास उसके भाई से मिलने नहीं देती। इस घटना के पश्चात् सोनी गाँव के अंधे कुएँ मे गिर कर आत्म-हत्या कर लेती है। ग्रामीण परिवेश में दहेज को बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। लड़के की माँ का इस विषय में विशेष स्थान होता है। चाहे जितना ही दहेज उसे लड़की वालों से मिले, किन्तु उसे तृप्ती नहीं होती। गाँववाले भी ऐसी अवस्था में बहु का साथ देने को तैयार नहीं होते क्योंकि उन्हें भय लगा रहता है कि कहीं उस पचड़े में पड़ने से उन्हें कोई हानि न हो।

"अरुन्धती" कहानी में बड़की बहु सुशील लड़की है। अपने नौकर हीरा के साथ वह प्रेम-पूर्वक व्यवहार करती है किन्तु यह व्यवहार नौकर और मालकिन का

ही होता है। उनके इन संबंधो पर बड़की बहु की सास, पति और देवरानी संदेह करते हैं। मालकिन की इज्जत की रक्षा के लिए हीरो रेल से कट कर आत्महत्या कर लेता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् बड़की बहु जब गर्भवती होती है, तब उस पर सास और पति का संदेह और भी बढ़ जाता है। उसकी सास उस बच्चे को हीरा की अवैध संतान मानती है - "बाकी बचवा सास कह रही थी गाँठ बांध लो, दुनिया यही कहेगी कि यह हीरा का है...।"[21] अत: वह बड़की बहु को दवा देकर गर्भस्थ शिशु की हत्या कर देती है। बड़की बहू इसका विरोध करती है किन्तु उन लोगों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बड़की बहु अपनी सास को बच्चे के लिए किए गए प्रयत्नों,पूजा-पाठ, मनौतियों आदि की भी याद दिलाती है किन्तु उसे अंतत: निराश होकर ही रह जाना पड़ता है। ग्रामीण समाज मे स्त्री के चरित्र एवं, व्यवहार पर सास की विशेष निगाह रहती है। ग्रामीण संस्कारों में पलने के कारण स्त्री को पति का सहयोग भी नहीं मिल पाता। एक स्त्री ही दूसरी स्त्री को हानि पहुँचाना चाहती है। इस कार्य में उसे नैतिक-अनैतिक का ध्यान नहीं होता। परंपरागत नैतिक मानदण्डों का ऱ्हास ही इसका कारण है।

"धरातल" कहानी की नैना पति की अकाल मृत्यु के पश्चात बेसहारा हो जाती है। उसके पति का मित्र हरिमंगल नैना को प्रभावित करता है। हरिमंगल के ही माध्यम से नैना अपनी जायदाद का हिस्सा प्राप्त करती है। इस कार्य में उसे हरिमंगल की कामेच्छा को भी पूर्ण करना पड़ता है। ऐसी अवस्था मे वह हरिमंगल के और पास आ जाती है। अपनी बहन के विवाह के लिए हरिमंगल नैना से एक हजार रुपयों की माँग करता है, साथ ही यह सुजाव भी देता है कि खेत बेच कर वह उसे रुपया दे सकती है। नैना के इन्कार कर देने पर हरिमंगल उसे बुरा-भला कहता है। और बिना डरे उससे कहती है कि- "क्यों हरी तुम्हे अनेक बार खाना खिलाया होगा, अनेक बार तुम्हारा दुखता सिर भी दाब दिया होगा, अनेक बार इन हाथों पानी भी पिलाया, पर कभी शरम नहीं आई। फिर एक बार वह भी किया। उसमें ही शरम क्यों?"[22] नैना के निर्लज्ज व्यवहार के प्रति हरिमंगल पहले तो आश्चर्य-चकित रह जाता है, फिर धीरे-धीरे वह इसका अभ्यस्त हो जाता है। ग्रामीण जीवन के अंतर्गत नारी को अपने एकाकी-जीवन के प्रति निराश होने पर भी कभी-कभी अपने अनैतिक आचरण के प्रति वह उतनी चिंतित नहीं दिखाई

देती। पराये पुरुष के प्रति उसका यह समर्पण नैतिकता के विरुध्द तो है। किन्तु वह उसकी परवाह नही करती। अपनी दृष्टी में उसका यह आचरण नैतिक एवं मान्य है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में नैतिक मूल्यों के विघटन का अत्यंत विस्तृत वर्णन किया है। लेखक ने परिवर्तित संदर्भो में नैतिकता के परिवर्तन का यथार्थपरक चित्रण किया है। आधुनिक जीवन के प्रभाव के कारण आज मनुष्य नैतिक एवं अनैतिक के बीच भेद नहीं कर पा रहा है। वह जो कुछ करना चाहता है, वही उसकी दृष्टी में नैतिक है, न्याय पूर्ण है एवं तर्क संगत है। ऐसी अवस्था में समाज को महत्त्व देना वह नहीं चाहता। यही कारण है कि पंरपरागत नैतिक मूल्यों का विघटन आज हो रहा है। मूल्यों का यह विघटन एक परिवर्तित अवस्था की ओर संकेत करता है। इस समस्या से न केवल ग्राम्य-जीवन अपितु शहरी-जीवन भी प्रभावित रहा है। "घाटियाँ गूँजती हैं" इस नाटक मे हमारे देश में मुकुल जैसे गद्दारों के कारण देश की नैतिकता मिट्टी मे मिल गयी है। अर्थ के लालच के कारण आज भी हमारे देश में हजारो टूराँ है। शीकू कहता है "मुझे मालूम हुआ सरकार कि टूराँ गद्दार है। वह उन लोगों में शामिल है जो देश की आबरु बेचना चाहते है। हमारी धरती को दुश्मनों के आगे भेंट चढ़ाना चाहते है। वे लोग अपने फायदे के लिए दूसरो का गला काटना चाहते है।"[23] आज टूराँ जैसे गद्दार मानवता के नैतिक मूल्यों को भूल रहे हैं।

"भग्न प्राचीर" कहानी में डॉक्टर अपनी प्रेमिका मिस गोयल को सोने का हार भेंट स्वरुप देता है। पत्नी सुशीला को यह जानकर आश्चर्य होता है कि धन के अभाव के बावजुद भी उसके पति ने मिस गोयल को इतनी मूल्यवान भेंट दी है। इस घटना के पश्चात् सुशीला भी नौकरी ढूँढ लेती है और वह अपनें पैरों पर खड़ी रहने का प्रयत्न करती है। उसके इस निर्णय पर डॉक्टर अपनी अनिच्छा व्यक्त करता है। तब सुशीला अपने पति की, बातों का विरोध करते हुए कहती है कि - "मैं अब तुम्हारे पैसे पर नहीं जीती। मैंने भी नौकरी कर ली है। तुम समझ[illegible] कि मैं तुम्हारी नौकरानी हूँ, मेरा कोई मूल्य नहीं, मेरा कोई वश नहीं। इसीलिए कि तुम कमाते थे। मैं खाती थी। तुम मेरी छाती पर मूँग दल सकते थे। परायी औरतों से आशनाई कर सकते थे। क्योंकि तुम कमाते थे। पर अब कान खोल कर सुन लो, जल्दी अपना रास्ता बदलो वरना मुझे भी सोचना पड़ेगा। और यह सब सौदा

काफ़ी महँगा पड़ेगा।"[24] सुशील के चरित्र-चित्रण के माध्यम से शिवप्रसाद सिंह ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि शहरी वातावरण में जीवन व्यतीत करने वाली शिक्षित नारी आज अपना जीवन स्वयं जी सकती है। उसे पुरुष के आगे हाथ पसारने की आवश्यकता नहीं है। डॉक्टर के चरित्र के माध्यम से लेखक ने यह कहना चाहा है कि आज का पुरुष भी अपनी पत्नी को केवल घर तक ही सीमित रखना चाहता है। पत्नी की चुनौती उसे वास्तविक परिस्थिती का आभास करवा देती है। आज की नारी इतनी सजग हो गयी है कि स्वयं का अपमान वह सहना नहीं चाहती, अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयत्न वह करती है। डॉक्टर जैसे पुरुषों की मानसिकता यह है कि वे पत्नी को मात्र घर की दासी एवं भोग्या मानते हैं। उन्हें पत्नी का घर में रहना ही उचित लगता है। पत्नी को तुच्छ मानकर अपने प्रेम-संबंधों को स्थायी रुप देने के प्रयास में डॉक्टर जैसे लोग स्वयं के प्रत्येक कार्य को उचित एवं महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अपने अनैतिक आचरण के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के इच्छुक ये लोग ही आज नैतिक मूल्यों के विघटन के लिए उत्तरदायी Æ…

४.१.२.१ यौन संबंध :

यौन-संबंध मानव के जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। वस्तुत: यौन-क्षुधा मनुष्य में स्वाभाविक रुप से विद्यमान रहती है। आरंभ से ही स्त्री तथा पुरुष मे परस्पर आकर्षण रहा है। यौन-संबंधों के मूल में यह आकर्षण निरंतर सक्रिय होता है। भारतीय संस्कारों के अंतर्गत हृदय की शुध्दता को विशेष महत्त्व दिया गया है। यही कारण है कि भारतीय समाज में प्रेम की मर्यादा को आवश्यक माना गया है। मर्यादा विहीन प्रेम को अनैतिक एवं अनौचित्य माना गया है। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृती से प्रभावित होने के कारण प्रेम विषयक पाश्चात्य अवधारणा भारतीय विचारधारा में प्रविष्ठ हो गयी। परिणाम स्वरुप आज भारतीय समाज में भी प्रेम का दूसरा अर्थ सेक्स से ही लगाया जा रहा है। और माना जा रहा है कि वस्तुत: प्रेम चाहे जितना आदर्श पर आधारित क्यों न हो उसकी परिणति यौन-संबंधो मे ही होती है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय ग्राम्य जीवन में तेजी से परिवर्तन आया है। गाँव और शहर के बीच की दूरी मे पर्याप्त कमी आ गयी है। आधुनिक महानगरों

से प्रभाव ग्रहण कर आज का ग्राम्य-जीवन पर्याप्त परिवर्तित हो गया है। ग्रामीणों के जीवन स्तर में भी अपूर्व परिवर्तन आज परिलक्षित हो रहा है। परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरता हुआ ग्रामीण वातावरण समकालीन यौन-संबंधा को नए अर्थ प्रदान कर रहा है।

शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में यौन-संबंधो के परंपरागत स्वरुप के साथ-साथ परिवर्तन रुप भी स्पष्टतया परिलक्षित होते है। "शैलूष" उपन्यास का जगजीवन अपनी बहु के साथ यौन-संबंध स्थापित करता है।[25] नटो के जीवन का विस्मृत वर्णन कर लेखक ने यह सिध्द किया है कि भारतीय ग्राम्य-जीवन में इस तरह के रिश्ते नवीन रुप प्राप्त कर रहे हैं। उपन्यास में जेठरी और लहुरी एक-एक सोन पापड़ी पाने की लालच में अपने आप को गनपत यादव के हवाले कर देती हैं, और उनके इन प्रयत्नों को एक फोटोग्राफर अपने कैमरे में बन्द करता •ÖÖŸÖÖ Æ…[26] उन तस्वीरों के आधार पर गनपत यादव प्रसिध्दि प्राप्त करना चाहता है। वह जेठरी और लहुरी को यह लालच देता है कि उन दोनों की तस्वीरें अखबारों में छपेंगी। नटों के जीवन में व्याप्त व्यभिचार पर लेखक ने इस उपन्यास में विस्तृत प्रकाश डाला है।

४.१.२.२ उच्च - निम्न जातियों के यौन-संबंध :

शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में ग्रामीण परीवेश के अंतर्गत उच्च-निम्न जातियों के मध्य यौन-संबंधो को विस्तृत रुप प्राप्त हुआ है। आंचलिक उपन्यास "अलग-अलग वैतरणी" में सुरजू सिंह का चमार जाति की नौकरानी सुगनी के साथ यौन-संबंध को लेखक ने अत्यंत विस्तृत रुप दिया है। सुगनी के लिए सुरजू सिंह साबुन, तेल, पावडर आदि श्रृंगार की वस्तुएँ दयाल महाराज के हाथ से मँगवाता है। सुरजू सिंह की पत्नी इस संबंध के विषय में जान जाती है। पति को झूठ कहते देख वह मर्माहत हो उठती है और उसका विरोध करने लगती है। सुरजू सिंह पत्नी के इस व्यवहार को सह नहीं पाता और उसे खूब मारता है।

चमारों की बस्ती में जब सुरजू सुगनी के साथ रंगे हाथों पकड़ा जाता है तब वह स्वयं को गाँव वालों के आगे अपमानित अनुभव करता है। इस घटना से चमार जाति में चेतना जागृत होती है। चमारों की पंचायत (बटोर) बुलायी जाती है और

सारे चमार समाज का यह निर्णय होता है कि सुगनी को सुरजू सिंह के घर स्थान दिया जाये। इसी संघर्ष में ठाकुरों और चमारों में लाठियाँ चलती है। सरुप भगत चमार की मृत्यु हो जाती है। सुगनी को लेखक ने चमार जाति की उद्ण्ड लड़की के रुप में चित्रित किया है जो चमारों की बटोर के निर्णय को मान कर सुरजू सिंह के घर जाने के लिए श्रृंगार करके तैयार खड़ी रहती है। सुगनी वस्तुतः चरित्रहीन लड़की है जो अपनी उम्र से छोटे लड़के घुरबिनवा को अपनी बाहों मे कसकर बाँध लेती है उसका नाश्ता खाने का प्रयत्न करती है। घुरबिनवा को यह सब अच्छा लगता है- "सुगनी ने उसे बिलकुल बटोर गठरी-सा बना दिया। फिर अपनी बाँहो मे कसकर बाँध लिया। घुरबिनवा के सिर के नीचे कोई गद्दार तकिया-जैसी चीज छू जाती है। वह छुटकर निकलने की कोशिश में दो-चार बार सिर से वहीं टक्कर देता है। सुगनी इन धक्कों से खिल-खिलाने लगती है। लगता है कि जगजीत के सोकने बाछे के गले के घुँघरु बज रहे हैं। सुगनी को जाने क्या होता है। वह ‘Ûãü²ÖÖ¾ÖÖ úÖê† Ûü³ÖÖ • ÖÖêüÃÖê† ¯ÖÖ ²ÖÖÆü Öê´Öê úÃÖ »ÖêÖÖ Æü.[27] सुगनी का यह प्रयत्न उसकी कामेच्छा को व्यक्त करता है।

निम्न जाति की लड़कियों में प्राय:परिलक्षित धैर्य एवं साहस सुगनी में भी है, इसी साहस के आधार पर वह गाँव के जमींदार बुझारथ सिंह की काम वासना तृप्त करने के लिए पुष्पा का सहारा लेती है। पुष्पा को बिना बताए ही वह बुझारथ सिंह की योजनानुसार उसे लेकर सिपिया नाले के पास चली जाती है, किन्तु विपिन के अचानक वहाँ पहुँच जाने पर सुगनी को वहाँ से भाग जाना पड़ता है। सुगनी निम्न वर्ग की नारी है। गाँवो में इस प्रकार के यौन-संबंध विशेष महत्त्व रखते हैं। उच्च वर्ग के पुरुष-जमींदार, ठाकुर, सेठ साहुकार अपनी काम वासना के कारण सुगनी जैसी निम्न जाति की स्त्रियों से यौन-संबंध स्थापित करते हैं।उन लोगों के पास धन की कमी नहीं रहती, धन दौलत के बल पर वे निम्न जाति की स्त्रियों को अपने वश में कर लेते हैं। निम्न जाति की स्त्रियाँ भी इन संबंधो के विषय में अधिक चिंतित नहीं होती, उन्हें भी अपने आर्थिक अभावों को दूर करने के लिए मजबुरन ऐसे संबंध स्थापित करने पड़ते हैं। वे इन संबंधो को सहर्ष स्वीकार करती है। अपनी निर्धनता के कारण सुगनी सुरजू सिंह और बुझारथ सिंह की ओर आकर्षित होती है। बुझारथ और सुरजू सिंह भी उसकी फॅशन परस्ती का लाभ उठाते हैं।

सुगनी को इस बात से कोई एतराज नहीं है। अतः निर्धनता के साथ-साथ नई फैशनपरस्ती भी निम्नवर्ग के दैहिक शोषण का प्रबल कारण है।

इस संदर्भ में सरुप भागत ने सच ही कहा है कि "अब चमारिनें भी चौड़ी किनारी का लुग्गा पहनने लगी हैं कि नहीं। फिर ई सब आवै कहाँ से? न जमीन है न पैदावार। पेट चलाने की तो मजदुरी मिलती नहीं। अब ई फिस्सन बदे कहाँ से आवै। तो दुनिया भर के पाप कोई गिलर का बुंदा देखाय के कोई लाल पंजी देखाय के कोई चार पैसे की मिठाई, चाहे दो पैसे की बीड़ी थमा के लड़की-पतोहुओं को फुसलाय रहा है। हर चमार गोड़े में गर्दन डार के सब देखते हुए भी अन्दर की नाई बैठे हैं।

अवर्णो के अतिरिक्त सवर्णो में जो अनैतिक व्यवहार चल रहे हैं उसका स्पष्ट संकेत धनेसरी के शब्दों से पाठकों को मिलता है- आय बड़े बड़के बनने वाले हुह। हमसे लगने की काहू कौसिस मत करो हमसे किसी का कुछ छिपा नहीं है... "जाने कितनी बेवकूफ होती हैं ये छोरियाँ भी। जरा-सी किसी ने चापलूसी कर दी, दो-चार मीठी बाते सुना दीं बस पिघल गयी... कैसी पानफूल की तरह सुकुँवार थी गंगाजली। छोरी क्या थी साक्षात परी थी चार-पाँच महिने का तो था ही। लगे ˆ ¯ÖÖµÖÖµÖ• Öß ¯Öü ¯Öú ¸üÖê.[28] हरखु-मंगली और जगेसर-भटियारिन के यौन-संबंधों का लेखक ने संकेत मात्र किया है। इन वर्णनों में लेखक ने करैता की सामाजिक स्थिती को प्रस्तुत किया है जो पाठकों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। "शैलूष" उपन्यास में लेखक ने सावित्री (सब्बाध्य मौसी) का चरित्र-चित्रण ब्राम्हण कुल में जन्म लेने वाली लड़की के रुप में किया है जो जुड़ावन नामक नट के साथ भाग जाती है। जुड़ावन से प्रेम-पूर्ण संबंध स्थापित कर सावित्री ब्राम्हण वंश को कलंकित करती है। किन्तु वह जुड़वान के परिवार से इस तरह की सुख-सुविधाओं को जुटाने मे बिता देती है। इस उपन्यास की रेवती भी ब्राम्हण - कुल की है, जो राजपुत युवक सुधाकर से प्रेम करती है। कौमार्य अवस्था में ही रेवती सुधाकर के माध्यम से गर्भवती हो जाती है। इस बात को जानने पर रेवती का भाई अमोल रेवती पर कोड़े बरसाने की सजा देता है, किन्तु उस सज़ा को सुधाकर स्वयं पर ले लेंता है। कोड़े की मार से सुधाकर मर जाता है। रेवती अपने भाई अमोल को निरवंश रहने का श्राप देती है। इस घटना के बाद रेवती भी अपने शरीर पर

किरोसिन छिड़क कर आत्म-हत्या कर लेती है।

ग्रामीण वातावरण में अक्सर देखने को मिलते इन संबंधो के पीछे स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण कमेच्छा की पूर्ति आदि प्रमुख कारण माने जा सकते हैं। इन संबंधो के कारण छोटी-बड़ी जातियों के बीच की दूरी मिटने की जगह बढ़ ही रही हैं। ऐसा लगता है कि यह दूरी हमेशा बनी रहेगी। ग्रामीण परिवेश के अन्तर्गत ही छोटी-बड़ी जातियों के बीच यौन-संबंधो को औरत उपन्यास में स्पष्ट रुप से देखा जा सक्ता है। गाँव का जमींदार सोबरन राय कामुक एवं चरित्रहीन व्यक्ती है। वह उसी गाँव की चमार जाति की लड़की सोनवाँ को पहले तो अपनी पुत्री मानता है किन्तु जैसे ही वह अठारह वर्ष की हो जाती है वह जबरदस्ती सोनवाँ को अपने लठैतों द्वारा अपने अधिकार में कर लेता है और उसका शीलभंग करता है। सोनवाँ इस अत्याचार पर रोती-बिलखती है और कहती है कि "मैं बेबस थी। उसके लठैतों ने मेरे हाथ-पैर बाँध दिए थे। मैनें बहुत कोशिश की। चिल्लाई। सोबरन ने खुद मेरे मुँह मे अपना गमछा ठूँस दिया मेरा शरीर पसीने-पसीने हो रहा था- पर मैं अकेली औरत क्या कर सकती थी। मेरा दैव ही रुठा था। न चाहते हुए भी एक पापी का ÖÖµÖ¤ü´Öêû ÖêÆü´Öê† Ö ÖµÖÖ ÝÖÖê´Ö ÖÓµÖÖ ú ü ÃÖ üÝÖÖ £ÖÖ.."[29]

उक्त प्रसंग के आधार पर शिवप्रसाद सिंह ने यह स्पष्ट किया है कि गाँवों में जमींदार स्वयं को प्रतिष्ठित व्यक्ति मानते हैं उनके घृणित कार्य परदे में ढके ही रहते हैं। निम्न जाति के स्त्री-वर्ग से इस प्रकार का संबंध रख कर गाँव के जमींदार उनकी विवशता का लाभ उठाते हैं। अक्सर पुत्रो की उम्र की लड़कियों से ये लोग जबरदस्ती संबंध स्थापित करते हैं, अपनी काम-वासना को तृप्त करते हैं। चूँकि निम्नवर्ग विवश है, कुछ कह नहीं सकता, ऐसे, में ये संबंध निरंतर गतिमान रहते हैं। इन संबंधो में प्रेम का अभाव होता है। अर्थ को अधिक महत्त्व देने वाले ये संबंध वासना के प्रतीक हैं। निम्नवर्ग की नारी अपने आर्थिक अभाव दूर करने के लिए चोरी-छिपे ऐसे संबंध स्थापित करती है। उच्च वर्ग का पुरुष ऐसे संबंधो के लिए सदैव तत्पर होता है।

गाँवो के अतिरिक्त राष्ट्रों में भी छोटी-बड़ी जातियों के बीच यौन-संबंध देखा जा सकता है। "गली आगे मुड़ती है" उपन्यास में हरिमंगल बनारस शहर में रहकर वकालत की पढ़ाई करता है।वह विवाहित है उसके पत्नी-बच्चे गाँव में

रहते हैं। शहर में रहकर हरिमंगल पड़ोस में रहने वाली लाजो (लाजवंती) के संपर्क में आता है। लाजो अपनी मौसी के यहाँ रहकर कुछ घरों में काम करके जीवन बिताती है। अनमोल विवाह के कारण पिता की उम्र वाले पति के द्वारा सताए जाने पर लाजो ससुराल से भाग निकलती है और अपनी मौसी के पास ही रहने लगती है। हरिमंगल के संपर्क में रह कर लाजों स्वयं को भाग्यशालीनी मानती है उससे शारीरिक संबंध स्थापित करती है। "लाजो उठी और चौकी के पास पहुँचकर उसने हरी के हाथ को सहलाते हुए कहा, "अब मत डरिहौं रात में। तू बेकारै सोच-सोच के आपन जी हलकान कर लेत हौ।" "मुझे डर लग रहा है।" हरी ने कहा और उसने लाजो को चौकी की ओर खींचा।"[30] हरिमंगल गुण्डों से पहली बार लाजो की रक्षा करता है। तब से लाजो हरिमंगल के प्रति समर्पित हो जाती है। लाजो उसे खाना बनाकर देती है, उसका चौका साफ करती है। लाजवंती और हरिमंगल में स्थापित ये संबंध दोनों के प्रेम को प्रकट करते हैं। दोनों एक-दूसरे को पाकर तृप्त होते हैं।

इसी उपन्यास के जमुनादास का एक ब्राम्हण स्त्री के साथ जो यौन-संबंध या उसका भी उल्लेख लेखक ने किया है। ब्राम्हण स्त्री जमुनादास को अपने यहाँ नौकर रख लेती है, वह उम्र में जमुनादास से काफी बड़ी है। जमुनादास को उस स्त्री में अपनी माँ के दर्शन होते हैं। ब्राम्हणी के यौन-संबंध के प्रस्ताव को विवश होकर जमुनादास को स्वीकार करना पड़ता है। ब्राम्हण स्त्री के धमकाने पर [illegible][31]

इस प्रकार नारी की यौन इच्छा भी कई बार पुरुष के साथ अवैध संबंध स्थापित करने का कारण बनती है। इस इच्छा के कारण स्त्री, उचित अनुचित की ओर ध्यान नहीं देती और पुरुष को पाने की लालसा उसे उम्र की ओर भी ध्यान देने का मौका नहीं देती। इन संबंधो के कारण समकालीन कलुषित हो रहा है। शहरों में ये संबंध विशिष्ट स्थान रखते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास "नीला-चाँद" में भी शिवप्रसाद सिंह ने इन यौन-संबंधो पर प्रकाश डाला है। दुलारी कंहार (कर्मकारा) जाति से संबंधित है, तुलसी पति के आग्रह पर वह विश्वनाथ मिस्सिर के यहाँ काम करने जाती है जहाँ उसे अपनी

लाज बचाने के लिए कटार का प्रयोग करना पड़ता है, दुलारी को कमरे में बन्द कर देता है। दुलारी रसोइए द्वारा भी अपमानित होती है। दुलारी को यह सुनकर आश्चर्य होता है कि उसके पति ने इस कार्य के बदले सौ सोने के कर्षापण अग्रिम रुप में ले लिए थे। लेखक ने दुलारी की स्थिती का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। पौराणिक उदाहरण के आधार पर लेखक ने दुलारी का चरित्र-चित्रण किया है और कहा है कि- "आज दासी केवल दासी नहीं, वेश्या बना दी गयी, भोग्य हो गयी। यह स्थिती तब पैदा होती है, जब उसका पति दाँव पर रखकर उसे हार जाता है। महाभारत में कृष्णा पांचाली को जब युधिष्ठिर ने द्युत पर चढ़ा दिया और हार गए तो विदुर ने बड़े कातर और क्रोध भरे शब्दों में धृतराष्ट्र से कहा था- "दासी भावेन कृष्णांच भोक्तुकामाः सुताः तव।" दासी भोग्या बन गयी। वह मातृ स्थान से नीचे गिरा दी गयी।"[32]

उक्त वर्णन के आधार पर लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि नारी की विवशता का लाभ उठाकर तद्‌युगीन परिवेश में भी उसे भोग्य माना गया। पुरुष को कामवृत्ति के कारण नारी को इन परिस्थियों का सामना आज भी करना पड़ रहा Æ…

"कर्मनाशा की हार" कहानी में विधवा फुलमती गाँव के प्रतिष्ठित ब्राम्हण परिवार के लड़के कुलदीप से प्रेम करती है। दोनों में यौन-संबंध स्थापित होता है, किन्तु अपने भाई के भय से कुलदीप गाँव से भाग जाता है। फुलमत लड़के को जन्म देती है। उसके बाद गाँव में उसका रहना दुभर हो जाता है। "हुआ क्या फुलमतिया राँड मेमना ले के बैठी है। विधवा लड़की बेटा बियाकर सुहागिन बनी Æ…"[33] गाँव वालों में यह अंध-विश्वास प्रसिध्द है कि इस प्रकार के अनैतिक संबंधो के कारण कर्मनाशा नदी में बाढ़ आ गयी, गाँव उध्वस्त हो गया और फुलमत और उसके बेटे को नदी में फेक कर गाँव वाले इस पाप से छुटकारा पाना चाहते हैं। गाँव वालो का विश्वास है कि ऐसा करने से नदी की बाढ़ रुक जाएगी, गाँव का विनाश नहीं होगा।

"आर-पार की माला" कहानी में नीरु और ठाकुर के यौन-संबंधो के द्वारा यह स्पष्ट हुआ है कि उच्च वर्ग के प्रतिष्ठित व्यक्ति-ठाकुर जैसे लोग निर्धन एवं असहाय नारी की विवशता का लाभ उठकर कामवासना को पूर्ण करते हैं। ठाकुर

के माध्यमसे प्राप्त गर्भ को अनिच्छा से ही वह धारण करती है। उसकी भी इच्छा होती है कि उसका विवाह हो, वह भी किनारा प्राप्त करना चाहती है, दूसरे किनारे की ही उसे तलाश है- "वह एक किनारे पर बैठी है। दूसरा किनारा चाहिए। पर लाख ढूँढ़ने पर भी उसे कोई किनारा नहीं दिखाई पड़ता। केवल प्रवाह, जल, गहरा पानी। उसके मन में किसी की बगल में बैठकर पार जाने की इच्छा है, पर कोई किनारा नहीं, केवल पार की माला। आर-पार की माला।"[34] गाँवो में ऐसी घटनाएँ अक्सर देखने में आती हैं। इन यौन-संबंधो को सारा गाँव जानता है, किन्तु इनका विरोध कोई नहीं कर पाता, क्योंकि ठाकुर के विरुध्द आवाज उठाने वाले किसी ग्रामीण का अपने प्राणों को बचा पाना कठिन है। अत: ग्रामीण सदैव इस विषय में चुप ही रह जाते हैं।

"बेहया" कहानी में सुभागी अपना वैश्या-जीवन त्याग कर गाँव की ओर लौट आती है। ऐसे में ठाकुर उसके आगे कामेच्छा-पूर्ति का प्रस्ताव रखता है। इसके लिए वह अपनी सारी सम्पति, जायदाद तक देने को तैयार हो जाता है। किन्तु सुभागी अपने दृढ़-निश्चय पर अटल रहती है। वह अपनी पुत्री तारा का विवाह करना चाहती है। किन्तु ठाकुर अपने अपमान का बदला लेने के लिए तारा का शील भंग करता है। विवश सुभागी अपने प्रयत्नों से जैसे-तैसे तारा का विवाह तो कर देती है, किन्तु उसके पश्चात् पुन: अपने वैश्या जीवन का आरंभ करती है, जिससे ठाकुर का पुत्र कामता बुरी तरह फँस जाता है। कामता को सुभागी के चंगुल से छुड़ाने के प्रयत्न में ठाकुर लगा रहता है, किन्तु वह चाहकर भी इस प्रयत्न में सफल नहीं हो पाता। सुभागी और कामता के यौन-संबंधो को अनुचित मानने वाला ठाकुर पुत्र -प्रेम से वंचित हो जाता है। सुभागी, ठाकुर की ओर देखकर जोर से खिलखिलाकर हँस पडी "केवल भेडा क्यों हैं, सिटकनी भी बन्द कर दीजिए न?" वह व्यंग्य से मुँह बिचकाकर बोली-"बेटे के साथ आपको भी मुहब्बत का शौक चर्राया है क्या, बाबू साहब?"[35] ठाकुर को अपनी प्रतिष्ठा का भय बना रहता है, किन्तु सुभागी की फटकार से उसे चुप रह जाना पडता है। ठाकुर को अपने कर्मो की सजा इस रुप में मिल जाती है।

"अंधकुप" कहानी का "मैं" छबिया से यौंन-संबंध स्थापित करता है और गाँव छोड़कर कलकत्ता भाग जाता है। छबिया गर्भ धारण करती है और अपने प्रेमी के

मित्र को इस सत्य से अवगत करवाती है। छबिया कुछ कह न सकी एक क्षण तक भँवर की नाव की तरह हिचकोले लेती रही, बोली "मुझे पेट रह गया है।"[36] कुछ शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य के परिशीलन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण समाज में अब भी नारी को मात्र "भोग्य" ही माना जाता है। वस्तुतः पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतिनिधी-जमींदार, नारी का उपयोग गुप्त रुप से करते है। उठाकर वे क्षणिक सुख को प्राप्त करना ही उनका ध्येय है। ग्रामीण समाज की विसंगतियों का चित्रण कर शिवप्रसाद सिंह ने आज के भारतीय ग्रामीण समाज का चित्रात्मक रुप प्रस्तुत किया है। ग्रामों में असहाय नारी का जीवन गोपनीय है, उसे अपने जीवन की सुरक्षा का भय सदा बना रहता है। इस परिस्थिती का लाभ उठ़ाकर जमींदार वर्ग उसे समाज में कलंकित करना चाहता है। भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त इस विसंगति के कारण ही आज की सामाजिक व्यवस्था में परीवर्तन आया है।

४.१.३ संबंधो में तनाव और उनका विघटन :

सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार सामाजिक संबंध है। सामाजिक संबंधो के अभाव में समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वस्तुतः सामाजिक संबंध अनिवार्य होते हैं, जिनके आधार पर समाज के आर्थिक रुप का निर्माण संभव है, इसी पर सामाजिक जीवन आधारित होता है। स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज में व्यक्त परिवार आदि में तीव्रतर विघटन हुआ है। इस विघटन के कारण यहाँ मानवीय संबंधो में परिवर्तन आया है, वहीं नवीन संबंधों की भी स्थापना हुई है। आधुनिकता के प्रभाव स्वरुप समकालीन मानव की मानसिकता में भी परिवर्तन आया है। आज सामाजिक संबंधो के विघटन का प्रमख कारण मनुष्य की यह नवीन मानसिकता ही है। इसके कारण मनुष्य के सोचने विचारने के ढंग में भी परिवर्तन आ गया है। व्यक्ति की बाहरी और भीतरी टुटन ही उसकी व्यर्थता-बोध को प्रकट करती है। व्यर्थता-बोध के कारण ही संबंधो की शाश्वतता उसकी दृष्टी में सामाजिक संबंध, सामाजिक सुविधा एवं सामाजिक सुरक्षा के पर्याय बन गए हैं। पारिवारिक संबंध जैसे माता-पिता, भाई-बहन, पति, पत्नी में भी दरारें पड़ गयी हैं। आज इन संबंधों का पररंपरागत अर्थ बदल गया है। आज यह आवश्यक नहीं रहा है कि व्यक्ति

परिवार के बन्धन को माने। इन बंधनों को तोड़कर मनुष्य आज नवीन मानसिकता का समर्थन कर रहा है, जिसमें ये संबंध कोई महत्त्व नहीं रखते।

४.१.३.१ वैयक्तिक संबंध :

शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में व्यक्ति की निराशाजनक परिस्थिति को भी विस्तृत रुप प्रदान किया है। आँचलिक उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' में मास्टर शशिकान्त, डॉ. देवनाथ, विपिन, जग्गन मिसिर खलील मियाँ, कनिया, स्वरुप भगत, पटहानिया भाभी आदि पात्रों के चरित्र-चित्रण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पात्र बहुत कुछ कर गुज़रने की क्षमता रखते हैं, किन्तु अंततः उन्हें विवश होकर चुप रह जाना पड़ता है। इन पात्रों की वेदना, टूटन उपन्यास में पूर्णतः उभर कर आयी है।

मास्टर शशिकान्त करैता गाँव को सुधारने के उद्देश्य से आता है किन्तु उसे अपने कार्य में सफलता नहीं मिलती। उसे हेडमास्टर जावाहिरलाल के व्यवहार से निराशा होती है। हेडमास्टर का बच्चों से काम लेना, गुरु दक्षिणा के रुप में विद्यार्थी को रात में अपने पास सुला लेना, उससे समलैंगिक मैथुन में जुट जाना हेडमास्टर का बच्चों को गालियाँ देना आदि घिनौनी घटनाओं से शशिकान्त निराश हो जाता है। शशिकान्त को अपनी स्पष्टवादिता के कारण सुरजू सिंह से भी खरी-खोटी सुननी पड़ती है। अंततः लांछित होकर उसे करैता गाँव छोड़ देना पड़ता है- "सूरज की रोशनी में शशिकान्त करैता आया था। आज वह रात की अँधेरे में अपने सारे हौंसले लुटाकर लौट रहा है। स्टेशन का रास्ता गाँव के भीतर से जाता है, मगर वह गाँव की गली से होकर-गुज़रना नहीं चाहता। वह सिवान का चक्कर □úÖ™ü□ú ü• Öœ □ÖÖ.. ¯ÖÆüÖ•Ö □úß Æü ü ÃÖê ¯Ö ê ÃµÖÖÆü ´Öê› ÃÖÖ ²Öê¿ÖÖÖ□ ŸÖÖ."[37]

विपिन इतिहास में एम.ए. पास है। वह अपनी जन्मभुमी करैता से शुरु में तो बहुत प्रेम करता है किन्तु पढ़ाई समाप्त कर जब उसे गाँव में रहना पड़ता है तब उसे अपने पारिवारिक जीवन, ग्रामीण राजनीति ग्रामीण समाज की संकुचित मान्यताओं से घृणा होने लगती है। ग्राम सुधार के उद्देश्य से वह अपने गाँव तो आता है, किन्तु वहाँ का जीवन एवं नित्यप्रति घटनेवाले अन्याय एवं अत्याचार पर आधारित घटनाओं से उसका मन निराश हो जाता है। अन्ततः डॉ. देवनाथ के

अनुरोध पर प्राध्यापक पद के लिए आवेदन पत्र भेजता है और गाज़ीपूर के डिग्री कॉलेज में प्राध्यापक बन गाँव छोड देता है। गाँव को छोड़ते समय कहे गये उसके वचन उसकी निराशा उसके टूटते व्यक्तित्व एवं उसकी हार के प्रतीक हैं - "साल भर तक मैंने इस गाँव में रहकर जान लिया है कि यहाँ किसी भले आदमी का रहना मुश्किल है। यह एक जीता-जागता नरक है, जिसमें वही आता जिसके पुण्य समाप्त हो जाते हैं। चारों ओर कीचड़ कीडे, बदबूदार, नाबदान गू-मुत, बीमारियाँ, कुलबुलाते मच्छर, जहरीली मक्खियाँ- इसके बीच भुखमरी, डरावनी हड्डियों के ढाँचे, किंचरीली ऑखें और बीमारी से फूले पेटवाले छोकरे घरों मे बन्द गन्दगी में आपाद मस्तक डूबी औरतें, जो एक दूसरी को खुले आम चौराहे पर नंगियानें में ही सारा सुख और खुशी पाती हैं, धुँधवाते मन के अपाहिज जैसे नवयुवक, जो अँधेरी बन्द गलियों में बदफेली करने का मौका ढूँढते फिरते हैं, मौत का इन्तजार करते बूढ़े अपने ही बेटे-बेटियों से उपेक्षित बिलबिलाते रहते हैं- "यही न हमारी जन्म भूमि करैता। मैया मैं तो भर पाया। साल भर तक इस गाँव को देखकर जान लिया कि यदि कुछ दिन यहाँ और रह गए तो हम भी तन-मन से इस महाकाय ‘Ûçéü ûúÖ‹ ûú ×ÆÃÖÖ ²ÖÖ• ÖÖ ÑÖê".[38]

खलील मियाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो मुसलमान होते हुए भी हिन्दू-समाज से विशेष प्रेम एवं लगाव रखता है। देवी चौधरी खलील मियाँ के खेतों पर अपना अधिकार जताता है। इस घटना से खलील मियाँ निराश हो जाते हैं, एक व्यक्ति के किए गए दुष्कर्मो का दोष वह सारे हिन्दू समाज को देना नहीं चाहते। उनके मन में हिन्दू जाति के प्रति मान सन्मान तथा आदर है। अपने प्रति हुए अन्याय को वह भूल नही पाता, उसका आन्तरिक संघर्ष उसे करैता छोड़ने के लिए विवश कर देता है। और वह विपिन से यह कह कर विदा लेता है कि, "मेहरबाँ हो के ²Ö»ÖÖ »ÖÖ ´Ö–Ö चाहे जिस वक्त। मैं गया वक्त नहीं हूँ फिर आ भी न सकूँ।"[39] सरुप भगत चमार जाति का कृषक है, जो देवीचक्र गाँव का रहने वाला है, करैता में वह कटाई के समय अपने परिवार के साथ आता है। ठाकुरों और चमारों के बीच हुए संघर्ष में सरुप भगत की मृत्यु हो जाती है। सरुप भगत गाँवों की परिवर्तित सामाजिक परिस्थिति से निराश है। उसे चमारों का यह निर्णय उचित नहीं लगता कि सुरजू सिंह सुगनी के साथ विवाह करे। सुगनी चमारिन का सुरजू सिंह के साथ चमारों

की बस्ती में पकडे जाने पर चमारों द्वारा बुलाई जाने वाली बटोर का सरुप भगत विरोध करता है। वह नहीं चाहती कि उच्च वर्ग और निम्न वर्ग का संघर्ष उग्र रुप धारण करे- "हम पुराने लोग ठहरे। सिगरी जिन्दगी बडे लोगों का तलवा चाटते बीत गयी। तुम लोग नये खूनवाले हो। हम लोग सहते रहे। सहने की बान पड गयी है। तुम लोग सहोगे तो अपने को बडी कचोट होगी, पर हमसे कुछ, मदद की आशा मत करो। आखिर तुम करोगे क्या?"[40]

"गली आगे मुडती है" उपन्यास में रामानन्द अपने अन्दर बाहर के संघर्ष से उभर नहीं पाता। किरण और जयंती दोनो से जुडा रहकर भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए नहीं रख पाता। रामानन्द उपन्यास के अंतर्गत कायर पुरुष जैसा दिखाई देता है। उससे तो ज्यादा साहसी उसकी बहन आरती है जो घर से भागकर अपने प्रेमी माथुर के साथ विवाह करती है। रामानन्द माँ के कहने पर भी किरण को भगा ले जाकर शादी करने को तैयार नहीं होता। किरण की भी शादी हो जाती है। जयंती भी पत्र छोड़ कर कलकत्ता चली जाती है, उसका भी ब्याह होने वाला है। जयंती का पत्र पढ़कर रामानन्द फफक-फफक कर रो पडता है। निर्णय ले पाने में असमर्थ रामानन्द अपने अकेलेपन से टूट जाता है। और अनायास बुदबुदाता है- "दो बदन प्यार की आग में जल गए इक चमेली के मंडवे तले।"[41]

"मुर्गे ने बाँग दी" कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने मंगरु लोहार के निराशमय जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए उसका सुबह उठ़कर अपने काम में लग जाना पूरी श्रध्दा और लगन से गाँववालों के हलों को बनाना, ठाकुर के द्वारा अपनी मजदूरी न मिलने पर उसका निराश होकर, पत्नी द्वारा प्रताड़ित होना,भूखसे व्याकुल हो अपने बेटे को पीटना आदि प्रसंगों का चित्रात्मक वर्णन कर लेखक ने भारतीय ग्रामीण समाज की झलक दिखाई है। मंगरु में किसी का विरोध करने का साहस नहीं हैं। अपने काम से मतलब है- "ढलते सूरज की किरणें मंगरु की निस्तेज आँखों पर चौंध पैदा करती है। पर वह चुपचाप वैसे ही बैठा रहा। उसकी आँखों में शरम नहीं है, उसमें हुनर की वह चमक कहाँ, ये सारी बाते उसके भूखे मस्तिष्क में उठती ही कैसे? उसके सामने केवल एक ही उद्देश्य है बस पत्थर-सी कठोर लकडी को पीटे जाना जो खुद उसे अचेतन लकडी की तरह संज्ञा शून्य बना देगा, जिसमें उसे सांसारिक कष्ट से

क्षणिक शांती तो मिलेगी ही।"[42]

"उपधाईन मैया" कहानी में रामसरन उपाध्याय की विधवा बहू अपने एकांकी जीवन से ऊबकर महामारी से पीडित लोगों की सेवा में जुट जाती है। कम समय में गाँव में मान सम्मान मिलता है। लेकिन दूसरी ओर ठाकूर के बड़े लडके के साथ नाम जोड़कर उस पर तरह-तरह के लाँछन लगाये जाते हैं। लाँछन और अपमान के कारण कुछ दिन घर के बाहर नहीं निकलती। जमींदार के बेटे के घोडे से दबकर बच्चा घायल हो जाता है। तब सारी भीड गाली-गलौज कर रही थी तब बडे शांत ढंगसे बच्चे के पास पहुँचकर उसे उठा लेती है - "गाली देने के और भी बहुत मौके मिलेगे पांडे, पर जिस अभागी माँ का बच्चा हाथ से निकल जाएगा, उसकी आँखों में आँसू न तो तुम पोंछ सकोगे न मैं।"[43]

"माटी की औलाद" कहानी में ग्रामीण परिवेश में कुम्हार के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। टीमल रात दिन श्रम करके मिट्टी के बर्तन, खपरैल आदि बनाता है। वह अपना पुराना धंद्या छोड़ना नही चाहता, पुत्र के कहने का उस पर कोई असर नहीं होता। वह नहीं चाहता कि अपना धंधा छोड, किसी के यहाँ मजदूरी करे। वह हमेशा यही कहता है कि- "हम माटी की औलाद हैं माटी की, कष्ट दु:ख भले ही सहे, हम कभी मिट नहीं सकते।"[44] टीमल में जमींदार का विरोध करने का साहस नहीं है। वह अपने पुत्र सरजू को भी वह जमींदार का विरोध करने से रोकता है। अपने व्यक्तिगत संघर्ष के आधार पर वह आगे बढ़ना चाहता है, जिसमे हमेशा उसे निराशा ही हाथ लगती है।

"बिन्दा महाराज" कहानी में बिन्दा न ही पुरुष है न औरत-वह हिजडा है। किसी के यहाँ उत्सव हो तो वह औरत वेश बनाकर नाचता-गाता है, इसी पर उसका गुजर-बसर होता है। मुन्ने के प्रति बिन्दा का प्रेम, विशेष महत्त्व रखता है। बिन्दा के अकेलेपन एवं निराशापूर्ण जीवन को लेखकने विस्तृत रुप में चित्रित किया है। "माँ-बाप एक प्राण-हीन शरीर उपजा कर चले गए। मर्द होता तो बीबी बच्चे होते, पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता, बच्चों की किलकारियों से आत्मा के कण-कण तृप्त हो जाते।"[45] बिन्दा जैसे व्यक्तियों का समाज में जीवित रहना बहुत ही कठिन है। समाज भी सहानुभूति से पेश नहीं आता। इससे उनमे जीवन के प्रति घोर निराशा छा जाती है, जिससे वे

™™| ÃÖ •ÖÖŸÖ Æî...

"एक यात्रा सतह के नीचे" कहानी में अवधू अपनी निराशा के कारण उदास है। अवधू बेरोजगार होने के कारण माँ भी अब उसे उतनी आत्मीयता से बात नहीं करती। अवधू नौकरी पाने के लिए निरंतर संघर्षरत है, नौकरी उसके वश की बात नही है। माँ की उपेक्षा पत्नी से बात करने की इच्छा होते हुए भी माँ के भय के कारण उसे देख भी नही पाता। अपने आप से ही उसका बार-बार झुँझला उठना, पत्नी पर गुस्सा दिखाना आदि प्रसंगो के आधार पर शिवप्रसाद सिंहजी ने अवधू के मानसिक तनाव एवं संघर्ष को वाणी प्रदान की है। "सोचते-सोचते उसके सिर में दर्द हो गया, पर वह जान न पाया कि अचानक चारों ओर व्याप्त इस उपेक्षा, तिरस्कार का कोई भी है या नहीं।"[46] अंततः वह अपनी निराशा के कारण गाँव छोड़ कर निकल पड़ता है, एक ऐसी यात्रा पर जिसका कोई अन्त नहीं।

"कर्ज" कहानी में जगपती के अकेलेपन एवं निराशमय जीवन का चित्रण किया है। जगपती की शादी की उम्र ढल जाती है, उसको लड़की देने कोई तैयार नहीं होता। थैले ढोकर बैलगाडी में माल लादकर माँ और छोटे भाई का पालन-पोषण करता है। खेती बेचकर अपने छोटे भाई की शादी करता है। रामपती की पत्नी को जब लडका होता है तो बहुत खुश होता है, फिर भी रह-रह कर उसका मन दु:खी हो उठता है, अत: वह सोचता है कि "सचमुच में मेरा अपना कोई नहीं है, यह भी अच्छा ही है, मेरे न होने पर पता नहीं बेचारी का क्या होता। वह यह सब सोंचकर एक क्षण के लिए अजीब तरह का अनुभव करता.. एक ऐसा क्षण जिसमें उसे दु:ख न था, असन्तोष न था, एक पीड़ा आलबत्ता थी अपने अकेलेपन पर अपने हृदय के उपेक्षित उस प्यार पर जिसे वह किसी को दे न सका।"[47] शिवप्रसाद सिंह का आशावादी दृष्टिकोण इन सभी पात्रों को अकेलेपन या कष्टपूर्ण परिस्थितियों से ऊबकर उनमें नवीन आशा एवं उत्साह का संचार करता है। तथा ये पात्र वैयक्तिक सुख-दुख, आशा-निराशा, लाभ-हानि से ऊपर उठाकर व्यापक सामाजिक संदर्भो से जुड जाते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास "कुहरे में युध्द" का नायक आनंद वाशेक, तुर्क आक्रमणकारियों से अपने राज्य की रक्षा करता है, उन्हें पीछे खदेडता है। "दिल्ली दूर है" उपन्यास में वही आनंद वाशेक वृध्दावस्था को प्राप्त करता है, युध्दों, संघर्षो

एवं राजनीतिक हलचल में वह अपने समस्त जीवन को ही लगा देता है। वृध्दावस्था में भी आशा की किरण उसके मन में समायी हुई होती है। उसे विश्वास हो जाता है कि एक न एक दिन मुसलमान भारत को छोड़कर चले जाएँगे और हिन्दू राज्य की पुनः स्थापना होगी। लेकिन परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों एवं गतिविधियों से अहिस्ता-अहिस्ता आनंद निराश हो जाता है और सन्त नामदेव से प्रश्न करता है कि "कभी यह दिल्ली हम हिंदुस्तानी लोगों की बन पाएगी भी या नहीं? मैं हिन्दुओं को नहीं कह रहा हूँ, हिन्दुस्तानियों की बात है।"[48]

अपनी वृध्दावस्था और अपने दाएँ हाथ के अंगूठे का युध्द मे कट जाना आनंद के लिए हानिकारक सिध्द होता है। वह युध्द करने में असमर्थ हो जाता है। अपनी इस अवस्था के कारण वह युध्द में प्रत्यक्ष रुप से भाग नहीं ले पाता। आनंद का अकेलापन एवं उसका आत्मिक संघर्ष उसे निराश बना देते हैं। चाह कर भी वह कुछ नहीं कर पाता। न जीने की इच्छा उसमें व्याप्त हो जाती है। "मैं जीना नहीं चाहता। मुझे अब दिल्ली से घृणा हो गयी है। बडे-बडे मैदानों वाली दिल्ली में शैतान की आँतों की तरह गलियाँ हैं। इनमें बेगुनाहों का तडप-तडप कर मरना देख चुका हूँ। यह धोखेबाजों, मक्कारों की दिल्ली खुदा या ईश्वर के नाम की माला जपने वाले रंगे स्यारों की दिल्ली।"[49] आनंद की दिल्ली के प्रति घृणा स्वाभाविक है। अपने जीवन को दाँव पर लगा कर उसने अपने राज्य के रक्षार्थ तुर्को से संघर्ष किया था, किन्तु उसके बदले में आनंद को घुटन एवं तडप ही मिली। उसका सब कुछ लुट गया। सबको त्याग कर उसने जालंधर से दिल्ली तक की यात्रा की थी। इस यात्रा में उसे बहुत कुछ त्याग करना पडा जिसमें उसकी प्रेमिका देविका भी उससे बिछड गयी थी। उसकी याद में आनंद हर क्षण घुलता रहता है। अंततः उसको निराशा ही हाथ लगती है।

"कुहरे में युध्द" उपन्यास के अंतर्गत आनंद वाशेक एक बुध्दीमान सेनापति है। अपनी बुध्दिमत्ता के कारण नुसरत तयासी जैसे शक्तिशाली शत्रु को भगा देते है। आनंद वाशेक में मानवीयता कूट-कूटकर भरी हुई है। वाशेक कहता है "मानव ने मानव के विनाश के लिए अस्त्रों-शस्त्रों के क्षेत्र में जितना विकास किया है। उतना ही अगर मानव के बीच निःस्वार्थ प्रेम के लिए करता तो अब तक यह जगत स्वर्ग हो जाता? प्रेम कोई सीधी सादी वस्तु नही रही। घृणा के कार्य को संपादित

करते राजे-महाराजे, सुल्तान अमीर सब अपने-अपने नि:स्वार्थ प्रेम को जनता तक पहुँचाने का पर्दा डाले वतन, मजहब, अल्ला या फिर मातृभूमि, धर्म और ईश्वर को एक दूसरे का शत्रू मानकर ही लड रहे हैं।"[50]

"घाटियाँ गूँजती है" इस नाटक में आदिवासी क्यूला अपने पति वियोग के कारण निराश होकर एकांगीपन जीवन बिताती है। क्यूला पति वियोग के कारण पागल हो जाती है। क्यूला जैसी बहुत सारी स्त्रियाँ है। जिनके पति देश रक्षा के कारण सीमा पर लड़ाई में मारे जा रहे है। विवेक कहता है "पागल न हो जाये कहीं। न जाने इस लड़ाई में कितनी युवतियों के पति लौटकर नहीं आयेंगें। कितने अबोध बच्चों की आँखे अपने पिताओंकी प्रतीक्षा करती पथरा जायेंगी। कितनी माताएँ अपने लाडलोंके लिए घरकी देहरीपर आँखे बिछाये बैठी रह जायेंगी।"[51]

४.१.३.२ : पारिवारिक संबंध :

"सभ्यता के विकास के कारण "परिवार" समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। भारतीय संस्कृती में परिवार को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। परिवार मूलता: मनुष्य की आत्मरक्षा एवं वंश-वृध्दि का मूल स्त्रोत रहा है। मानव की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार द्वारा ही संभव है। सामाजिक मर्यादा की रक्षा में परिवार का विशेष महत्त्व रहा है। हर मानव किसी न किसी परिवार का सदस्य अवश्य होता है। विभिन्न विदवानों ने परिवार को विभिन्न रुपों में परिभाषित किया Æ...

डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री परिवार की परिभाषा देते हुए कहते हैं- "आवरण, म्यान, कोष, घरके लोग, कुटुम्ब, वंश, खानदार, बाल बच्चे एक तरह की वस्तुओं का वर्ग, कुल, जाति (फैमिली) किसी राजा या रईस के पास रहने और उसके साथ चलनेवाले लोग।"[52] डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार "एक घर में और एक के ही संरक्षण में रहनेवाले लोग, एक ही पूर्व पुरुष के वंशज"[53]

पाश्चात्य विदवान लॉफ एवं बर्गित के अनुसार -

"Family is a group of person united by ties of marriage blood or adoption, coustituting a single hold, interacting and communi-cating with each other in respective roces of husband and wife

mother and father, son and daughter, brother and sister and creating and maintaining a comman culture"[54]

मेकविलर और पेग ने परिवार की परिभाषा देते हुए कहा है।

"Family is a group of defind by a sex relationship sufficently precise and enduring to provide for the procreation and up bringing of children"[55]

कहा जा सकता है कि परिवार एक ऐसी संस्था है जिसमें सभी के आचार-विचार, रीति-रिवाज, सभ्यता-संस्कृति, आचरण व्यवहार लगभग एक समान होते है। परिवार एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जहाँ से मानव अपने जीवन का आरंभ करता है। सामाजिक जीवन का मूल आधार वस्तुत: परिवार ही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में पारिवारिक संबंधो में एक प्रकार का तनाव दिखाई देता है। प्राय: संयुक्त परिवार टूट कर बिखर रहे हैं। परिवार का पंरपरागत महत्त्व आज समाप्त हो गया है। समाज के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन के कारण संयुक्त परिवार की प्रथा को आज मान्यता नहीं दी जा रही है। आर्थिक समस्या के कारण परिवार टुकडों में बँट रहे हैं। शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार, आधुनिककता के साथ-साथ भारतीय समाज में नारी की मानसिक परिस्थिती में परिवर्तन के कारण भी पारिवारिक संबंधों में विघटन उत्पन्न हो रहा है। नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की आकांक्षा के कारण भी दाम्पत्य संबंधों में दरार उत्पन्न हो रही है। शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में चित्रित पारिवारिक संबंधो एवं उनमें व्याप्त तनावों तथा विघटन का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है।

४.१.३.३ दाम्पत्य संबंधो में विघटन :

पति-पत्नी परिवार के महत्त्वपूर्ण आधार होते हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व शून्य ही है। पति-पत्नी के प्रेमपूर्ण संबंधो पर ही परिवार का सुखमय जीवन आधारित होता है। परिवार की समृध्दि एवं शांति का आधार भी पति-पत्नी का परस्पर सहयोग ही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आधुनिकीकरण, औद्योगिक विकास, शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण पती-पत्नी के पारिवारिक संबंधो में पर्याप्त कटुता आ गयी

है। परिणाम स्वरुप दाम्पत्य जीवन की समर्पित भावना का लोप हो गया है। आज पति-पत्नी का व्यवहार परस्पर भावना शून्य होता जा रहा है। अब वह समय बीत गया कि पत्नी पति को देवता मान कर पूजती थी और पति भी पत्नी के प्रति पूर्ण आत्मीयता और स्नेह दर्शाता था। आज शहरी परिवेश में पति-पत्नी संबंधो में विशेष परिवर्तन दिखाई दे रहा है। आज शहरों में स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि पति-पत्नी के बीच तनाव आम बात हो गयी है और उनके कटु संबंध "तलाक" के माध्यम से विच्छिन्न हो रहे हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन तलाक की पहुँच से दूर तो है किन्तु वहाँ भी पति-पत्नी के संबंधो में परंपरागत मान्यता को नकार कर नवीनतम विचारों का आरंभ हो रहा है। ग्रामीण परिवेश में भी पति-पत्नी के संबंधो में दरार पड़ती दिखाई दे रही हैं, जब वैवाहिक जीवन में तीसरे का प्रवेश होता है। पति-पत्नी या प्रेमी या प्रेमिका की यह त्रिकोणात्मक स्थिति भी ग्रामीण समाज में चोरी-छिपे अपना घर कर रही है। शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य-साहित्य में दाम्पत्य संबंधो के विघटन का यथार्थपरक चित्रण किया है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में कनिया अपने पति के काले कारनामों से आहत हो जाती है। रेल की डकैती में पति की गिरफ्तारी से कनिया दु:खी नहीं होती है। "कनिया ने गुस्से में पास रखी सील पर अपना हाथ पटक दिया। चुडियाँ खन खनाकर टूट गयीं-'चलो छुट्टी हुई'। वह मुँह विकृत करके बुदबुदायी, ऐसे ´Ö¸ü¤ü ÃÖê ¸üÖ›ÖÖ¯ÖÖ Æü‡Ô †“”Öü…"[56] यह कहना ग्रामीण नारी की नव जागरुकता का परिचायक है। पति को जेल से छुड़वाने के लिए सास के पुराणे कंगनों को बेचकर एक हजार रुपये की जमानत जुटाती है, और पति को जेल से रिहा करवा देती है। कनिया का यह प्रयास भारतीय नारी का परम कर्तव्य रहा है जिसे कनिया पूरी आत्मीयता से निभाती है। पति के कुकर्मों से छली हुई कनिया पति की मदत करती है और आदर्श नारी का फर्ज निभाती है। सुगुनी के साथ बुझारथ के संबंधो को भी कनिया जान जाती है, किन्तु उन परिस्थितियों में भी वह झुकती नहीं। पुष्पा के साथ किये जाने वाले अपने पति के अमर्यादित व्यवहार का पता चलने पर भी कनिया दृढ बनी रहती है।

दाम्पत्य संबंधों के विघटन की एक झलक "अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास के अन्य पात्र सुरजू सिंह और उसकी पत्नी में देखी जा सकती है। सुरजू सिंह

सुगनी चमारिन के साथ चमारों की बस्ती में पकडा जाता है। इस घटना को लेकर सुरजू सिंह की पत्नी घृणा करती है। सुगनी के लिए मँगवाए गए तेल, साबुन, पावडर को लेने को तैयार नहीं होती। पति की असलियत को जान कर वह पति का विरोध करती है। बदले में उसे मार भी खाना पड़ता है, उसका सिर लहू लुहान हो जाता है। देवल की माँ तिनककर बोली थीं- "किसके लिए मँगाया है, इसे आप भी जानते हैं, मैं भी जानती हूँ। सगरो गाँव जानता है।"[57] अपने पति का विरोध करने का साहस जुटा पा रही है। यह उसमें आया हुआ नया परिवर्तन है।

"आर-पार की माला" कहानी में जमींदार ठाकुर दो-दो पत्नियों के होते हुए भी नीरु से उसकी गरीबी का फायदा उठाकर यौन-संबंध स्थापित करता है। मटरू जो नीरु का पिता है। मटरु से जुम्मन कहता है- "पछताओं गे भाई, दूसरों के इशारे पर अपनी खानदानी अस्मत मत बेचो।"[58] मटरु किसी की एक नहीं सुनता और अपनी बेटी को पैसों के लिए ठाकुर के हवाली कर देता है। "उपहार" कहानी में ठाकुर अपनी पत्नी के रहते हुए भी नौकरानी विधवा गुलाबी चमारिन के साथ अवैध संबंध रखता है। ठाकुर हमेशा अपनी पत्नी को पीटता रहता है। ठकुराइन कभी उसका विरोध नहीं करती चुपचाप सिसक सिसक कर चारदीवारी में अन्याय सहती है। ठकुराइन पतिव्रता स्त्री है, व्रत उपवास कर पति की दीर्घायु की मंगलकामना करती है। ठाकुर के इस व्यवहार से गुलाबी कहती है- "ठाकुर है बडा कसाई, गुलाबी ने मन ही मन कहा, रंगा स्यार है। दुनिया भर का फैसला करता है और खुद पाप में हाथ डालता है। राम-राम ऐसी सीता-सी औरत पर कैसे हाथ उठाता है।"[59] पुरुष-प्रधान संस्कृति होने के कारण भारतीय ग्रामीण समाज में ऐसे यौन-संबंधों के बारे में परिचित तो सभी होते हैं, किन्तु जमींदारों के इन संबंधों का कोई खुलकर विरोध करने का साहस नहीं करता।

"मरहला" कहानी में खुनखुन की पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसके जीवन में गूँजा का आगमन होता है। कटहिया रेलगाडी का ड्राइवर सुमेर गूँजा को प्रभावित करता है। उसके लिए मूँगफली, मिठाई तोहफे लाता है, और एक दिन गूँजा उसके साथ भाग जाती है। गूँजा ने कहा- "कौन रहेगा ऐसे नीपूते मेहरभच्छा के संग, पहली औरत को खा गया, मुझे भी खा जायेगा।"[60]

आज ग्रामीण समाज में आर्थिक अभाव के कारण दाम्पत्य जीवन में दरार

उत्पन्न हो रही है। पति-पत्नी के प्रेम के बीच पैसों का लालच आ रहा है। धन के लालच में ही स्त्री द्वारा उठाया गया ऐसा गलत कदम गाँवों में अक्सर देखने को x´Ö»ÖŸÖÖ Æî...

"हत्या और आत्महत्या के बीच" कहानी में भी शोभा हाईस्कूल की परीक्षा पास करती है। पति हाईस्कूल की परीक्षा में तीन बार असफल हो जाता है। बात-बात पर पत्नी को पीटना, गालियाँ देना उसकी आदत बन जाती है। ऐसे माहौल से तंग आकर शोभा रेलगाडी के नीचे कट कर आत्महत्या कर लेती है। पत्नी की मौत का दु:ख पति को है ही नही। शोभा बुआ के साथ जानवरों जैसे सलुक किये गये तब भी उन्होंने उत्तर नहीं दिया और जब उनके ऊपर किये-अनकिये बीसियों नाजायज कामों के आरोप लगाये गये, तव भी वह उत्तर देने नहीं आयी। "पूरे मजमे में उनके पति महाशय गमगीन त्रासदी के बीच भी जोकर का पार्ट अदा कर रहे थे। उन्होंने शोभा बुआ के शरीर से सभी गहने उतार लिये, पूरा शिनाख्त कर लिया, पर लाल ढूँढने पर भी गले की सिकडी नहीं मिल रही थी। वह रेलवे लाईन की पटरियों पर इधर-उधर बडी सावधानी से उसे ढूँढ रहे थे।"[61] इस घटना के आधार पर लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि दाम्पत्य संबंध आज के वातावरण में कितने अर्थहीन हो गये है। ऐसे माहोल में स्त्री का पत्नी रुप में जीवन व्यतीत करना कितना दु:खदायक हो गया है। आज सचमुच स्त्री असहाय है? अबला है? आर्थिक रुप से परावलम्बी है?

"तकावी" कहानी में शंकर सिंह अपनी फिजूल खर्ची के कारण पत्नी की दृष्टी में महत्त्वहीन बन जाता है। सरकार द्वारा दी गई "तकावी" का रुपया लेकर वह पत्नी के लिए साडी लड़की के ससुराल को तीज भेजने की सामग्री और अपने लिए सिगरेट और कारतूस खरीदने में खर्च कर देता है। सरकारी अमीन जब तकावी वसूल करने आता है तब शंकर सिंह को खेत रेहन रखकर सरकारी पैसा चुकाना पडता है। शंकर सिंह परिवार के लालन-पालन से दूर रहना चाहते हैं। उनकी नजर में धन ही सब कुछ है। पत्नी के विचार उनके सामने कुछ मायने नहीं रखते।

"अरुन्धती" कहानी में बड़की बहू पर पति का सन्देह विशेष रुप से उभर कर आया है। हीरा और बड़की बहू के अनैतिक संबंध हैं, इस प्रकार का सन्देह

करते है। सारे गाँव में बात फैल जाती है। बदनामी के कारण हीरा आत्महत्या कर लेता है। बडकी बहू को मरने का दु:ख नहीं है किन्तु अपने अजन्मे शिशु को नष्ट कर देने के विचार से बहुत दु:खी होती है। कोख सूनी हो जाने पर तन्द्रा की हालत में बड़की को लगता है "जैसे एक पतले चमकीले, सुनहले साँप पर कहीं से काजल के ठोके-के ढोके आ-आकर गिर रहे हैं। लाल रंग का एक बडा-सा फूल है जिसे किसी ने उनके माथे से सटा दिया है। देखते ही देखते उनका सारा शरीर एक विचित्र चमक से भर गया है और वह उन काजल के ठोकों को चीरती आसमान की ओर उडती चली जा रही है। नीचे हजारों हाथ हैं, जैसे बाजरे की फसलें हिल रही है, सारा आसमान उनकी जय-जयकार से गूँज रहा है... अरुन्धती! अरुन्धती! और वह हैं कि निरन्तर पृथ्वी से दूर होती चली जा रही Æ..."[62] दाम्पत्य संबंधो में संदेह उत्पन्न हो जाने पर परिवार की सुखशांति नष्ट हो जाती है। त्रिकोणात्मक परिस्थिति से न पत्नी सुख से रह सकती है न पति।

शहरी वातावरण में पति-पत्नी के संबंधो में आये दरार का भी चित्रण शिवप्रसाद सिंहजी ने किया है। "प्रायश्चित" कहानी में रंजना डॉक्टर की ओर आकर्षित होती है। रंजना की बीमारी की हालत में डॉक्टर का घर आना जाना बढ़ जाता है। डॉक्टर रंजना को भाभी कहता है किन्तु उसकी एक मुस्कान पर भाव-विभोर हो उठता है। रमेश जब घर पर नहीं था तब डॉक्टर रंजना के पास चला गया और उसने हाथ छूकर कहा आपको तो बुखार मालूम होता है। उसने डॉक्टर का हाथ हटाया नहीं। वह रंजना के और भी समीप हो गया। रंजना कुछ बोली नहीं डॉक्टर के हाथों के स्पर्श का ज्ञान था पर उन्हें हटा देने के लिए जिस क्रिया की चेतना चाहिए, वह जड थी-गतिहीन और तभी डॉक्टर ने अपने हाथों की गुंजलक से उसे घेर लिया। तन्द्रा टूटने पर उसे वास्तविकता का आभास होता है। नौकरानी द्वारा बात सारी कॉलोनी में फैल जाती है। रमेश को इस बात का पता चलने पर अपने पुत्र को लेकर, हमेशा-हमेशा के लिए चला जाता है। रंजना को लगता है- "रमेश उसे व्यभिचारिणी कहता, कुलटा और बेहया कहता, तो भी उसके मन में उतनी पीडा न होती। उसकी गोद से उसका पुत्र छीना जा रहा था और वह बेबस गाय की तरह खडी थी। गाय से भी बदतर, क्योंकि वह हुंकार भी नहीं कर सकती थी।"[63] पति-पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ती से उत्पन्न विघटन

समकालीन शहरी जीवन की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। शिक्षित एवं आधुनिक कहे जाने वाले समाज में इस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जो दाम्पत्य-संबंधों के विघटन का कारण बनती हैं।

"वशीकरण" कहानी में मै अपने भाई-भाभी के तनावपूर्ण दाम्पत्य जीवन को सुधारता है। अपने गुस्सेल और झगडालू प्रवृत्ति के कारण भाभी अपने पति को औरत-सा बना देती है और बात-बात पर वे सपत्नियों की तरह आपस में हमेशा झगडते रहते हैं। किन्तु थोडी सी सहानुभूति और अपनत्व वशीकरण की तरह भाभी का कायापलट कर देता है और वह बडे प्रेम से देवर के साथ गाँव जाती है। गाँव में छोटी ननद और सास से प्रेम-पूर्ण व्यवहार करती है। "भाभी की आँखो में न जाने क्यों पानी छलक आया, माँ को आँखो में उपले का धुआँ लग गया था और झर-झर आँसू गिरने लगे।"[64] इस प्रसंग के माध्यम से शिवप्रसाद जी यह कहना चाहते हैं कि दाम्पत्य संबंधो में उत्पन्न तनाव का एक कारण प्रेम का अभाव भी है।

"केवडे का फूल" कहानी में अनिता और उसके पति के बीच के संबंधों में दरार पड जाती है। उसका पति अनिता को अपने मित्रो के मनोरंजन का साधन बनाना चाहता है। अनिता पतिव्रता नारी धर्म का पालन करना चाहती है जो हमारे भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। फिर भी सामाजिक मान-मर्यादा के कारण अनिता को विवश होकर अपने पति के घर जाना पडता है। पति के द्वारा लिखे गए उस अपमानजनक पत्र को पढ़ने के बाद भी वह उसका विरोध नहीं करती। भारतीय नारी आज भी पुरुष के अमानवीय व्यवहार के आगे झुकने के लिए बाध्य है। उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व है ही नहीं। न ही उसे पिता के घर में सम्मान मिलता है न ही पति के घर। पति पत्र में कहता है। "तुम्हें वह सब करना पड़ेगा, जो मैं कहूँगा। तुम्हें अपने को मेरे समाज के लिए बदलना होगा... तुम मेरी ही नहीं, मेरे मित्रों तक के लिए मनोरंजन की साधन हो मेरा सारा मतलब तुम समझती होगी... सती धर्म की दुहाई देकर तुम मेरी इच्छाओं को नहीं रोक सकती।"[65] पति के शोषण के विरुध्द खडी रहने का साहस उसमें नही है। परंपरागत नैतिक संस्कारों का प्रभाव आज भी भारतीय नारी के चरित्र पर उसी तरह छाया हुआ है।

४.१.३.४ माता-पिता और संतान के बीच संबंधो में विघटन :

पति-पत्नी ही संतान के जन्म के बाद पिता और माता के संबंधों की स्थापना करते हैं। पति-पत्नी के संबंधो के पश्चात, माता-पिता के संबंध ही पारिवारिक संबंधों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। माता-पिता और संतान का यह संबंध रक्त पर आधारित होता है। आधुनिक शिक्षा आधुनिक सभ्यता के विकास के परिणाम स्वरुप इन संबंधो में दरार पड गयी है। आज के युवा पीढी को माता-पिता के कौनसे भी कार्य पसंद नहीं है, न उनके विचारों मे समानता दिखाई देती है। आज का युवा वर्ग के आचार-विचार, रहन-सहन, पूरी तरह से बदले हुए दिखाई देते हैं। इनके परिणाम स्वरुप माता-पिता एवं संतान के बीच एक ऐसा रिश्ता स्थापित हो रहा है जो परंपरागत संबंधो से भिन्न है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने गद्य साहित्य में माता-पिता-संतान के संबंधो में व्याप्त विघटन का विस्तृत वर्णन किया है।

"गली आगे मुडती है" उपन्यास का नायक रामानंद तिवारी अपनी माँ के संस्कारों को ही पाता है किन्तु कहीं-कहीं वह अपने और माँ के विचारों मे ताल-मेल बिठा नहीं पाता। रामानंद की माँ सच में शील, संस्कार और साहस की प्रतिमा है। वह रामानंद से विद्रोह भरे स्वर में कहती है- "यदि आरती को माथुर उठा ले जा सकता है तो तू किरण को क्यों नहीं उठा लाता?।"[66] लेकिन रामानंद, माँ के विचारों से सहमत नहीं है। किरण और जयंती का विवाह हो जाता है और रामानंद निराश होकर घर में माँ के नाम पत्र छोड़ देता है- "अम्मा मुझे खोजने या खोजवाने की कोशिश मत करना। तुम गांव चली जाओ। मैंने दो-एक कालेजो में नौकरी के लिए दरख्वास्त दी है। लौटकर कभी मिलूँगा। मुझे क्षमा कर देना।"[67] यहाँ रामानंद और उसकी माँ के विचारों में विघटन होता दिखाई देता है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में डॉ. देवनाथ का पिता झबूलाल अपने पुत्र को डॉक्टर इसलिए बनाता है कि उसकी आमदनी कुछ बढ़े। डॉ. देवनाथ गाँव वाले का इलाज मुफ्त में करता है,यह झबूलाल को बहुत खटकता है। इसी कारण पिता-पुत्र के संबंधो में दरार आ जाती है। डॉक्टर बरामदे से हटकर कोठरी में घुस जाते। बाप-बेटे में एक अन्दरुनी खिंचाव पैदा हो जाता है। डॉ. देवनाथ को लगता है कि "बाप उसे पूरी तरह जमने देने के पहले पैसों का हिसाब करके सारे

रोगियों को खदेड रहा है। बाप को लगता है कि बेटा डागदर तो हो गया, मगर दुनिया से पूरी तरह नावाकिफ है। इस तरह करता रहा तो जो कुछ है, वह भी बिला जायेगा।"[68]

"शैलूष" उपन्यास में सलमा और करीमन बाप-बेटी के संबंधो का विघटन दिखाई देता है। करीमन घुरफेंकन के हाथों बिक जाता है और जुड़ावन के खिलाफ साजीश रचता है और बकुल को मार देता है। सलमा करीमन से कहती है- "और स्साले तूने दो हजार रुपये के लिए नटों के नाम को कांटे पर चढ़ा दिया! मैं मानती हूँ कि नट जराइमपेशा वाले माने जाते हैं। पर कभी भी नटों ने मासूम बच्चों का कतल नहीं किया। चुराया, खुद पालने के लिए ले गये। लडकों से ज्यादा लड़कियों की चोरी करते रहे ताकि उन्हें गोरी-चिट्टी ऐसी जवान लड़कियाँ मिलें जिन्हें वे खुद अपने लिए या अपने बेटे, भतीजे किसी भी नजदीकी को शादी के लिए सौंप सके। पर मैंने आज तक कभी यह नहीं सुना स्साले कि दो हजार रुपये से तुम खुद के परिवार के लडके का कत्ल करेगा।"[69] सलमा धर्म का साथ देती है तो करीमन अधर्म का साथ देता है। इसलिए बाप-बेटी के संबंधो में दरार आ जाती है। जिससे सबंधो का विघटन होता है।

"बेहया" कहानी में सुभागी के घर कामता का आना-जाना पिता ठाकुर केशों बाबू को अच्छा नहीं लगता। ठाकुर अपने इकलौते पुत्र को सुभागी के यहाँ जाने से रोकना चाहता है। लेकिन कामता, माता-पिता से झगडा कर घर छोड देता हैं। पडोस के बीसू चाचा के यहाँ खा-पीकर सो रहता। ठकुराइन की बुरी हालत थी, वह कुछ समझ ही नहीं पा रही थी। कामता के इस व्यवहार के कारण माता-पिता और कामता के संबंधो में दरार आ जाती है। कामता सुभागी से प्रेम करता है और प्रेम मे पागल होकर कहता है- "देखो मुझे रोज इस तरह कुआँ मत झँकाया करो, सुभागी। तुम यदि इस तरह मुझे बरजती रही, तो मैं सर पटक लूँगा कहीं। मैं पागल हो गया हूँ।"[70] सुभागी के कारण ही, कामता और उसके माता-पिता के संबंधो में विघटन हो जाता है। ठाकूर केशों बाबु का जिस प्रकार का आचरण था उन्ही के पदचिन्हों पर कामता भी चल रहा है।

"एक यात्रा सतह के नीचे" कहानी में अवधू नौकरी की तलाश में जहाँ भी जाता है वहाँ से खाली हाथ ही वापस आता है इस कारण माता-पिता के स्नेह को

खोता जाता है। बार-बार नौकरी ढूँढने का प्रयास करता है फिर भी अवधू के हाथ असफलता ही लगती है। जिसके कारण माता-पिता भी मौन होकर रह जाते है। मध्यमवर्गीय युवकों की बेरोजगारी की ज्वलंत समस्या को पाठक के सामने लाने का प्रयास किया है। अवधू कहता है" नौकरी मेरी पॉकेट का रुमाल तो नहीं है न कि मैं जब चाहूँ निकालकर चेहरे की धूल-माटी पोंछ लूँ। अचानक भीतर की सन्धि में कहीं फिर आम्मा का चेहरा नाच उठा। तो क्या अब वे मुझसे घृणा करती हैं? मैं क्या इतना निकम्मा, नीच और नालायक हो गया हूँ?"[71]

अवधू बेरोजगार होने के कारण बेरोजगारी अवधू और उसके घरवाले इससे ग्रसित हैं। जिससे उबरने का प्रयत्न करने पर भी आज का व्यक्ति उबर नहीं पाता और यही समस्या आज के मध्यवर्गीय परिवारों की स्थायी समस्या बन कर रह गयी Æ...

"गंगा तुलसी" कहानी में सुनील अपनी माँ से बहुत प्रेम करता था। सुनील जब बी.ए. होकर जब गाँव आता है, उस छोटे से गाँव में सुनील जितना कोई पढ़ा न था। जमींदार के लड़के बच्चन और विधवा ब्राम्हणी के प्रेम के किस्से लोग इस तरह सुनाते जैसे तीसरी लड़ाई छिड गई हो। इस दास्तान से सुनील का नाम भी जरुर आता तब लोग बडे इत्मीनान से कहते- "क्या करती बेचारी कोई सहारा न था; लड़के को पढाने के लिए उसे सब कुछ करना पडा।"[72] इसी कारण माँ और बेटे के संबंधो में दरार छा जाती है। जिसके फल स्वरुप सुनील अपनी मरती हुई माँ को देखकर प्रसन्न है, उसे लगता है कि उसके शरीर पर से कालिख की पर्त अपने आप फटने लगी है। सुनील मरती माँ को भी क्षमा नहीं कर सकता।

"आदिम हथियार" कहानी में श्यामलाल शहर से आशा को अपने साथ गाँव ले आता है। ग्रामीण वातावरण में इस तरह की घटनाएँ बहुत ही कम होती है। परिवार की मान-प्रतिष्ठा, शान के खातिर बहुत कम माता-पिता ऐसे प्रेम विवाह को मान्यता देते हैं। श्यामलाल और आशा के प्रेम विवाह के कारण चौधरी और श्यामलाल के संबंधो मे टकराहट हो जाती है। "चौधरी ने उसे बोलना छोड़ दिया। गुमसुम दालन में गिरे रहते। बुझी चीलम को सुडकना ही उनका काम रह गया था। दायादी में कहीं जाओ तो सिर्फ एक प्रश्न-किस जात की लड़की है? कहाँ की रहने वाली है? स्थान और जाति से अलग शायद आदमी का कोई अस्तित्व होता

ही नहीं।"[73] ग्रामीण परिवेश में प्रेम विवाह को मान्यता दी नहीं जाती लेकिन आधुनिक युग के परिवर्तित माहोल में यह प्रथा रुढ होती चली जा रही है। यह समाज में आया हुआ नया परिवर्तन ही है।

"माटी की औलाद" कहानी में भी टीमल कुम्हार का पुत्र सरजू पिता के परंपरागत व्यवसाय से रुष्ट रहता है। उसे लगता है कि अन्य जगह मेहनत मजदूरी करे तो उसे अधिक आमदनी मिल सकती है। परंपरागत व्यवसाय के प्रति पिता की श्रध्दा को देखकर सरजू उदास हो जाता है। पिता के आदर्शो के आगे सरजू को झुकना ही पड़ता है। सरजू द्वारा जमींदार बहुओं का विरोध करना टीमल को अच्छा नही लगता। "टीमल को मामला बेढंगा लगा। बात बढ न जाए इसलिए वह उठा और उसने सरजू के गाल पर एक थप्पड जड दिया।"[74] ™ß´Ö»Ö अपनी निर्धनता एवं अभावग्रस्त जीवन में ही सुखी है। पिता-पुत्र का यह संघर्ष संबंधो में दरार डाल देता है। पिता पंरपरागत मान्यताओं का पक्षधर है तो पुत्र परिवर्तित मानसिकता का प्रतीक है।

"घाटियाँ गूँजती हैं" नाटक में शीकू एक देशभक्त है, तो दूसरी ओर उसका बेटा टूराँ देशद्रोही है। जो चीनी सेना का साथ देता है जो अपने देश के साथ गद्दारी करता है। इन दो परस्पर विरोधी विचारधारा के कारण बाप-बेटे के संबंधो में दरार आ जाती है। शीकू कहता है- "डर? वाह बाबू, आप भी क्या कहते हो सरकार। शीकू को अपने लिए कभी ड़र लगा है बाबू? मैंने सोचा टूरॉसे मिलनेका अच्छा मौका आ गया है। आज ही मैं अपने कलंकको मिटा सकता हूँ। मनका २ÖÖ–Ö उतार सकता हूँ। आप सोच नहीं सकोगे बाबू कि मुझे टूरॉसे कितनी घृणा हो गयी थी। मैं लाल रंग से बहुत मुहब्बत करता था बाबू। हमारे कबीलेके झण्डेका यही रंग है। हम अपनी वनस्पती देवीपर इंसी रंग की धजा चढाते थे। लोग कहते हैं कि लाल रंग गरीबोंके खून की याद दिलाता है। मगर बाबू टूरॉने इसका जो मतलब बताया और जो काम किया, उससे मुझे लगा कि यह रंग गद्दारी और वतनके साथ घातकी निशानी हो गया है।"[75] इन विचारों के कारण दोनो पिता-पुत्रों के संबंधों का विघटन हो जाता है। अर्थ प्राप्ती ही इसका प्रमुख कारण रहा है।

४.१.४ ग्रामीण परिवेश में नारी की परिवर्तित मानसिकता :

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय नारी के जीवन में पर्याप्त अंतर दृष्टिगत होता है। आज की नारी पुरुष के समान ही आत्मनिर्भर हो गयी है। शिक्षा के प्रचार-प्रसाद के परिणाम स्वरुप आज की नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है। शिक्षित होने के कारण ग्रामीण नारी पर्याप्त सहज हो गयी है। पुरुष के हाथ की कठपुतली न होकर स्त्री आज स्वयं अपने व्यक्तित्व की पहचान करवा रही है। परंपरागत मान्यताओं एवं आदर्शो को निभाने के लिए आज वह बाध्य नहीं है। अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता के आधार पर आज की नारी अपने अधिकारों की माँग कर रही है। ग्रामीण समाज में अभी शिक्षा के प्रचार-प्रसार का थोड़ा बहुत अभाव रहा है, तथापि ग्रामीण नारी भी नवीन मानसिकता से प्रभावित है। नारी-जाती में व्याप्त यह परिवर्तन समकालीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था को भी पर्याप्त प्रभावित कर रहा है। नारी-जागृत का यह संकेत शहरों के साथ-साथ ग्रामीण परिवेश में भी दृष्टिगत हो रहा है। गाँव की नारी प्राचीन मान्यताओं के प्रति आज श्रध्दालु नहीं है, उसमें भी नवीन मानसिकता का प्रवाह परिलक्षित हो रहा है। नारी का यह परिवर्तन भारतीय समाज की महत्त्वपूर्ण विकास-यात्रा का परिचायक है। शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में ग्रामीण नारी के परिवर्तित रुप को भी देखा जा सकता है। "शैलुष" उपन्यास में सिंह जी ने नटों के जीवन की व्यापक धरातल को प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका सावित्री या सब्बो मौंसी का चरित्र पाठकों को विशेष रुप से प्रभावित करता है। उपन्यास के सभी पात्र सावित्री के चरित्र से प्रभावित हैं। जमींदार घुरफेंकन तिवारी के शोषण के विरुध्द आवाज उठाती है। सावित्री जुड़ावन से प्रेम करती है, तीस वर्षो तक उसके साथ रहती है, किन्तु उससे किसी संतान की अपेक्षा नहीं रखती क्योंकि उसे भय है कि लोग उसकी संतान को दोगला कहेंगे इस संदर्भ में डॉ. यतीन्द्र तिवारी का निम्न कथन द्रष्टव्य है। "अपने प्रिय व महिमामंडित पात्रों को शरीर संबंधो से दूर रखना शिवप्रसाद सिंह की रचनाधर्मिता की पुरानी आदत है शायद यह उनके जीवन मूल्यों का अंग है, उनका आदर्श है, पर आज जब कि हर दृष्टि से यह ध्वस्त हो चुका है, तो भी लेखक का हर बार उससे चिपके रहना आदर्श मूल्यों की अक्खड़ता को भी जड़ता की ओर लिए जा रहा है फिर अविवाहित प्रेमियों मे एक बार ऐसा चल भी सकता

है। लेकिन यहाँ तो पति-पत्नी के बीच यह कैसे समझा जा सकता है?।"[76]

नटों की वैवाहिक पंरपरा में सावित्री परिवर्तन लाती है। लड़के के पिता द्वारा लड़की के पिता को दिए जाने वाले (मेहर) धन की परंपरागत प्रथा मे परिवर्तन लाते हुए वह कहती है- "आज पूरे कबीले की पंचायत बुलाकर ऐलान करा दो कि अब शादियों मे लडकेवाला पुरे कबीले के लिए भोजन बनाकर एक साथ बैठकर सबको शादी की खुशी में खिलाएगा। आज से मेहर बन्द। आज से फिजुलखर्ची बन्द। आज से शादी के भोज-भात में अलग-अलग सिध्द-राशन बॉटना बन्द हो जाएगा।"[77]

सावित्री की बात सभी नट स्त्रियाँ मानती हैं। सुरभी और रुपा सावित्री के कहे अनुसार ही गालियाँ देना छोड़कर सीधी-सादी भाषा में बात करने का प्रयत्न करती हैं। सावित्री को बात-बात पर गली-गलौच अच्छा नहीं लगता। पौराणिक उदाहरण द्वारा नटों को समझाने का प्रयत्न करती हुई कहती है- "जीना हो और सम्मान हो तो जबान पर लगाम दो। जब राम लखन और सीता वन में घूम रहे थे तो उन्होने देखा, एक पालने में शिव भगवान झूल रहे हैं। बालकरुप में। राम ने लछमन से पूछा- "क्या कर रहे हैं भगवान?" लक्ष्मन बोले- "कह क्या रहे हैं, ये तो मौन हैं। केवल चुटकी से जीभ दबाए हैं। रामजी बोले- "भइया यह आज्ञा दे रहे हैं कि अगर आगे बढ़ना है तो जबान को रोको। "अगर लछमन ने सुरपनखा से बात करते हुए जबान पर ताला लगा दिया होता तो न तो सीता का हरण होता न तो रावण का मरण।"[78] उपन्यास में ऐसे अन्य कई उदाहरण हैं जिनके आधार पर सावित्री ने कबीले वालों के जीवन में सुधार लाने के प्रयास किये हैं। वस्तुतः सावित्री के चरित्र की सृष्टि ही कबीले वालों को सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने के उद्देश से की गयी है। यह लेखक का सुप्रयत्न है, जो प्रशंसनीय है।

"शैलूष" के अन्य पात्रों में माला और रुपा भी इसी प्रकार की सुधार-भावना से प्रेरित हैं। छबीला सिंह का माला से यह कहना "क्यों मेरी जान, क्या हाल-चाल है? तुम तो चाबी देने लायक जापानी गुड़िया लगती हो। दे दूँ चाबी? जानती हो न इसका मतलब?।"[79]

माला के लिए यह अपमान-जनक शब्द होता है और वह छूरा फेंक कर छबीला सिंह की जाँघ पर मारती है जिससे वह घायल हो जाता है। रुपा भी अपनी

रक्षा के लिए कई बार हथियार का प्रयोग करती है। इन प्रसंगों के आधार पर लेखक यह कहना चाहते हैं कि नटों के जीवन में स्वरक्षा के लिए स्त्री को इस प्रकार का प्रशिक्षण बचपन से ही दिया जाता है। "माला अपने शील की रक्षा के लिए देवर की छाती में छूरा घोंप कर उसकी हत्या कर देती है।"[80] इस घटना से लेखक यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि कबिलों एवं जन-जातियों में भी नारी जागरण पर्याप्त रुप से वहाँ के जन-जीवन को प्रभावित कर रहा है। इस संदर्भ में सावित्री का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "गुड़ की पट्टी, दालमोट रेवड़ी पर आदिवासी लड़कियाँ बिक जाती हैं पर कबीलें में एक भी ऐसा कमीना आदमी नहीं है जो बिना पूछे ऐसी छोलदारी में घुस जाए जहाँ अकेली लड़की बेखौफ सोई हो।"[81] कबीले की नारी भी अपने शील-संरक्षण के प्रति जागरुक है। वह नहीं चाहती कि उसकी अनिच्छा से कोई उसके निकट आए। विशेषकर पुरुषो से इस विषय में वह सावधान रहना चाहती हैं। यह ग्रामीण नारी की परिवर्तित मानसिकता का सूचक है। अब वह पंरपरागत लाँछित जीवन का परित्यागकर सम्मानित जीवन जीना चाहती है। ऐसा जीवन व्यतीत करने की उसकी आकांक्षा ग्रामीन-समाज की परिवर्तित चेतना का प्रतीक है।

"मूर्गे ने बाँग दी" कहानी में मँगरु लोहार की पत्नी शोषण का विरोध करती है वह काम के आधार पर मज़दूरी की माँग करती है। वह अपने आर्थिक अभाव के प्रति खिन्न है। गाँव के लोग उसके पति से काम तो करवाते हैं किन्तु मजदूरी नहीं देते। गाँव का जमींदार ठाकुर भी मँगरु से काम तो करवा लेता है किन्तु मज़दूरी माँगने के लिए मँगरु को कई चक्कर लगाने पड़ते हैं। ऐसे में मँगरु की पत्नी अपने पति को ठाकुर के पास जाने को उकसाती है- अरे आज भी भूखे रहोगे क्या? खूद रहना हो रहो, लड़के की तो फिकर करो। सबकी हालत खराब है। कोई मजूरी नहीं देता तो न सही ठाकुर के पास तो काम नहीं है न! जाओ खेत में होगें ऐसे कैसे काम चलेगा।"[82] मँगरु की पत्नी का चरित्र इस कहानी में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वस्तुतः वह निर्भीक नारी है, अपने अधिकार को पाने के लिए वह तत्पर है। वह किसी के आगे झूकना नहीं चाहती। अपने आर्थिक अभाव का ऐलान करते हुए कहती है। "हाथ की हुनर गृहस्थ के हाथ के साथ ही सिकुड गयी है। यहाँ तो देह पीटते-पीटते बीमार भले हो जाएँ, पेट भरने का कोई

ठिकाना नहीं है।"[83]

"उपधाइन मैया" कहानी की "उपधाइन" भी विधवा होकर भी साहस का परिचय देती है। पति पुत्र और ससुर की मैात के पश्चात् जीवन गुजारना उसके लिए असंभव हो जाता है। अत: गाँव में महामारी के प्रकोप से पिड़ित स्त्री-बच्चों की रक्षा हेतु वह घर-घर घूमकर दवाई बाँटती फिरती है। उसे गाँव वालों के ताने-तश्मों से लेना देना नहीं है। अत: कम समय में ही वह गाँव में पर्याप्त प्रसिध्द हो जाती है। गाँव के जमींदार राय साहब के समझाने से भी वह नहीं समझती और कहती है- "जोखिम से बचते-बचते तो यह हाल हुआ। अब रहा ही क्या जिसके लिए बचूँ-बचाऊँ। भगवान की जैसी इच्छा? मैं लोगों के सुख में हिस्सा नहीं ले सकती तो लाचारी है पर दु:ख तो अपने भाग का है। इसे छोड़कर मै किस ओर की हूँगी।"[84] ग्रामीण परिवेश में विधवा स्त्री का इस प्रकार घर-घूमना अनुचित माना जात है। किन्तु उसे अपने कुल एवं वंश मर्यादा की चिंता नहीं है। वह मानवता के नाम पर गाँव वालों की सेवा करना चाहती है। उसका यह विचार ग्रामीण-समाज में परिवर्तन की सूचना देता है। अत: आज की ग्रामीण नारी अपने स्वतंत्र विचार की समर्थक है। वह अपने दायरे में ही सीमित रह कर जीना नहीं चाहती। उसकी यह मानसिकता ग्रामीण जन-जीवन को तो प्रभावित करती ही है। "उपधाइन मैया" की यह जिज्ञासा विरोधी वातावरण में भी विशेष महत्त्व रखती है ग्रामीण नारी के व्यक्तित्व का यह बदलाव सचमुच सराहनीय है। "उपहार" कहानी की गुलाबी भी विधवा चमारिन है। वह गाँव के जमींदार ठाकुर के यहाँ नोकरनी है। वह ठाकुर के चरवाहे बच्चन से प्रेम करती है। बच्चन को ठाकुर के शोषण के विरोध में आवाज उठाने को उकसाती है। बच्चन का साथ देती हुई वह ठाकुर को भी बुरा भला सुनाती है- "जाके अपनी घरवाली की खाल खींचो ठाकुर, वही दरबे में बन्द मुर्गी की तरह ओठ सिये तुम्हारा जुल्म सहेगी, काहे से कि तुम उसे चारा देते हो। अपना क्या, हाथ-पाँव चला के दो रोटी कहीं से भी कमा लेंगे। तुम्हारी धौंस सहने वाले कई और होंगे हाँ।"[85] गुलाबी साहसी एवं भिडर स्त्री है, जो किसी शोषण को सहने के लिए बाध्य नहीं है। ग्रामीण समाज में ऐसी स्त्रियाँ कम होंगी जो ठाकुर जैसे गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ती को धिक्कारें, उसका तिरस्कार करे। गुलाबी के चरित्र-चित्रण से स्पष्ट हो जाता है कि आज की ग्रामीण-नारी परंपरागत

मान्यताओं को मानने के लिए बाध्य नहीं है। वस्तुतः यह ग्रामीण नारी के परिवर्तित चेतना का द्योतक है। ग्रामीण नारी अपनी स्थिती से परिचित है। यह शहरी वातावरण का प्रभाव ही है कि आज की ग्रामीण नारी भी अपनी माँगों के प्रति सतर्क है।

४.१.४.१ नारी और विवाह :

भारतीय समाज की नैतिक पंरपरा में विवाह पध्दति का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहले प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक स्त्री के साथ संबंध स्थापित कर संतान-उत्पत्ति कर लेता था। इससे समाज की सामाजिक मर्यादा भंग हो रही थी। मानव का यह कार्य हीन माना जाने लगा। सामाजिक पथ-प्रदर्शकों ने विवाह-पध्दती का आरंभ कर सामाजिक आदर्श की स्थापना की। पहले आठ प्रकार के विवाहों का प्रचार हुआ, जो ब्रम्हा, दैव, आर्ष प्राजापात्य, गान्धर्व, राक्षस, असुर और पैशाच कहलाते हैं। इनमे श्रेष्ठ वर के साथ सुंदर वस्त्राभूषण पहना कर तथा उसकी पूजा करके कन्या का विवाह करना ब्रम्हा विवाह कहलाता है। इसी विवाह को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व मान्य माना गया और समस्त समाज में इसी विवाह का अधिक प्रचार हुआ। आज तक भारतीय समाज में ब्रम्हा-विवाह को ही विशेष महत्व प्राप्त है, यही पध्दति समाज में अधिक प्रचलित है। इस विवाह पध्दति ने सामाजिक अनैतिकता का निवारण किया है, वहाँ सामाजिक मर्यादा की स्थापना में भी पूर्ण सहयोग दिया है। यही कारण है कि समाज में नैतिकता की स्थापना, सामाजिक मर्यादा को बनाए रखने, सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा तथा सामाजिक प्रगति के लिए भारतीय समाज ने विवाह की इस नैतिक परंपरा को आज तक अक्षुण्ण बनाए रखा है। समाज में वे ही संबंध सम्माननीय एवं सर्वमान्य हैं जो विवाह द्वारा स्वीकृत हों। विवाह के अभाव में स्त्री-पुरुष का जीवन अपूर्ण है। विवाह दोनों में पूर्णता का संचार करता है।

ग्रामीण युवती आज भी विवाह के विषय में अपने माता-पिता पर निर्भर हैं। माता-पिता की इच्छा के आगे वह नतमस्तक है। विवाह के मामले में भारतीय ग्रामीण युवती पिछडी हुई है। यही कारण है कि भारतीय ग्रामीण समाज में अनमेल विवाह की प्रथा आज भी प्रचलित है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास की पुष्पी, जमींदार के पुत्र विपिन से प्रेम करती है किन्तु वह एक निर्धन पिता की लड़की होने के कारण विपिन से विवाह की कल्पना भी नहीं कर सकती। विपिन भी पुष्पी से दिलोजान से प्रेम करता है लेकिन खानदान की इज्जत को देखते हुए वह कह नहीं पाता। पुष्पी को माता-पिता के व्दारा चुने हुए लड़के के साथ ही विवाह के लिए स्वीकृति देनी पडती है। "पुष्पा के मामा के किसी रिश्तेदार का लड़का था। साल भर पहले ही उसकी औरत मरी थी। अच्छे खाते-पिते गृहस्थ हैं। लडका भी खूब हट्टा-कट्टा और कमासुत है। फिर क्या चाहिए। शादी पक्की हो गयी। कोई तूल-ताल नहीं। बस लडका नाऊ, बारी, बामन और समधी। पाँच जन आयेंगे। आराम से शादी करके चले जायेंगे। न इनका खर्च, न उनका खर्च दोनों ओर की बचत। आज के जमाने ´Ö <ÃÖß Æß ¿ÖÖ¤ß ¿ÖÖ³ÖÝÖß Æ…"[86] अनमेल विवाह की इसी विसंगती को ग्रामीण औरतें ताड जाती हैं और इस विवाह के बारे में कहती है- "वह विवाह नहीं बहिनी निवाह है" "क्या करे बिचारी। रिन-करज लेकर लडकी को पार करा दिया, यही बहुत है। एह 'जमाने' में विवाह ऐसे ही होता है।"[87] ग्रामीण लडकी आज भी अपने शादी के बारे में पूरी तरह अपने माता-पिता पर निर्भर है। आज भी वह विवश है वह अपने विवाह का निर्णय खुद नहीं ले सकती यह आज के ग्रामीण जीवन का वास्तविक सत्य है। पैसों के कारण आज भी अनमेल विवाह के लिए राजी होना पड़ता है। आज हमारे देश में पुष्पा जैसी हजारों युवतियाँ है, जो अनमेल विवाह का शिकार हुई है।

"गली आगे मुडती है" में जमुनादास की माँ की मृत्यू के नौ महिने बाद पिता दूसरी शादी कर लेता है। दहेज के अभाव में अपने से बडे उम्र के व्यक्ति से विवाह करके जमुनादास की नई माँ संतुष्ट नहीं है। वह जमुनादास से केवल दो वर्ष की बडी है। माँ-पुत्र का मिलकर कैरम खेलना पिता को पसंद नहीं आता। आंगन में बैठकर कैरम खेल रहे थे। मेरा स्ट्राइकर गिरा। मैंने उठाया और एक गोट पर निशाना लेने लगा कि नयी अम्मा ने हाथ पकड लिया। मैं हाथ छुडा रहा था और हसते हुए कह रहा था। एक बार आपसे भी स्ट्राइकर गिरा था। तभी पिताजी आँगन में आए कहने लगे। "हूँ! तो ई बेहयाई चल रही है मेरे घर में ? कई लोगों ने कहा कि आपके घर में दोपहर को गुलछर्रे उडते हैं, तो मैने विश्वास नहीं

किया, पर आज सब अपनी आँखों से देख लिया। पिताजी गरजे:' हो गया सब 2Ö¸Ö2Ö¸… 3ÖŸÖÖ¸ †Ö¸ 2Ö™Ö 2Ö¸Ö2Ö¸, 3ÖÖ‡ †Ö¸ ´ÖÆ¸Ö1ý 2Ö¸Ö2Ö¸…"[88] संदेह अनमेल विवाह की सबसे महत्तवपूर्ण समस्या है। इस समस्या के कारण नारी को असमय ही मानसिक तनाव को ढोना पड़ता है। अनमेल विवाह के मूल में आर्थिक विपन्नता की ही मुख्य भूमिका है। आर्थिक विपन्नता के कारण आज भी स्वतंत्र भारत के ग्रामीण समाज में अनमेल विवाह की प्रथा जीवित है।

"शैलूष" उपन्यास में लेखकने सावित्री और जुड़ावन के प्रेम विवाह को महत्त्व दिया है। सावित्री तिवारी ब्राम्हण वंश से संबंधित है तो जुड़ावन नटों के कबीले का सरदार। सावित्री, जुड़ावन के शारीरिक गठन को देखकर उस पर मोहित होती है, और अपने पिता की वंश-मर्यादा को त्याग कर घर से भाग आती है। सावित्री का जुड़ावन के साथ भाग जाना रेवतीपुर के लिए अपमान की घटना है किन्तु सावित्री इसको उचित मानती है। सावित्री सोचती है कि यदि वह जुड़ावन के साथ नहीं भागती तो उसे केवल घर की चार दिवारी में बंद रहना पडता- "क्या जुड़ावन के साथ न भागकर अगर मैंने अपने पिता जगदीश शर्मा पर शादी का निर्णय सौंप दिया होता तो मुझे भी गायत्री की तरह पिंजरे में रहना पडता? जिंदगी क्या अंधेरे में मैथुन करके बच्चा-बच्ची जनमाने और खानदान के नाम पर चार दीवारी में कैद होने का ही नाम है?।"[89] सावित्री के विवाह के बारे में के विचार आधुनिक हैं जो भारतीय ग्रामीण नारी में न के बराबर हैं। सावित्री ग्रामीण समाज की विवाह की पंरपरागत मान्यताओं को बदलाने का संदेश दे रही है।

"नन्हों" कहानी में नन्हों की शादी मिसरीलाल से तय हो जाती है। मिसरीलाल की जगह रामसुभग को दिखाया गया था और शादी मिसरीलाल से हुई। ग्रामीण नन्हों के मॉ-बाप ने नन्हों को पैदाइशी लंगडे मिसरीलाल के साथ शादी की। फिर भी नन्हों इसका विरोध कर न सकी क्योंकि माता-पिता-दहेज देकर दूसरी जगह शादी कर नहीं सकते थे। इस प्रकार की शादियाँ देहातो में देखने को मिलती हैं। मिसरीलाल की शादी पक्की हुई तो नन्हों का बाप बहुत खुश था, क्योंकि मिसरीलाल के नाम पर जो लडका दिखाया गया था वह शकल में अच्छा और चाल-चलन में काफी शौकीन था। "लडके वालों ने जब जोर दिया कि हमें बारात चढा के शादी सहती नहीं, ड़ोला उतारेंगे तो थोडी मीन-मेख के बाद

नन्हों का बाप तैयार हो गया, क्योंकि इसमें उसका भी कम फायदा न था। खर्च की काफी बचत थी।"[90] अर्थ के अभाव के कारण नन्हों के पिता एक लंगडे के गले मढ देते है। फिर भी नन्हों माता-पिता की मान-मर्यादा के कारण सब सह लेती है। लेकिन रामसुभग को कहती है- "ठीक कहा लाला तुमने, अपना-अपना भाग ही तो Æ..."[91] नन्हों अपने भाग्य को कोसती है।

"महुवे के फूल" कहानी में सत्ती के मॉ-बाप की आर्थिक स्थिति कमजोर रहने के कारण सत्ती के पिता को हीरा जैसे दुष्चरित्र वाले युवक से शादी तय करनी पड़ती है।" बे-जुबान सत्ती ने इस निर्णय को सिर झुकाकर स्वीकार किया। इसके अलावा दूसरा कोई चारा भी न था। अकेले में बैठकर आँसू गिराती और लाख सोचने पर भी बाप की इज्जत के सामने माथा टेक देती।"[92] ग्रामीण समाज में इस प्रकार के विवाह अक्सर होते हैं। जिसमे नारी की बलि दी जाती है, उसकी इच्छा न होते हुए भी अनिच्छित पुरुष के साथ नारकीय जीवन बिताना पड़ता है। यह हमारे भारतीय ग्रामीण नारी जीवन की विडम्बना है।

"पोशाख की आत्मा" कहानी में कुसुम अपने प्रेमी डॉक्टर से विवाह करना चाहती है। डॉक्टर की कामुक प्रवृत्ति से कुसुम भली भाँति परिचित है। वह जानती है कि डॉक्टर ने कई लडकियों के जीवन के साथ खेला है। लेकिन डॉक्टर को सुधारने के लिए डॉक्टर से विवाह करने का प्रस्ताव रखती है। कुसुम कहती है- "तुम्हे शादीं करनी ही होगी क्योंकि वह पहले ही हो चुकी है। वह बोले वरना मैं इस फोटो के साथ तुम्हारी मक्कारी के सारे कच्चे चिट्ठे खोलने को मजबूर हूँ।"[93] मजबूर होकर डॉक्टर को कुसुम से शादी करनी ही पड़ती है। डॉक्टर पुरुष प्रधान समाज का प्रतिनिधित्व करता है। शहरी नारी का नया रुप इस कहानी में उभर कर आया है। नारी विवाह के बंधन में बंधकर भी व्यभिचारी पुरुष में परिवर्तन ला सकती है। जिसका ज्वलंत उदाहरण कुसुम है।

"मरहला" कहानी में गूँजा खुनखुन को छोड कर रेल ड्राइवर सुमेर के साथ भाग जाती है। गूँजा के माध्यम से लेखक ने ग्रामीण नारी की मानसिकता में परिवर्तन आ रहा है। ग्रामीण नारी नहीं चाहती कि उसका पति दब्बू बना रहे। गूँजा एक ऐसी नारी है जो जीवन में नवीनता की आकांक्षा रखती है। गूँजा कहती है- "कौन रहेगा ऐसे नीपूते मेहरभच्छा के संग" पहली औरत को खा गया, मुझे भी खा

जायेगा।"[94] गूँजा के लिए विवाह एवं सामाजिक मूल्यों का कोई महत्व नहीं। ऐसी नारियों के कारण ही ग्रामीण समाज कलुषित हो रहा है।

"अरुंधती" कहानी की बड़की बहू के मन में साँस और पति के प्रति पूरी श्रध्दा है। किन्तु घर के नौकर हीरा को लेकर उसके चरित्र पर संदेह किया जाता है। सास और पति उसके गर्भस्थ शिशु को हीरा का ही अंश मानते हैं। सास और पति की इच्छा पूर्ण करने से पहले वह सास से कहती है- "अइय्या, ऐसा पत्थर मत बनो, अइय्या.. इसका मुँह देखने के लिए जाने तुमने कितनी मनौतियाँ मानी... जाने कितना जोग-जाप कराया... अब क्या हो गया तुम्हें अइय्या।"[95] x±ú¸ ¡ 3ö ß बड़की बहू को अपने शिशू को गिराना ही पडा। ग्रामीण परिवेश में नारी के चरित्र को संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। ऐसी असहाय अवस्था में ही उसे अपना जीवन व्यतीत करना पडता है।

४.२ डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में चित्रित आर्थिक समस्याओं का विवेचन

प्रस्तावना :

हर मानव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ पर ही निर्भर रहना पड़ता है। धन के बिना समाज में जीवन जीना कठिन है। हर मानव धन प्राप्ति के लिए सदा से संघर्षशील रहा है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर रहने के लिए मानव नौकरी करता है उद्योग-धंदा, व्यवसाय, कृषि कार्य आदि को वह अपना आधार बनाता है। अपने परिवार के भरण-पोषण का भार उठाने के लिए मानव को हमेशा धन की आवश्यकता होती है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न व्यक्ति ही समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। कई परिवार ऐसे भी हैं जहाँ अर्थ-प्राप्ति का आधार केवल पुरुष मात्र है। अर्थ की समस्या से जूझने के लिए ही निम्न वर्ग के परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात मेहनत-मजदूरी करती हैं और अपने परिवार की आर्थिक सहायता करती हैं।

शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के परिणाम स्वरुप तथा आधुनिक युग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मध्यमवर्ग की महिलाएँ अर्थ प्राप्ति का माध्यम बन गयी हैं। आज स्त्रियाँ भी मेहनत, लगन, एवं श्रध्दा से पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं। इससे पारिवारिक समस्याओं का समाधान भी हो रहा है।

हर एक देश की समृध्दि एवं विकास, अर्थ पर आधारित होता है। हर एक देश यही प्रयास करता है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो, किसी अन्य देश पर निर्भर न हो। यही कारण है कि विश्व का हर एक देश आज विकास की ओर अग्रेसर है। निर्धन व्यक्ति को समाज में मान-सम्मान नहीं मिलता, जितना सम्पन्न व्यक्ति को मिलता है। आज के युग में अर्थ के बिना विश्व नहीं के बराबर है।

कार्ल मार्क्स द्वारा निर्धारित सिध्दांत समान कार्य के लिए समान अर्थ वितरण एक ऐसा सिध्दांत है, जिसने सारे विश्व में हलचल मचा दी थी। कार्ल-मार्क्स के अनुसार वर्ग विषमता एवं अमीर और गरीब के अन्तर को साम्यवादी समाज की स्थापना द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। पूँजीवाद ने ही समाज को वर्गो में विभाजित किया है। निम्न और उच्च वर्ग के बीच, विभाजक रेखा खींचने वाली पूँजीवादी व्यवस्था के कारण ही सर्वहारा अर्थात मजदूर वर्ग का शोषण होता आया है।

शिवप्रसाद सिंह मुख्यतः ग्राम गद्यकार के रुप में प्रसिध्द हैं। शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य उक्त समस्याओं से भरा पड़ा है। कृषक, जमींदार संघर्ष, वर्ग विषमता, आर्थिक शोषण आदि समस्याएँ आपके गद्य साहित्य में यथार्थ रुप में प्रकट हुई हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन की सम-सामयिक समस्याओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण आर्थिक जीवन को वाणी प्रदान की है।

कृषक का घुटता हुआ जीवन प्रस्तुत करने में सिंह को अपार सफलता प्राप्त हुई है। यह न केवल भारत के पूर्वांचल के ग्रामीण जीवन का विश्लेषण, विवेचन नहीं है, यह तो समस्त भारतीय ग्रामीण जीवन का विवेचन है।

४.२.१ आर्थिक दुर्व्यवस्था और उसके कारण :

निर्धनता समाज और राष्ट्र की उन्नती के मार्ग का अवरोधकतत्व है। आर्थिक विपन्नता समाज को जर्ज बना देती है। ऐसे समाज में मनुष्य की दशा शोचनीय बन जाती है। फलतः सामाजिक जीवन का ऱ्हास होने लगता है। शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में आर्थिक विपन्नता से त्रस्त अर्धनग्न, भूखे-प्यासे असंख्य नट-नारियों के करुणापूर्ण स्वर सुनाई पड़ते हैं। भारत के पूर्वांचल विशेष के ग्रामीण जन-जीवन में परिलक्षित आर्थिक अभावों का विस्तारपूाक वर्णन लेखक ने किया है।

"अलग-अलग वैतरणी" में धनेसरी चमारिन है। पति और पुत्र की मौत के पश्चात् वह अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए कभी किसी का अनाज पिसाने जाती है तो कभी तेल लेने तो कभी किसी गृहस्थ का सौदा-सामान या सब्जी-तरकारी लाने जाती है। किन्तु धीरे-धीरे ढलती उम्र के कारण वह कूटने-पीसने का काम छोड़ "सौरी कमाने" का काम करती है। सारे करैता गाँव में वह इस कार्य के लिए प्रसिध्द हो जाती है। अपने काम को वह पूरी श्रध्दा से करती है-"बच्चा जनने वाली माताओं ने एक से एक चमारिनें देखीं थीं। पर धनेसरी का कोई मुकाबिला नहीं, और सब तो नोब खाने जैसा कड़वा मुँह बनाकर सौरी में घुसती। बात-बात पर झिनझिनाती। कितना भी दो, मुँह सीधा ही न होता। एक धनेसरी है। दिन रात लगी रहेगी। कितनी सफाई से" गु-मुत" उठाते भी कभी मन मलिन नहीं होता। दुनिया भर की बातें करके सौरी में जच्चा हँसाती रहेगी। बच्चे को संभालना, जच्चा को तेल लगाना, मालिश करना तो कोई धनेसरी से सीखे।"[96] इसके अतिरिक्त वह ग्रामीण युवतियों के अवैध गर्भ-पात करती है। इस तरह उसे अपना पेट भरना पड़ता है। अन्ततः बूढी हो जाने पर धनेसरी एक जोड़ा सुअर और एक जोड़ा बकरी-बकरा खरीदकर उनके सहारे अपना जीवन बिताती है।

गाँवो मे इस प्रकार की आर्थिक कठिनाई अक्सर देखी जाती है। अकेली औरत का जीना गाँव में अत्यंत कठिन है। और जब धनेसरी के जानवरों को गाँव के जवान लड़के छोटे बच्चे मारने दौड़ते हैं तो धनेसरी उन्हें कोसती जाती है- "आरे आ मार के गट्टा तोड़ तो देखूँ-तीन-तीन छौने कुक्कुर से तुड़वाय के रख दिया। हम गरीब आदमी को हल बैल हैं का? हमारी तो सबू जमा-पूँजी उहैं हैं न? किसी के पेट पर लात मारोगे तो फल पाओगे। बड़े-बड़े शीतला के रंथ में दब गए। तू कौन खेत की मूली हो भाइया जी। ई घमण्ड छोड दो''[97] अर्थाभाव एवं अन्य व्यक्ति का सहारा न होने के कारण धनेसरी को अनाथ जीवन बिताना पड़ता है। अपना पेट भरने के लिए परिश्रम करना पड़ता है। ग्रामीण समाज में स्त्री की दशा शोचनीय बन गयी है। अनाथ स्त्री गाँव में जीवन-यापन के जो भी मार्ग अपनाती है, वह उसके लिए श्रेयस्कर होता है। धनेसरी का विश्वास है कि लगन और श्रध्दा से काम करनेवाली स्त्री किसी भी अवस्था में अपना गुजारा कर सकती है। धनसरी भारतीय नारी है।

''शैलूष'' उपन्यास में करीमन अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण जमींदार घुरफेंकन से पैसे लेकर बच्चे का गला घोंटकर पोखरे में फेक देने के एवज में दो हजार रुपये प्राप्त करता है। घुरफेंकन करीमन से कहता है- "करीमन भइया, यह लो दो हजार और मैं जुड़ावन के परिवार को आठ-आठ आँसू रोते देखना चाहता Æ..."[98] करीमन दो हजार रुपये लेकर बच्चे को मार देता है।

पुलिस जो जनता की रक्षक होती है वही जब भक्षक बन जाती है, तो न्याय किसे माँगे, थानेदार कोमल यादव को घुरफेंकन ने बीस हजार की रिश्वत देकर खरीदा है। कोमल यादव घुरफेंकन के इशारों पर नाचने लगता हैं। घुरफेकन कहता है- "तुम गावदी के गावदी रहे। क्या तुम्हे मुझ पर यकीन नहीं है? बीस हजार देकर कोमल यादव को तो इसीलिए खरीदा है हमने। वह तब तक साथ रहेगा, जब तक ऐश चलेगा, फिर हम जुड़ावन की छोकरियों को आग की लपटों में झोंक देंगे।"[99] घुरफेंकन पैसों के बल पर गलत कर्म करता है, जैसा कि जिसकी लाठी उसकी भैंस।

लल्लू काका अपनी गरीबी के कारण उनको दो समय का खाना भी मिलना दुर्लभ हो जाता है। ऐसा दरिद्र जीवन लल्लू काका बिता रहे थे। लल्लू जैसे आज हमारे देश में बहुत सारे लोग है जो खाने के लिए मोहताज है। नासिर बोला "लल्लू काका फकीर हैं, औघड हैं। वह क्या-क्या कहते हैं और क्या करते हैं, हम समझ नहीं पायेंगे। जो आदमी साल में छह-छह महीने एक कप चाय पीकर बिता देता है उसके हर लफ्ज में मासूमियत भरी रहती है।"[100] लल्लू काका जैसा जीवन [illegible]

[illegible]

देह में ताकत दी है, हाथ में कूवत है, तो जहाँ रहेंगे वहीं दो रोटी मिलेगी। जैसा □ÓÖÖ‘ Ö¸ü¸ ¾Ö³ÖÖÖ¸ü¸ ¾Öü×®ÖÆü ÃÖÖ..Æü×□ú-ÖÆüÖ"[101] इस प्रकार वह स्वयं को पंछी मानता है, पंछी के जीवन से जीवन की तुलना करता हुआ उसे ही श्रेष्ठ समझता है। किसी की गुलामी सुरुप भगत को पसन्द नहीं है। इस प्रकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मज़दुर को गाँव-गाँव घूमना पड़ता है। इस तरह के जीवन से ही वह सन्तुष्ट है। खलील अपने खेत देवी चौधरी के पास रेहत रखकर ऋण लेता है और पुत्री का विवाह करता है। परन्तु देवी चौधरी खलील के खेतों पर अपना अधिकार कर लेता है। बीस बीघे जमीन को अपने अधिकार में कर लेने के बाद देवी चौधरी खलील के खेतों का कर अदा करके "भूमि धरी परवा" अपने पास ही रख लेता है। लेखपाल को रिश्वत देकर वह ये सारे कार्य करता है। खलील को असलियत का पता चलने पर वह देवी चौधरी से दस्तावेज वापस माँगता है। किन्तु देवी चौधरी के धोखे को समझने में उसें बहुत समय लग जाता है। अन्ततः विवश होकर वह करैता छोड़ अपने ससुराल जमनिया चला जाता है। अपनी जमीन के जाने का दु:ख उसे सताता रहता है- "लड़के की मौत का गम इन्सान सह जाता है भइया, मगर जमीन छिन जाने का गम नहीं सहा जाता।"[102] इस प्रकार गाँवों में ऐसे धोखे अक्सर होते रहते हैं। विश्वासघात के द्वारा शोषक वर्ग मज़दूर किसान को आर्थिक कष्ट तो पहुँचाता ही है साथ ही समाज में अपनी ईमानदारी दिखाने का प्रयत्न करता है। धोखाधडी, बेईमानी, अन्याय का आश्रय ले ऐसे लोग निर्धन किसानों के खेतों पर अनधिकृत रुप से अपना अधिकार जताते हैं।

धरमूसिंह गरीब किसान है, अपने ऋण के चार सौ रुपये न चुका पाने के कारण उसके घर की कुर्की होती है। सारे गाँव से इस विषय की चर्चा होती है। नगाडे बजाकर कुर्की का ऐलान किया जाता है। "कुर्की के नगाड़े की आवाज ऐसी लगती है, जानो पहाड़ों से कोई पत्थर लुढ़क रहा है। उसकी चपेट में फलों-फूलों से भरे मासूम पौंधे पिसते चले जा रहे हैं। गलियों के कंकड छोकरों के पैरों से लड़खडा उठते हैं। गन्दी कमीजें फटे-पुराने जांघिये पहने जिनसे बडी मुश्किल से देह ढँक पाती, आपस में धींगा-मश्ती लड़ाई-झगड़ा करते छोकरे, नगाड़े की आवाज की साथ इस तरह बहे चले जाते,गोया कहीं खुशी की मिठाइयाँ बँटने वाली Æü..."[103] कुर्की के अभिप्राय को न समझने वाले नादान बच्चों की टोलियाँ नगाडे

बजाने वाले के पीछे-पीछे चलती जाती हैं। गाँव के अन्य लोग भी इन नगाड़े को सुनते हैं किन्तु न्याय के पक्ष में कई व्यक्ति नहीं बोल पाता- "जे बा से इस गाँव में अन्याय के खिलाफ बोलने वाला अब कोई नहीं रहा। ऐसे सब लोग बडी मरदई ×¤ü ÖŸÖê ÆÖü..²ÖÖ úß † ÃÖ›Ö´ÖÖ ê ¯Ö ü• ÖÖ›Ö²Ö¤ üÆÖê• ÖŸÖß Æü."[104] इस प्रकार गाँव में सब अपना स्वार्थ ही देखते हैं। गरीब किसान के पक्ष में बोलने वाला कोई नहीं होता, किसी में इतना साहस नहीं कि कुर्की का विरोध करे कुर्की वस्तुत: आर्थिक विषमता का प्रतीक है। यह किसान की विसंगति है। गाँव में आज भी जमींदार ही गाँव का सर्वेसर्वा है। अत: उसी की इच्छानुसार कुर्की होती है, गरीब किसान के खेत, घर, जानवर सब पर अधिकार कर लेता है।

ग्रामीण किसान किसी न किसी तरह कर्ज़ लेने के लिए विवश होता है। आर्थिक अभाव उसे जीवन भर विवश करते रहते हैं। मेहनत से जिस अनाज को वह पैदा करता है उस पर उसका ही अधिकार नहीं होता,उधार एवं ऋण चुकाने में उसका सारा अनाज समाप्त हो जाता है- "अभी चैती की फसल कटे मुश्किल से एक महीना ही बीता है, पर शायद ही दो चार जन ऐसे हों, जिनके चेहरे पर घर में और आनाज होने की खुशी दिखाई पडती है। बहुत-सा अनाज तो खलिहान से ही पिछले कर्ज की पटाई में महाजन की उधारी चुकाने में खतम हो गया £ÖÖ..."[105] कर्ज़ को चुकाने में कृषक को भूखा रहना पड़ता है, बीमारी की हालत में दवा-दारु के लिए भी उसके पास पैसा नहीं होता। आर्थिक विपन्नता कृषक को पूर्णत: कमजोर बना लेती है। अत: किसान अभावों में ही जन्म लेता है और अभावों में ही पलता है और अभावों मे ही मर भी जाता है, उसकी इच्छाएँ आकांक्षाएँ अधूरी Æßü ¸üÆü •ÖÖŸÖß Æü...

"मुर्गे ने बाँग दी" कहानी का लोहार मँगरु निर्धन है। उससे गाँव के लोग अपना हल आदि बनवाते हैं, किन्तु मज़दूरी देने में आनाकारी करते हैं। मँगरु अपनी मज़दूरी देने में आनाकारी करते हैं। मँगरु अपनी मज़दूरी पाने की इच्छा तो रखता है परन्तु स्पष्टत: किसी से नहीं कहता। मँगरु की पत्नी स्पष्ट भाषी है और वह पति को बार-बार मज़दूरी के विषय में बताती रहती है। मज़दूरी न पाने पर मंगरु चिड़चिडा हो जाता है। किसी से झगड़ आए अपने बेटे पर वह अपना सारा क्रोध निकालता है। भूख के कारण क्रुध्द मंगरु कुछ देर के लिए भूल जाता है कि

जिसे वह पीट रहा है वह उसी का अपना बेटा है। ऐसे संदर्भ में मंगरु की पत्नी का पति को डॉटना भी स्वाभाविक है- "शरम नहीं लगती तुम्हें, चीखते हुए बच्चे को अपनी ओर खींचकर मिस्तिराईन अपने पति की ओर क्रुध्द गाय सी देखते हुए बोली, "अपना करम नहीं देखते, चले हैं मारने।भूख लगी है तो भीख माँगो। लड़के को मारने से तो पेट नहीं भरेगा।"[106] "मंगरु का भूखे पेट अपना काम करते रहना, पत्नी की डॉट सुनना आदि को लेखक ने यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया है। मंगरु का अपने बेटे से यह कहना कि- "हरामी बार-बार मना किया घर में बैठो, गरीब के लड़को के लिए खेल नहीं है। पर जैसे सुनता ही नहीं।"[107] स्वाभाविक है। गरिब व्यक्ति भूख में और भी क्रोधित हो उठता है। छोटी-छोटी बात पर खीज उठता है। मंगरू और उसकी पत्नी का चिड़चिड़ापन वस्तुतः उनकी निर्धनता एवं भूखमारी की विवशता को अभिव्यक्त करते हैं। आर्थिक दुरवस्था आज भी ग्रामीण मजदूर के जीवन को पूर्णतः विध्वंस कर रही है।

निर्धन कृषक कई बार खेतों को बेचकर शादी-ब्याह करते हैं। इसके सिवाय उनको दूसरा मार्ग ही नहीं सूझता। "कर्ज" कहानी में जगपती अपने हिस्से के खेत बेचकर अपने छोटे भाई का विवाह करता है। इस कार्य से वह संतुष्ट है, उसका विश्वास है कि- "जन रहेंगे तो ज़मीन भी होगी। पुरखों का नाम लेवा और पानी देवा न रहेगा तो धन-दौलत लेकर क्या चाटेंगे। बेस-बरखा के लिए तो जाने क्या-क्या करते हैं लोग। सच कहो अम्मा,दूसरों के घर शादी के बधावे बजने पर तुम्हारी आँखो में आँसु नही आ जाते थे? क्या तुमने हर व्रत-त्यौहार पर बहू के लिए देवी-देवता के चरणो में माथा नहीं पटका है, बहुवाली माँओं को देखकर क्या तुम ऑखें नहीं चुराती रही हो, मंगल-उछाह के समय क्या बिन ब्याहे बेटों की माँ होकर दूसरों के घर जाने पर तुम अपने को हेठ नहीं मानती थीं... फिर-फिर आज जब मैंने यह सब कुछ जुटा दिया तो... तो तुम खुश क्यों नहीं हो अम्मा?"[107] ‡ÃÖ प्रकार हठ करके वह आपनी माँ की इच्छा को पूर्ण करने मे सफल होता है। जगपती के विवाह की उम्र निकल जाती है, अतः वह अपने भाई का विवाह अपने हिस्से के खेत बेचकर करता है। इतना बड़ा त्याग कर उसे सुख का ही अनुभव ÆÖŸÖÖ Æ…

"पापजीवी" कहानी में बदलू ठेकेदार के यहाँ काम करके अपना गुजर करता

है। आर्थिक दु¸¾ÖÃ£Öö के कारण वह अपनी ²ÖßÖमार बेटी को डॉक्टर के पास ले जा नही पाता। ठेकेदार से पैसे माँगने जाता है, तब कहता है- "ठेकेदार साहब।" बदलू दोनों हाथ जोडकर सामने झुक गया, "मेरी लडकी बहुत बीमार है, मरी जात है हमें ¤ÖÃÖö रुपिया दे दो, मरकर मेहनत करके हम आपका सब चुका देंगे।[108] फिर भी ठेकेदार पैसे नही देते इस तरह गरीबो का आर्थिक शोषण किया जाता है।

"घाटियाँ गूँजती हैं" इस नाटक में आदिवासी टूराँ जो शीकू का एकलौता बेटा था। टूराँ की माँ बचपन में ही मर चुकी थी। माँ-बाप का स्नेह शीकू ने ही दिया था। शीकू कहता है- "हम दोनों बाप-बेटे सरकार चायबगानमें नौकर थे। कितनी भरी-पूरी थी वह जिन्दगी! छुट्टियोंपर हम घर आते। उसी साल हमने बोमादि लामें सरकार, अपने कबीलेकी सबसे सुन्दर लडकी से टूराँकी शादी की। क्यूला को आप देखते है सरकार? बेचारी इसके गममें ऐसी हो गयी ह! नहीं यूक्ला भी थी सरकार, जिसे देखनेको चायबागानके बडे-बडे अफसर तरस जाते थे। हाँ मगर शीकूका यह छुरा किसीको क्यूलाकी ओर कभी बदनीयत ताकने कब देता था हुजूर? क्यूला राणीकी तरह पली है बाबू रानीकी तरह! सब कुछ था अपने पास गरीब परवर। तभी हमारा परिचय एक अंगरेज बाबूसे हो गया। वह कलकत्तेके एक बंकमे उँचे ओहदेपर जाने उँचे ओहदे पर जाने लगे। टूराँ जिद कर गया बाबू। साहबने उसे उँची नौकरी का भरोसा दिया था। खूब भरा था उसका दिमाग। सो हम बाप-बेटे दोनों कलकत्ते चले आये। वहीसे सरकार हमारी तबाहीकी कहानी ¿Öºþ ÆÖŸÖß Æî..."[109]

टूराँ आर्थिक विपन्नता से तंग आकर ज्यादा पैसे कमाने के चक्कर में अंग्रेजों के जाल में फस जाता है जो उसे मृत्यू ही बाहर निकालती है। टूराँ अपने देश के साथ गद्यारी करता है। अर्थ लालच के कारण टूराँ देश के प्रति गद्दारी का कदम ˆšÖŸÖÖ Æî...

४.२.२ जमींदार वर्ग :

जमींदार और कृषक का संबंध आरंभ से ही तनाव-पूर्ण रहा है। जमींदार अपनी शोषण-वृत्ति के कारण हमेशा ही कृषक मज़दूर को सताता है। इसका प्रधान कारण कृषक मज़दूर की आर्थिक दुरवस्था ही है। आर्थिक दृष्टि से अभाव पूर्ण

जीवन व्यतीत करने वाला कृषक-मज़दूर अपने खेतों को जमींदार के यहाँ रेहन रखता आया है, कर्ज की अवधि पूर्ण हो जाने पर भी कृषक अपना कर्ज अदा नहीं कर पाता। इस प्रकार उसके खेतों पर जमींदार का अधिकार स्थापित हो जाता है, चाहे वे खेत फसल से लहलहातें हों या परती धरती ही क्यों न हो। कृषक को जमींदार की बेगारी करनी पड़ती है, इसके लिए उसका तन-मन तत्पर नहीं होता, किन्तु उसे अनचाहे ही ये सारे कार्य करने पड़ते हैं।

"अलग-अलग वैतरणी" में जमींदार बुझारथ सिंह के शोषण को विस्तार-पूर्वक प्रस्तुत कर लेखक ने जमींदारों की शोषण वृत्ति का उल्लेख किया है। दुक्खन चमार जाति का है, बुझारथ सिंह के यहाँ काम करता है। एक दिन घोड़े के लिए चने भिगोना वह भूल जाता है, अतः बुझारथ उसे लकड़ी से पीट-पीट कर अपना गुस्सा निकालता है। उसे पूर्णतः अधमरा बना देता है। ईमानदारी से दुक्खन अपने मालिक की सेवा करता है। परन्तु छोटी सी गलती की उसे बहुत बड़ी सज़ा भुगतनी पड़ती है। दुक्खन का घायल मन आत्मग्लानि से भर उठता है- "दुक्खन चारपाई पर चित्त लेटा धन की बल्लियों को देख रहा था। उसकी मटमैली छोटी-छोटी आँखे आँसुओं से तर थीं। चार पुश्त इन लोगों की सेवा टहल में गल गया। काम के पीछे दुक्खन ने कभी दिन को दिन और रात को रात न जाना। गर्मी, बरसात और जाड़े में सारी मशक्कतें सह-सहकर इनका काम करते रहे। और इन्होंने इस काम की यह बख्शीश दी है। जब से बड़ी मालकिन मरी है, एक दिन भी छावनीं में बुलाकर खायक नहीं दिया। समहुत पर भी खाली दो अँजुरी अनाज ¤êú ü ™ÿüüÖ ¤ëÖ Æü."[110] इस प्रकार जमींदार के शोषण से दुक्खन जैसे नौकर अपना सब कुछ लुटा कर भी खामोश रह जाते हैं। उन्हें न्याय नहीं मिलता। अन्ततः चमारों द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार दुक्खन को बुझारथ के पिता जयपाल के गाँव आने के बाद उसके सामने हाज़िर किया जाता है। सारी बातों की जानकारी प्राप्त होने पर जयपाल दुक्खन को मीरपुर जाकर वहाँ की हवेली का काम सँभालने को कहता है परन्तु पुत्र के अन्याय के विरुध्द एक शब्द भी नहीं कह पाता। इस घटना को भूल जाने को कह वह दुक्खन को दस-दस रुपयें के दो नोट देता है। "जैपाल सिंह के मरते ही बुझारथ ने दुक्खन को मीरपुर से भी निकाल बाहर किया। दुक्खन अपनी दो लडकियों, लडके और पत्नी को लेकर कहाँ गया

यह किसी को मालूम नहीं।"[111] "औरत" उपन्यास में सोनवाँ गाँव के जमींदार सोबरन राय की कामवासना का शिकार बनती है। उसके मुँह में कपड़ा ठूँस जमींदार अपने आदमियों की सहायता से सोनवाँ के शरीर पर अपना अधिकार तो स्थापित कर लेता है, किन्तु मन पर अधिकार नहीं कर पाता। अनिच्छा से ही सोनवाँ को अवैध गर्भ ढोना पड़ता है, अपने प्रेमी शिवेन्द्र की उसे प्रतीक्षा रहती है, शिवेन्द्र की उपस्थिती में ही वह आत्म-हत्या कर लेती है। वह शिबू की प्रतीक्षा इसीलिए करती है, क्योंकि उसे विश्वास है कि शिबु आएगा तो सारी परिस्थिती जान लेगा और सोबरन राय से बदला लेना आसान हो जाएगा। वह सबके सामने स्वीकार करती है- "मेरा सारा शरीर शिबू से मिलने के लिए तड़पता था, मेरा शरीर झुलसता रहता था, मेरी चोली के बन्द टूट जाते थे, मेरी साँसो में तपती लू की सायं-सायं करती हवाएँ चलती रहती थीं। शिबू मेरे लिए संजीवनी की तरह थे। वे आते तो मैं जीते जी मुर्दा बनने के लिए विवश नहीं होती।"[112]

भारतीय ग्रामीण स्त्रियाँ जमींदार के उक्त शोषण का शिकार हैं और जमींदार के बन्धन से स्वयं को मुक्त करवाने के प्रयत्न में कितनी ही युवतियाँ, स्त्रियाँ, मौत के मुँह में चली जाती हैं। जमींदार को उसकी सीमाओं में रहने के लिए बाध्य करने वाला कोई कानून या नियम नहीं है इसी कारण उसका व्यवहार अक्सर सीमा का उल्लंघन है।

"शैलूष" उपन्यास में भी जमींदार घुरफेंकन तिवारी के शोषण का विस्तृत वर्णन हुआ है। उसको बार-बार तिवारी वंश का कलंक कहा गया है। घुरफेंकन नटों की ज़मीन पर कब्जा कर लेता है, जिसके लिए उसे पुलिस वालों को रिश्वत देनी पड़ती है। घुरफेंकन के शोषण से सारे नट कबीले त्रस्त हैं। विरोध करने के लिए तत्पर सावित्री ही एक ऐसी व्यक्ति है जो जमींदार के विरुध्द आवाज़ उठाती है। नटों को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने का सन्देश देती है। "हरिहर अपने लड़के हिरामन की शादी के लिए सरकार द्वारा प्राप्त भुमिधरी के कागज को रुपये लेकर घूरफेंकन के हाथ बेच देता है।"[113] इस प्रकार धीरे-धीरे प्रत्येक नट से उसकी ज़मीन खरीदकर जमींदार सारी परती पर अपना अधिकार करने का प्रयत्न करता है। इसीलिए वह नट-कबीलों में आग लगाने का कार्य अपने आदमियों को सौंपता है परन्तु कबीले वालों की सुझ-बूझ से सभी ¤ÃŸÖÖ¾Ö•Ö ²Ö“Ö •ÖÖŸÖ Æî…

झोपड़ियों ÃÖ ÃÖ²Ö लोग अपनी पेटियों को सुरक्षित स्थान पर ले जाते हैं। जिनमें जमींन के दस्तावेज रखे थे- "अजान से लाभ यह हुआ कि नट अपनी भूमिधरी के ÃÖ™ü×±úê™ü úÖê²ÖÖÖú¸ü »Öê† ÖµÖê."[114]

जमींदार गाँव की धरती पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता है। कुर्की में भी जमींदार का ही हाथ होता है। कर्ज अदायगी न होने पर गाँव में अक्सर कृषक के खेत-मकान नीलाम हो जाते हैं उसे गाँव में बदनाम किया जाता है। घुरे चमार के घर पर घुरफेंकन अधिकार कर लेता है। कुर्की के बहाने वह उस गरीब चमार को घर से बेदखल कर देता हैं- "यानि दिखाने के लिए घुरफेंकन तटस्थ रहे और उन्होंने प्यादे को फर्जी बना दिया। बोली जग्गी नट नहीं, पर्दे के पीछे छिपें घुरफेंकन की थी। यानि सौ रुपयें में घूरे काका के घर और जमीन पर घुरफेंकन का कब्जा हो गया। बहरहाल घुरफेंकन ने घुरे के खानदान को बेदखल कर दिया और पुरे घर की छाजन उतरवा ली। पाँच सौ या एक हजार के करीब नटियां-पटली रही होंगी। बीस-पच्चीस कोरई बॉस। यह सब हुआ था।"[115] •Ö´Öà¤üÖ¸ü की अर्थ लोलुपता निर्धन व्यक्ति का जीना दूभर कर देती है। किसी न किसी तरह कृषक-मज़दूरों की धरती पर अधिकार कर जमींदार गाँवों में अपनी सम्पत्ती को बढ़ाता जाता है। निम्न वर्ग जमींदार के शोषण से त्रस्त है, विरोध करने का साहस उसमें नहीं है। शोषण सहते-सहते उसे इस वातावरण में जीने की आदत-सी हो गयी है। अत: चाहकर भी वह इन परिस्थितियों से छुटकारा नहीं पा सकता। इस समस्या से न केवल कृषक अकेला ही जुड़ा रहा अंपितु कृषक का सारा परिवार पत्नी-बच्चे,बूढ़े माता-पिता सभी इस संघर्ष से जूझते रहे हैं। भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था जमींदार को तो सर्वेसर्वा बना देती है परंतु कृषक-वर्ग की समस्या का समाधान नहीं हो पाता।

"उपधाइन मैया" कहानी में उपधाइन के ससुर उपाध्याय को दी हुई जमीन गाँव का जमींदार वापस ले लेता है। जमींदार की लड़की के अवैध गर्भ को बनारस जाकर पाक-साफ करवानें में उपाध्याय ने सहयोग दिया था। जिस कारण जमींदार बदनामी से बच पाया था। परन्तु उपाध्याय की मृत्यु के पश्चात उसकी बात बहु को सूचित किए बिना ही जमींदार उस खेत पर अपना अधिकार कर लेता है। उपधाइन को देखते ही जोखन पांडे कहता है- "हूँह, पता नहीं पापी कब मरेगा?

पांडेय ने हाथ पर सुरती ठोंकते हुए कहा, "सारा गाँव इसी के पाप से तबाह हो रहा है।" पति की मृत्यु के बाद स्त्री की तरफ ग्रामीण परिवेश कुदृष्टि से देखता Æü"[116] पुरुष के इस प्रकार के दान के हिस्से को छीना जाय तो भी वह मेहनत-मज़दूरी करके जीवन बिता सकता है, परन्तु स्त्री के प्रति जमींदार का यह व्यवहार न्याय-संगत नहीं है। उपधाइन मैया पर राय साहब दया तो नहीं दिखाते किन्तु उसके वैधव्य का सहारा खेतों को भी उससे छीन लेते हैं। राय साहब का यह कार्य सर्वथा निंदनीय है। राय साहब का चरित्र दुष्ट जमींदारों के वर्ग चरित्र को ही बेनकाब करता है।

"आर पार की माला" कहानी में गाँव का जमींदार नटों के सरदार जुम्मन और उसके पुत्र रज्जब पर चोरी का आरोप लगाकर जेल भेज देता है और रज्जब की मंगेतर नीरु को अपनी काम-वासना का शिकार बनाता है। अपनी दो-दो पत्नियों के जीवित रहने के बावजुद भी जमींदार नीरु से अवैध संबंध रखता है, उसे गर्भवती बनाता है। नीरु ठाकुर के बारे में कहती है- "नहीं मैं भी वही रहती हूँ झोपडी में तो कभी-कभी आती हूँ। जानते हो ठाकुर की दो औरते हैं। मगर उनसे मन नही भरता"[117] नीरु के पिता को रुपये के बल पर अपने वश में कर लेता है। और अपनी काम-वासना को तृप्त करने के लिए गाँव में जमींदार ऐसी कई विवश लड़कियों से अवैध संबंध रखते हैं। प्राय: ये लड़कियाँ निम्न जाति की होती हैं, जो अपनी इज्जत आबरु के भय से सच को नहीं उगलतीं तथा इस अत्याचार का विरोध नहीं कर पातीं।

"पापजीवी" कहानी में बब्बर का पुत्र बदलू भी इसी तरह अपनी मज़दूरी न मिलने पर ठेकेदार से पिटता है। मज़दूरी वह बेटी की बीमार अवस्था में माँगता है, ठेकेदार को मज़दूरी देने में आगे-पीछे होते देख वह उसका हाथ पकड़ लेता है। इसी कारण वह चोर कहलाया जाता है। "ठेकेदार बाध्यले "इसका बाप भी ऐसा ही घाध था, ये साले पुस्तैनी बदमाश है। लाख करो, ये अपना पाप का पेशा कभी नहीं छोड़ सकते।"[118] वह चोरी भी नहीं करता तब भी लोग उसे चोर कहते हैं। हर कोई उस पर लात-घूँसे मारता है। चोर के पुत्र को समाज चोर ही मानता है। उसकी सादगी पर कोई विश्वास नहीं करते। बदलू के पिता बब्बर ने चोरी को अपनी वृत्ति ही बनाया था किन्तु बदलू के चोरी न करने पर भी उसे लोग चोर का

पुत्र ही कहते है। इस अपमान से पीड़ित बदलु को क्रोध तो आता है किन्तु उसकी असमर्थता उसका मार्ग रोक देती और वह सबकी मार सहता वहीं पड़ा रहता है। असहाय मज़दूर का चरित्र-चित्रण कर लेखक ने ग्रामीण समाज में ठेकेदार-मज़दूर और ठाकुर के संबंधों पर विशेष प्रकाश डाला है।

"उपहार" कहानी में गाँव के जमींदार "ठाकुर" और उसके चरवाहे "बच्चन" के तनावपुर्ण संबंधों पर लेखक ने प्रकाश डाला है। बच्चन बचपण से ही ठाकुर के यहाँ काम करता है। उसकी माँ जब जिन्दा थी तब से वह उस घर में काम करता है। ठाकुर की भैंसों को वह दिनभर खेतों, सिवान, झाडियों में चराकर घर वापस लाता था। गुलाबी से बच्चन को प्रेम करते देख ठाकुर बच्चन पर चोरी का आरोप लगाकर उसे खूब पीटता है और घर से बाहर निकाल देता है। गुलाबी ठाकुर के यहाँ काम करती है और ठाकुर यह नहीं चाहता कि जवान गुलाबी से बच्चन प्रेम करे। बच्चन को घर से निकाल ठाकुर स्वयं गुलाबी पर अपना अधिकार जताना चाहता है। गुलाबी कहती है" यह है तुम्हारी साडी, यह उपहार अपनी घरवाली को दे देना। उसने गुस्से से बण्डल ठाकुर के मुँह पर फेंक दिया,"कसाई कहीं □ưÖ.."[119] परन्तु गुलाबी के विरोध से ठाकुर सन्न रह जाता है।

इस प्रकार किसानों एवं मजदूरों के प्रति जमीन का शोषण अत्यन्त प्राचीन है। शोषित मज़दूर जमींदार का विरोध नहीं कर पाता। पत्नी या प्रेमिका का सहारा मिलने पर उसमें थोड़ी हिम्मत तो आती है परन्तु फिर भी वह प्रत्यक्ष विरोध तो दिखा नहीं सकता। जमींदार की काम लोलुपता उसे मज़दूरो के प्रति अत्याचार करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

"बेहया" कहानी की सुभागी वैश्या जीवन त्याग कर इज्जत से जीना चाहती है। किन्तु गाँव का ठाकुर उसे ऐसा जीने नहीं देता। वह अपनी काम-वासना की तृप्ती के लिए सुभागी की लड़की तारा का भी शीलभंग करता है। सुभागी पहले उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। उस अपमान का बदला लेने के लिए ठाकुर उसकी पुत्री तारा पर बलात्कार करता है। अपनी अनुपस्थिती में तारा के साथ घटी घटना को जान सुभागी सन्न रह जाती है। पुत्री के प्रति हुए अत्याचार के कारण वह रोती है। बिलखती है- "ठाकुर ने यह किस बात का बदला लिया है?... क्या किया हम माँ-बेटी ने?... हमने उससे रोटी नहीं माँगी। कपड़ा नही माँगा, हम

उसके रास्ते में खड़े नहीं हुए थे... हमें लोग इन्सान बनकर जीने भी नहीं देते। हम कमजोंर हैं, दीन हैं, अपाहिजों से भी बदत्तर हैं...।"[120] सुभागी का बिलखना, पुत्री के लिए तडपना आदि को लेखकने यथार्थ रुप प्रदान किया है। गाँवों में हमेशा ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। गाँव की किसी भी कन्या का बलात्कार अथवा अपमान ठाकुर अथवा जमींदार के लिए आम बात है। उनकी दृष्टि में निम्न वर्ग की स्त्रियों का कोई मूल्य-महत्त्व नहीं है। वे उन्हें अपनी निजी सम्पत्ती समझते हैं और जब चाहे तब उनका उपभोग करते हैं। गाँवो में कोई उनके इस अत्याचार का विरोध नहीं कर पाता।

"माटी की औलाद" कहानी में टिमल कुम्हार अपने गाँव के जमींदार रामसुभग तिवारी के आर्थिक शोषण का शिकार बनता है। तिवारी की समृध्दी से सारा गाँव परिचित है- "महाराज यानी रामसुभग तिवारी इस गाँव के जमींदार हैं। हैं नहीं, थे क्योंकि कागज में लिखा है कि जमींदारी टूट गयी है, पर है ही कहना ज्यादा ठीक है, क्योंकि उनका चार सौ बीघे पक्के का सीर अब भी होता है। चरकी पर कुल बीस बैल बँधे हैं। गायें, भैसें तो अगनित, उन्हें बाँधे कौन, रस्सी कहाँ मिलती हैं, इसलिए अलानिया घूमा करती हैं।"[121] इस प्रकार इतने समृध्द व्यक्ति भी गाँव में मज़दूरों को मज़दूरी देते समय पूरी कंजूसी का परिचय देते हैं। वह टीमल को मजदूरी का हिसाब बताते हुए अपने लगान के रुपये भी काट लेता है- "आठ नादों के आठ रुपये, दो हजार खपरेलों के दस गगरी और कलशों के तीन सब इक्कीस हुए न। इससे तुम्हारा बकाया लगान पन्द्रह रुपये कट गए, बचे छह। हिसाब समझे न?"[122] इस प्रकार मज़दूरी से लगान के रुपये काटकर देना उसे हिसाब को समझाना आदि प्रसंग यथार्थ रुप में व्यक्त हुए हैं। टीमल का अपने पुत्र सरजु को जमींदार के पैर छूने को कहना- "पैर लाग पैर लाग।"[123] कितना स्वाभाविक है। अर्थात आज भी मज़दूर,जमींदार को ही अपना मालिक, भगवान सब कुछ मानता है। इसी तरह उसने सारा जीवन गुज़ारा है क्योंकि वह नई पीढ़ी का युवक है। वह जमींदार के शोषण से परिचित है। इसलिए वह झुकना नहीं चाहता। नई पीढ़ी में जमींदार वर्ग के प्रति आक्रोश है जो अपने स्वाभाविक रुप में उभर कर आया है। आज की नई पीढ़ी जमींदार की गुलामी करना नहीं चाहती है, उसके शोषण का विरोध कर वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखना चाहती है।

"सँपेरा" कहानी का जमींदार अपनी हवस पूरी करने के लिए अपने आदमियों से बशीर नट की पत्नी कम्मो को उठवा लेता है। फिर भी अपनी हवस पूरी कर नही पाता- "जमींदार को यह स्वप्न नें भी खयाल न आया होगा कि पापजीवी नटों की लड़की, अवैध हमल गिराने के लिए छिपे-लूके अफीम का रोजगार करने वाली युवती, तथा औरतों के सामने दिल खोलकर भद्दे मजाक करने वाली स्त्री को भी अपनी अस्मत की परवाह होगी, किन्तु कम्मो ने जब आँचल की खूँट में बँधी अफीम खाकर अपनी मौत को हँसते-हँसते भेट लिया तो जमींदार की बुध्दी, भ्रष्ट तारे की तरह डगमगाने लगी और उसने किसी तरह साहस करके उस लाश को नदी में फिकवाने का इन्तजाम किया।"[124]

जमींदार की काम-वृत्ति के कारण वस्तुत: कम्मो को अपने प्राण त्यागने पड़े। गरीब होने पर भी कम्मो को अपनी इज्जत प्रिय है, अत: उसकी आत्महत्या करना उसकी दृष्टि में उचित ही है। वह नहीं चाहती है कि वह जमींदार के हाथों बरबाद हो जाये। जमींदार का यह व्यवहार निम्न जाति के शोषण का प्रतीक है। अपनी अनधिकार चेष्टाओं द्वारा जमींदार-वर्ग स्त्रियों की इज्जत-आबरु से अपनी काम-वासना को तृप्त करना चाहता है। जमींदार स्वयं को गाँव का प्रधान समझता है। वह जो चाहता है उसे हासिल करना ही उसका उद्देश्य है। चाहे वह उचित हो या अनुचित।

४.२.३ सरकारी अफसर :

सरकारी अफसर गाँवों में अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए उलट-फेर करते हैं। इससे उन्हें अपना लाभ तो होता ही है किन्तु जनता की अज्ञानता के कारण कुछ लाभ कमा कर ही सन्तुष्ट रहते हैं। "अलग-अलग वैतरणी" में खलील को अपनी जमीन देवी चौधरी के पास रेहन रखकर बेटी की शादी करनी पड़ती है। देवी चौधरी धोखे से खलील की सारी जमीन पर अपना अधिकार कर लेता है। देवी चौधरी अपनी ही जाती के नए लेखपाल रामकरण को रिश्वत देकर बीस बीधा जमीन पर अपने कब्जे को दिखाता है। रामकरण खलील मियाँ से कहता है कि "अब वह कुछ कर नहीं सकता, उसका तो हाथ कट चुका है। जो लिखा गया उसे बदलना उसके वश के बाहर है।"[125] नए लेखपाल से खलील जब मिलता है तब

उसे इस घपले का पता चलता है। इस प्रकार सरकारी बाशिन्दे अपने स्वार्थ के लिए कुछ रुपये ले गलत बयान लिखकर निर्धन कृषकों को जमीन से बेदखल कर ¤ÿÖ Æú...

"उस दिन तारीख थी" कहानी में देवी सिंह की खड़ी खेती का विनाश कर ठाकुर देवनाथ उस ज़मीन पर अपना अधिकार जताता है। ऐसी दशा में मुकदमा कचहरी के अलावा देवी सिंह के पास कोई रास्ता नही रह जाता। कचहरी बनारस में है अतः उसे रेल का सफर कर बनारस पहुँचना पड़ता है जहाँ बहुत देर की प्रतीक्षा के बाद उसका नाम पुकारा जाता है। किन्तु मुख्तार की अनुपस्थिति में उसकी तारीख हल जाती है। मुख्तार बाद में लौटता है किन्तू उसे मुख्तार की फीस, टाइप वाले को आठ आने देने पड़ते हैं। अन्त में गाँव जाने के लिए उसके पास रेल का टिकट खरीदने के लिए भी रुपया नहीं बचता। मुख्तार का यह कहना कि "कुछ बिगड़े तो मेरा दोष मत दीजिएगा। आखिर उसका भी तो कुछ होता Æîü"।[126] मुख्तार अर्थ-लोलुपता का प्रतीक है। गाँव वालों की अज्ञानता, अशिक्षा का लाभ उठाकर मुख्तार लोगो से अपना उल्लु सीधा करते हैं। लेखक ने शहरी वातावरण में व्याप्त भ्रष्टाचार का संकेत इस घटना के द्वारा किया है। गाँव के ऐसे कितने लोग मुकदमें लड़ने के लिए कोर्ट-कचहरी जाते हैं जहाँ उन्हें अपना सब कुछ लुटा देना पड़ता है। तब भी मुख्तार, पेशकार आदि सरकारी अमलों को गरीब ग्रामीण खुश नहीं कर पाते।

लेखक ने एक ओर सरकारी अफसरों की अर्थ-प्रियता को व्यक्त किया है तो दूसरी ओर कुछ अधिकारियों की सज्जनता एवं काम के प्रति निष्ठा को भी व्यक्त किया है। "शैलूष" उपन्यास में नटों के प्रति अधिकारी सारस्वत के मन में सम्मान जागता है। सावित्री को जिलाधीश की पत्नी नयी साड़ी पहनने को देती है। नटों की समस्या पर गंभीर चिंतन कर सारस्वत उच्च अधिकारियों से विचार-विमर्श करता है। कबीले वालों की झोपड़ियों में आग लगाने वाले घुरफेंकन को पकड़ने में पुलिस की सहायता करता है। झोपडियों के जल जाने पर नटों को आर्थिक सहायता देने हेतु सरकार को पत्र लिखता है। नटों की सुरक्षा हेतु ट्रक में आवश्यक वस्तुएँ रेवतीपुर को भेजता है। "जिल्हा अधिकारी गुप्ता जी का फोन आ चुका है दो बार। ट्रक में छोलदारियाँ, गेहूँ आटा, चीनी, डब्बे के दूध, दवाइयाँ सब

कुछ दोपहर तक रेवतीपुर में पहुँच जाना चाहिए। यह तुम्हारे कमिशनर साहब का हुक्म है। तुम क्या मेरी जीप पर बैठकर रेवतीपुर चलोगे।"[127]

इतना बड़ा अफसर होकर भी सावित्री का सारस्वत वस्तुतः आदर्श पात्र के रुप में पाठकों के सम्मुख आता है। कहीं-कहीं उसके कार्य पाठकों को अविश्वसनीय से लगते हैं। सावित्री भी उसे अपना बेटा मानती है, किन्तु पद और ओहदे का ध्यान रख वह उसे हुजुर बेटा कहती है। पूरे उपन्यास में सारस्वत का चरित्र पाठक को प्रभावित करता है, पाठक सोचने पर विवश हो जाता है कि क्या उच्च सरकारी अफसर इतने उदार भी होते हैं।

लेखक ने सारस्वत के चरित्र की सृष्टि कुछ सपनों को साकार करने हेतू की है। उक्त पात्र के माध्यम से लेखक यह कहना चाहते हैं कि आज के सरकारी तन्त्र में ऐसे अफसरों की नितान्त आवश्यकता है, जिनसे साधारण जन कोन्याय मिले, लोक अपने-अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकें। इस सन्दर्भ में डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी का निम्न कथन दर्शनीय है- "लल्लू नट को अनुदान देकर सब्बो को माँ बनाकर, जो उदारता उन्होंने दिखाई है और उसका जो गहरा असर पड़ा है, वही उन्हें इस भ्रष्ट व्यवस्था में संतोष व शक्ति देता है। आज इन सबके अभाव में यह आदर्श अवश्य लगता है, पर है यह नितांत संभावित अतः एक रचनात्मक यथार्थ।"[128] ऐसे अफसर यदि सरकार की सेवा में आएँ तो न केवल सरकारी भ्रष्टाचार समाप्त होगा अपितु साधारण मनुष्य सरकारी अफसरों पर विश्वास भी करने लगेंगे। ऐसे ही मनुष्य जन साधारण की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ सकते हैं। जनता को न्याय दिलाने में संघर्ष कर सकते हैं।

"शैलूष" उपन्यास में ही घूसखोर सरकारी डॉक्टरों का भी उल्लेख हुआ है। आजकल भ्रष्टाचार शहरो में हर क्षेत्र में परिव्याप्त है ननकु को गोली लगने पर सावित्री उसे सरकारी अस्पताल ले जाती है, जहाँ डॉ. गुप्ता की गालियाँ उसे सुननी पड़ती हैं। डॉ. गुप्ता घूसखोर हैं, उसके व्यवहार से सब्बो चकित रह जाती है और सोचती है कि स्वतंत्रता के चालीस वर्षो बाद भी देश की आर्थिक स्थिति निर्धनता का मजाक उड़ा रही है- "सब्बो इस तरह से खड़ी थी जैसे द्रोपदी खड़ी रही होगी, कौरव सभा में। क्या सज्जनता की भाषा धोखे में बदल गयी है? क्या अप्रिय को प्रिय बनाकर बोलना धोखा है? क्या पिछले चालीस साल के बाद भी

जान जोखिम वाले मरीज को दुरदुरा देना ही सरकारी संस्थाओं की उपलब्धि Æ?…"[129] ›Ö. गुप्ता घुरफेंकन के लडके अनुराग की जख्मी अवस्था देख उसे तुरन्त दवाखाने ´Ö ³ÖŸÖá कर उसके अÖपरेशन की व्यवस्था करता है, क्योंकि उसे घुरफेंकन ने रिश्वत दी थी- "ऑपरेशन थियेटर में जाने के पहले डॉक्टर गुप्ता अपने चैंबर में गए। उन्होंने सटाये हुए लिफाफे के सिरे को बड़े प्यार से खोला। उसे खोल कर देखा। पाँच-पाँच सौ के नोटों की गड्डी ने उन्हें इतना प्रसन्न कर दिया कि उन्होंने उस लिफाफे को अपने हैंडबैग में रखा और लगभग भागते हुए ऑपरेशन थियेटर की ओर चल पड़े।"[130] घुरफेंकन के बेटे को लिटाने के लिए पहले तो बेड ही नहीं मिलता किन्तु जैसे ही वह डॉ. गुप्ता को लिफाफा देता है, वैसे ही अपने आप कमरे की व्यवस्था हो जाती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् के सरकारी तंत्र की अर्थ-लोलुपता एवं भ्रष्टाचार की ओर लेखक ने पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। रिश्वत की समस्या आज की ज्वलन्त समस्या है जिसका समाधान आवश्यक है।

शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में सरकारी आधिकारियों का प्रवेश बहुत कम मात्रा में हुआ है परन्तु जो भी रुप उनका प्रकट हुआ है उसमें उनके स्वार्थी एवं संकीर्ण जीवन-दृष्टी की अभिव्यक्ति हुई है।

शिवप्रसाद सिंह ने ऐतिहासीक उपन्यास "दिल्ली दूर है" में रजिया सुल्ताना के सरकारी अधिकारी शब्बीर अहमद की क्रूरता का भी वर्णन किया है। शब्बीर हिन्दुओं से भूराजस्व एवं जजिया कर की वसुली करते समय कठोरता दिखाता है, उसका अमानवीय व्यवहार हिन्दु जनता के लिए असह्य हो जाता है। वह हिन्दुओं को मार-मार कर उनके घायल शरीर पर मिर्च की बुकनी छिड़कवाता है, नाखूनों में खप्पचियाँ धँसवाता है। जजिया कर वसुल करने और हिन्दुओं को मुसलमान धर्म में परिवर्तन करने के लिए विवश करने पर ही उस अधिकारी की नौकरी बनी रहती थी। यदि वह इस कार्य में नर्मी दिखाएगा तो उसे नौकरी से भी निकाल दिये जाने की संभावना थी- इस संदर्भ में शब्बीर कहता है कि "मैं एक सरकारी मुलाजिम होकर हुकुम बडूली तो कर नहीं सकता। इसलिए न चाहते हुए भी ऐसा करना पड़ता है क्योंकि अगर मैं अपने इलाके में हर महीने सौ-दो-सौ को भी मुसलमान नहीं बनाऊँगा तो नौकरी से निकाल दिया जाऊँगा। सब कुछ करना

पड़ता है हुजुर। मुझे भी तो रोटी नमक चाहिए।"[131]

शब्बीर के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय सरकारी कर्मचारी को बाध्य होकर ये सारे कार्य करने पड़ते थे। तुर्की शासन की कठोरता, उनकी आर्थिक स्थिती, साधारण हिन्दु जनता के प्रति उनकी कट्टरता ही उन्हें कई वर्षो तक भारत में शासन करने के लिए विवश करती रही।

"घाटियाँ गूँजती है" यह नाटक राष्ट्रीय एकात्मता से भरा हुआ है। सैनिक गुप्तचर-विभाग का अधिकारी कैप्टेन मोहन जो चीनी सैनिको की हर हलचल पर नजर रखता है और अपने देश को चीनी आक्रमणकारियों से बचाने का प्रयास करता है। कैप्टेन कहता है- "ये चीनी लोग जो न करे। एक सभ्य ऊँची जातिसे युध्द करना आसान होता है। उसमें हारनेपर भी विश्वास रहता है कि हमारे बन्दी सैनिकों और घायलोंके साथ मनुष्यताका बरताव होगा। लड़ाईमें छल-कपट तो और लोग भी करते हैं मगर ऐसा छल, ऐसा कपट शायद ही कहीं दिखे जिसमें मनुष्यताके सभी कायदे-कानून बूटोंसे रौंद दिये जाये। मनुष्यता का गला घोंट दिया जाये।"[132] हमारे ही लोग हमारे साथ गद्दारी कर रहे हैं, जिसके कारण हमारे खूफियाँ रास्ते चीनी आक्रमणकारियों को मालूम हो गये हैं।

4.2.4 ¯Ö×»ÖÃÖ :

शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में पुलिस के प्रवेश का भी उल्लेख हुआ है। जब कभी लेखक ने उक्त वर्णन के लिए कलम उठाई है उस समय पुलिस का यथार्थ रुप उभर कर आया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पुलिस विभाग भ्रष्टाचार की दल-दल में पूरी तरह डूब गया है। सामाजिक सुरक्षा के बदले आज पुलिस असुरक्षा का कारण बन गयी है।

"अलग-अलग वैतरणी" में ग्रामीण झगड़ों को निबटाने के लिए दो तीन-बार पुलिस के आगमन का उल्लेख हुआ है। देवा, करैता का बदमाश है। वह फूला को भगा लाता है और रातों रात उसकी हत्या कर देता है। हजार रुपया भी वह देने को तैयार होता है, पुलिस तक बात पहुँचती है। पुलिस-थानेदार, कॉंस्टेबल के स्वागत के लिए गाँव में जमींदार जयपाल सिंह उँचे पैमाने पर व्यवस्था करता है। तरकारियाँ-दही, मुरगे, घी, चीनी आदि का प्रबन्ध करवाता है। थानेदार के स्वागत

सत्कार में कोई कमी नहीं आती, "चौकीदार, कॉंस्टेबल, मुंशी, थानेदार सब प्रसन्न थे इस ज़माने में इस तरह का स्वागत कम ही होता है। ठाकुर जैपाल खानदानी आदमी थे। बडे-बडे अफसरों से उनकी दोस्ती थी। इस बात को अदना सिपाही से थानेदार तक सभी जानते हैं। चाहे थानेदार नया हो या पुराना, करैता गाँव में आने के पहले ठाकुर जैपाल के बारें मे सब कुछ जान लेना उनका फ़र्ज था।"[133] ‡ÃÖ प्रकार गाँव की बदनामी से बचने के लिए जयपाल सिंह पुलिस विभाग का पूरा ध्यान रखता है। गाँवो में इस प्रकार का वातावरण अक्सर देखा जाता है। रिश्वत देकर गाँव में मुखिया आदि पुलिस को अपने वश में कर लेते हैं और समस्या का समाधान ढूँढ निकाल लेते हैं। किंतु उक्त समस्या को निपटाने के लिए थानेदार तैयार नहीं होता, वह साफ कह देता है कि यह "मरडर" केस है। इस प्रकार ईमानदार थानेदार बहुत कम होते हैं जो अपनी नौकरी को ईमानदारी से निभाते Æ…

जग्गन मिसिर और जगेसर में जो झड़प होती है उस अवसर पर भी पुलिस थानेदार करैता आता है। जगेसर क्योंकि पुलिस का सिपाही है इसीलिए वह उसी के पक्ष में बात करता है। जग्गन मिसिर की गलती बताता हुआ उसे गिरफ्तार करने की धमकी देता है, परन्तु विपिन बीच में पड़कर थानेदार के दुर्व्यवहार की आलोचना करता है- "जमाना बदल गया, मगर आप लोगों का रवैया नहीं बदला। दस आदमी यहाँ बैठे हैं। आप पूछते कि क्या हुआ, क्या नहीं? बस आपने तो आते ही आते गवर्नमेन्ट का आदमी", "सरकार का आदमी" जपना शुरु कर दिया और तहकीकात पूरी हो गयी।"[134] इस प्रकार थानेदार की अनावश्यक बातों का विरोध कर विपिन सच्चाई का समर्थन करता है। इस तरह समझा-बुझाकर थानेदार भी अपनी ड्युटी पूरी करता है। गाँव मे जब यह बात फैल जाती है तब थानेदार को अपने कर्तव्य का अहसास दिलाने वाले विपिन की प्रशंसा लोग करने लगते हैं। "सारे गाँव में चर्चा थी। विपिन बाबू ने वो झाड़ा कि दरोगा सरवा दुम दबाकर भाग गया।"[135] इस प्रकार के किस्से गाँवों में कम ही होते हैं। समझदार और शिक्षित लोगों के अभाव में थानेदार या सिपाही अपनी मनमानी करते हैं। शिक्षित व्यक्ति के आगे उन्हें अपनी सीमा में रहकर कार्य करना पड़ता। अनावश्यक डींग मारना उस समय उसके लिए उचित नहीं लगता।

सरुप भगत की मौत के पश्चात करैता गाँव में पुलिस थानेदार पुनः आता है। वह करैता के स्कुल में अपना डेरा डालता है और हत्या की जाँच पड़ताल के लिए गाँव के ऐसे व्यक्तियों से मिलना चाहता है जो इस विषय के बारे में जानते हैं- "तो सरुप सीरी की लाठी की चोट से मरा? थानेदार ने किसुन की ओर देखकर दहाड़ ली- कहाँ है वह मादर...? भम्मन सिंह दो-एक काँस्टिबुल साथ लेकर जाओ और जो स्साले मिलें सबको हाँक लाओ ऐसा हरामी गाँव पूरे हल्के में खोजे नहीं मिलेगा।"[136] इस प्रकार थानेदार की भाषा में प्रयुक्त अश्लील शब्द एवं गाली-गलौच यथार्थ रुप में प्रकट हुए हैं।

"शैलूष" उपन्यास में पुलिस विभाग को लेखक ने पूर्णतः यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया है। खुल्लम-खुल्ला गलौच देते अनधिकृत चेष्टाएँ करते बताया गया है। कमलापुर का थानेदार प्रताप सिंह सारे इलाके में प्रसिध्द है। अपने आपको सरकारी नौकर कह कर ईमानदारी दिखाता है। वह हमेशा अपने और अपने वंश का बखान किया करता- "मैं गाहरवार हूँ, गाहरवार। जब पूर्वजों ने शनिगृह को रोक दिया था और ग्रहवर उपाधि पाई तो ग्रहवर वंश में जन्मा मैं राहु-केतु को न रोक पाऊँ तो यह गलमुच्छा काहे का?"[137] इस प्रकार वह अपने मूछों पर हाथ फेरता रहता है। अपने रौबदार व्यक्तित्व से यह थानेदार घुरफेंकन जैसे व्यक्तियों की रिश्वत को ठुकरा देता है। पूरे उपन्यास में प्रताप सिंह ईमानदार पुलिस थानेदार के रुप में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखता है। अन्ततः वह जिला अधिकारी सारस्वत द्वारा पाँच हजार रुपये इनाम के रुपमें पाता है और दशाश्वमेघ याने की अपराध-शाखा के इंस्पेक्टर का पद प्राप्त करता है। नट-कबीले वाले भी उसे भगवान बुध्द की मूर्ति उपहार के रुप में प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में एक अन्य पुलिस अधिकारी नासिर का उल्लेख हुआ है जो मुसलमान होते हुए भी ब्राम्हण सावित्री को पूर्ण सहयोग देता है। अपनी नौकरी वह पूरी ईमानदारी से करता है। धानापुर के थानेदार के रुप में वह विशेष प्रसिध्दी प्राप्त करता है- "अब यहाँ का थानेदार शेरों के जबड़े तोड़ने वाला हमारा नासिर ÃÖÖÆ²Ö Æ…"[138] वह नशीली चीजो का व्यापार करने वाले नौजादिक जैसे युवकों को पकड़ता है और अपने विभाग के लिए अनोखा कार्य कर दिखाता है। वह बशीर जैसे खतरनाक गुण्डे को मारता है। नासिर जैसे ईमानदार पुलिस इंस्पेक्टर की

आज ग्रामीणों को आवश्यकता है। जिससे वे अपनी सुरक्षा का अनुभव कर सकें तथा जमींदारी एवं अन्य शोषक वर्गो का अत्याचार समाप्त कर सकें।

सुरजभान और कुबेर सिंह जैसे भ्रष्ट पुलिस कर्मचारियों का भी चित्रण उपन्यास में दुआ है। परताप कहता है "मौंसी, हमें कुबेर से बहुत होशियार रहना है। मैने तो आज जाना कि इसने दस साल पहले एक मूर्दे को बडी-बडी नकली मुँछे लगाकर करीमन डाकू कहकर पेश किया और एक लाख का पुरस्कार पाया।"[139]

कुबेर सिंह चरित्रहीन भी है, वह रात में ताहिरा नट्टिन के साथ जेल में सो जाता है और रात एक बजे ताहिरा को जेल से रिहा कर देता है। वह बीस हजार रुपये घूरफेंकन से रिश्वत लेकर सलमान और करिमन नामक नटों को निरपराध घोषित करता है। "मौजादिक और सुकुल कहते हैं" क्यों दोस्त देख लिया न कि अटल आवाज क्या होती है! गलत तरीके से पायी हुई दौलत गयी। पुलिस के पहलवान ने तेरी छाती पर लात मारी, यानी इज्जत गयी, वरदी उतारकर हथकडियाँ पहने तुम जा रहे हो दोस्त।"[140] पुलिस विभाग की बुराइयों का उल्लेख कुबेर के चरित्र के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "पुलिस विभाग का सच्चा प्रतिनिधित्व "शैलूष" की एक यादगार उपलब्धि है। इसमें यथार्थ और आदर्श का सुर देखने को मिलता है- एकदम तुलासी के कलियुग वर्णन एवं रामराज जैसा। एक तरफ सुरजभान और कुबेर सिंह हैं, जो आज के भ्रष्ट महकमें का जीवंत चित्र उपस्थित करते हैं, तो दूसरी और नासिर है तथा परताप है इसमें अच्छे-बुरे की वर्गीकृत पध्दती तो है। पर व्यक्तियों को छोड़कर जो यह वर्ग विभाजन यहाँ किया गया है उसका यही उद्देश्य है कि लेखक का अभिप्रेत सामने आए। कुबेर-सुरजभान तथा नासिर-परताप को अलग-अलग देखने पर घटकबध्दता दिखती है, वही इस विभाग के साथ जोड़कर समग्रता में देखने पर जीवनपरक बन जाती है।[141] इस प्रकार लेखक ने पुलिस विभाग की सारी बुराइयों को उद्‌घाटित कर आज के तथाकथित शासन तंत्र का न केवल परदा-फाश किया है अपितु आज की पुलिस व्यवस्था को बेनकाब भी किया है।

"औरत" उपन्यास में पुलिस अधीक्षक प्रतिभा बंसल की ईमानदारी का

उल्लेख हुआ है। प्रतिभा स्त्री होने के नाते अपने विभाग में प्रसिध्द है साथ ही करमपुरा गाँव में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का वह विरोध करती है। सुमंगल का अपनी मंगेतर राजी के साथ फोटो खिंचवाना और राजी को बदनाम कर उससे विवाह करने से इन्कार कर देना आदि घटनाओं के कारण प्रतिभा सुमंगल और उसके पिता पुरुषोत्तम को हवालात में बन्द करने की धमकी देती है। अत: सुमंगल और पुरुषोत्तम अपनी गलती को मान लेते हैं और सुमंगल का विवाह राजी से हो जाता है। इस प्रकार प्रतिभा बंसल करमपुरा के कलुषित वातावरण को सुधारती है और स्त्री के अधिकार के लिए लड़ती है।

"औरत" उपन्यास में स्त्री अधिकारों की विस्तृत चर्चा है। प्रतिभा बंसल के कार्य की सराहना होती है। स्त्री होने के नाते स्त्री अधिकारों के लिए उसका लड़ना स्वाभाविक हो सकता है "किन्तु उसे समस्त करमपुरा के गाँव वाले पूर्वांचल की चण्डी कहने लगते हैं।"[142] यह कथन प्रतिभा बंसल को अनावश्यक महत्व देता है। इस प्रकार पुलिस के दोनों रुप शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में प्रकट हैं जो यथार्थ का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

"आदमखोर पैंथर" कहानी में जमींदार बाबू सिधारी सिंह हरिजन के शकूर मियाँ के इकलौते बेटे को बल्लम कोंचकर मार डालते हैं। शकूर मियाँ जमींदार के खिलाफ एफ. आई. आर. दर्ज करना चाहता है। थानेदार एफ. आई. आर. दर्ज कराने से साफ इन्कार करता है और शकुर मियाँ से कहता है- "सुनो हो शकूर मियाँ थानेदार बोले "आज खस्सी के साथ आदमी की भी करेजी भून के खाये वास्ते बंदोबस्त कर दिया है ठाकुर सिधारी ने।"[143] ठाकुर सिधारी सिंह रिश्वत देकर मामला रफादफा कर देता है।

४.२.५ दैवी और भौतिक आपदाएँ :

भारत ग्राम प्रधान देश है। ग्रामीण अपनी रोजी-रोटी के लिए कृषि पर निर्भर रहते हैं। कृषि ही कृषक के जीने का सहारा है। कृषि के बिना कृषक का जीवन अधुरा माना जाता है। शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में पूर्वांचल के कृषक की आजीविका का आधार कृषि ही है। किन्तु फिर भी कृषक की स्थिती निराशाजनक है। अपने परिश्रम से पैदा किए हुए अनाज का बहुत बड़ा हिस्सा कृषक को कर्ज़

चुकाने में ही लगा देना पड़ता है। अनाज के घर आने से पहले ही जमींदार या बड़े-बड़े किसानों के घर चला जाता है अतः यह कृषक जीवन की विडम्बना है। प्रकृति यदि कृषक का साथ दे तो उसे पर्याप्त अनाज पा जाने की आशा बँधी रहती है। समय पर वर्षा हो तो कृषक की आर्थिक समस्या दूर हो सकती है। वर्षा के अभाव में सूखे की हालत में कृषक को भूखे रह जाना पड़ता है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में उक्त परिस्थितियों का विस्तृत एवं सजीव वर्णन किया है। सूखा, अकाल, महामारी, तड़पते ग्रामीण, भूखे कृषक आदि का सजीव वर्णन करने में लेखक को अपार सफलता प्राप्त हुई है।

"अलग-अलग वैतरणी" में सूखे की स्थिती का विस्तृत वर्णन लेखक ने किया है। हरिया इस सूखे की हालत में परिवार का भरण-पोषण नहीं कर पाता और गाँव घर छोड़कर निकल जाता है- "अब चार साल से सूखा पड रहा है। फसलें खेत में खड़ी-खड़ी कोयला हो जाती हैं, तो रोज घर में कौवा शोर मचा रहता है। मैं क्या करूँ? गर्दन भी काट दूँ तो एक हाथ से अधिक खेत गीला नहीं हो पाएगा। जाओ साले चुल्हे भाड़ में। मैंने क्या जिन्दगी भर यह धूरा टालने का ठेका ले रखा है।" इस प्रकार परिवार का बोझ ढोना उसके लिए असह्य हो जाता है और वह घर-गाँव छोड़कर चला जाता है। गाँवों में कई ऐसे परिवार हैं जिन्हें वर्षा की प्रतिक्षा है। कृषकों की चिन्ता वस्तुतः अकाल में और भी अधिक हो जाती है। एक ओर उन्हें जमींदार या साहुकार का कर्ज चुकाना होता है तो दूसरी ओर अपने परिवार के लिए भी भोजन जुटाना पड़ता है। अकाल पीड़ित किसान आपस में मिल बैठकर उक्त समस्या के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हैं- "आषाढ़ लग रहा था। अभी तक पानी की एक बूँद भी धरती पर नहीं आयी। सुबह से शाम तक आसमान को निहार-निहार कर किसान निराश हो जाते। वे अपने दुःख-दर्द का हाल एक-दूसरे को सुनाने खलिहान में बरगद के पेड़ के नीचे इकट्ठा हो जाते।"[144] वर्षा की आशा लगाए किसान अपने खेतों पर निराश बैठा रह जाता है।

"मूर्गे ने बॉग दी" कहानी में वर्षा का अभाव कृषक को और भी निराश कर देता है- "यह तीसरा साल है जब कि किसानों के भाग्य ने धोखा दिया है। लगातार तीन साल से बारिश के क्रम में अन्तर आ गया है। कभी चैत के महीने में ही बादल घहरा उठते हैं, खलिहान में रखी फसल काली हो जाती है, कभी सावन बीते भी

फुहार नहीं पड़ती। तृप्त धरती पानी के लिए ललकती रहती है। इस साल चढ़ते आषाढ़ पानी बरसा तो सबने सुख की साँस ली। पर जो बरसा सो फिर तीन महीने तक आसमान में सफेद चित्ती भी न पड़ी। पास के तालाब से जो अपने धान को जिला सके, उनका तो कुछ हो जायेगा बाकी सबके धान खेत में खड़े झुलस गए।"[145] इस प्रकार सूखा कृषक को निराश कर जाता है। कृषि पर निर्भर कृषकों को उक्त स्थिति का सामना करना कठिन लगने लगता है। थके हारे किसान वर्षा की राह देखते रहते हैं। उन्हें विश्वास हो जाता है कि जब वर्षा होगी तभी सूखे खेतों की मिट्टी पुन: सुगन्धी बिखेर देगी, फिर से खेत लहलहा उठेंगे।

"उपधाइन मैया" कहानी में सुखे से पीड़ित ग्रामीण जन-जीवन का वर्णन हुआ है। सूखे से फैली महामारी का भी उल्लेख विस्तृत रुपमें यहाँ किया गया है- "बड़ी डरावनी रात थी। साँझ होते ही घरों के फाटक बन्द हो जाते। द्वार-द्वार पर मिट्टी की काली घारियों में लवंग-गुड़ की धार का पानी लटका दिया जाता। एक कोने में चमकती आग रख दी जाती, जिसमें गुग्गुल और धूप डाल दी जाती।"[146] इस तरह सूखे से बिलबिलाते कई लोग मौत की गोद में सो जाते हैं। उक्त समस्या के निवारण के लिए लोग कई प्रयत्न करते हैं, पूजा-पाठ, धूप-दीप आदि. के द्वार अपनी बिगड़ी बात बनाने का प्रयत्न करते हैं। महामारी जैसे रोगों से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील उपधाइन मैया जैसे कुछ लोग अपने कर्तव्य से जुड़े रहते हैं।

"इन्हें भी इन्तजार है" कहानी में सूखे की हालत से परेशान लोगों का वर्णन हुआ है जो अनाज के अभाव में तड़पते हैं, "शादी-ब्याह अगले सालों के लिए टाल दिये गये थे घरवाले भगवान से मनाते रहते कि कोई बूढ़ी-बूढ़ा इस साल न मरे। श्राध्द के लिए अनाज कहाँ से आएगा?।"[147] इस प्रकार सूखे की हालत में अनाज के अभाव में गरीब किसान शादी-ब्याह या श्राध्द जैसे आवश्यक कार्यो को भी करने में असमर्थ हो जाता है। इसीलिए वह भगवान से प्रार्थना करता है कि वर्षा हो, अनाज पैदा हो, शादी-ब्याह के लिए पर्याप्त धन प्राप्त हो। यह कृषक जीवन की विडम्बना है। निर्धन कृषकों को इन समस्याओं का निवारण नहीं सूझता।

"कर्मनाशा की हार" कहानी में अन्धविश्वास से घिरे ग्रामीण जीवन की झलक मिल जाती है, फुलमती विधवा है, ब्राम्हण युवक कुलदीप से वह प्रेम करती हैं और अवैध गर्भ धारण करती है। इसी बीच कर्मनाशा नदी में बाढ़ आती है। जो

व्यक्ति गाँव में पाप करता है, उसी की बलि से बाढ़ को शांत करने की प्रथा सारे गाँव में प्रसिध्द है- "एक बाढ़ बीती, बरस बीता। पिछले घाव सूखे न थे कि भादों के दिनों मे फिर पानी उमड़ा। बादलों की छाँव में सोया गाँव भोर की किरण देखकर उठा तो सारा सिवान रक्त की तरह लाल पानी से घिरा था। नईडीह के वातावरण में हौलदिली छा गई। गाँव ऊँचे अरार पर बसा था, जिस पर नदी की धारा अनवरत टक्कर मार रही थी, बड़े-बड़े पेड़ जड़-मूल के साथ उलटकर नदी के पेट में समा रहे थे, यह बाढ़ न थी प्रलय का संदेश था, नईडीह के लोग चूहेदानी में फँसे चूहों की तरह भय से दौड़-धूप कर रहे थे, सबके चहरों पर मुर्दनी छा गयी थी।"[148]

"बडी लकीरें" कहानी में सूखे खेत मिट्टी की दरारों को बढ़ाते जाते हैं। तपती गर्मी से जमीन फटती चली जाती है। जमीन को पार पाना कठिन हो जाता है- "सारा सीवान तप रहा है। उत्तरी नरवन की काली माटी दरारों से भर गयी है। पूरा सीवान लगता है कि चन्द्रतल के फोटो चित्रों से भरा है। लोग ठीक ही कहते हैं कि काली मिट्टी की दरार में पैर पड़ जाये तो साबुत नहीं रहता। चढ़ते आसाढ़ बादल गर्मे, मँडराये, बरसे। इसके बाद इन्द्रदेव ने सौगन्ध ले ली। उन्होंने दुबारा इस सीवान को दर्शन देने की कृपा नहीं की। खेतों में बोये धान सूख गये।"[149] धान सूखना आपके लिए एक मामूली खबर होगी क्योंकि आपने कभी ढेरों शिशुओं की लाशें नही देखी हैं। देखी भी हों तो उन्हें इकट्ठा सीवान में लिटा देने का दृश्य शायद ही कभी आपकी आँखों से गुजरा हो। धान के बीज सुगबुगार थे। बित्ते बराबर पौधे हवा की लहर पर पिछली तलैया की तरह लहरा उठते थे।"[150] गाँव में सूखे से मरने वाले जानवरों का भी उल्लेख लेखकने किया है।

"तकावी" कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने चन्द्रप्रभा नौगढ़ बाँध के टूटने, उससे होने वाली हानि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है- "अचानक एक रात को नौगढ़ का जलखाता ऐसा भरा कि पानी के दबाव से भाटे टूट गये। अथाह प्रलय का जल अधखोदी नहरों के रास्ते हजारों गाँवो को डुबाता हुआ बह चला। नरवन का परगना तो छोटी-मोटी झील ही लगता था। फसलें डूब गयीं। खेत वीरान हो गये। इस पानी की निकासी में महीनों लग गये। धान के पैधों की सड़ी हुई लाशों से हजारो तरह के कीडे-मकोडे पैदा हुए और इस असमय में बने जलखाते में दूर-

देशाऊर से हजारों-हजार पंछी उतर पड़े : जॉधिले लेदियाँ, चाहे कराकुल।"[151]

इस प्रकार बाँध का टूटना, नदी का पानी, गाँवों में भर जाना आदि भी कृषकों के दु:ख का कारण बन जाते हैं। इससे छुटकारा पाने में प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे समय में उन्हें और अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

४.२.६ बेकारी :

बेकारी की समस्या गाँवों में आज विकराल रुप धारण कर चुकी है। बेकार आदमी आज घर के लिए बोझ बन गया है। यदि वह पुरुष जवान हो तो समस्या और भी भयंकर रुप धारण कर सकती है। बेकार व्यक्ति को घर में सम्मान नहीं मिलता। घर-परिवार के लोग उसे हीन दृष्टि से देखते हैं। ऐसे में उसका घर में रहना दूभर हो जाता है।

"एक यात्रा सतह से नीचे" कहानी में अवधु को बेकार युवक के रुप में प्रस्तुत किया है। अवधू कितनी ही जगह जाता है जहाँ उसको इण्टरव्यू में असफलताही प्राप्त होती है। अवधू की अजिया इस झमेले को समझ नहीं पाती और यह कहती है- "कौन है सत्यानासी, जो मेरे हीरे-से लडके में अवगुन काढ़ सकता Æ 3Ö»ÖÖ..."[152] अजिया को इंटरव्यू का अर्थ वह समझा नहीं पाता, नौकरी पाने की असमर्थता को व्यक्त नहीं कर पाता। उसकी असफलता पर उसकी माँ बहुत निराश होती है, किन्तु अपनी निराशा को वह व्यक्त नहीं कर पाता। वह गाँव जाने पर हमेशा की तरह माँ के चरण छूता है, किन्तु माँ का मौन रहना वह सह नहीं पाता। वह माँ से बात नहीं करता। हमेशा की तरह माँ के बैठक में आने और बात करने की प्रतीक्षा में अवधू बैठा रह जाता है। माँ के प्रति डर उसके मन में है, इसीलिए वह माँ की उपस्थिती में पत्नी शोभा से बात नहीं कर पाता। शोभा के प्रति प्रेम भी व्यक्त नहीं कर पाता। कई बार वह पूरी हिम्मत से शोभा से बात करने, मिलने का प्रयत्न करता है। चुपके से उसका हाथ पकड़ना चाहता है। पानी पीने के बहाने उसे बुलाता है। क्योंकि शोभा ही एक ऐसा माध्यम है जिससे वह कुछ समय के लिए अपने दु:ख को भूल जाने का प्रयत्न कर सकता है- "शोभा ही संसार में एक ऐसी वस्तु है जो सब प्रकार से उसकी है, उसके अधिकार को कम-से-कम इस एक जगह न तो कोई चुनौती देने वाला है और न वहाँ अपनी योग्यता

के लिए उसे विशेषज्ञों से प्रमाण-पत्र ही चाहिए।"[153] पत्नी का प्रेम, आत्मीयता एवं सहयोग पाने के लिए उसकी तड़प यथार्थ रुप में प्रकट हुई है। परन्तु माँ के आते ही उसका दु:ख और बढ़ जाता है। माँ के परिवर्तन के प्रति वह अनभिज्ञ नहीं है। पहले माँ का जो प्रेम मिला उसी की स्मृति उसके मानस-पटल पर छायी रहती है। नौकरी न मिलने पर वह भी क्या कर सकता था। माँ का चेहरा उसे अजीब उदासी को प्रकट, करता-सा लगता "आजकल उस चेहरे में खिंचाव और उपेक्षा ही उसने देखी है, अब शायद घृणा और वितृष्णा भी उभर आये। वह क्या उसे सह पायेगा पर अपने शरीर को जला देने वाली इस उदासी और असहायता से उबरने के लिए वह क्या करे, वह कहाँ जाये, उसे सहानुभूति एक सामान्य संवेदना, कौन देगा, कौन दे सकेगा?"[154] रह-हर कर यही प्रश्न उसके मन को मथते रहते। इसी हीन भावना का शिकार बन वह अपने घर-गाँव छोड़कर पुन: नौकरी की तलाश में चल ¯Ö>ÿÖÖ Æî…

इस प्रकार लेखक ने एक ऐसे युवक का चित्रण किया है जो बेकार, बेरोजगार है। बेरोजगार युवक चाहकर भी कुछ कर नहीं पाता। ऐसे में घर का वातावरण उसे काट खाने को दौड़ता है। माँ की उपेक्षा वह सहन नहीं कर पाता। बेरोजगारी की यह समस्या गाँवों में सरेआम देखी जा सकती है।

"बड़ी लकीरें" कहानी में कहानी का "मैं" बेरोजगार है। एम.ए. पास करने के बाद भी उसे नौकरी नहीं मिलती किन्तु वह माँ की नहीं अलबत्ता पिता की गालियाँ सुनने के लिए विवश हो जाता है। पिता की गाली उसे इतनी कड़वी लगती है कि खाना खाते समय मिर्च का बहाना करके वह रो उठता है। पिता का यह विचार है कि खेत रेहन रखके उसने पुत्र को पढ़ाया है। क्योंकि वह बुढ़ापे का सहारा बनेगा, किन्तु बढ़ती बेरोज़गारी के कारण "मैं उस रात देर गये घर पहुँचा तो बाबू निकसार में खडे थे। ताहे कुत्ता काटा है का भाई कि तू झब्बूलाल के मुकबिले में खडा होने चले हो।"[155] पुत्र का बोझ भी उसे बुढ़ापे में उठाना पड़ता है। अत: घर में तनावपूर्ण वातावरण छा जाता है। अत: शिवप्रसाद सिंह ने बेकारी की समस्या को ग्रामीण संदर्भ में प्रस्तुत किया है। यह समस्या गाँवों में भी भयंकर रुप धारण कर लेती है। शहर के नवयुवकों को नौकरी के थोड़े बहुत अवसर प्राप्त होते हं परन्तु गाँवों में उक्त समस्या के प्रति नवयुवक निराश तो हैं ही, साथ ही

उनके प्रयत्न असफल हो रहे हैं। ग्रामीण परिवेश के प्रभाव के कारण बेरोजगार युवकों के माता-पिता की पीड़ा भी स्वाभाविक है। शिवप्रसाद सिंह ने उक्त समस्या को यर्थाथ रुप में प्रस्तुत एवं विश्लेषित किया है।

४.२.७ रोजी-रोटी की समस्या :

रोजी-रोटी की समस्या मनुष्य से संबंधित है। मनुष्य जन्म के साथ ही भूख से जुड़ा हुआ है। अपनी तथा अपने परिजनों की भूख मिटाने के लिए मनुष्य को नौकरी या उद्योग-धन्धों या व्यवसायों पर निर्भर रहना पड़ता है। अत: यह समस्या मनुष्य के संघर्ष एवं परिश्रम से बहुत हद तक दूर हो जाती है।

शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण-जीवन के चित्रण के अन्तर्गत नटों के जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। "शैलूष' में अपना पेट भरने के लिए नटों को बहुत संघर्ष करना पड़ता है। उनके व्यापार, धन्धे आदि का उल्लेख कर लेखक ने उनके जीवन की विस्तृत झाँकी प्रस्तुत की है- "सांडा, सांप, गोह की छालें केंचुले इकट्ठा करके इन्हें महँगे दामों पर बेच देते थे। इनसे कई तरह के पर्स, थैले आदि बनते है, जिनकी विदेशो में बड़ी खपत होती है। गिध्द भुचेंगा और दुसरे पंछी, जिनसे ये तेल बनाते थे। उसे सब्बो जानती है। गाढिया वालों के ठेहुने पर तेल रखा जाय तो तलुवे में बूँद झलकती थी।"[156]

इस प्रकार लेखक ने नटों के जीवन, उनकी रोजी-रोटी की समस्या का संकेत किया है। उनके द्वारा बेची हुई दवाइयाँ लोगों को लाभ पहुँचाने में सफल होती हैं, जिनसे मनुष्य की कई बीमारियाँ भी दूर हो जाती हैं। मेहनत करके इन्हें दवाइयाँ बनानी पड़ती हैं फिर उनको घर-घर जाकर इन्हें बेचना पड़ता है। तभी जाकर इन्हें जो थोड़ा बहुत आर्थिक लाभ होता, उसी से ये लोग अपना जीवन बिताते थे। इन लोगों को खानाबदोश जीवन बिताना पड़ता है। कुछ दिन इस गाँव तो कुछ दिन उस गाँव घूम फिर कर, ये लोग अपने परिवार की जिम्मेदारी उठाते थे। इन समस्याओं से मुक्त करवा कर उन्हें कृषि-द्वारा अपना जीवन निर्वाह करने का संदेश देते हुए सावित्री रेवतीपुर की परती धरती, जो सरकार द्वारा नटों को प्राप्त हुई थी, नटों को दिलवाती है। पूरे उपन्यास में जमीन को प्राप्त करने के लिए सावित्री के किए गए प्रयत्नों का उल्लेख हुआ है।

"आर-पार की माला" कहानी में मटरु नट को एक बीघा खेत का मालिक बताया गया है- "झोपड़ी से लगा एक बीधा खेत था, ठाकुर की मिहरबानी थी। मटरु ने उसमें जौ बोये थे। कहीं-कहीं मटर भी उग आयी थी।"[157] इस प्रकार नट खेतों में मेहनत करके अपनी रोजी-रोटी की समस्या को हल किया करते हैं। मटरु रस्सी बनाकर बाजार में बेचता है, जिससे उसकी आर्थिक समस्या एवं रोजी रोटी की समस्या कुछ हद तक हल हो जाती है।

'सँपेरा" कहानी में नटों के खानाबदोश जीवन का वर्णन हुआ है। यदि किसी गाँव का ठाकुर या जमींदार किसी नट कबीले को गाँव से निकाल बाहर करना भी चाहे तो आसानी से कर सकता है। बक्कस नट जहरीले साँपों को अपने कबीले में रखता है, जिससे ठाकुर उसे गाँव से निकाल देता है, देखते- ही देखते बक्कस का कबीला गांव से बाहर चल पडता है। "बक्कस ने धीरे-धीरे अपना सामान बटोरना शुरु किया, लड़का भी उठ बैठ़ा, उसने अपनी डोलचियों को बहंगी में फँसाया और भच्च से कन्धे पर रख लिया, देखते ही देखते गुदडे बोरे, पिंजडे, पास खड़ी भैंस पर लाद दिए गये, अधपके खाने की हाँडियाँ हाथ में लिए नट्टिनें पीछे-पीछे चल पड़ीं और पाँच मिनट भी नहीं लगे कि बक्कस का चलता-फिरता घर अँधेरे में आँखों से ओझल हो गया।"[158] इस प्रकार नटों को देखते ही देखते गाँव खाली करना पड़ता है। खानाबदोशी का जीवन उन्हें व्यतीत करना पड़ता है। अकसर इन नटों को नदी किनारे वाले गाँवो में रहना पड़ता है ताकि पानी की समस्या का सामना न करना पड़े। नट स्त्रियाँ भी रोजी-रोटी की समस्या को हल करने का माध्यम बन जाती हैं। कम्मो गाँव की स्त्रियाँ के हाथों पर गुदना गोदने का काम करती है। इस प्रकार स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी लोग रोज़ी-रोटी की कमाई से परिवार का भरण-पोषण कठिन हो जाता है। आज के महँगाई के दौर में नटों जैसे परिवारों के रोजी-रोटी की समस्या का हल सरल नहीं है, क्योंकि एक तो उन्हें गाँव-गाँव घूमना पड़ता, दूसरे पूरे परिवार को परिश्रम और लगन से काम करना पड़ता।

"अलग-अलग वैतरणी" में धनेसरी चमाइन गाँव की युवतियों के अवैध गर्भपात का कार्य करती है, किन्तु डॉक्टरी इलाज के कारण उसका धंधा चौपट हो जाता है। अत: आज की इलाज पध्दति को वह कोसने लगती है- "पता नहीं

अब का हो गया इन छोरियों को। शाइत लोग सोचते होंगे धनेसरी बुढ़िया हुई अब क्या सँभाल सकेगी ऐसे मामले। अरे जा रे जा। बुढ़िया हुई तो क्या। अभी चाहूँ तो इन हाथों से सात-सात महीने का माड़कर खलास कर दूँ। आ, कौन जाने भाई, दुलारी काकी का कहना ही सच हो। रोज-रोज तो नया "फिस्सन" चल रहा है। चली होगी कौनो "गोली-रब्बर" दुलारी काकी कहती थी कि गोली-रब्बर के कारण अब खतरा खतम हो गया। बिचारी कितनी उदास रही।"[159] गाँवो में निर्धन एवं निम्न वर्ग के परिवारों में रोजी-रोटी की समस्या भयंकर रुप धारण किए हुए है। धनेसरी की समस्या भयंकर रुप धारण किए हुए है। धनेसरी की समस्या स्वाभाविक है। धनेसरी जैसी अनेक स्त्रियाँ गाँव में दिखाई देती हैं, अपने रोजगार की चिन्ता लगी रहती है।

झिनकु जब जगजीत के खेतों में काम करना नहीं चाहता, जगजीत की बेगारी से वह जब इन्कार कर देता है, तब उसके सामने रोजी-रोटी की समस्या खड़ी हो जाती है। वह करैता छोड़कर बाहर जाने से घबरा जाता है, क्योंकि बाहर के किसी गाँव में उसने रोजी-रोटी कमाने के लिए कभी कदम नहीं रखा था- "अब लगता है करैता का दाना-पानी उठ गया।" झिनकु पट लेट कर भीगी हुई आँखों को आस्तीन से पोंछते हुए बुदबुदाया।" "जाने कहाँ-कहाँ की ठोकर खानी लिखी है। "बाहर जाने की आशंका उसे बुरी तरह दबोच रही थी। "न जान न पहचान, का करें। कहाँ जायँ।"[160] इस प्रकार गरीब किसान को अपनी परिवार के पालन-पोषण की चिन्ता खाए जाती है। किन्तु उसका आत्म-सम्मान किसी के आगे उसे झुकाने नहीं देता। गरीब का आत्म-सम्मान ही उसकी धन-दौलत है, जिसे वह जीवन भर सुरक्षित रखना चाहता है।

देवीचक के चमार भी खेतों की कटाई के समय करैता आते हैं, अपनी भूख मिटाने एवं धन कमाने के लिए कटनी का मौसम उनके लिए विशेष लाभदायक होता है। उन्हे इसी में वे सन्तुष्ट भी हैं। खेतों में गीत गाते हुए अपनी-अपनी टोली के साथ इन चमारों के झुण्ड कुछ समय के लिए अपने जीवन की विडम्बना को भूल जाते हैं- "इस साल फिर देवीचक के चमारों की गोल झिनकू डे खंडहर में उतरी है। झिनकू अपनी मडई में लेटा-लेटा सब सुन रहा है। उसके घर में कोई शोर नहीं। कोई भी छीना झपटी नहीं।"[161] इस प्रकार पूरी चमारों की बस्ती में इन

बाहर से आए हुए चमारों का स्वागत होता, वे सब हिल-मिलाकर परिश्रम करते। कुछ समय गुजार कर ये पुन: अपने गाँव लौट जाते। इस प्रकार ये लोग अपने परिवार की रोजी-रोटी की समस्या का परिष्कार करते हैं तथा आनंद-पूर्वक जीवन गुज़ारते हैं।

"इन्हें भी इन्तजार हैं।" में डोमन कबरी और उसका पति मँगरा दोनों मिलकर हरे बाँस की बेनियाँ बनाते हैं और उनको घर-घर देकर बदले में रोटियाँ या भात ले आते हैं। दोनो खूब मेहनत करते हैं और अपना पेट जैसे पालते हैं- "दिनभर दौड़-धूप के बाद भी उन्हें भर पेट खाना शायद ही मिलता और जितना मिलता उतना भी रोज कहाँ मिलता फिर भी दोनों अपनी उस जिन्दगी से खुश नजर आते।"[162] इस प्रकार के निर्धन बहुत कम होंगे जो अभावों में भी सुख-शान्ति से जीवन बिताते हों। रोजी-रोटी की समस्या भी उनके दु:खपूर्ण जीवन का एक अंश है किन्तु ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो दु:ख में भी शान्तिपूर्ण ढंग से अपनी समस्या का समाधान ढूँढ़ निकालते हैं।

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण दलितजनों की रोजी-रोटी की समस्या का सुन्दर वर्णन किया है। डोम-परिवार के अभावों एवं आर्थिक संकटों का विवरण भी लेखक ने सफलतापूर्वक ढंग से प्रस्तुत किया है। "माटी की औलाद" कहानी में लेखक ने टीमल कुम्हार के जीवन की विडम्बना को प्रस्तुत किया है। पिता पुत्र में हमेशा झड़प होती। दोनों एक दूसरे के कार्यो से सन्तुष्ट नहीं होते। पिता पुराने विचारों का है तो पूत्र नयी पीढी का है। पिता यही सोचता है- "माटी की औलाद" की बिसात ही क्या, आँच लगी जल गए, पानी पड़ा गल गए, हवा लगी तो दरारें पड़ गयीं, इसके लिए इतना दर्द क्या माटी की एक औलाद तो हम भी हैं, पर हम भी वैसे ही हों, तो रह क्या जाएगा?"[163] इस प्रकार रोजी-रोटी के लिए अपनी मिट्टी पर निर्भर रहने वाले व्यक्ति टीमल के दु:ख की उक्त अभिव्यक्ती यथार्थ पर आधारित है।

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में रोजी-रोटी की समस्या के चँगुल में फँसे निर्धन-मज़दूर के जीवन-चरित्र यथार्थ रुप में प्रस्तुत हुए हैं। उक्त वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेखक ने गाँवों का सुक्ष्म निरिक्षण किया है। लेखक की दृष्टि उक्त समस्या पर गयी और उन्होंने आज के संघर्षरत

मनुष्य की जीवन-झाँकी यथार्थ परक ढंग से प्रस्तुत की है। इस समस्या से उबरने का प्रयत्न वसतुतः आज का मनुष्य कर तो रहा है परन्तु उसे अपनी इच्छानुसार आय का माध्यम अप्राप्य है। इस अभावपूर्ण अवस्था में भी गाँव के कृषक-मज़दूर ÃÖÜÖÂ™ Æî…

४.२.८ जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् जमींदारों की स्थिती :

जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से जमींदारों के हृदय को ठेस पहुँची है। उनके सारे अधिकार छिन गए हैं। कृषको-मज़दूरों का शोषण वे सदियों से करते आ रहे थे। अत: उनके स्वभाव एवं व्यवहार में शीघ्र परिवर्तन आना असम्भव था। अपनी शासक-वृत्ति को वे सरलता से छोड़ नही पाते थे। जमींदारी-प्रथा उन्हें अपने शासन तन्त्र के अधिकार उपलब्ध करवाती थी। परन्तु अब वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग नही कर सकते थे। फिर भी आर्थिक शोषण, अर्थ लोलुपता, स्वार्थान्धता आदि उनके जन्मजात गुण बनकर रह गए थे। जमींदारी छीन ली जाने पर भी जमींदार अपने गुणों को छोड़ नहीं पाये। अत: कृषक मज़दूर की पुश्तैनी समस्या स्वातंत्रोत्तर काल में और भी उग्र रुप धारण करते हुए परिलक्षित होती है।

जमींदारी छूट जाने से जयपाल सिंह करैता गाँव में स्वयं को अपमानित समझने लगता है। गाँव का वातावरण बदल गया, ग्रामीण-कृषक मज़दूर सभी में जमींदार के प्रति वह पुराणी श्रध्दा नहीं है- "जमींदारी की पुश्तैना पुख्ता दीवालें एक हल्के धक्के से ही जमीन पर आ रही। देखते ही देखते करैता का पूरा माहौल बदल गया। आसामियों ने खानदानी लाज-शरम छोड़कर जमींदार की छावनी से अपना रिश्ता तोड लिया। अब कभी दशहरे के मौके पर आसामियों की भीड़ जुहार करने नहीं आतीं। न ही कभी छावनी के मुख्य द्वार पर बड़ा-सा परात नजाराने के रुपये से खनकता ही। अहीरों ने दही-दूध, कोइरियों ने साग-सब्जी, मल्लाहों ने मछलियाँ, जुलाहों ने मुरगी और गडेरियों ने सलामी में खस्सी देना एकदम बन्द कर दिया। इसीलिए इन त्यौहारों पर छावनी में कभी कोई खुशी-उत्सव मनाने की जरुरत भी न रही।"[164] इस प्रकार के परिवर्तन से जमींदार जयपाल सिंह को प्रजा का सम्मान नहीं मिलने लगा। जो कृषक-मज़दूर उसके आगे सदा सिर झुकाए खडे रहते थे वे ही आज सीना तान कर जमींदार से अपने अधिकार की माँग करने

लगे। इस प्रकार के विरोधी वातावरण में जमींदार स्वयं को निस्सहाय समझने लगे।

जग्गन मिसिर जमींदारी प्रथा के प्रचलन के समय भी अपने अधिकारों की माँग के लिए झगड़ता था और जमींदारी छूट जाने के बाद भी वह कृषकों की माँग के लिए झगड़ा करता है, वह कृषकों का सहयोगी है अत: जमींदार की गलतियों को भी बताया करता है- "मैं भरसक हार नहीं मानता। अपने हक के लिए अन्तिम दम तक लड़ता रहता हूँ। जमींदारी थी तब भी लड़ता था। अब भी लडता हूँ। पहले गाँव में जुलूम जमींदार के लोग करते थे। कारिदा, सीरवाह, पाटवारी, अमीन, कानूनगो सब की मिली भगत थी। उस वक्त जो कुछ मुजसे बना किया। जमींदारी टूट गयी। उस समय जिन पर जुलूम होता था, वे उससे बरी हो गये।"[165] इस प्रकार गाँव के जमींदारों के जुल्म के प्रति विरोधी भाव रखने वाले जग्गन मिसिर जैसे लोग समाज में कम ही परिलक्षित होते हैं। जमींदारी टूट जाने के बाद भी जमींदार जयपाल सिंह का गर्व, अहंकार चूर नहीं होता, उसकी ऐंठन फिर भी बनी रहती है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर काल में जमींदारी छिन जाना ग्रामीण समाज के संदर्भ मे सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। इस घटना ने जमींदारी प्रथा का विनाश कर जमींदार को नए मोड़ पर ला खड़ा किया इस संदर्भ मे डॉ. वंशीधर का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "आजादी की पहली सौगात हमें जमींदारी प्रथा के अंत के रुप में प्राप्त होती है। वक्त बदलते सन्दर्भो ने करैता के जमींदार घरानों को भी सिमटने-टूटने के लिए विवश कर दिया है। उपन्यास में निरुपित जयपाल सिंह, मेघन सिंह, सुरजू सिंह, बंसी सिंह, धरमू सिंह आदि के परिवारों से संबंधित उपकथाओं में इसी प्रक्रिया के स्वर सुनाई दे रहे हैं। इन कथाओं में उनके अहं को ठेस लगते देख मर्माहत हो उठा। जमींदार जयपाल सिंह को जमींदारी छिन जाने पर दुःख होता है। "जमींदारी टूट गयी। फिर भी किसी को विश्वास नहीं होता था कि मांसाहारी बाघ शाकाहारी हो गया। तभी जैपाल सिंह गाँव की बिगडती हुई रस्मोरवाज से खिन्न हो करैता छोडकर चले गये। उन्होंने कसम ले ली कि जीते-जी वे फिर यहाँ पाँव नहीं रखेगें।"[166]

जमींदार की टूटन यथार्थ रुप में जयपाल सिंह के चरित्र द्वारा स्पष्ट हुई है। जयपाल का चरित्र पाठकों को विशेष रुप से प्रभावित करता है। पाठक जयपाल

को लेखक ने जिस रुप में प्रस्तुत किया है वह वस्तुतः जमींदार-वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र के रुप में पाठक-वर्ग को आकर्षित करता है। बहुत देर तक पाठक उस चरित्र की विशेषताओं एवं न्युनताओं के विषय में सोचते रह जाते हैं। "शैलूष" उपन्यास में जमींदार घुरफेंकन तिवारी का नटो के द्वारा पूरा पतन हो जाता है। जमींदारी टूट जाती है, सरकार के द्वारा नटों को जमीन दी जाती है। फिर भी तिवारी कुछ कर नहीं पाता, फिर भी प्रयास करता है। सुरेन्द्र कहता है" चलिए फिर रेवतीपुर जब जमाना बदलने लगा, गाँवों में टेक्टर घूमने लगे तो तिवारी के कलेजे पर सांप लोटने लगे। उसी वक्त अपनी माँ के मना करने पर भी उन्होंने नटों और हरिजनों के हाथ से यह सौ एकड़ पर कब्जा करने का मंसूबा बांध लिया।"[167]

जमींदारी टूटने के बाद जमींदार के अधिकारों में कानूनी तौर पर अन्तर आया, परन्तु अपने अनुचित अधिकारों के आधार पर जमींदार उसी प्रकार कृषक मजदूर को सताते आ रहे हैं।

"पापजीवी" कहानी में बदलू जमींदारी के समाप्त हो जाने पर प्रसन्न होता है- "उसने सुना कि जमींदारी टूट गयी तो ऐसा खुश हुआ जैसे दुनिया भर की ज़मीन उसी के नाम लिख जायेगी। मारे खुशी के नींद हराम हो गयी, धान-पान, माछ-मछली की उम्मीद से वह जैसे उड़ा-उड़ा फिरने लगा।"[168] इस प्रकार मज़दूरी की खुशी का ठिकाना न रहा, परन्तु स्वातंत्र्योत्तरकालीन जमींदारी की प्रवृत्ति में विशेष परिवर्तन नहीं आया, वे उसी तरह कृषक-मजदूर को सताते रहे। मज़दूरी माँगने पर बदलू को ठेकेदार उसी तरह पीटता है, जैसे उसके पिता बब्बर को कभी जमींदार ने पीटा था। यह सत्य है कि जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् जमींदारों में हीन भावना ने घर कर लिया और वे अपने खोए हुए अधिकारों को पुनः प्राप्त करने में असमर्थ हो गए।

"माटी की औलाद" कहानी में भी जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से जमींदार रामसुभग तिवारी असंतुष्ट हैं। अतः अपने असंतोष को वे कृषक-मज़दूरों के प्रति दुर्व्यवहार से प्रकट करते हैं। मज़दूरों को उनकी मज़दूरी जल्दी देना नहीं चाहते।

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् जमींदारों की स्थिति का वर्णन अत्यंत विस्तार से हुआ है। आजादी से पहले

जमींदार वस्तुतः गाँव का मुखिया हुआ करता था, अतः सारे कार्य अपनी इच्छानुसार ही वह किया करता था। किसी की बात मानने के लिए वह विवश नहीं था। अतः जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से उसके निरंकुश शासन पर अंकुश लग गया। उसके अधिकारों पर रोक लगा दी गयी। जमींदार प्रायः उच्च घरानों के हुआ करते थे। राजपुत परिवारों से सम्बध्द जमींदार अपनी ठकुराई ही दिखाना चाहते थे, इनके व्यक्तित्व में रौब हुआ करता था, ये ठाठ-बाट से भरा जीवन व्यतीत करते थे। अपनी काम-प्रवृत्ति एवं अधिकार भावना के कारण जमींदारो को विशेष रुप से बदनाम होना पड़ा। अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिए वे प्रायः निम्न वर्ग की स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध रखते थे जिसमें गाँव के अन्य "छूटभइये" सहायता किया करते थे। इसके बदले उन्हें भी जमींदार से थोड़ा-बहुत धन मिल जाया करता था, कहीं-कहीं ठाकुर जमींदार को दो-दो पत्नियों के पति के रुप में भी महत्त्व प्राप्त हुआ है, इसके अतिरिक्त भी वे अन्य स्त्रियों से संबंध रखा करते थे। कृषकों-मजदूरों के खतों पर अपना अधिकार कर लेते थे, उन्हें बेदखल करके अपने कब्जे में सारे खेत ले लेते थे। कभी-कभी कुर्की के द्वारा भी कृषक के खेतों, घरों पर भी अपना अधिकार कर लेते थे।

जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् जमींदार के अधिकारों पर तो नियंत्रण स्थापित किया गया, किन्तु उनकी जन्मजात प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखना कठिन कार्य था। अतः अपनी इन प्रवृत्तियों का दुरुपयोग अभी भी जमींदार कर रहे हैं। उनमें हीन भावना का स्थान लेना भी स्वाभाविक है। उन्हें अपने जीवन में इस परिवर्तन की आशा नहीं थी। अतः कृषक एवं मजदूरों के प्रति उनका व्यवहार परिवर्तित नहीं हुआ। मेहनताना या मज़दुरी देते समय वे पूर्ण परम्परा का ही निर्वाह करते रहे। यह कहना गलत नहीं है कि जमींदार-वर्ग इस प्रथा के उन्मूलन से निराश हो गया। उसे अपने कार्यो में रुकावट का अहसास होने लगा। परन्तु भारतीय ग्रामीण जीवन में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से पर्याप्त सुधार आया। कृषक-मजदूर के प्रति असन्तुष्ट हैं। अपनी वंशानुगत परम्परा का निर्वाह वह करना चाहता है। परिवर्तित परिस्थिती का प्रभाव ग्रहण करने में आज का जमींदार स्वयं को असमर्थ पा रहा है। प्रगतिशील दृष्टिकोण एवं समझौते की भावना का अभाव आज भी जमींदारों के व्यवहार में देखा जा सकता है।

लोकतंत्र शासन प्रणाली के अन्तर्गत आज ग्राम सभा के चुनाव तो होते हैं, किन्तु ग्राम सभापति भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप से ग्राम के जमींदार के वर्चस्व से प्रभावित हैं। अनौपचारिक ढंग से जमींदार ही गाँव का मुखिया एवं प्रधान है। वही ग्रामसभा की पंचायत के निर्णयों को मानने के लिए ग्रामीण-कृषक-मजदूरों को मजबूर करता है। राजनीतिक कुचक्रों एवं अर्थ के आधार पर जमींदार आज भी अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को बनाए रखना चाहता है। जमींदार का यही रुप शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में चित्रित हुआ है। उक्त वर्णन में लेखक ने यथा-संभव यथार्थ का आधार लिया है। इसीलिए उनके वर्णन अधिक प्रभावकारी बन पड़े हैं।

४.२.९ नगरभिमुखता :

भारत ग्राम-प्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर है। कृषक को अन्न-वस्त्र के लिए अपनी कमाई पर्याप्त न होने के कारण उसे कभी-कभी निराश भी होना पड़ता है। अत: अपनी आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिए कृषक-मजदूर को नगर की ओर जाना उचित लगने लगा है। कहीं-कहीं गाँवों के पढ़े-लिखे लड़के भी-रोजी-रोटी की समस्या का हल ढूँढ़ न पाने पर नगर या कस्बे की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। यह नगरीय सम्पर्क गाँवो और नगर की दूरी कम करता जा रहा है।

शिवप्रसाद सिंह ने उक्त समस्या से प्रभावित कुछ युवकों के चरित्र अपने साहित्य में अंकित किए हैं। "अलग-अलग वैतरणी" में शिक्षित नवयुकों-विपिन और देवनाथ को ग्रामीण वातावरण से ऊब कर नगर और कस्बे जाकर अपनी इच्छानुसार अपना काम करना चाहता है। देवनाथ गाँव में रहकर अपनी डॉक्टरी करना चाहता है, परन्तु पिता की अर्थ-लोलुपता के कारण परेशान होकर वह कस्बे में चला जाता है, वहाँ रहकर वह अपनी डॉक्टरी करता है। देवनाथ पहले तो अपने आदर्शो के कारण गाँव में ही अपना पेशा चलाना चाहता है, अत: मरीजों का स्थायी इलाज करने के लिए वह बनारस से दवाइयाँ भी मंगवाता है, वह कार्य उसके पिता झब्बु को नहीं भाता, अत: वह पुत्र के कार्यो की आलोचना करता हैं। गाँवों में लोग इलाज के बदले दही-दूध आदि दिया करते हैं। अत: इस बात से अप्रसन्न झब्बुलाल पुत्र को कस्बे में भेजकर ही चैन पाता है। आरंभ में तो वह अन्य डॉक्टरों जैसा ही

पैसे देकर टिकट लेने की व्यवस्था करता है- "देख रहे हैं न। ई हैं टिक्कस। इन पर नम्बर छपा है। इससे मालूम होगा कि आप कौन नम्बर के रोगी हो। डागदर साहब अब बरामदा की कोठरी में बैठेंगे। उहाँ से आपके नम्बर की पुकार होगी, ŸÖÖ† ÕÖ• ŒÖ‡µÖ¸ÖÖ."[169] इस प्रकार की व्यवस्था सें गाँव वाले निराश होते हैं। अतः पैसे देकर इलाज कराने को कोई तैयार नहीं होता। इन्हीं परिस्थितियों से घबरा कर देवनाथ कस्बे में जाने को तैयार हो जाता है।

बनारस में इतिहास में एम.ए.की पढ़ाई करके विपिन करैता गाँव आता है, ग्राम-सुधार के उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह एक साल वहीं रहता है और इस साल भर के भीतर वह कभी पारिवारिक समस्या को सुलझाता है तो कभी गाँव की किसी समस्या का परिष्कार करता है। अन्ततः देवनाथ की भाँति विपिन भी निराश होकर करैता छोड़ देना चाहता है। अपने मित्र देवनाथ के सहयोग से वह बनारस के किसी कॉलेज में प्राध्यापक का पद प्राप्त कर लेता है, परन्तु करैता को छोड़ना उसे भी अच्छा नहीं लगता। जन्म भूमि के प्रति लगाव परिवार के प्रति मोह उसे कुछ समय के लिए बाँध-से लेते हैं। परन्तु अंततः गाँव छोड़ने का निर्णय वह ले ही लेता है- "यहाँ रह कर कूड़ा बनने से तो अच्छा है कहीं चला ही जाऊँ। मैं तो बड़ी उम्मीदें लेकर आया था। जन्मभूमि के प्रति अपने मन में कम मोह भी नहीं है। पर ऐसा गन्दा और वाहियात हो गया है यह गाँव, यह मैं नहीं जानता था। पहले मुझे विश्वास नहीं होता था, पर साल भर यहाँ रह कर मैंने यह जान लिया कि इस गाँव पर सचमुच ही कीनाराम का शाप है। इसे बरबाद होने से कोई रोक नही सकता।"[170] अपने तटस्थ विचारों के कारण विपिन गाँव से चल पड़ता है। गाँव में व्याप्त, अन्याय, अत्याचार, शोषण, कृषकों मज़दूरों के संघर्ष, दुःखपूर्ण जीवन से घबरा कर विपिन का करैता छोड़ना स्वाभाविक-सा लगने लगता है। विपिन गाँव के उक्त वातावरण के प्रति निराश हो जाता है। क्योंकि उसकी निराशा अर्थपूर्ण है, उसे अपने आदर्शों में सफलता नहीं मिल पाती है। अतः गाँव छोड़ने के अपने निर्णय को वह बदल नहीं पाता।

मास्टर शशिकान्त एक ऐसा व्यक्ति है जो करैता के शिक्षा के सुधार-कार्य हेतु आता है। शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त शोषण के कारण शशिकान्त को आदर्श अध्यापक के रुप में करैता की शिक्षा-व्यवस्था में सुधार लाने के लिए भेजा जाता है। करैता

शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ा गाँव है, जहाँ के विद्यालय की इमारत अत्यन्त ही पुरानी है, कक्षाओं की स्थिती गंभीर है, हेड मास्टर की स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ती विद्यालय में ही नहीं समस्त गाँव में विख्यात है। हेड मास्टर के कार्यो से शशिकान्त रुष्ट है। अनायास ही ग्राम सभापति गाँव की राजनीति में घसीटना चाहता है। बलपूर्वक हस्तक्षेप करने का आग्रह करता है। परन्तु शशिकान्त अपने आदर्शो के प्रति सजग है- "मैं यह मानता हूँ कि अत्याचार और अन्याय का विरोध होना चाहिए मगर विरोध कौन कर सकता है? वे जो इससे सीधे टकराते हैं। मैं एक बाहरी आदमी हूँ। आपने ठीक कहा कि हम बाहरी हैं। बाहरी आदमी के साथ ही साथ हमारी स्थिती और कर्तव्य भी हमें आप लोगों से अलग करता है। हम सबके साथ मिल-जुल कर ही रह सकते हैं। तभी हम अपना काम ठीक ढंग से कर पायेंगे। स्थानीय मामलों में उलझना हमारे लिए ठीक नहीं है। इसलिए मैं चाहकर भी इस मामले ´Öë¤ãü û-ÖÆü ¤ú üÃÖ¤üÝÖÖ.. ´ÖãÖê† ÕÖ ¤ÖÖÖ ¤úÖ• Ö ¤ÖÖ."[171] इस प्रकार अपनी तटस्थ नीति को वह व्यक्त करता है। अपने आदर्शो की सुरक्षा हेतु शशिकान्त को विवश होकर करैता छोड़ना पड़ता है। वह नहीं चाहता कि उसकी वजह से किसी को कष्ट पहुँचे। सुरजू सिंह की बात नहीं मानता, तब ऐसे में उसे रात के अँधेरे में आँखों में बालू डालकर उसका वेतन छीन कर उसे शारीरिक कष्ट पहुँचाया जाता है। शशिकान्त उक्त घटना से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता। अत: करैता छोड़कर चले जाने के लिए विवश हो जाता है।

वस्तुत: देवनाथ विपिन और शशिकान्त बुध्दिजीवी हैं। किसी अन्य के आदर्शो के प्रति झुकना नहीं चाहते। तीनों का ही चरित्र उपन्यास में विशेष महत्व रखता है। पाठक को तीनों ही पात्र प्रभावित करते हैं। तीनों को करैता के शोषण-मुक्त वातावरण से निकाल कर मानो लेखक ने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है। करैता का कलुषित परिवेश तीनों का मानसिकता की झकझोरता है। अत: तीनों को करैता में रहने की इच्छा नहीं होती। वे एक नवीन पध्दति का समर्थन तो करते हैं, परन्तु उसे नहीं पाते, क्योंकि उस जीवन पध्दति में उन्हें जिस संघर्ष की आवश्यकता है उसे वे अपने भीतर नहीं पाते अत: तीनों निराश ही रहते हैं। इस संदर्भ में रामकली सराफ का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "गाँव में सुधार की चाहत लेकर आए बुध्दिजीवी वर्ग के विपिन, देवनाथ, शशिकान्त जैसे लोगों को

विवश होकर जिस तरह गाँव छोड़ना पड़ता है, उसमें एक ओर रचनाकार का परिवर्तन की किसी सुसंगत दिशा के साथ न जुट पाना है तो वहीं उनकी तटस्थ निःसंग दृष्टि का होना एक अलगाव बोध का भी होना है। एक तरह का आत्म-परायापन उनके भीतर घर कर जाता है। "आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद जैसी आलोचनात्मक पुस्तक के रचयिता शिवप्रसाद जी अलगाव-बोध से धिरे-से लगते हैं। जैसे कि आज तमान बुध्दिजीवियों की नियति बन गयी है।"[172] इस प्रकार टूटन एवं कुंठा से युक्त ये पात्र नवीन की उद्भवना से ग्रसित हैं जो लेखक की अपनी सृष्टि है।

"अन्धकूप" कहानी का "मैं" कलकत्ता भाग जाता है। अपने गाँव देवपारा से निकलकर वह अपने बहनोई के पास आ जाता है। वह निराश है, माँ की गालियों से परेशान होकर वह घर से निकल जाता है बहन की चिट्ठी पाकर वह प्रसन्न होता है। नौकरी की खोज में उसका कलकत्ता जाना उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना कि छबिया से पीछा छुड़ाना चाहता है।"पर छबिया के चेहरे पर नयी रेखाएँ उभरने लगीं। वह किसी भी तरह अँधेरे की लीक के भीतर घिरे रहने को तैयार नहीं हुई। उसकी आँखों में एक ऐसी हरकत थी जो दिन की रोशनी में भी उबरकर सामने आ जाती है। वह अपने समवयस्कों के झुंड में चलती-चलती भी अनमनी हो जाती और उलटकर पीछे देखने लगती। मैं उसकी इस नयी हरकत से परेशान होने लगा और घबडाकर कलकत्ते भाग आया।"[173] "छबिया" से वह प्रेम करता है, उसके साथ संबंध स्थापित करता है, मित्र के पत्र द्वारा उसका समाचार पाकर वह प्रसन्न होता है, किन्तु छबिया का माँ बनना उसे चौंका देता है। अतः वह अपने आपको अपराधी समझता है। पूर्वांचल के ग्राम देवपारा से कलकत्ता समीप ही है। प्रेम की असफलता के कारण वह निकल पड़ता है। नौकरी करके कुछ कमाना भी वह चाहता है, छबिया के गाँव में न दिखाई देने की बात वह मित्र के पत्र के माध्यम से जानता है। असफल प्रेमी की व्यथा उसके चरित्र द्वारा हुई है। लेखक ने कथानायक की दुविधा को व्यक्त किया है। ग्रामीण वातावरण में घर के युवा व्यक्ति का बेकार बैठना अच्छा नहीं माना जाता, उस पर यदि वह पढ़-लिखा व्यक्ति हो तो समस्या और भी गंभीर हो जाती है। माता-पिता का कोसना, गालियाँ देना वातावरण को बोझिल बना देता है। लेखक ने उक्त परिस्थिति को वास्तविकता

प्रदान की है। रोजी-रोटी की तलाश में शहर जाने वाले ग्रामीण-युवक की दु:खपूर्ण कथा व्यक्त कर लेखक ने आज की समस्या को वाणी प्रदान की है।

कर्मनाशा की हार "कहानी का कुलदीप गरीब ब्राम्हण का भाई है। अपनी निर्धन अवस्था में मल्लाह की लड़की फुलमती से वह प्रेम करता है। फुलमती के गर्भ धारण करने का समाचार सुन वह गाँव से भाग जाता है। फुलमती को गॉव में ही रहना पड़ता है, अत:विधवा फुलमती का गर्भधारण करना गॉव वालों की चर्चा का विषय बन जाता है। "सारा गाँव फैसला करता है फुलमती और उसके बच्चे को कर्मनाश की बाढ़ में बलि देना चाहते हैं। सारे गाँव ने फैसला किया एक के पाप के लिए सारे गाँव को मौत के मुँह में नहीं झोक सकते। जिसने पाप किया है उसका दंड भी वही भोगे। पाँडे कहता है" तो सुनो कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुँहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बाँधों को ठीक करना होगा... कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहू.बच्चे को छोड़कर भाग सकता है, किन्तु मैं कायर नहीं हूँ मेरे जीते-जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता समझे![174] कुलदीप की अनुपस्थिति में उसके भाई को घर की बहु मान लेता है। अत: विधवा फुलमती को कुलदीप के घर में स्थान मिल जाता है। प्रेम मे असफल कुलदीप को लेखक ने निराश युवक के रुप ते चित्रित किया है।

४.३ डॉ. शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में चित्रित राजनीतिक समस्याओं का विवेचन

४.३.१ राजनीति तथा साहित्य :

साहित्य समाज से निश्चित ही प्रभावित होता है। इसीलिए ही उसे समाज का दर्पण कहा गया है। प्रत्येक युग के साहित्य में तद्‌युगीन रीति-नीति रहन-सहन, अचार-व्यवहार, खान-पान, परंपरा-उत्सव, पर्व-त्यौहार आदि का विस्तृत विश्लेषण होता है। साहित्यकार अपने समाज का विस्तृत ब्यौरा अपने साहित्य में प्रस्तुत कर, रचना की पृष्ठभूमि का भी संकेत करता है। प्रत्येक साहित्य में युग की वाणी स्पष्टता से परिलक्षित होती है, जिसके द्वारा उस समाज की धार्मिक स्थिति अर्थ-व्यवस्था, राजनीतिक दशा, सामाजिक संगठनों, ऐतिहासिक घटना-क्रमों आदि का विवेचन जाना जा सकता है। अत: साहित्य एक ऐसा आधार है जो अपने युगीन

वातावरण की सृष्टी कर अपने महत्त्व को व्यक्त करता है।

मानव-जीवन ही साहित्य का मूल रचना स्त्रोत है, इसी आधार पर साहित्यकार मनुष्य के सामाजिक जीवन के अतिरिक्त राजनीतिक पक्ष को भी उजागर करता है। आज अर्थ एवं राजनीति सामान्य जन-जीवन पर विशेष प्रभाव डाल रहे हैं परिणामस्वरुप साहित्य में मानव के आर्थिक राजनीतिक जीवन को विशेष महत्त्व ¯ÖÖ¯ŸÖ Æî†Ö Æî…

साहित्य में राजनीति का समावेश स्वाभाविक रुप से होता है। राजनीति से समाज प्रभावित होता है और समाज से साहित्य अत: राजनीति, समाज एवं साहित्य तीनों का आंतरिक सम्बन्ध है। जिस समाज का साहित्य प्रभावकारी होगा, निश्चित ही वह समाज भी अच्छा होगा और उस समाज की राजनीति भी अच्छी ही होगी। साहित्य और राजनीति का एक दूसरे से सम्बन्ध है। साहित्य समाज से ही कथावस्तु ग्रहण करता है। साहित्यकार का उद्देश्य केवल मानव की सामाजिक स्थिती को ही व्यक्त करना नहीं है। वह न केवल मनुष्य के सुख-दु:ख का आकलन करता है एवं निरंतर बदलती हुई बाहरी एवं भीतरी मन:स्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है।

हर दिन जीवन में मनुष्य अपनी वैयक्तिक समस्याओं के साथ-साथ निरंतर बदलती हुई राजनीतिक स्थितियों से भी प्रभावित है। अत: आज मानव इन राजनीतिक स्थितियों से प्रभाव ग्रहण कर उन स्थितियों के औचित्य पर विचार-विमर्श करने के लिए आतूर है। इन्हीं राजनीतिक गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों के पात्रों के संघर्षो के साथ जोड़ कर आज का साहित्यकार युगीन परिस्थितियों का यथार्थपरक वर्णन अपनी रचनाओं में कर रहा है। लेखक एक ओर तो अपने कर्तव्य के प्रति सजग है तो दूसरी ओर समाज की स्थिती को वह यथार्थपरक रुप, प्रदान कर रहा है। आज राजनीति साहित्य का एक अंग बन गयी है। राजनीति साहित्य का विशिष्ट विषय बन गयी है, यह कहना भी न्याय-संगत होगा। राजनीति को साहित्यकार अपने वर्ण्य-विषय का आधार बना रहा है। इस संदर्भ में डॉ. माहेश्वर का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "प्राय: दो दशक पहले राजनीति को गैर-साहित्यिक मुद्दा माना जाता था मगर आज स्थिति बदल गयी है और राजनीति और अर्थनीति úÖêÃÖÖ×ÆŸµÖ úÖ ë¦ü ßÖ ´Ö¬µÖ ´ÖÖ−Ö ×»ÖµÖÖ ÖµÖÖ Æîü."[175]

मानवता के उच्च धरातल से उतर कर यदि राजनीति भटकने का प्रयास करेगी तो वह अपनी गरिमा को खो देगी। साहित्य के नियमों, मर्यादाओं का पालन कर ही साहित्यकार को राजनीतिक गतिविधियों का समावेश अपने साहित्य में करना होगा, वरना साहित्य में यह प्रयास, प्रचार का साधन मात्र बनकर रह जाएगा। राजनीतिक समस्याओं एवं स्थितियों को प्रस्तुत करना मात्र ही लेखक का उद्देश्य होना चाहिए क्योंकि पाठक पर प्रभाव डालना ही उसका कार्य है। अपने इस कार्य में उसे सफल होना है, इसी का ध्यान उसे रखना होगा। तभी वह साहित्य पठनशील होगा अन्यथा वह मात्र राजनीतिक ब्योरा ही कहलाएगा।

४.३.२ शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में व्यक्त राजनीतिक स्वर :

भारत में प्रजा की वाणी को विशेष महत्त्व प्राप्त है। अत: प्रजा का शासन ही "प्रजातंत्र कहलाता है। प्रजातंत्रात्मक शासन की स्थापना के कारण ही भारत के राष्ट्रीय जीवन में नवीन क्रांति आई। इस शासन व्यवस्था के कारण जन-जीवन को नवीन सामाजिक अस्तित्व प्राप्त हुआ। यह एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें जनता के अधिकारों को विशेष महत्त्व दिया गया। जनता के द्वारा चुने गये व्यक्ति ही शासन की बागडोर सँभालने लगे। शासन की बागडोर हाथ में आने के उपरांत संकुचित स्वार्थों के कारण शासन का ढाँचा चरमरा उठा। राजनीतिक नेता अपनी स्वार्थ पूर्ति में लगे रहे, जिसके कारण सामान्यजन का शोषण आरंभ हुआ। जनता की भलाई, सुधार कार्यो, सामाजिक व्यवस्था एवं जनता की आवश्यकताओं की ओर इनका ध्यान नहीं गया। शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार का समावेश हुआ। परिणामस्वरुप प्रजातंत्र शासन का अर्थ ही बदल गया। सामान्यजन में आक्रोश बढ़ने लगा। जनता पहले की अपेक्षा अधिक निराश और उदास दिखाई देने लगी। जनता की आशाओं पर पानी फिर गया। आज भी सत्ता, स्वार्थी लोगों के हाथों में है जबकि शासन व्यवस्था प्रजातंत्रात्मक है। ऐसी दशा में प्रत्येक नागरिक की मन:स्थिति में परिवर्तन हो गया है। आज के जन-जीवन में अशांति छाई हुई है। राजनीतिक उथल-पुथल के कारण जनता की स्थिती भी डॉवाडोल है। स्वाधीनता के पश्चात् भारत की राजनीति ही यहाँ के जन-जीवन की अशांति का प्रधान कारण बन गई है। इन परिस्थितियों में साहित्यकारों का ध्यान भी प्रजातंत्रात्मक

शासन व्यवस्था की ओर गया। परिणामस्वरुप साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में उक्त परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन किया है।

वस्तुत: यह युग नैतिक मूल्यों के विघटन का युग रहा है। अत: उपन्यासों एवं कहानियों में इन परिवर्तित परिस्थितियों का खुलकर वर्णन हुआ है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में ग्रामीण राजनीति एवं शहरी राजनीति का विस्तृत विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त आपने ऐतिहासिक उपन्यासों में तद्‌युगीन राजनीतिक परिस्थितियों एवं समस्यायों का वृहद् विश्लेषण किया है। इस संदर्भ में लेखक का ऐतिहासिक अध्ययन प्रशंसनीय है। अपने तीनों ऐतिहासिक उपन्यासों "कुहरे में युध्द" "दिल्ली दूर है" तथा "नीला चाँद" में भारत की ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को प्रस्तुत कर लेखक ने वस्तुत: पाठक को उस समय की सामान्य-जन की स्थिती का परिचय दिया है।

४.३.३ ग्रामीण परिवेश में नवीन भाव क्रांति :

स्वातंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए विभिन्न आंदोलनों एवं सत्याग्रहों ने ग्रामीण समाज में नवीन क्रांति का आहवान किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के इस संघर्ष में किसान मज़दूर सभी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। देश की स्वतंत्रता के लिए समय-समय पर चलाए गए असहयोग आंदोलन, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, भारत छोड़ो आंदोलन आदि को सफल बनाने में कृषक-मजदूरों ने सक्रिय रुप से सहयोग दिया था। किसानों एवं मज़दूरों का विद्रोह जमींदारों एवं साहुकारों के विरुध्द था, न कि किसी शासन-व्यवस्था के विरुध्द।

राष्ट्रीय आंदोलनों के परिणामस्वरुप देश को स्वतंत्रता तो प्राप्त हुई किन्तु परस्पर वैमनस्य बढ़ गया। समाज के विभिन्न वर्गो में एकता स्थापित न हो पाई। यही कारण है कि स्वतंत्रता एक ऐतिहासिक घटना मात्र बनकर रह गयी। आजादी के परिणामस्वरुप निम्न वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता आयी, निम्न-वर्ग शोषण के विरुध्द स्वर उठाने लगा। निम्न-वर्ग का संघर्ष विशेषकर ग्रामों में ही रुप धारण करने लगा।

शिवप्रसाद सिंह ने "शैलूष" उपन्यास में जमींदार घुरफेंकन और नटों के बीच रेवतीपुर की परती ज़मीन के लिए हुए संघर्ष का वर्णन किया है। समस्त

रेवतीपुर में इस काण्ड का प्रचार होता है। सावित्री इस संघर्ष में आगे रहती है। वह नटों का प्रतिनिधित्व करती है। उन्हें अपने अधिकार दिलाती है। इस संघर्ष में उसे कई बार कई लोगों से अपमानित भी होना पड़ता है। किन्तु इन सब बातों की ओर वह विशेष ध्यान नहीं देती। यहाँ तक कि वह जिला अधिकारी के कार्यालय के सामने धरना भी देती है। सावित्री, कबीले के नवयुवकों को इकट्ठा कर उन्हें जमींदार के काले कारनामों से परिचित करवाती है। "बहुत पहले मौसी ने सत्ती मइया की परती के पास चार पौधे गुलमुहर और अमलतारा के लगा दिये थे। आज वे बसंती मुरेठा बांधे हवा में हिकोले खेल रहे थे। पूरा रेवतीपुर आज उल्हास में डूबा था। बाबु जुग्गीसिंह को लगा कि जो काम हम लोग नहीं कर सके उसे अपने अकेले दम पर पैंसठ साल की बुढिया कर रही है।"[176] नारी में आया हुआ यह नया परिवर्तन लेखक ने मौंसी के माध्यम से बताया है।

वस्तुतः सावित्री समस्त रेवतीपुर के नटों के जीवन में परिवर्तन लाना चाहती है "देख अब जमाना बदल गया है। इस बदलाव को तो हम रोक नहीं सकते, पर हमें गफलत में नहीं रहना चाहिए। बदलाव का पहला लक्षण है कि तुम लोगों के नाम एक-एक एकड़ जमीन मिली,खेती माँ की शरण में। पर घुरफेंकन तुम लोंगों को कुछ भी नहीं लेने देगा। सौ एकड़ की परती में चालीस एकड़ तो नटो को मिले ही हैं। वह जानता है कि चालीस एकड़ जमीन आदिवासियों की है, फिर उस पर ट्रैक्टर चलाने का मतलब क्या? क्या घुरफेंकन तुम लोगों पर दया की वर्षा कर रहा है? उबड़-खाबड़, ऊँट के कोहान जैसी अनजोती जमीन को क्या वह इसलिए जुतवा रहा है कि उसे वह आदिवासियों को उपहार में दे देगा? आदिवासी लाख मेहनत करें, वे बबूल के खुत्थड़ और टीलों से भरी परती को जोत नहीं पायेंगे, तो चलो, लगे हाथ इनके हिस्से वाली जमीन को भी जोत दें। यही न सोंच रहे हो तुम लोग?"[177] अपने अधिकार के लिए सावित्री जो संघर्ष करती है वह उसका अपना संघर्ष नहीं है अपितु समस्त नट जाति का संघर्ष है।

जमींदारों को किसी न किसी बहाने की आड़ में कृषको को सताने की आदत-सी हो जाती है। वे अपने वर्ग को उच्च एवं श्रेष्ठ मानते हैं। निम्न जाति के कृषकों से उनका संबंध कटूता-पूर्ण ही होता है। उक्त उपन्यास में घूरे चमार के द्वारा घुरफेंकन का पुत्र अनुराग अपना स्वागत न किए जाने पर घूरे को मुर्गा बना

कर कोड़े से पिटवाता है। उसके इस कार्यो का विरोध करते हुए घूरे का यह कहना-"सुनो अनुराग महाराज, यह तुम्हारे बाप घूरफेंकन की जागीर नहीं है। यह तुम्हारे इंदिरा गाँधी का राज है। अगर एक चिट्ठी भेज दूँ थाने पर तो तुम्हारी सारी हेकड़ी हवा हो जाएगी।"[178] कितना तर्कपूर्ण है यह कथन।

आजकल गाँवो में भी जागृति आ रही है। गाँव के लोग राजनीतिक परिस्थितिसे भी परिचित हैं। राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र में व्याप्त सत्ता आदि के महत्त्व को ग्रामीण-कृषक जान गए हैं। कृषकों के द्वारा जमींदार वर्ग का यह विरोध आज के संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। इस प्रकार के प्रसंगो द्वारा लेखक ग्रामीणों की जागरुकता का संदेश देता है। ग्रामीणों का यह साहस प्रशंसनीय है। इंदिरा गाँधी के शासन काल में उनके द्वारा चलाए गए बीस सूत्री कार्यक्रम के आधार पर गरीबों, कृषकों, मज़दूरों आदि को न्याय प्राप्त हुआ। समाज में राजनीतिक हलचल का अच्छा प्रभाव देखने में आया। देश की सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा चलाया गया यह कार्यक्रम वस्तुत: सराहनीय है। शिवप्रसाद सिंह ने एक ओर जहाँ गाँधी के शासन की प्रशंसा की वहीं उनकें द्वारा लागु इमरजेंसी पर हल्का व्यंग्य भी किया है। माला बातो-बातों में लल्लु को बात करने से रोक देती है। तब लल्लु गुस्से में कहता है- "ई का इमरझंसी (इमरजेंसी) है? तू क्या मेरा बोलना बंद कर देगी, तू मुझे हुकुम देगी और तेली के बैल की तरह आँख पर अंटौतल लगाये-लगाये चक्कर काटता रहूँगा?"[179] उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन राजनीति के प्रति जनता कितनी सावधान थी।

अपने अधिकारों को पाने के लिए नटों द्वारा किया गया संघर्ष विशेष महत्त्व रखता है। परिवर्तित परिस्थितियों की ओर ध्यान देते हुए लल्लू नट का यह सोचना स्वाभाविक है कि "हमें अब साँप नेवले की लड़ाई दिखाने के बदले आधी रोटी भी मयस्सर नही होती। एक एकड़ बहुत होता है बेटी, यह जमीन निकल गयी तो यह कबीला भूखा मर जायेगा। फैक्टरी, मशीनें, उद्योग-धंधे बढ़ रहे हैं। हमें जबर्दस्ती उजाड़कर मौत के मुख में झोंक दिया जाता है। रेणुकूट से लेकर अनपरा, सिंगरौली तक तुमने अपनी आँख के आगे नटों को बे-घरबार होते नहीं देखा है मुआवजा के नाम पर जो मिलता है, उससे चार दिन पीने लायक महुवे का ठर्रा

भी नहीं मिल सकता।"[180] अपनी परती जमीन के लिए नटों का जमींदार से संघर्ष स्वाभाविक है। जमींदार के शोषण को अब सहने की शक्ति नटों में नहीं है। पूरे उपन्यास में उक्त संघर्ष का विस्तृत वर्णन कर लेखक ने नटों के प्रति विशेष सहानुभुति प्रदर्शित की है। "अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में सुगनी चमारिन और सुरजू सिंह राजपूत के अनैतिक संबंधो के विरोध में चमारों की पंचायत बुलाई जाती है। इसी बटोर के आधार पर सारे चमार सुगनी को सुरजू सिंह की पत्नी का स्थान दिलाना चाहते हैं। इसके लिए सारे करैता गाँव की चमारौटी में प्रत्येक चमार के घर से "बेहरी" के रुप में रुपया इकट्ठा कर चमारों के पंचों की खातिर की जाती है, उनका निर्णय ही अंतिम माना जाता है- "बटोर ने सर्व-सम्मति से फैसला किया कि सुरजू सिंह कल सुबह सुगनी को अपनी पत्नी समझकर खुद आकर चमरौटी से ले जाएँ, नहीं तो कल शाम को चमार लोग सुगनी को ले जाकर उनके घर बैठा आयेंगे।"[181] प्रस्तुत वर्णन के द्वारा लेखक ने यह सिध्द किया है कि आजकल चमारों में भी नयी चेतना का संचार हो रहा है। वे अपने अधिकार एवं अपने उत्तरदायित्व से पूर्णत: परिचित हैं। समाज में उनकी भी मान-मर्यादा है। उन्हें भी अपना अस्तित्व बनाए रखने का पूर्ण अधिकार है।

"औरत" उपन्यास में शिवेन्द्र अपनी प्रेमिका सोनवाँ की मौत का बदला लेने के लिए जमींदार सोबरन राय को सारे गाँव में बदनाम करता हैं। सोनवाँ चमारिन है, उसके साथ हुए अन्याय से प्रभावित उसका भाई शोभू भी शिवेन्द्र के साथ मिल जाता है। मधुमक्खियों को सोबरन राय पर छोडकर शिवेन्द्र प्रसन्न होता है, सोबरन राय की कोठी में साँप को छोड़कर उसे सताया जाता है। सोनवाँ चमारिन करमुपुरा गाँव में आदमी और औरत को समान मजदूरी दिलाने के लिए सत्याग्रह करती है। उसका यह कहना- "अब खेतिहर मजूरों के बराबर ही मजूरिनें भी मजूरी पायेंगी। आज के जमाने में तुम दस रुपये पाते हो, मर्द लोग सोलह रुपये पाते हैं। मजूरी तो अभी भी शहर के मजदूरों के सामने आधा पौना ही है, पर हम उसके लिए बाद में लड़ेंगे, पहले अपने लिए लड़ो एकजुट होकर लडो।"[182] सोनवा का यह संघर्ष ग्रामीण वातावरण में क्रांति लाने में सहायक सिध्द होता है। आज गाँवो में स्त्रियाँ भी अपने बदलाव का संकेत दे रही हैं। समान कार्य के लिए समाज मजदूरी का उनका यह नारा प्रसिध्द हो रहा है, जिससे आज के गाँवो के जन-

जीवन में पर्याप्त सुधार हो रहा है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में चमार सरुप भगत अपनी मर्यादा को बनाए रखना चाहता है। वह यथासंभव ठाकुरों एवं जमींदारों से उलझना नहीं चाहता, किन्तु अपनी जाति-बिरादरी की नीचता एवं इज्जत आबरु के खिलाफ वह आवाज़ उठाता हैं। "इज्जत तो सबकी एक ही है बाबू? चाहे चमार की हो, चाहे ठाकुर की। हम आपका काम करते हैं, मजूरी लेते है। हमे गरज है कि करते हैं। आपको गरज है कि कराते हो। इसका मतलब ई थोडे हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।"[183]

'अलग-अलग वैतरणी' इसी उपन्यास का झिनकु चमार भी अपनी मज़दूरी पाने के लिए संघर्ष करता है। वह जगजीत सिंह के यहाँ अपने खेत रेहन रखता है, उसी जमीन पर मेहनत कर वह ज्वार उगाता है किन्तु उस पर से वह अपना अधिकार खो देता है। जगजीत के खेत पर वह रोजी न "बन्नी" (मजदूरी) में काम करना नहीं चाहता। अपने खेतों की माँग करता है। किन्तु जगजीत उसे खेत वापस नहीं देता। उसे मारपीट कर निकाल देता है। ऐसे में उसे बुढ़िया धनेसरी चमारिन शांत्वना देती है। उस गाँव में ही रहकर जगजीत की लड़के को सलाह देती है- "तू गाँव छोड़े की बात सोचते हो का? झिनकु बेटा, राम-राम अइसा काम कभी करना मत। गाँव में तोहार एक बित्ता जमीन तो बनाये रखना बेटा। जहाँ मन हो तहाँ जाकर कमाओ। खाओ। बाकी फुरसत मिलते ही मड़ई में जरुर लौट आओ तबै सात है। नाहीं कसाई सोचेंगे कि तू हार के भाग गये। है न? Ÿöö Æ Ÿöö "‡Æ" निफिकिर रहे के चाहीं। अउर इन कमींनो की छाती पर दाल दरै के चाहीं। तू कहीं चले गये भइया तब तो ई सब अउर मान लेंगे कि सचमुच चमारों क करम विधाता है। ना, ना, तू गाँव छोड़े का तो नाम मत लो! हाँ।"[184]

चमारों में भी अपने शोषण के विरुध्द आवाज उठाने की शक्ति आ गयी है। "माटी की औलाद" कहानी में टीमल कुम्हार का लड़का सरजू अपने अधिकार के लिए लड़ता है। वह अपने पिता के साथ जमींदार की परती जमीन से मिट्टी ला कर मिट्टी के बर्तन बनाने में पिता की सहायता करता है, किन्तु जमींदार का सीरवाह झगडू सिंह इसका विरोध करता है और मिट्टी लेने से मना करता है। ऐसे में सरजू झगडू से झगड़ता है- "मिट्टी ले जाते हैं तो कोई घर तो नहीं पाटते, बर्तन

बनाते हैं सबके लिए।"[185] जमींदार की बहुएँ झगड़कर नई सुराही फोड़ देती हैं और बर्तन के कच्चे होने का दोष टीमल पर ही लगाती हैं तब भी सरजू उनका विरोध करता है- "कच्ची है? आप तो तमाशा करती हैं, उतने ऊपर से गिरने पर तो आदमी टूट जायेगा।"[186] सरजू का यह विरोध स्वाभाविक है। वह इस विषय में अत्यंत जागरुक है। पिता उसके इस व्यवहार से रुष्ट होता है किन्तु फिर भी सरजू का व्यवहार नहीं बदलता। वह अपने उग्र व्यवहार से सच्चाई का समर्थन करता है। गाँवों में युवा-पीढ़ी में व्याप्त यह आक्रोश सहज है। आज परिस्थिती बदल गयी है। मेहनत मज़दूरी कर के जीवन बिताने वाले चमार, कुम्हार लोहार आज किसी की गुलामी करना नहीं चाहते। अतः उनका यह विरोधी स्वर गाँवों में नवीन क्रांति का अहवान करता है।

"मुर्गे ने बाँग दी" कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने मंगरु लोहार की पत्नी को उग्र स्वभाव वाली स्त्री के रुप में चित्रित किया है। पति की अपेक्षा वह अधिक सतर्क है। मज़दूरी पाने के मामले में वह बेझिझक किसी का भी विरोध कर सकती है। मँगरु के पास सारे गाँव के किसान हल बनवाने आते हैं, टूटे हल को जुड़ाने आते हैं, ऐसे में उसकी पत्नी किसी के ताने सुनना नहीं चाहती। वह अपनी आर्थिक स्थिति का ब्यौरा देती हुई अपने कार्य के प्रति निराशा व्यक्त करती है। गाँव का कोई पुरुष उसका विरोध करने का साहस नहीं दिखाता। "भीतर से मिस्तिराइन बोली, "देनी न लेनी बात की मनौनी खाने को तो कोई नहीं पूछता, बातों की जेवर ÃÖÖ ŒÖêÛ×Ö Æü."[187] स्त्रियाँ भी गाँवो में अपनी स्थिति में बदलाव चाहती हैं। निर्धन स्त्रियों की दशा शोचनीय हो गयी है। अपने अभावपूर्ण जीवन के प्रति उनकी विरक्ती ही क्रांति का स्वर मुखरित करती हैं। आज की नारी किसी के नियंत्रण में जीना नहीं चाहती। अपना और अपने परिवार का, पति और बच्चों का ध्यान वह रखना चाहती है। चाहे इसके लिए किसी से भी झगड़ना पड़े या अपने अधिकारों की माँग के लिए आवाज भी उठानी पड़े। स्पष्ट है कि आज ग्रामीण नारी भी अपने अधिकारों के प्रति सजग है।

४.३.४ सामंतीय जीवन का विघटन :

आरंभ से ही व्यक्ति को अपनी सुरक्षा के लिए एक ऐसे व्यक्ति का चयन करना पड़ता था जो उसके परिवार एवं कबीले की बाहरी आक्रमणों से रक्षा कर सके। इसी व्यक्ति को "राजा" कह कर संबोधित किया जाता था। अतः राजा की इच्छानुसार ही सारे कार्य क्रियान्वित होते थे। इस कारण जनता राजा का विरोध नहीं कर पाती थी। यही परंपरागत संस्कार सामंती व्यवस्था के फलने-फूलने का मूल कारण बन गयी। सामंत ही एक ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति था जो किसान मज़दूर एवं अन्यजनों के जीवन का निर्धारण किया करता था। गाँव वालों के सारे कार्य उसी की इच्छा एवं निर्देश के अनुसार होते थे। गाँव के अच्छे-बुरे की पहचान उसी के आधार पर होती थी। स्वातंत्र्योत्तर काल में जमींदारो की पंरपरागत प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का लगा। जमींदारी उन्मूलन के कानून के कारण वर्षो से चले आ रहे सामंती शासन का अन्त हो गया। वस्तुतः यह ग्रामीण जीवन के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण क्रांती थी। इस परिवर्तन ने जमींदारों की मानसिक तो पर आघात पहुँचाया। उनकी मनःस्थिति पूर्णतः बदल गयी। किसान अब उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने लगे। जो किसान उनकी आज्ञानुसार उठता बैठता, खाता-पीता, सोता-जागता वही किसान आज उनके आगे निर्भीक खड़ा हो गया। अतः जमींदारों के स्वाभिमान को धक्का लगा। आंतरिक रुप से वे टूट गये, अपमानित अनुभव करने लगे।

"अलग-अलग वैतरणी" में जमींदार जयपाल सिंह जमींदारी उन्मूलन से निराश होता है, वह करैता गाँव छोड़कर चला जाता हैं। "जमींदारी टूट गयी। फिर भी किसी को विश्वास नहीं होता था कि मांसाहरी बाघ शाकाहरी हो गया। तभी जयपाल सिंह गाँव की बिगड़ती हुई रस्मोरवाज से खिन्न हो, करैता छोड़कर चले गए। उन्होंने कसम ले ली कि जीते जी वे फिर यहाँ कभी पाँव नहीं रखेंगे।"[188] जमींदारी प्रथा के समाप्त हो जाने पर जयपाल सिंह का पुत्र बुझारथ का व्यवहार, बात-चीत, निम्न वर्ग के साथ उसका व्यवहार, सब कुछ गाँव वालों को अचम्भे में डाल देता है। तालाब की मछलियाँ पकड़ने के अपराध में जब बुझारथ सिरिया को खूब पीटता है तब उसका यह व्यवहार सुरजू सिंह को अखरने लगता है- ऐसा इस गाँव में कभी नहीं हुआ था। उस समय भी जब जमींदारी की धाक थी, तब लोग

जमींदार के दरवाजे पर मुर्गा बनाकर लटका दिए जाते थे। सजा दी जाती थी। सिरिया कहता है- "गाली मत बको बुझारथ भाई, जेबा से हम नान्ह जात नहीं है। जमींदारी टूट गयी। पोखरा पंचायत का है।"[189]

जगेसर पुलिस का सिपाही बनकर करैता लौटता है। वह भी नहीं चाहता कि गाँव के जमींदार, पंडित-पुरोहित आदि का अभिवादन करे- "मैं क्या किसी का नौकर हूँ कि इनके पीछे-पीछे हाथ जोडकर घूमता रहूँ। कहते है की ऐंठ कर चलता है जगेसर सिपाही क्या ही गया, अपने को लाट गवर्नर समझ लिया हाँ-हाँ समझ लिया, अब ऊ जमाना गया कि ठकुराने के एक अदने छोकरे को देखकर बड़े-बूढ़े चारपाई छोड़कर उठ जाते थे। अपना राज है। हम किसी से कम हैं क्या?

"शैलूष" उपन्यास में जनक यादव मुक्त स्थिति का विस्तृत वर्णन करत हैं। आम सभा में वह जमींदारी प्रथा का विरोध करता है और कहता है। पहले लड़ाई होती थी जमींदार और प्रजा में। यह लड़ाई सामंती दौर की उपज थी। सरकार ने लोगों की आँख में धूल झोंकने के लिए कानून बना दिया, जमींदारी खतम। यह तो हुआ और अच्छा हुआ। क्या मैं पूछ सकता हूँ सरकार से "जमींदारी खतम कराने से किसान और मजदूर को क्या मिला? क्या मिला? क्या यह सच नही है कि असली और ताकतवर जमींदारों ने सुना कि जमींदारी खतम होने जा रही है, तो अपनी भूमि को बेचकर सारी पूंजी होटल बनवाने, सिनेमा हॉल बनवाने, उद्योग धंद्ये लगवाने, यहाँ तक कि सरकार से मिलकर कारखाने बैठाने में लगा दी?

भूतपूर्व जमींदारों की प्राइवेट बसें चारों ओर चल रही हैं। उनमें अच्छे गुलगुले गद्दे हैं, आरामदेह सीटें हैं और सबसे बड़ी बात कि उनमें सिनेमा के कैसेट्स बजते रहते हैं।"[190] सामंती व्यवस्था की समाप्ति के पश्चात भी जमींदारों का जीवन समृध्द ही रहा है। उनके जीवन का स्तर उनकी पूँजी के कारण ऊँचा होता गया किन्तु इससे ग्रामीणों, कृषकों, मजदूरों को लाभ न हुआ।

४.३.५ राजनीतिक अवसरवादिता :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की राजनीतिक स्थिती बदल गयी। स्वतंत्रता से भारतीय जनता आशा लगाए बैठी थी। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्त के पश्चात् स्थिति पूर्णत: बदल गयी। देश-प्रेम एवं जातीय भावना के नाम पर लोग अपने स्वार्थ

की पूर्ति में लगे रहे। शिवप्रसाद सिंह जी ने इस राजनीतिक अवसरवादिता का परदाफाश किया है। चाहे गाँधीवादी हो चाहे साजवादी सभी दलों की अवसरवादिता को अनावृत कर शिवप्रसाद सिंह ने भारतीय ग्रामीण राजनीति का यथार्थपरक चित्रण किया है। देश को आजादी दिलाने के लिए नेताओं एवं जन-सामान्य ने जो त्याग किया जो बलिदान आज "राजनीति" अर्थ को नवीनता प्रदान कर रहा है। "'शहीद दिवस' कहानी में राजनीतिक अवसरवादिता स्पष्ट रुप से दिखाई देती है। देवीचन्द सच्चा देशभक्त है पर उस पर मालगोदाम लूटने का आरोप लगाया जाता है। गिरधरदास जैसे ढोंगी समाजसेवी राजनीतिक अवसरवादिता का फायदा उठाते हे। समय आने पर झूठे गवाह के रुप में अदालत में हाजिर हो जाते हैं। गिरधरदास कहता है। "देवीचन्द को मालगोदाम लूटते मैंने अपनी आँखों से देखा," गिरधरदास ने कहा हुजूर कस्बे में जो कुछ भी उत्पात हुआ, देवीचन्द ही उसके अगुवा थे।"[191] आज राजनीति गिने-चुने लोगों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गयी है। अपनी स्वाथपूर्ति की भावना में लीन राजनीतिक नेता भ्रष्टाचार, बेईमानी तथाकथित पद-प्रतिष्ठा को बनाए रखने में तल्लीन हैं। आज राजनीति का अर्थ-अर्थ-लोलुपता तथा भ्रष्टाचार एवं अवसरवादिता तक ही सीमित होकर रह गया है शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में इन राजनीतिक विसंगतियों को भी विस्तृत रुप प्रदान किया है।

४.३.६ गाँधीवाद :

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जीवन-दर्शन एवं चिंतन गाँधीवाद के नाम से जाना जाता है। महात्मा गाँधी ने लगभग तीस वर्षो तक देश की जनता का प्रतिनिधित्व किया। नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आंदोलन, दांडी यात्रा आदि आंदोलन के नेतृत्व करने पर उन्हें विशेष ख्याति एवं जनता का पूरा समर्थन प्राप्त हुआ। गाँधीवाद में धर्म एवं नैतिकता का उचित समावेश हुआ है। गाँधीवाद के मूल तत्त्वों में सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह आदि प्रमुख स्थान रखते हैं।

"शैलूष" उपन्यास में सावित्री गाँधीवादी विचारों से प्रभावित है। वह अपने कबीले वालों को गाँधीवादी विचारधारा का समर्थन करने का आग्रह करती है। वस्तुतः गाँधीवादी विचार उसके विचारों के निकट स्थान पाते हैं। सावित्री चाहती है कि जमींदार घुरफेंकन से बदला लेना हो तो अहिंसा का मार्ग अपनाया जाय।

मनिक और ननकू से हिंसापूर्ण व्यवहार का वह विरोध करती है "गाँधी जी ने अहिंसा की बात की। उन्होंने कहा, हम अत्याचारी के आगे सिर झुकाकर लाठियाँ। गिरने की प्रतीक्षा नहीं करेंगे और लोहिया? नाहीं जानते न? उन्होंने कहा, 'मारेंगे नहीं, पर मानेंगे नहीं। तुम लोग लोहिया का नाम डुबा रहे हो गंदे नालों में, तुम्हें पिस्तौल क्यो चाहिए? इसीलिए न कि तुम्हें जनता पर विश्वास नहीं है कि वह तुम्हारी रक्षा करेगी? तुम मजदूर नेता नहीं पांडे अहमक हो, पहले दर्जे के मूर्ख।"[192]

वस्तुत: "शैलूष" के लेखन में शिवप्रसाद सिंह का ब्राम्हण-विरोधी दृष्टिकोण नहीं दिखाई देता। वस्तुत: नटों को उनके अधिकार दिलाने की चेष्टा इस उपन्यास में स्पष्ट हुई है। स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है कि- "इनकी लडाई में मैं हमेशा शरीक रहा। वह लड़ाई मेरे जेहन में उतरती गयी। नये रुप में सर्वथा रुप बदल-बदल कर एक ही दृश्य दिखता रहा- पराजय, पुलिस के डंडो के नीचे लहू-लुहान होते जरायम पेशे वाले शैलूष मुझे रात भर मेरी चादर खींच कर चिल्लाते रहे- "कब तक हमारी कथा-व्यथा को छिपाये रहोगे।" मैं उन दु:स्वप्नों को बिना कागज पर उतारे शांति नहीं पा सकता था। वह सब सही ढंग से उतारने की कोशिश की Æ..."[193] राजनीतिक आधार पर यह क्रंति और भी महत्त्वपूर्ण हो उठती है। लेखक ने कई ऐसे प्रसंगों का उल्लेख किया जिसके कारण समस्त कृति में सावित्री का चरित्र मुखरित हो गया। नटों की जमीन उन्हें दिलाने के लिए सावित्री का यह संघर्ष न केवल रेवतीपुर तक ही सीमित रह जाता है अपितु उस क्षेत्र के जिला अधिकारी, पुलिस अधिकारी सभी घटना से प्रभावित होते हैं। इस संदर्भ में डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "शैलूषों के इस जीवन को यदि यूँ ही चित्रित किया जाता, तो वह उपन्यास न बन पाता अत: इस प्रमुख आधार स्त्रोत के आलावा वर्तमान की समस्याओं से उसे संचलित किया गया है। खानाबदोशों की जिन्दगी जीने वाले नटों को घर-गृहस्थी वाला बनाने के लिए कहीं भूमि की जरुरत थी। यह जमीन की लड़ाई ही कथा की मुख्य वस्तु है। इस जमीन प्राप्ति की कथा का स्त्रोत स्वातंत्र्योत्तर भारत में भूमिहीनों को जमीन आबंटित करने का वह नियम है, जिसके बिना यह कथा-द्वार खुलता ही नहीं। इसी का सहारा लेकर शिवप्रसाद सिंह ने "शैलूष" में नटों के सामान्य जीवन जीने का ताना बाना बुना है। इस तरह मन की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए समकालीन व्यवस्था के कानून कायदों की

हदों में इतिहास की पृष्ठभूमि लगाकर नट-जीवन का यह मंच निर्मित हुआ है।"[194] प्रमुख पात्र सावित्री के माध्यम से लेखक ने गाँधीवादी विचारों का समर्थन करते हुए समस्या के समाधान को प्रस्तुत किया है।

"शहीद दिवस" कहानी में देवीचन्द गाँधीवादी विचारधारा का समर्थन करता है जिस पर मालगोदाम को लुटने का आरोप लगाकर कस्बे का प्रसिध्द सेठ गिरधरदास उसे गिरफ्तार करवा देता है। देवीचन्द पर मुकदमा चलता है। वह इतना ही कह पाता है "मैं नेता जरुर था, परहड्डियों के ढाँचे में जोश सा उमड पडा, मालगोदाम लूटने वाले दल का नहीं, आजादी के लिए जान हथेली पर लेकर आगे बढ़ने वाले दल का। सरकारी इमारतों पर झण्डा फहराना हमारा काम था, चोर-उचक्कों की तरह सामान लूटना नहीं।"[195]

देवीचन्द को पाँच साल की सजा होती है, उस पर राजद्रोह, लूटपाट आदि के अपराध लगाए जाते हैं। निरपराधी देवीचन्द की जेल में ही मृत्यु हो जाती है। प्रस्तुत कथा की पृष्ठभुमी १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन पर आधारित है। गिरधर दास स्वार्थी सेठ है, वह अपनी काली करतुतों से बचने के लिए देवीचन्द का आश्रय लेता है। देवीचन्द स्वतन्त्रता सेनानी है, गाँव भर में वह प्रसिध्द है। अत: ऐसे व्यक्ति पर आरोप लगा कर गिरधरदास मुक्त हो जाता है। तीस जनवरी को शहीद दिवस पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की पुण्य तिथि के अवसर पर वह अपनी देशभक्ति को प्रकट करते हुए, जुलूस में भाग लेता है- "सामने की सड़क से मोटरों का एक जुलूस गुजर रहा है। रामधुन से सारा वातावरण सराबोर है। कस्बे के लोग हाथों में फूल-मालाएँ लिए खड़े हैं। बापू की जय जय कार के नारे लग रहे हैं। अगली मोटर पर अर्धनग्न बापू की मुस्कराती तस्वीर मालाओं से लदी हई हैं।"[196] कहानी का अन्त निम्नलिखित शेर से होता है-

शहीदों की चिताओं पर जुटेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।

वस्तुत: देवीचन्द के चरित्र के माध्यम से लेखक ने देशभक्ति का चित्र खींचा है। किन्तु समाज के स्वार्थी लोग उसकी देशभक्ति का लाभ उठाकर उसे जीवित नहीं रहने देते। देवीचन्द जैसे व्यक्ति समाज में अत्यल्प ही हैं। सच्चाई के मार्ग पर जीवन व्यतीत करने वालों का जीवन आज असुरक्षित है। समकालीन समाज के

कई लोग स्वार्थी हो गऐ हैं। कमजोर व्यक्ति को दबा कर तथा कथित समाज सेवा का नाटक वे कर रहे हैं। देशभक्ति का दिखावा वे कर रहे हैं। एक ओर गाँधीवाद का आश्रय लेकर जीने वाले गिरधरदास जैसे लोग भी हैं तो दूसरी ओर देवीचन्द जैसे सच्चे गाँधीवादी भी हैं जो अपने व्यक्तित्व की महानता को अपने आचरण के द्वारा सिध्द करते हैं।

४.३.७ छात्र आंदोलन :

शिवप्रसाद सिंह ने "गली आगे मुड़ती है में १९६७ ई.में हुए राजभाषा आंदोलन का विस्तृत वर्णन किया है। इस आंदोलन से प्रभावित काशी नगरी एवं वहाँ के शिक्षा संस्थान आदि को लेखक ने यथार्थ रुप प्रदान किया है। अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार एवं हिन्दी भाषा को अपना स्थान दिलाने के लिए किए गए इस छात्र आंदोलन की चपेट में काशी नगरी में हड़ताल उग्र रुप धारण कर चुकी थी- "२८ नवंबर ६७ को मंगलवार के दिन वाराणसी नगर में पूरी हडताल रही। राजभाषा विधेयक के विरोध का रुप उग्र हो गया "सभी बाजार और शिक्षा-संस्थाएँ बन्द कर दी गईं। छात्रों ने वाराणसी कैंट स्टेशन पर स्थित संस्थान पर लगभग छः घण्टों तक कब्जा किए रखा, परिणामतः ट्रेनों का आना-जाना रुक गया। लगभग एक दर्जन मेल पैसेंजर तथा एक्सप्रेस गाडियाँ काशी के स्टेशनों पर रोक दी गयीं आज छात्र सुबह से ही अंग्रेजी नामपट्टों को तोड़ने अथवा मिटाने के काम में जुट गए।"[197] हिन्दी भाषी प्रदेश होने के कारण काशी में इस आंदोलन ने उग्र रुप धारण कर लिया था। काशी विश्व विद्यालय के सभी छात्र इस आंदोलन में भाग ले रहे थे। दफा १४४ लागू हो गया था आश्रु गैस के गोले गिराफ गट, लड़कों का पथराव हुआ, पुलिस ने फायरिंग भी की। लड़कों की गिरफ्तारी भी हुई। लेखक ने उक्त घटना के आधार पर छात्रों की राजानीतिक चेतना की ओर संकेत किया है। छात्र अपनी माँगो एवं अधिकारों के प्रति सजग हैं। देश की राष्ट्रभाषा के प्रति किया गया उनका आंदोलन विशेष स्थान रखता है। इस आंदोलन के द्वारा वस्तुतः छात्रों ने राजनीतिक नेताओं का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित किया। छात्र जानते हैं कि व्यापक स्तर पर आंदोलन होने पर ही उन्हें सफलता मिलेगी। छात्रों की नवीन दृष्टि के संदर्भ में कृष्णनाथ का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "गली की पार्श्वभूमी

काशी के युवा आक्रोश की है। काशी के राजा दिवोदास की पुराण कथा में युवा पीढ़ी के प्रथम क्रोध से लगातार १९६७ के भाषा आन्दोलन में उभरे युवा आक्रोश को यहाँ आकार दिया गया है। पुराण की नवीन की दृष्टि से, नवीन को पुराण की दृष्टि से देखने की कोशिश है।"[198]

लेखक ने उक्त आंदोलन के संदर्भ में युवकों के जुलूस को, उनके क्रियाकलापों को प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा है। उन सब दृश्यों को देखकर रामानंद का यह पूछना कि क्या इससे देश का हित होगा? वास्तव में लेखक का ही प्रश्न है। लेखक युवा पीढ़ी से प्रश्न करते हैं कि ऐसे कार्यों से क्या समस्या का समाधान हो जाएगा? लेखक का विचार है कि आंदोलन करने वाले छात्रों और उनके नेताओं को चाहिए कि वे अपनी समस्या की विस्तृत जानकारी उच्च अधिकारियों को दें ताकि उन्हें न्याय मिल सके। सही मार्ग के द्वारा किये गये आंदोलनों के द्वारा ही युवा पीढ़ी की कतिपय समस्याओं का समाधान होगा। यही देश का हित-साधना के लिए सर्वथा उचित रहेगा।

४.३.८ ग्राम पंचायतें :

समस्त गाँव के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए ग्राम पँचायतों की स्थापना हुई। ग्रामों में पंचायतें ही ग्रामीण झगडों को निपटाती है और अपना निर्णय सुनाती है। आज भी गाँवो की जनता न्याय पाने के लिए ग्राम पंचायत पर ही निर्भर है। ग्राम पंचायत का निर्णय अंतिम माना जाता है। अकसर गाँव में यह देखा गया है कि गाँव का जमींदार या धनी व्यक्ति ही गाँव का मुखिया होता है। लेकिन कभी-कभी जमींदार को यह पद नहीं मिलता, क्योंकि ग्रामीण जनता उसके अन्याय एवं अत्याचार से तंग आकर किसी अन्य व्यक्ति को ग्राम सभापति के रुप में चुनती है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में ग्राम सभापति के चुनाव का वर्णन मिलता है।" गाँव के स्कूल पर उस दिन खूब चहल-पहल थी। ग्रामसभा का चुनाव था। तीन उम्मीदवार थे। तीनों की तीन दरियाँ बिछी थीं। उत्तर तरफ बाबू सुरजू सिंह की, बीच में जैपाल सिंह की और एकदम दक्खिन तरफ सुखदेव राम की। सुरजू सिंह की दरी पर काफी भीड थी। काफी चहल-पहल, गहमा-गहमी और कोलाहल। सिरिया, छबिलवा, हरिया, शशिधर तथा उनके हम उम्री अनेक नवयुवक

इकट्ठे थे। मतदाताओं को गली से आते देखकर ये सब उनके पास जाते मुस्कराते। साथ-साथ लाकर आदर के साथ दरी पर बिठाते।"[199]

चुनाव सुखदेव जीत जाता है। जैपाल सिंह की मदत से जीतता है। इस पर हरिया का कथन "ये एक सौ तीस वोट सुखदेव को कैसे मिले? मुफत में तो मिले नहीं। कुछ न कुछ इसके बदले में देने का वादा उन्होंने किया होगा जैपाल सिंह Ãö..."[200]

सुखदेव ग्राम सभापति बनता है। लेकिन फैसले जैपाल सिंह की इच्छा के अनुसार ही होते हैं। सुखदेव जैपाल सिंह की कठपूतली बनकर रह जाता है।

"जाहिर तौर पर सुखदेव ही पंच था, पर फैसले ठाकुर की मर्जी से होते थे। गाँव वालों का एक फायदा जरुर हुआ कि मामूली-मामूली जुर्म के लिए पहले से दूनी सजाएँ मिलने लगीं। क्योंकि करैता में अब एक नहीं, दो पंचों का राज था।"[201] आज भी ग्रामों में यही स्थिति देखने को मिलती है। आज भी पंचायतों का महत्त्व जमींदारों की दृष्टि में शून्य है। पंचायत से हर ग्रामवासी न्याय की अपेक्षा तो रखता है किन्तु न्याय उसके पक्ष में नहीं जाता।

"शैलूष" उपन्यास में कर्ज की अदायगी न कर पाने पर घूरे चमार का घर निलाम हो जाता है। अंतिम बोली जग्गी नट की थी। "यानी दिखाने के लिए घुरफेंकन तटस्थ रहे और उन्होंने प्यादे को फर्जी बना दिया। बाध्यली जग्गी नट की नहीं, पर्दे के पीछे छिपे घुरफेंकन की थी। यानी सौ रुपये में घुर काका के घर और जमीन पर घुरफेंकरन का कब्जा हो गया।"[202] इस प्रकार जमींदार पंचायत के नियमों से लाभ उठाकर गाँवों का आर्थिक शोषण कर रहा है। आज पंचायत गुण्डों का अड्डा बन गई है।

"आदिम हथियार" कहानी में श्याम लाल पंचायत के निर्णय का विरोध करता है। आशा नामक लड़की को शहर से भगाकर गाँव लाता है। श्यामलाल की समझ में नहीं आता कि क्या करे। शहर वापस वह लौट नहीं सकता। अपना घर उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं। ऐसी स्थिति में पंचायत बुलाई जाती है। श्यामलाल पंचायत के निर्णय को मानने के लिए तैयार नहीं होता। वह उसका विरोध करते हुए कहता है- "मैं नही मानता आपकी पंचायत किसी के शादी-ब्याह से पंचायत का क्या वास्ता? पंचायत क्या शादी-ब्याह का दफ्तर है?"[203] श्यामलाल

जैसे हर गाँव में एक दो युवक हो तो पंचायतों द्वारा होने वाले शोषण को खत्म किया जा सकता है। आज के सभी ग्राम परिवर्तन का संकेत दे रहे है।

"कर्मनाशा की हार" गाँवों में पंचायतों के निर्णय ही अन्तिम माने जाते हैं। और ये निर्णय अक्सर अमानवीय और अत्याचार पूर्ण होते हैं। जिनके आगे गाँव की आम जनता को झुकना ही पडा था और आगे झुकना भी पड़ेगा। निम्न वर्ग के प्रति पंचायत का यह आचरण पंचायत की दुर्व्यवस्था का प्रतीक है। प्रस्तुत कहानी में कुलदीप का बडा भाई भैरों पाण्डे मुखिया के विरोध मे ठहर जाता है। मुखिया के व्यंग्य का जवाब देते हुए कहता है- "जरुर भोगना होगा मुखिया जी। मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता किन्तु मैं एक-एक को पाप गिनाने लगूँ तो यहाँ खडे सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पडेगा है □úëÔŸûÖÕ ü • ÖÖë □úë"[204] आज गाँव की जनता भी अन्याय का विरोध करने का साहस जुटा रही है। पंचों एवं मुखियों के गलत निर्णय को मानने के लिए आज का ग्रामीण समाज तैयार नहीं है। ग्रामीण समाज में क्रांति लाने के लिए प्रयत्न करने वाले भैरों पांडे जैसे लोग आज के गाँव में कम ही दिखाई देते हैं।

४.४ डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का धार्मिक विवेचन :

प्रस्तावना :

भारतीय समाज में धर्म को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। भारत का हर एक आदमी अपने-अपने धर्म के प्रति सजग एवं सचेत है। भारतीय समाज में धर्म एवं पुण्य का कार्य वह माना जाता है जो लोकहित एवं लोकमंगल से परिपूर्ण हो, जिसमें जनसेवा को महत्त्व दिया जाता है। जो समाज को उन्नति एवं विकास के मार्ग पर आगे बढाने वाला हो, जिसके माध्यम से आध्यात्मिकता का विकास हो जो मानवता की भावना से ओत-प्रोत हो, जिसमे विश्व बंधुत्व की प्रबल भावना हो जो "वसुधैव कुटुम्बकम" की उदार नीति का प्रेरणा स्त्रोत हो। भारतीय समाज ने नैतिकता के आधार पर धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य की जो भावनाएँ जागृत की हैं, वे आज भी भारत के जनजीवन में पूर्णत: परिव्याप्त हैं। इन भावनाओं के आधार पर ही मनुष्य अपने नैतिक जीवन की सार्थकता एवं निरर्थकता का विश्लेषण, विवेचन करता रहता है।

4.4.1 ¬ö´ö : †£ö ‹¾ö ¯ö×¸ ³ööÂöö : (Religions)

"धर्म" का जन्म किस प्रकार हुआ यह एक विवादास्पद प्रश्न है। प्रकृति की भिन्नताओं तथा विशालता के परिणाम स्वरुप मनुष्य में आश्चर्य की भावना का जन्म हुआ। इस रहस्य को जानने के लिए ही धार्मिक अवधारणा मनुष्य के मन में उत्पन्न हुई। वस्तुओं एवं घटनाओं में ईश्वरीय गुणों की उपस्थिति की अवधारणा अत्यंत दृढ होती गयी। इसलिए अंधविश्वासों का जन्म हुआ। धीरे-धीरे धर्म के प्रति मनुष्य की अवधारणा दृढ होती गयी। धर्म का अस्तित्व समाज में उभरकर आने लगा। मनुष्य की आन्तरिक अक्षमताओं की स्वीकृति तथा उसके प्रति श्रध्दा की अभिव्यंजना ही धर्म कहलाने लगा। प्रथमतः मनुष्य को धर्म उसके पारिवारिक परिवेश में प्राप्त होता है। मानव की धार्मिक चेतना, शिक्षा, विचारों के आदान-प्रदान एवं चिन्तन मनन के आधार पर निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। व्यक्तिगत रुप में जहाँ धर्म 'मनुष्य की वैयक्तिक साधना है वही वह व्यापक संदर्भ में विश्वबंधुत्व की स्थापना करता है। वस्तुतः धर्म मनुष्य के जीवन मूल्यों का समुच्चय होता है।

विभिन्न विदवानों ने धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी है। बाल गंगाधर तिलक के शब्दों में-"धर्म शब्द का अर्थ व्यावहारिक, सामाजिक और नैतिक समझना “ÖÖ×ÆŒü ..."[205]

इन साइक्लोपीडीया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स के अनुसार- "धर्म आध्यात्मिक तथ्यों से सम्बन्धित अवस्थाओं और प्रक्रियाओं का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करता Æ…"[206]

थॉमस डिया के शब्दों में- "धर्म, संस्कृति का मध्यवर्ती एवं मूलतत्व है। वह मानव विचार, भाव और क्रिया को दिशा प्रदान करता है, मानव आदर्शों, मूल्यों, प्रेरणाओं को स्थिर करता है। इसमें कहीं भी अविश्वास मिथ्या नहीं, सर्वत्र विश्वास, आस्था और सत्य है। सभी को एक-दूसरे पर अटूट विश्वास है और इस अटूट पर ही धर्म का विशाल भवन स्थित है।"[207]

के दामोदरन के शब्दों में- "धर्म अपने व्यापकतम अर्थ में मनुष्य के पारस्पारिक सम्बन्धों, क्रिया-कलापों, उद्देश्यों और विचारों की समष्टि है जो अलौकिक शक्तियों के विश्वास पर आधारित है। अलौकिक शक्तियों पर विश्वास सभी धर्मो की अनिवार्य विशिष्टता है, वही उसका आधार है।"[208]

डॉ. राधाकृष्णन ने धर्म की परिभाषा देते हुए कहा है कि, "धर्म वह अनुशासन है, जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है। हमें बुराई और कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है। काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को उन्मुक्त करता है। संसार को बचाने तथा महान कार्य करने की ¯ÖÏêü¸üÖÖ ‹ ¾ÖÓÃÖÖÆüÃÖ ¯ÖϤüÖ®Ö ú¸üŸÖÖ Æîü."[209]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, "धर्म मनुष्य को आध्यात्मिक तथ्यों से अवगत करवाता है। धर्म मानव कल्याण की भावना से निहित होता है। वह मानवता को विकास की ओर अग्रेसर करता है। धर्म को पूजा पाठ के संस्कारों में बाँध कर नहीं रखा जा सकता। वह मानव जीवन के कर्म पक्ष को उजागर करने वाली शक्ति है। वस्तुत: धर्म मनुष्य को सच्चाई के मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करता है। मनुष्य को निस्वार्थ एवं समाज सेवा के गुणों से प्रेरित करने वाला वस्तुतः धर्म ही है। धर्म का वास्तविक अर्थ कर्तव्य पालन है। मनुष्य यदि अपने कर्तव्य पालन की ओर सजग रहेगा तो वही उसका धर्म कहलाएगा।

धर्म समाज की रीढ कहलाता है, जिस पर पूरा समाज आधारित होता है। समकालीन परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्य यदि अपने कर्तव्यों का पालन कर "मानव धर्म" का समर्थन करे तो यही धर्म विश्व कल्याण में सहायक होगा। मनुष्य को शोषण मुक्त कर विकास के अवसर प्रदान करना ही मानव धर्म का उद्देश्य होता है।

4.4.2 ¬Ö´ÖÔ †Öî¸ü ÃÖ´ÖÖ•Ö :

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज की गतिविधियों का प्रभाव मनुष्य पर आवश्यक रुप से पड़ता है। धर्म और समाज का गहरा संबंध है। दोनों एक-दूसरे से प्रभावित होते है और एक-दूसरे को प्रभावित भी करते है। मनुष्य समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है, और धर्म समाज की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस संदर्भ में श्यामाचरण दुबे का निम्न कथन द्रष्टव्य है- "धार्मिक विश्वास और श्रध्दा ही समूह में सुरक्षा और सहयोग की भावना को जन्म देते हैं। समाज की रचनात्मक अभिव्यक्तियों, विशेषकर उसके साहित्य और कला, सामाजिक गतिविधि और क्रिया-कलाप आदि पर धार्मिक विश्वासों की प्रत्यक्ष या परोक्ष छाप अवश्य रहती है।"[210]

मानव जीवन के इतिहास में धर्म ने महत्त्वपूर्ण स्थान निभाया है। वस्तुत: धर्म का भी पता लगाया जा सकता है। आधुनिकता के प्रभाव के कारण आज धर्म का प्रभाव कुछ कम होता जा रहा है, और उसके स्वरुप में भी पर्याप्त परिवर्तन परिलक्षित हो ¸Æ Æ। धर्म के कारण ही मानव के सामाजिक व्यक्तित्व की पहचान होती है। दैवी प्रकोप से भयभीत मनुष्य कुछ अनैतिक कार्यो से सदैव ही दूर रहता आया है। उसके इस भय से सामाजिक मर्यादा प्राय: अक्षुण्ण बनी रही है। इस प्रकार सामाजिक नियमों के निर्धारण में धर्म का आरम्भ से ही विशेष सहयोग रहा है।

समाज की रुढिवादी मान्यताओं के पोषक तत्व के रुप में धर्म को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। धर्म की प्रवृत्ति परिवर्तन विरोधी होती है। परम्परागत रुढियों का परिवर्तन उसे असह्य है। जब-जब भारत में सामाजिक कुरीतियों का विरोध हुआ तब-तब धर्म ने सदैव उसका बहिष्कार किया। मानव की सामाजिक प्रगति में भी धर्म अवरोध उत्पन्न करता है। वह समाज को प्राचीन पुरातन मान्यताओं के घेरे में ही बाँधकर रखना चाहता है। धर्म, नवीन नियमों, सिध्दान्तों, कानूनों आदि का सदैव विरोध करता है।

धर्म और मनुष्य का वस्तुत: अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मनुष्य धर्म के नाम पर अपनी प्रगति अथवा विकास को नहीं रोक सकता। मानव बुध्दिमान प्राणी है। मानव को अपने बुध्दि प्रयोग द्वारा धर्म के अस्तित्व को महत्त्व प्रदान करते हुए अपना सामाजिक विकास का कार्य करते रहना चाहिए तभी मनुष्य को अपने जीवन में सफलता मिलेगी।

४.४.३ धर्म और बदलते सन्दर्भ :

आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं वैज्ञानिक उन्नति के कारण धर्म की परम्परागत मान्यताओं में पर्याप्त अन्तर आ गया है। आज धर्म परिवर्तन की अवस्था से गुजर रहा है। परम्परागत धार्मिक अवस्थाओं एवं विश्वासों पर आज प्रश्नचिन्ह लग गया है। धर्म आज वास्तविक संदर्भो से मुक्त होकर मनुष्य के संकुचित स्वार्थी, संकीर्ण विचारों से जुड़ता जा रहा है। आज धार्मिक भावना कहीं राजनीति से जुड़ी है तो कहीं स्वार्थ से और कहीं व्यापार से। इसका प्रभाव ग्रामीण समाज पर भी पड़ रहा है। धार्मिक रुढ़ियों से ग्रस्त परम्परावादी व्यक्ति के धार्मिक कृत्यों एवं

अंधविश्वासियों के धार्मिक विचारों में भी परिवर्तन हुआ है। मानव के बैध्दिक विकास का परिणाम ही विज्ञान है। विज्ञान के प्रभाव के कारण आज मनुष्य के धार्मिक विश्वास, महत्वहीन होते जा रहे हैं।

आधुनिकता के प्रचार-प्रसार के कारण जनसाधारण में नास्तिकता बढ़ती जा रही है। आज से कुछ शताब्दियों पूर्व धर्म की स्थिती सर्वव्यापक थी परन्तु आज धर्म का स्थान विज्ञान ने कुछ हद तक ग्रहण कर लिया है। पहले प्रकृति को अनन्त शक्ति सम्पन्न माना जाता था परन्तु आज विज्ञान के विकास के कारण प्रकृति से सम्बन्धित मानवीय धारणा बदल गयी है। अध्ययन, विश्लेषन एवं अनुसन्धान के कारण विज्ञान ने निरर्थक बातों को महत्त्वहीन माना है और प्रत्येक वस्तु का तर्क एवं कारण प्रस्तुत करने लगा है। तर्क के द्वारा ही परम्परागत अंधविश्वासों एवं मान्यताओं का पर्दाफाश होने लगा है। विज्ञान की विवेकपूर्ण तर्कपध्दति के परिणामस्वरुप अंधविश्वासों को असत्य घोषित किया गया इससे धार्मिक रुढ़ियों को आज विशेष महत्तव दिया जा रहा है। पहले धर्म सत्य को प्रकाशित करने वाला माध्यम था परन्तु आज सत्य को तर्क संगत रुप में प्रस्तुत कर विज्ञान ने अपनी तर्कपूर्ण शक्ति का परिचय दिया है। ग्रामीण समाज में भी आज धार्मिक आस्थाएँ धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही हैं। आज चारों ओर मानव धर्म का प्रचार हो रहा है धर्म आज केवल ईश्वर प्राप्ति का माध्यम मात्र बनकर ही नहीं रह जाता है अपितु मनुष्य के बौध्दिक विकास का भी आधार बन जाता है।

वस्तुत: विज्ञान ने बुध्दिवाद को जन्म दिया। अत: धार्मिक सत्य एवं वैज्ञानिक सत्य के बीच आज विभाजक रेखा खिंच गयी है। विज्ञान ने धार्मिक मान्यताओं एवं आस्थाओं को चुनौती दी है। अत: धार्मिक विचारों को बहुत बड़ा आघात पहुँचा है। इस संदर्भ में कार्ल मार्क्स का निम्न कथन द्रष्टव्य हैं- "धर्म के कारण ही समाज में शोषण और अत्याचार बढ़ता है। शोषित अपने शोषकों का विरोध तभी कर सकते हैं जबकि धर्म का प्रचार कम हो। जिस देश में धर्म की प्रधानता अधिक है वहाँ निर्धनता तथा सामाजिक कुरीतियों की भरमार है।"[211] अत: धार्मिक मान्यताओं के प्रति अनास्था ही सामाजिक परिवर्तन का संकेत करती है। बदलती हुई मान्यताओं से धर्म का समझौता करना ही परिवर्तित सामाजिक चेतना का कारण है। परम्परागत धार्मिक रुढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए आज का समाज संघर्षरत है। धर्म और

समाज के सम्बन्धों में जब परिवर्तन होते हैं तभी समाज विकास की ओर अग्रेसर होता है। अतः धार्मिक संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं में परिवर्तन आना आवश्यक है। भारतीय समाज में धर्म से पृथक सांस्कृतिक मूल्यों को महत्व प्राप्त नहीं होता है। आधुनिक विचारधारा के विकास के कारण मनुष्य की मानसिकता में भी पर्याप्त परिवर्तन पाया जाता है। आज मनुष्य परम्परागत रुढ़िवादिता कट्टरता, अंधविश्वास एवं पैराणिक मान्यताओं के आधार पर छला नही जा सकता। आज की भारतीय ग्रामीण जनता भी सामाजिक व्यवस्था को सुधारने में प्रयत्नशील है। अतः धर्म का सामाजिक महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा है। आज नैतिक और अनैतिक को परिवर्तित सामाजिक विचारधारा के साथ जोड़ा जा रहा है। कार्य के उचित अनुचित रुप को जानने के लिए आज ग्रामीण, धार्मिक मान्यताओं का नहीं अपितु सामाजिक यथार्थ का आश्रय ले रहा है। धर्म की शक्ति आज कम होती जा रही है। कृषकों का निराशावादी एवं पारलौकिक दृष्टिकोण आज परिवर्तित दृष्टिगत ÆÖŸÖö Æü...

शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में मानव धर्म की प्रतिष्ठा का स्वर मुखरित हुआ है। "अलग-अलग वैतरणी" में जग्गन मिसिर अपने बड़े भाई की मृत्यु के बाद भाभी सुशीला की ओर आकर्षित होता है। सुशीला के वैधव्य का दुःख बाँटना चाहता है। अतः वह भाभी के साथ अवैध यौन संम्बन्ध स्थापित करता है। इसे वह मानव धर्म मानता है। जग्गन मिसिर के लिए कई रिश्ते आते हैं किन्तु उसकी भाभी किसी भी रिश्ते को पसन्द नहीं करती। दो-तीन बार मिसराईन के गर्भपात करवा लेने पर जग्गन मिसिर क्रोध प्रकट करता है। क्योंकि जग्गन मिसिर बुढ़ापे का सहारा चाहता है- "मुझे लोगों के कहने की परवाह नहीं है और क्या बचा है कहने में? हमारे तुम्हारे, मुँह पर कोई कुछ न कहे, पर पीठ पीछे तो सभी कहते हैं कि मैने विधवा भौजाई रखली है। इतना सुन लिया, दो बातें और सुन लेंगे। क्या करेंगे लोग? बहुत करेंगे कुजात कर देंगे बस अपने को तो सन्तोष रहेगा। घर में एक बच्चा आ जाएगा तो बुढ़ापे का सहारा हो जाएगा।"[212] इस प्रकार बच्चे की आस लगाए जग्गन मिसिर चुप रह जाता है, परन्तु मिसराइन अपनी सन्तान की बदनामी नहीं चाहती है। अतः बार-बार उसे गर्भपात, शिशु की हत्या करनी पड़ती है। जग्गन मिसिर ब्राम्हण है, परन्तु उसको यह कार्य न केवल उसकी आत्माको

धिक्कारता है अपितु गाँव वालों के सामने उसे अपमानित भी होना पड़ता है। देवर भाभी का यह अवैध सम्बन्ध धर्म विरुध्द है परन्तु जग्गन मिसिर इसे निभाए जाता है। पूरे उपन्यास में केवल एक व्यक्ति जगेसर ही जग्गन मिसिर के इस अवैध सम्बन्ध पर व्यंग्य कसता हुआ उसकी जाति का मजाक उड़ाता है। जगेसर का यह □úÆüÖÖ "²ÖÖ³ÖÖ □úß •ÖÖŸÖ ×²ÖÖÖ ÆüÖ ±ú»ÖÖüÖê ´ÖÖêÖß?"[213] जग्गन मिसिर के लिए कड़वा सच था। अतः ब्राम्हण की माँगन की वृत्ति की ओर जगेसर का संकेत करना जग्गन मिसिर को क्रोध दिलाता है। अतः दोनों में हाथापाई होती है। बात थानेदार तक पहुँचती है परन्तु जग्गन मिसिर स्वयं को निर्दोष सिध्द करने में ÃÖ±ú»Ö ÆüÖ •ÖÖŸÖÖ Æü…

आज के गाँवों में इस प्रकार के अवैध सम्बन्ध विशेष स्थान रखते हैं। इन सम्बन्धों के विषय में गाँव वाले भी जानते हैं परन्तु प्रत्यक्ष रुप से फटकारने या विरोध करने वाले लोक अत्यल्प ही होते हैं। वस्तुतः यह कार्य गाँव में घृणित माना जाता हैं पर जब दोनों राजी खुशी से साथ रहने लगते हैं, तब कोई उनका विरोध करने का साहस नहीं दिखाता। परन्तु उसके चरित्र की विशेषताएँ साहस, संवेदना आदि उसके व्यक्तित्व को उच्च स्थान पर पहुँचा देते हैं। डॉ.वंशीधर का निम्न कथन जग्गन मिसिर की चरित्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। "जग्गन का चरित्र उपन्यास में इतना मोहक और आत्मीय बन पड़ा है कि पाठक उनके तथा भौजाई के बीच पलने वाले मीठे सम्बन्धों को करीब-करीब विस्मृत कर जाता है। कथाकार ने इस सम्बन्ध को इतनी कुशलता से हमारे सामने रखा है कि, उससे जग्गन की चारित्रिक ऊँचाई को कहीं आघात नहीं पहुँचता। यह सम्बन्ध अत्यन्त ही सहज होकर मानवीय भावनाओं से जुड़ जाता है। एक दृष्टि से यह सम्बन्ध जग्गन के चरित्र को पूर्णता प्रदान करता प्रतीत होता है।"[214]

"औरत" उपन्यास का शिबू भी अपने रिश्ते की भाभी चन्द्रा से प्रेम सम्बन्ध रखता है। अपने मित्र कल्पु की विधवा चन्द्रा की ओर आकर्षित शिबू चन्द्रा को पत्नी रुप में स्वीकार कर लेता है। चन्द्रा भी शिबू से प्रेम करती है। अतः ग्रामीण परिवेश में उक्त सम्बन्धों का उल्लेख कर लेखक ने देवर भाभी के पवित्र रिश्ते को समकालीन परिवर्तित धरातल पर देखने का प्रयत्न किया है। गाँवों में उक्त सम्बन्धों की प्रतिक्रिया को उतना महत्त्व लेखक ने नहीं दिया। शायद वे इन

सम्बन्धों की बात बताकर ग्रामीण परिवेश के बदलते संदर्भो का उल्लेख करना चाहते हैं। लेखक ने उक्त सम्बन्धों में पड़ रही दरार का भी संकेत किया है।

ऐतिहासिक उपन्यास "दिल्ल दूर है" में लेखक ने आनन्द और पद्मरक्षिता के देवर - भाभी के बदलते सम्बन्धों का उल्लेख किया है। पद्मरक्षिता को आनन्द भाभी कहता है, उससे छेड़छाड़ करता है। वह भाभी को पत्नी जैसी ही मानता हैं- "ऐसे कैसे चला जाऊँ मेरी जान" वाशेक बोला- "भाभी जू एक दो मीठ चुम्बनों का तोहफा भी दे दो। वरना दिल्ली में तो ढेर सारे बिलख्खों (बिल्ली की तरह आँख वालों) के बीच खो जाऊँगा।"[215] पदमरक्षिता के गाल उसे विशेष रुप से प्रभावित करते हैं- "मेरे बाप होते तो तुम्हे ऐसा इनाम देते कि तुम्हारी लाल-लाल गालों पर दाँतो के निशान झलकने लगते।"[216] इस प्रकार आनन्द का पद्मरक्षिता क ओर आकर्षित होना, पद्मरक्षिता का आनन्द को "लुच्चे" गाली देना कुछ अजीब सा लगता है। उक्त वर्णन में लेखक ने उचित, अनुचित, धर्म में इस प्रकार के सम्बन्धों को अवैध माना है। हिन्दु धर्म इस बात की दुहाई नहीं देता कि, अनुचित व्यवहार करो और महान बने रहो। डॉ. सिंह जी के उक्त वर्णन से परिवर्तित धार्मिक रुढ़ियों का संकेत मिलता है।

४.४.४ ग्रामीण समाज में व्याप्त आस्तिकता :

स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों के कारण गाँव वालों की धार्मिक आस्था में अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगा। ग्रामीण समाज में आज कुछ ऐसे वर्ग भी दिखाई देते हैं जो परम्परागत धार्मिक विश्वासों के विरोध में खड़े हो रहे हैं। आज गाँवो में धर्म मात्र अंधविश्वास के रुप में प्रसिध्द हो रहा है।

शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में ग्रामीण समाज की धार्मिक आस्तिकता व्यक्त हुई है। "पापजीवी" कहानी में बदलू अपनी पुत्री के इलाज का प्रबन्ध नहीं कर पाता। वह गाँव में स्थित सत्ती मैया के आगे खड़े रहकर अपनी बेटी के स्वास्थ्य सुधार की प्रार्थना करता है- "जंगल के बीच मुसहरों की देवी बनसप्ती का स्थान है। विशाल काय पीपल के मोटे तने के पास पत्थर या मुर्तिखण्ड है जो सिन्दूर और मुर्गे के खून से रंगकर गेरु की शिला की तरह मालूम होता है। बदलू ने पागल की तरह उस लाल पत्थर पर माथा पटक दिया, "सत्ती मैया दूरी" उसके मुँह से कुछ

अस्फुट निकला और वह लड़के की तरह फूट-फूट कर रो पड़ा"[217] क्योंकि सत्ती मैया की पूजा मुर्गे के चुजे चढ़ाकर करने में वह असमर्थ है। अतः अपनी विवशता को प्रकट करने में उसके आँसू ही उसका साथ देते हैं। इस प्रकार गाँवों में देवी माँ को प्रसन्न किया जाता है। इस तरह के विश्वास आज भी गाँवों में देखने को मिलते हैं। बदलू का विश्वास है कि यदि उसके पास रुपये होते तो वह सती माई की पूजा, मुर्गे से करता और अपनी बेटी की जान बचा सकता था। इस प्रकार के अंधविश्वासों में डूबा बदलू ठेकेदार से अपनी मज़दूरी नही पाने पर यही सोचता है। कि बरम बाबा एक दिन ठेकेदार से अवश्य बदला लेंगे। जंगल में पाँच सौ बीघे जमीन बरम बाबा के नाम पर छोड़ दी गई थी। क्योंकि वहाँ गाँव के ठाकुरों ने ब्राम्हण की हत्या कर दी थी, इसलिए पूरी जमीन बरम बाबा के नाम पर छोड़ दी गई थी।

इस प्रकार बरम बाबा का डर सारे गाँव वालों को लगा रहता है। गाँवों में ऐसे अंधविश्वासों को विशेष महत्त्व मिलता है। गाँव की ग्रामीण अशिक्षित जनता ऐसी ही आस्थाओं पर पूर्णतः निर्भर रहती है।

"बरगद का पेड़" कहानी मे भी राजकुमार और राजकुमारी की असफल प्रेमकथा के आधार पर यह स्पष्ट है कि बरगद का पेड़ राजकुमारी के श्राप से मुक्त नहीं है। राजकुमारी पर संदेह करने वाले राजकुमार के कारण बरगद का पेड़ भयानक लगने लगता है, सब लोग उस पेड़ की चपेट से दूर रहना चाहते हैं। रात के समय वह पेड़ और भी भ्रमात्मक हो जाता है। "राजकुमारी ने राजकुमार को देखकर कहा, "ओ पापशंकी। तूने मुझ पर सन्देह किया! मेरे श्राप से गढ़ मिट्टी में मिल जाएगा। और आज से इस टूटे गढ़ की छाँह में कभी भी दो प्रेमी ह्रदय मिलाकर नहीं रह सकेंगे।"[218] प्रेमी-प्रेमिका, या पति-पत्नी उस पेड़ की छाया से दूर रहते हैं। गाँव के वातावरण में उक्त आस्थाओं को विशेष समर्थन मिलता है। सारे ग्रामवासी इन आस्थाओं से प्रभावित होते हैं।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में ग्रामीण आस्तिकता का उल्लेख हुआ है। करैता रामनवमी के दिन असकामिनी देवी के मंदीर में गाँव वाले पूजा करते हैं। मंदिर के इतिहास एवं नामकरण पर मंदिर के प्रथम पूजारी गोगई उपधिया इस प्रकार कहते हैं- "ई मामूली देवी नहीं। अष्टभुजा है। अष्टभुजा। जब कंस ने देवकी

की लड़की को पत्थर पर पटका तो वह आकाश में चली गई और वहीं से बोली कि मुझे क्या मारता है बेवकूफ, तेरा मारनहार जनम गया है गोकुल में। हाँ तभी से वह आकाशगामिनी कहलाई। वही है ये देवी।"[219] इस प्रकार असकामिनी देवी की पूजा करैता में हर साल रामनवमी के दिन की जाती है। उस दिन देवी धाम पर मेला भी लगता है। करैता के आस-पास के गाँवों के लोग भी उस दिन पूजा में शामिल होने करैता आते हैं। मंदिर की देख-रेख का सारा खर्च ठाकुर जमींदार परिवार वाले ही करते आये हैं। गाँव की सारी स्त्रियाँ रामनवमी के दिन देवी की पूजा करने अवश्य जाती हैं, वहाँ साड़ी, लड्डू, बताशे, चने की भिगोई घुघरी चढ़ाती हैं। औरतें सज-धज कर मंदिर आती हैं। अधिकतर बाँझ औरते अपनी मनौती मांगने वहाँ आती हैं। मंदिर के पूजारी को उस दिन रुपये पैसे भी चढ़ावे में मिलते हैं, नैवेध में चढ़ाए गए सारे लड्डुओं पर पूजारी का ही अधिकार होता है। देवी को चढ़ाई हुई सारी साड़ियाँ मंदिर का पूजारी बाद में औरतों को बेच देता है और इस प्रकार उसको दुहरा लाभ होता है। वस्तुतः पूजा अनुष्ठान के नाम पर दिये गए रुपयों एवं सारी वस्तुओं पर पुरोहित का ही अधिकार होता हैं। यह सब पाकर भी पुजारी तृप्त नहीं होता। उसकी शिकायत बनी रहती है कि दक्षिणा देने में औरतें हमेशा कंजुसी दिखाती हैं। ब्राम्हणों को न केवल दक्षिणा, भोज्य पदार्थ एवं साडियाँ ही मिलती हैं अपितु उसे मंदिर के पुरोहित का पद प्राप्त होते ही जमींदार की ओर से कुछ खेत भी मिलते हैं, जिनकी फसल उसकी अपनी होती है।

ग्रामीण स्त्रियाँ देवी की आराधना बड़े ध्यान से करती हैं। पुत्र प्राप्ति के लिए वे देवी के लिए मंदिर की चौखट पर माथा टेकती हैं, इस संदर्भ में पूजारी का व्यंग्य द्रष्टव्य है- "खाने का नहीं मिलता पर बेटवा खातिर मनौती की भीड़ घटती ही नहीं है। सारे देहात से चार पाँच-सौ महिला बाँझ तो आज आयी ही रही होंगी। चौखट पर माथा पटक-पटक कर बेटवा माँगती रहीं। हम भगवती माई से मन ही मन मनाते रहे कि कम से कम ई पाँच सौ दरवाज्जा तो बन्द ही रखो मइया। जो ही कम हो। जेतना आय गये हैं बाहर उतने ही को खाने को नहीं मिलता जो बन्द है ऊ.भी खुल जाय कहीं, तब तो ई बानरी सेना पेड़ के पत्ते भी चर जाएगी।"[220] इस प्रकार स्त्रियों की श्रध्दा पूजारी के हास्य व्यंग्य का कारण बन जाती है। पुजारी के माध्यम से जनसंख्या वृध्दी की समस्या पर लेखक का व्यंग्य सटीक बन

पड़ा है। स्त्रियों में व्यंग्य बेटे की चाह भी स्वाभाविक है। ग्रामीण स्त्रियाँ इस मनोकामना को देवी की कृपा से पूर्ण करना चाहती हैं।

गाँव वालों की धार्मिक आस्तिकता का यथार्थ वर्णन लेखक ने किया हैं। आधुनिकता के प्रचार-प्रसार के बावजुद भी आज की ग्रमीण स्त्रियों को देवी की सहायता से पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा रखना भारतीय ग्रामीण आस्था का प्रतीक है। गाँवों में आज भी बेटी की अपेक्षा बेटे को महत्त्व दिया जाता है। स्त्री वर्ग में इस आस्था को विशेष स्थान प्राप्त है।

"नीला चाँद" में बौध्द कापालिकों द्वारा की जाने वाली चक्रपूजा का उल्लेख हुआ है। काशी की शंकुधारातट पर स्थित शाक्त मठ कापिलिकों का गढ़ है। वहाँ पर चक्रपूजा के नाम पर महाकाली की तामसिक पूजा करते हैं- "करीब बीस पच्चीस व्यक्ति मण्डलाकार बैठे हुए थे। वाम भाग में श्मशान काली की भयानक मूर्ति थी। नीले रंग के प्रस्तर खण्ड से निर्मित अष्टादश भूजा वाली उस मूर्ति को देखने में डर लगता था। उसके दोनों पार्श्व के स्तम्भों पर शिशुकपाल में चर्बी में पड़ी मोटीवर्तिका जल रही थी। मूर्ति के कण्ठ में कपालो की माला थी। कटि प्रदेश में व्याघ्रचर्म को इस ढ़ंग से लपेट दिया गया था कि उसका अर्धांश नग्न दिखाई पड़े।मूर्ती के हाथों में विविध आयुध थे। रक्तस्त्रात खडग और परशु कपाल दीपों के आलोक में चमक उठते थे। लम्बी लाल रंग की जिव्हा बाहर को निकली हुई थी और प्रचंड काली के रुद्र रुप को उद्‌भासित कर रही है।"[221]

चक्रपूजा के नाम पर कापालिकों का भ्रष्ट आचरण तद्‌युगीन समाज को कलुषित करता है। अपनी साधना को सफल बनाने के लिए ये कापालिक स्वरुप एवं सुन्दर युवतियों का आधार बनाते हैं। वज्रयानियों की यह चक्रपूजा किसी भी व्यक्ति की बलि माँग सकती है और किसी भी स्त्री को हासिल कर सकती है चाहे वह उच्च कुल की राजवधू ही क्यों न हो और चाहे डोम जाति की स्त्री। वज्रयानी कापालिक सेनापति अनन्त की पत्नी चम्पक के शारीरिक सौन्दर्य से प्रभावित होते हैं। साथ ही भरत डोम की पत्नी बसन्ती का पीछा कई बार करते हैं। वज्रयानी बसंती को हर हाल में प्राप्त करना चाहता है- "मैं कृष्ण वज्रपाद का प्रशिष्य हूँ। मुझे अमोघ सिध्दि प्राप्त करने के लिए इस डोम्बी की आवश्यकता है। मुझे इसके साथ कामक्रीडा करते हुए नैरात्म्य धर्म की उपलब्धि करनी है।"[222] इस प्रकार एक

और जातिगत भेदभाव को महत्त्व देने वाले कापालिक डोम की पत्नी को कामक्रीडा का साधन बनाना चाहते हैं। वज्रयानियों की यह चक्र पूजा उनकी साधना हो सकती है, परन्तु किसी भी नारी की अनिच्छा उन्हें स्वीकृत नहीं है। उक्त पूजा के नाम पर वज्रयानी किसी भी स्त्री का अपहरण कर सकते हैं। परन्तु स्त्री का मन वे नहीं जीत सकते। उसके शरीर पर ही अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार लेखक ने धर्म के नाम पर हो रहे अधर्म पर प्रकाश डालते हुए तत्कालीन समाज में परिलक्षित बौध्द धर्म की शाखा वज्रयानियों की चरित्रहीनता का परिचय दिया है। अपने धर्म को आधार बनाकर भगवान बुध्द को लाँछित करने वाले ये वज्रयानी तद्‌युगीन समाज को कलुषित कर रहे थे। उक्त घटना के माध्यम से तद्‌युगीन समाज की धार्मिक स्थिती भी स्पष्ट हो जाती है। वज्रयानियों का मठ धार्मिक केंन्द्र के रुप में अनैतिकता का अड्‌डा बन जाता है। इस पर रोक लगाने का प्रयत्न शासन की ओर से भी नहीं होता।

एक अन्य प्रसंग में लेखक ने गवालो की बस्ती में विख्यान यक्षपूजा का भी उल्लेख किया है। नि:संतान स्त्री इस पूजा को करती है, पंडित के निर्देशानुसार स्त्री की पूजा करनी पड़ती है। पुत्र कामना के लिए यक्षराज की पूजा करने पर पूजा करने वाली स्त्री को अवश्य ही पुत्री प्राप्ती होती है, उक्त विश्वास के आधार पर की जाने वाली पूजा के प्रसाद एवं "यक्षिणी के अमृत पान को चखने के लिए भीड़ लग गयी, क्योंकि जनश्रुती थी मार्गशीर्ष तृतीया को यक्षपूजा का अमृतपान चखने से वंशवृध्दि होती है।"[223]

गोमती अपने प्रेमी कीरत की पत्नी बनना चाहती है। इसके लिए वह गौरी पूजन आरम्भ कर देती है, कालायनीव्रत आरम्भ कर देती है, शांतिकारी गौरी के मंदीर में जाकर माथा टेकती है। कात्यायनी व्रत बिना अन्न ग्रहण किए पूजा करने की प्रतिज्ञा कर गोमती व्रत आरम्भ कर देती है। उक्त व्रत की महत्ता प्रकट करती हुई इस व्रत के फल की अपेक्षा रखने वाली गोमती, कभी-कभी शंकित भी हो उठती है- "गोपियों ने व्रतारम्भ तब किया था जब शरद ऋतु थी। लाल रंग की बोरबहुटी और रंग-बिरंगे छत्राक पुष्पों। कुकुरमुत्तो से पृथ्वी भर गयी थी। मैंने यह व्रत तब लिया जब पौष की शीत से पुष्करिणी के कमल गल जाते हैं। इसी शीत मे मैं भी गल जाऊँगी। तब भी यह श्लोकार्य मेरे होठों पर काँपता रहेगा। नन्द

गोपसुतं देवि पति मे करु ते नम: मै जानती हूँ कि शान्तिकरी गौरी के अलिंन्द पर मस्तक पटकने से कुछ न होगा।"[224]

इस प्रकार अपनी आरथा के बल पर वह कात्यायिनी व्रत को सम्पन्न कर कीरत को पति के रुप में प्राप्त करती है। व्रत की महीमा का उल्लेख कर लेखक ने अविवाहित कन्या की पति प्राप्ति की आकांक्षा को व्यक्त किया है।

"शैलूष" उपन्यास में सावित्री का भगवान कृष्ण के प्रति प्रेम हुआ है। शबरी एवं मीरा के समान ही सावित्री का चरित्र उपन्यास में प्रकट हुआ है अपने कृष्ण की बुराई वह सुनना नहीं चाहती। हर प्रसंग में वह कोई न कोई पौराणिक उदाहरण प्रस्तुत करती हुई कृष्ण का उल्लेख करती है। कृष्ण के दोनों ही रुप उसे प्रिय हैं- नम्र एवं उग्र जिन्हें वह नरम किसनु और गरम किसनु के नाम से याद करती हैं। कृष्ण की भक्ति वह हमेशा किया करती है। कृष्ण की पूजा के लिए फूल वह स्वयं तोड़ती है। वह कृष्ण की आराधिका के रुप में पाठक के सम्मुख आती है- "यह तो भइया, मेरे किसुन जी का प्रताप है। नटों की माता सब्बो को किसुन जी ने जब से अपनी छत्र-छाया में ले लिया तभी उन्होंने एक रात में मुझसे कहा- "सब्बो खाली किसुन जी की पूजा बेकार है। तुमको एक साथ नरम किसुन और गरम किसुन दोनों बनना पड़ेगा। समझे भइया?"[225] वह नरम कृष्ण को गोपवेश किसुन कहती है और अर्जुन के सारथी को गरम किसुन। इस प्रकार कृष्ण भगवान के प्रति उसकी श्रध्दाभक्ति पाठक को विशेष रुप से प्रभावित करती है। सावित्री का विश्वास है कि किसुन जो भी करेंगे अच्छा करेंगे। लेखक ने सावित्री की तुलना द्रोपदी से की। द्रोपदी को जैसे कष्ट उठाने पड़े वैसे ही कष्ट, दुःख, संघर्ष सावित्री को झेलना पड़ा वर्णनात्मक शैली में लेखक ने उक्त प्रसंगो को प्रस्तुत कर सावित्री की भक्ति को स्पष्ट किया है। शैलूष उपन्यास में नट प्रजा अपनी कुलदेवी नथिया बनजारिन और गुरुमान बाबा की पूजा करते हैं। नथिया देवी की पूजा की विधि का विस्तृत वर्णन "शैलूष" में हुआ "कंडों का अहरा बनाकर लल्लू नट ने उसमें आग डाली मिट्टी की हांडी चढ़ा दी गयी। हांडी में दूध और चावल था। हांडी की गरदन पर कनइल की माला थी। सेदुंर और घी फेंट कर एक दीये में रख दिया। उसी से कबीले के हर परिवार के सरगना का नाम ले-लेकर टीका लगाया गया।"[226] हवन आदि कर विधि, विधान से नथिया देवी की पूजा होती है। सारे

कबीले के लोग पूजा में उपस्थित होते हैं। अपनी रक्षा की विनंती वे नथिया माई से करते हैं।

कंवरु देसवा से चलेली भगवती पहुँचेली मलिया अवास हो। किया मोर सेवक बाँधे देव घरना किया जोहे बटिया हमार हो। जागु जागु नथिया जागु बनजारिन पुरवो हमारी आस हो। आजु कि भोर पड़ल सेवकन पर रच्छा करो रच्छा करो मातु हो...।"[227]

इस प्रकार नथिया बनजारिन की पूजा कर नट स्त्री पुरुष नृत्य करने लगते हैं। कुलदेवी के प्रति उनकी भक्ति श्रध्दा प्रकट हुई है। नटों को अपने देवी-देवताओं की भक्ति में एक विशिष्ट आनन्द की प्राप्ति होती है। उस समय ये लोग शराब भी ¯ÖßŸÖê Æï…

अपनी कुछ कहानियों में भी लेखक ने ग्रामीण आस्तिकता का वर्णन किया है। गाँवों में स्त्रियां तुलसी के पौधे की भी पूजा करती हैं। रोज सुबह स्नान कर तुलसी को जल चढ़ाती हैं दीया जलाती हैं। "कर्मनाशा की हार" कहानी में फुलमती अपने दोनों हाथों से आँचल का खूँट पकड़कर तुलसी की वन्दना करती है। उसे इस प्रकार वन्दना करते देख भैरों पाण्डे को अपनी माँ की याद आती है- "बरसात के दिनों के बाद इस खुरदरे चौरे को उनकी माँ पीली मिट्टी के लेवन से सँवार देती, फिर श्वेत बलुई माटी से पोत कर सफेद कर देती। शाम को सूखे हुए चबुतरे पर घी के दीपक जलाकर माथा टेककर वे लड़कों के मंगल के लिए विनय करती।"[228] ग्रामीण स्त्रियों में तुलसी के पौधे के प्रति विशेष श्रध्दा होती है। आँगन मे तुलसी चौरा गाँव के हर घर में देखा जा सकता है।

"अरुन्धती" कहानी की बड़की बहू भी नियमित रुप से तुलसी चौरे पर दीया लगाती है, माथा टेकती है ऐसे में सास के द्वारा कहा हुआ वाक्य उसे बार-बार तुलसी चौरे पर माथा टेकने को विवश कर देता है। उसकी सास की इच्छा है कि उस दीये के समान ही एक नन्हा सा पोता बहू को दे- "अपने घर में जाकर कच्ची माटी के एक नन्हें दीपक में उन्होंने घी डाला। रुई की कुई के सिरे को डुबोया और आँगन के बीचो-बीच तुलसी चौरे पर दीया रखकर उन्होंने बत्ती जला दी। हल्दी सी टेम जल उठी। निर्धूम, सुगन्धित तुलसी के बिरवे के नीचे वह दीपक

कितना सुरक्षित सा लगता था जैसे उसका काम सिर्फ इतना ही है कि वह इस नन्हें बिरवे को ही प्रकाशित कर दे बस। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने माथा झुकाया तो सास भी चारपाई से उठ आयी और एक टक बहू और दीये को देखती रही- "ऐसा ही दीये सा नन्हा मुन्ना एक बच्चा... बहु...।"[229]

तुलसी चौरे को गाँव की स्त्रियाँ विशेष महत्त्व देती हैं, उसको लीपन-पोतना, दीया लगाना आदि सारे कार्य स्त्री ही करती है। चाहे वह बहू हो या चाहे स्वयं गृहस्वामिनी। इस प्रकार लेखक ने तुलसी के प्रति ग्रामीण स्त्रियों की श्रध्दा को व्यक्त किया है...

४.४.५ धार्मिक एकता एवं विकृतियाँ :

शिवप्रसाद सिंह ने कहीं-कहीं धार्मिक एकता के भी उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उनके कुछ पात्र छुआछूत एवं धार्मिक अनेकता का खुलकर विरोध करते हैं। ऐसे आदर्श पात्रों की सृष्टी कर लेखक ने भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त सामाजिक एवं साम्प्रदायिक विरोधी तत्वों का बहिष्कार किया है। कुछ उदाहरणों के द्वारा लेखक ने धार्मिक एकता का समर्थन किया है।

"नीला चाँद" उपन्यास में शीलभद्रा देवी "श्री माँ" के रुप में काशी नगरी में सम्मान पाती है। वह वास्तव में बंगदेश की रहने वाली है। पति के अत्याचारों से तंग आकर वह काशी भाग आती है। कालंजर के शासक विद्याधर से वह प्रेम करती है। विद्याधर की मृत्यू के पश्चात् उसे विशेष प्रसिध्दि प्राप्त होती है। डोम जाती के सद्‌हृदयस्थ जिस रामचन्द्र की सहायता से शीलभद्रा काशी पहुँच जाती है, उसी को वह अपना भाई मानने लगती है। उसके घर का भोजन करने में भी वह संकोच नहीं करती। श्रीमाँ कृष्णन से कहती है, "तुझे अभी महेश के साथ भद्रवन के दक्षिणी कोण पर स्थित डोमों की झोपडियों में जाना है। तुम लोग भरत डोम से कहना कि श्रीमाँ का आदेश है कि हाथ-पैर धोकर अगस्त्य यानी अगतिया के फूल तोड कर दे जाय।"[230] शीलभद्र ही वज्रयानियों से भरत डोम की पत्नी बसंती की रक्षा करती है। भरत के पुत्र को वज्रयानियों के अवचेतन से मुक्त करती है, इस कार्य से शीलभद्र को ख्याति प्राप्त होती है। भरत डोम को कीरत भी

"काका" कहने लगता है। शीलभद्रा के कहने पर ही कीरत डोम के परिवार की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लेता है। भरत की मूर्च्छित अवस्था में कीरत उसके पास बैठ जाता है, उसके चेहरे पर जल छिड़ककर उसकी मूर्च्छा को दूर करता है। शीलभद्रा ही के समान कीरत भी भरत डोम को महत्त्व देता है, उसे "मानव" के रुप में समाज में स्थान दिलवाता है। डोम के कारण ही शीलभद्रा काशी में कुलय और पतिता भी कहलाती है। वस्तुतः शीलभद्रा का चरित्र इस दृष्टि से सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है- "समाज में डोम जाति के प्रति बध्दमूल धारणाओं तथा गुलामो की तरह पीसे जाते इन लोगों को बदलने का सराहनीय कार्य करने का बड़ा उत्तरदायित्व निभाता हुआ श्री माँ का चरित्र बहुत अपना और व्यावहारिक तथा अनुकरणीय बन पड़ा है।"

"अलग-अलग वैतरणी" का खलील हिन्दुओं के साथ सद्भावना पूर्ण व्यवहार करता है। देवी चौधरी द्वारा ज़मीन हड़प लिए जाने पर भी वह हिन्दु जाति को नहीं कोसता अपनी बदकिस्मती की बात कह वह गाँव छोड़ने के लिए भी तैयार हो जाता है परन्तु हिन्दु धर्म या हिन्दु समाज़ के प्रति असन्तोष व्यक्त नहीं करता। वह मुसलमानों की गलती को भी स्वीकार करता है। मुसलमान आक्रमणकारियों की साम्राज्यवादी नीति का भी वह विरोध करता है- "मुसलमान सब बाहर से ही नहीं आये हैं लेकिन मुसलमान धर्म तो बाहर से आया है। और जो उसको लेकर आये वे हमलावर तो थे ही। कोई हमलावर किसी का बर्तन छीने, उस पर कब्जा करे उसके मंदिरों को तोड़े उसकी लड़कियों को जबर्दस्ती छीने, तो क्या वह कौम उसे देवता मानकर उसका पैर चूमेगी? उस कौम के बदन में ताकत नहीं कि वह हमलावर को पीछे धकेल दे, मगर उसकी तहजीब और रुह में वह ताकत जरुर थी कि वह हमलावर से कभी हार न माने। हिन्दुओं ने कभी भी मुसलमानों को अपने से बेहतर इन्सान नहीं माना। तो क्या यह उनकी तंग दिली कही जाएगी? और मै सोचता हूँ कि यह उनकी ताकत थी, जो उसको सँभालने में मददगार ÃÖÖx²ÖŸÖ Æ‡…"[231]

लेखक ने खलील मियाँ के चरित्र के माध्यम से अच्छे मुसलमानों के ह्रदय की पहचान करवायी है। ग्रामीण में ऐसे मुसलमान अत्यल्प ही होंगे।

"औरत" उपन्यास में करमूपुरा गाँव में हिन्दू मुसलमानों के बीच प्रेम एवं सद्भावना का चित्रण हुआ है। जहर एक ऐसा मुसलमान है जो हिन्दु पर्व त्योहारों को उसी उत्साह एवं आनन्द के साथ मनाता है, जैसे कि हिन्दु होली के अवसर पर। वह भी ठंढाई बनवाता है। उसकी पत्नी भी उत्साहपूरी होली की पार्टी का स्वागत करती है। लेखक ने हिन्दु और मुसलमानों की इस सद्भावना का उल्लेख कर, करमूपुरा मैं हिन्दु-मुसलमान मिलकर होली खेलते आए हैं।[232]

उक्त प्रसंग से यह पता चलता है कि करमूपुरा गाँव में धार्मिक विद्वेष नहीं है। लोग मिलजुल कर विभिन्न धर्मो के पर्व त्यौहारों को उत्साहपूर्वक मनाते हैं। सलमा होली के अवसर पर रामसकल को सफेद नया कुरता देती है, जिसे पहन कर वह होली खेलता है। इस प्रकार हिन्दु और मुसलमानों के परस्पर प्रेम एवं सौजन्य से ग्रामीण वातावरण मंगलमय हो उठता है।

"किसकी पाँखे" कहानी में गाँव के हर काम में अशरफ चाचा आगे-आगे रहते थे। जाति-पाती के बंधन को न मानने वाले थे। फिर भी हर गाँव में ज्ञानू पंडित जैसे पाखंडी लोग होते हैं। जो दो धर्मो में दंगा-फसाद पैदा कर देते हैं। ज्ञानू पंडित के पिता की मृत्यू के पश्चात् अशरफ चाचा से देवी के पूजापे में चन्दा नहीं लिया गया। ज्ञानू पंडित कहता है "मै देवी माता की पूजा में म्लेच्छ से चंन्दा नहीं ले सकता। यह हमारे धर्म के विरुध्द है। जो लोग मन्दिरों को अपवित्र करते हैं उन पर हिलाली ध्वजा गाड़ते हैं, उनके पैसे से पूजा नहीं हो सकती।" अशरफ चाचा के कलेजे में जैसे बिना नोक का भाला पूरे जोर से उतर गया हो। उनका चेहरा बिलकुल स्याह हो गया। अशरफ चाचा तैश में आकर कहते हैं, "म्लेच्छ! मैने आज तक कभी आदमी को मजहब की तराजू पर नहीं तौला पण्डित! मैं तो यही समझता था कि मुकद्दस माँ के दरबार में सभी बच्चे बरबार हैं, वहाँ जात, कौम का कोई फर्क नहीं होता।"[233] आज समाज में ज्ञानू पण्डित जैसे लोगों के कारण ही व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए दो धर्मो के बीच दरार पैदा करने का काम होता है। और धार्मिक एकता में बाधा पहुँचाते हैं। ऐसे लोगों को समाज से निण्कासित करना चाहिए। तभी समाज में धार्मिक एकता रह सकती है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान के प्रचार प्रसार के कारण बहुत हद

तक शहरी वातावरण बदल गया है। धार्मिक मान्यताएँ भी शहरों में पूरानी पड़ गयी हैं। अत: धर्म का मूल्य घटता जा रहा है। शहर ही नहीं गाँवो में भी धर्म का अर्थ संकुचित होकर रह गया है। आज ग्रामीण समाज में धर्म केवल बाह्याचार बनकर रह गया है, जिसके अन्तर्गत परम्परागत धार्मिक रुढियों की विवेकहीन स्वीकृति देवी देवताओं की स्वार्थ पूर्ण पूजा आराधना भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यता आदि धार्मिक रुढ़ियाँ ही ग्रामीणों की आस्था का केन्द्र बन गया हैं। इसका प्रमुख कारण ग्रामवासियों की अज्ञानता एवं अशिक्षा है। शिक्षा के अभाव में भारतीय ग्रामीण धार्मिक रुढ़ियों का अंधानुकरण कर उक्त परम्पराओं को ही महत्त्व देना चाहते हैं। सुधार की भावना से ओत-प्रोत कुछ व्यक्ति वस्तुत: गाँवों में धार्मिक सुधार लाना तो चाहते हैं परन्तु उन्हें सफलता नही मिलती है। ग्रामवासियों की मानसिकता को वे बदल नहीं पाते। शिवप्रसाद सिंह ने अपने कथा-साहित्य में ग्रामीण परिवेश के अन्तर्गत ग्रामवासियों की स्वार्थपूर्ण धार्मिक भावनाओं को वाणी प्रदान की है। ग्रामीण जीवन में व्याप्त अन्धविश्वासों का निराकरण कर लेखक ने अपने कर्तव्य का पालन किया है।

४.४.५.१ बाहयाचार :

ग्रामीण समाज में धर्म एक दिखावे के रुप में ही रह गया है। धर्म की आड़ में लोग अपने स्वार्थ सिध्दि में लगे हुए हैं। "नीला चाँद" उपन्यास में धर्म के नाम पर किए जाने वाले पापाचार पर लेखक ने प्रकाश डाला है। विनायक भट्ट ब्राम्हण हैं जो कुँवारी कन्याओं को आर्थिक सहायता करता है, ब्याज पर रुपया देता है, बदले में अपनी काम वासना को भी तृप्त करना चाहता है। वह स्वयं को कापालिक मानता है और रोहिणी की भैरवी मानकर उसे अन्तत: हासिल कर ही लेता है। रोहिणी की निर्धनता का लाभ उठाकर विनायक भट्ट उसका कौमार्य भंग करता है-

"अब जो कुछ हुआ उसे भूल जा रोहिणी, तू आरोहण के लिए ही बनी है, मैं तुझे स्वर्णाभूषणों से लाद दूँगा, बस इतन कह दे कि तू यह सब किसी से नहीं कहेगी। रोहिणी, मैं सिध्द भैरव हूँ। तुझे प्राप्त करने के लिए मैंने दो वर्षो तक ŸÖÕÃµÖÖ ´Öë ×²ÖŸÖÖµÖê.. ÃÖÖ¬Ö®ÖÖ ´Öë ŸÖÖ-ŸÖÖ• ÕÖŸÖÖ ¸ÆÖ.."[234] 3ÖÂ™ "Öx¸¡Ö ¾ÖÖ»Ö

विनायक भट्ट की चार पत्नीयाँ हैं। फिर भी वह ब्राम्हण, कन्या रोहिणी में धन-दौलत की आशा बाँधकर उसे हमेशा के लिए अपना बनाना चाहता है परन्तु अपने ही शिष्य बन्धुजीव द्वारा वह पकड़ा जाता है। शिष्य के चरणों में गिरकर उक्त उस घटना पर वह पड़दा डालना चाहता है।

बिस्सू मिसिर नामक एक अन्य ब्राम्हण पात्र का उल्लेख "नीला चाँद" उपन्यास में हुआ है जो धर्मशाला के नाम पर वेश्यालय चलाता है, अपने रसोइए नंदन पाण्डे के साथ मिलकर वह अपनी धर्मशाला में ठहरने वाले पुरुष अतिथिओं के लिए उनकी इच्छानुसार कामवासना की तृप्ती हेतु लड़कियों का प्रबन्ध करता है। मिस्सर कहता है- "आपने यह क्या किया अन्नदाता? यहाँ बहुत वर्षो से छिपाकर यह सब होता आ रहा है। श्रीमान, अगर आवरण-अवगुंठन नहीं रहता तो गणिकाओं को छोड़ कर रात्रि बिताने वाले लोग यहाँ कैसे आते? हर मनुष्य को † ¯ÖÖß »ÖÖ• Ö □úß ×“ ÖÝÖÖ Æüi."[235] इस प्रकार धर्मशास्त्र की आड़ में अवैध कार्य चलाने वाले उसका भण्डाफोड़ अन्ततः दासी तुलसी द्वारा ही होता है, उक्त प्रसंग द्वारा लेखक ने ब्राम्हणों के भ्रष्ट आचरण पर ही प्रकाश नहीं डाला वरन नन्दन पाण्डे एवं बिस्सू मिसिर को मांसाहारी भोजन के प्रेमी के रुप में भी चित्रित किया है। नन्दन पाण्डे ने गमछे को खोला और आरकुट की थाली में गठरी रख उसे उलट दिया। मांस था। दुलारी ने देखा और क्रोध से काँपती हुई बोली, "क्यों रे उल्लू? तूने मुझसे गमछा मांगा और इसमे मांस बांध कर लाया? तू ब्राम्हण नहीं कुलकलंक Æ…"[236] इस प्रकार भारतीय समाज की सर्वश्रेष्ठ जाति कहलाई जाने वाली ब्राम्हण जाति के पतित पुरुषों की चारित्रिक दुर्बलताओं का वर्णन कर लेखक ने तत्कालीन ब्राम्हण जाति में व्याप्त दुर्गुणों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्राम्हणों के बाहयाचार धीरे-धीरे कितने खोखले एवं भ्रष्ट हो गये हैं।

"शैलूष" उपन्यास में रेवतीपुर का जमींदार घुरफेंकन भी ब्राम्हण जाति का है, परन्तु उसके कार्य एवं व्यवहार अत्यन्त ही धृणित हैं। इन्स्पेक्टर सूरजभान घुरफेंकन के लिए किए गए कारनामों की आलोचना करता हुआ उसे ब्राम्हण जाति पर कलंक मानता है। और कहता है, "क्यों बे घुरफेंकना साला कनकट्टा, तू ब्राम्हणों के घर पैदा कैसे हो गया? तेरे किये पर हर बाभन की गर्दन शर्म से झुक

•ÖÖŸÖß Æ…"[237] उच्च कुल में जन्म लेने के बाद भी घुरफेंकन का आचरण पतित एवं 3ÖÂ™ Æ

"शैलूष" उपन्यास में ब्राम्हणों की कामुक प्रवृत्ति का भी उल्लेख हुआ है। घुरफेंकन और नटों के झगड़ो में नटों की झोपड़ी में आग लग जाती है। जली हुई ताहिरा नामक मुसलमान नट्टिन के साथ घुरफेंकन के समर्थक कुछ ब्राम्हण युवक बलात्कार करने में भी पीछे नहीं हटते। लेखक ने उक्त प्रसंग में ब्राम्हणों की चारित्रिक दुर्बलता को अभिव्यक्त किया है। ताहिरा के बलात्कार के लिए पंक्तिपावन ब्राम्हण युवकों की लाइन छीलदारी के दरवाजे पर लगी हुई बता कर लेखक ने इस प्रकार को प्रभावकारी बनाने का प्रयत्न किया है। ब्राम्हण युवक का ताहिरा से यह कहना "ताहिरा आपा, मै पंक्ति पावन ब्राम्हण हूँ। गंगाजल से भी निर्मल। आज मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा। जन्म जन्मांतर के पाप भी मेरे शरीर के स्पर्श से नष्ट हो जाते हैं।"[238] इस प्रकार छात्रावास में रहकर शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्राम्हण युवक एक-एक कर ताहिरा का भोग करना चाहते हैं। समाज में प्रतिष्ठित कहलाई जाने वाली ब्राम्हण जाति के कतिपय व्यक्तियों की कलंकित व्यवहार को लेखक ने व्यक्त किया है।

ब्राम्हणों के बाह्याचार पर भी "नीला चाँद" उपन्यास में लेखक ने व्यंग्य कसा है। ब्राम्हण स्वयं को योग्य एवं प्रतिष्ठित समझते हैं। काशी में ब्राम्हण यात्रियों को लूटते हैं। पिण्डदान करवाने के लिए आये हुए स्त्री-पुरुष से बलात धन छीनते हैं, धन न हो तो स्त्रियों के मंगलसूत्र तक को ब्राम्हण छीनने में नहीं हटते। ऐसे ही एक प्रसंग का उल्लेख लेखक ने "नीला चाँद" में किया है। काशी के गंगाधार पर पिण्डदान हेतु आए हुए यात्रियों को कोई आचार्य लूटता है, ऐसे में बंधुजीव उस आचार्य को धिक्कारता है- "निश्चित, आपको न तो वरुण का अर्थ मालूम है न तो गौरी और गणेश के बीच सम्बन्ध को ही आप जानते हैं! आप नवगृहों की पूजा करा रहे हैं। बताएँ आर्य इस संवत्सर का नाम क्या है? इस समय विभिन्न गृहों का गोवर भ्रमण किन-किन राशियों में हो रहा है। बोलिए बोलते क्यों नहीं? आप तोता रटत ब्राम्हण हैं, आचार्य आपने संस्कृत के कुछ भ्रमर श्लोक याद कर लिए है। उन्हे ही संस्कार के समय मुंडन के समय, विवाह के समय यहाँ तक कि अन्त्येष्टि तक में

बोलते हैं। आपका सारा वर्चस्व लुट गया है। ऋषियों ने स्पष्ट घोषणा की है कि जो ब्राम्हण ब्रम्हा का ज्ञाता है वही प्रतिगृह का अधिकारी भी है।" बंधुजीव ने ग्रामीण से पूछा कितना और मांग रहे हैं पंडित जी "यह कह रहे है भइया कि तुम्हें पूजा का फल तब तक नहीं मिलेगा जब तक पंडित जी की मुहमांगी दक्षिणा देकर इसे क्रय नहीं करते। इन लोगों ने मेरी बहू के गले से मंगलसूत्र और कनकमाला उतार ली Æ…"[239] इस प्रकार ब्राम्हणों के बाहयाचार एवं उनके वास्तविक स्वरुप को प्रस्तुत कर लेखक ने ब्राम्हण वृत्ति का विरोध किया है। समाज में स्वयं को धर्म ज्ञाता मानकर ये ब्राम्हण जन साधारण को ठगते हैं। काशी जैसे तीर्थस्थान में भी अपने कलंकित व्यवहार के कारण पाण्डे पूजारी यात्रियों को ठगते हैं। उनकी अर्थलोलुपता उनसे अनैतिक आचरण करवाती है। चाहे जितना भी। धन उन्हें मिले उससे उनको तृप्ति नहीं मिलती। वे मात्र आर्थिक लाभ के लिए गलत मन्त्रों को बोलते हैं। पूजा करवाने वाला व्यक्ति मंत्रों का ज्ञाता नहीं होता अत: किसी भी मंत्र अथवा श्लोक को कहकर पूजा का नाटक कर व्यक्तियों से धन ऐंठना ही इन पण्डों का कार्य है। उनका यह "बाह्याचार" सिर्फ दिखावा मात्र ही बनकर रह गया है। कहने को तो ये पण्डे पुरोहित बन जाते हैं परन्तु शास्त्रीय ज्ञान का उनमें अभाव ही होता है।

" कुहरे में युध्द" उपन्यास में लेखक ने ब्राम्हण के बाह्याचार को स्पष्ट कर दिया है। त्रैलोक्य मल्ल कहता है- "क्यों रे सुफलक, निकृष्ट बृषल, तू अन्तत: वर्ण संकर ही प्रमाणित हुआ। देवलब्धि की गोंड पत्नी के पुत्र थे तेरे पूर्वज मैंने पारिवारिक शत्रुता समाप्त कर देने के लिए तुझ पर विश्वास करके चित्रकूट का भुक्तिपति बनाया। अपनी पितामह के गोंड रक्त को भी तुझ कुलांगार ने लजाया और युवती गोंड कन्याओं का तूने शीलभंग किया, अपने इन कुक्कुरों, रघुनन्दितों से उनकी बोटियाँ-बोटियाँ नुचवाई। अब तू कौन सा मूँह लेकर अपने को छोटे राजा कहलाता है।"[240] क्षत्रिय लोग भी अपनी राजसत्ता का गलत इस्तेमाल कर भोगलिप्सा ´Ö ×»»Ö¯ÖŸÖ ¸ÆŸÖ Æ…

त्रैलोक्य मल्ल ब्राम्हण जाति के प्रति श्रध्दालु हैं, लेकिन गंगाधर का तुर्क आक्रमणकारियों का समर्थन करना अच्छा नहीं लगता। गंगू ज्योतिषी के प्रति त्रैलोक्य मल्ल के निम्न वचन, "सीमा के भीतर रहो ब्राम्हण! हम इस जाति के

लोगों को प्रणाम करते हैं। क्योंकि तुम्हारे पूर्वजों ने सदैव सत्य के प्रकाश को सही दिशा दी है। तुम अहंकार में फूलकर चमडे की मशक की तरह बहुत हवा मत बांधो। शमशीर की एक नोक घुस जाये तो सारी बातुनी हरकतें फुस्स हो जायेंगी। इसके पहले कि मुझे तुम दोनों को धक्के मारकर निकाल देने की आज्ञा देनी पडे, अभी जयदुर्ग छोड़ दो। दुर्ग छोड़ो अन्यथा प्राण।"[241] इस प्रकार त्रैलोक्य मल्ल का गंगाधर को धिक्कारना उनकी वंश परंपरा के सद्‌गुणों का बखान करना ब्राम्हणों के लिए आवश्यक गुणों की ओर संकेत करना आदि बातें उपन्यास में स्वाभाविक 1ý¯Ö ÃÖ ¯ÖÃÖŸÖÖŸÖÖ Æü< Æü...

"गली आगे मुड़ती है" उपन्यास में भी तिवारी वंश के ब्राम्हणों के बाह्याचारों एवं बाह्याडम्बरों पर लेखक ने व्यंग्य किया है उपन्यास का नायक रामानंद तिवारी स्वयं को गणेश तिवारी के खानदान का मानता है किन्तु कई ऐसे कार्य, कई ऐसी घटनाएँ उसके द्वारा घटती है कि वह स्वयं को लज्जित अनुभव करता है। वह एक सद्‌विद्यार्थी था, किन्तु आजकल ऐसे विद्यार्थी कोई विशेष महत्त्व नहीं पाते। अतः वह अपने तिवारी वंश की मर्यादाओं का उल्लंघन करता हुआ अपने जनेऊ के धागे तोड़ देता है- "आज से मैं व्रात्य हूँ। यानी व्रात्याधर्मपतित पाखंड परिणाम श्री रामानन्द तिवारी। बस। आज से। मेरा सिर्फ एक व्रत है- वह है सदाचारहीनता और सहनशीलता की बर्खास्तगी।"[242] इस प्रकार का बाह्याचार का विरोध कर स्वयं को प्रथक मानने लगता है।

बलात्कार के पश्चात् जब रज्जो को देखने रामानंद जाता है तब वह हरिजन रज्जो को दिलासा तो देता है किन्तु तिवारी वंश की परम्परा का विरोध करती हुई उसकी मानसिकता रज्जो के उन अंगो को देखना चाहती है जिन्हें बलात्कार के समय जख्मी होना पड़ा था- "मैं शायद ब्लाउज के नीचे पेटीकोट के भीतर झाँकने की हवस छिपाए था कि क्या और कैसे घटित हुआ है फिर मेरे भीतर फुफ्कारने की आवाज उभरी, "गणेश तिवारी का खून क्या इतना हल्का होता जा रहा है? "मैं हारे हुए जुआड़ी की तहर दरी पर बैठ गया," इस प्रकार कई अन्य स्थलों में रामानन्द की आत्मा उसे धिक्कारती है, विरोध करती है, ब्राम्हण वंश की दुहाई देती है, अतः रामानन्द तिवारी अपने मन को नियंत्रित कर

पाता है और पतित आचरण करने से बच जाता है।

अपनी बहन आरती के घर से भाग जाने के बाद रामानन्द तिवारी उससे अप्रसन्न रहता है, परन्तु एक बार जब वह उससे मिलने जाता है तो आरती उसके पैरों में झुकने को तत्पर होती है, परन्तु उसे गणेश तिवारी के वंश की मर्यादा का स्मरण हो आता है- "भइया"। वह एकदम मुड़ी और पैरों की ओर झुकी पर सहसा उसने हाथ रोक लिए। तो यह गणेश तिवारी के वंश की परम्परा भूली नहीं है? तिवारी वंश को शपथ थी, इसे लड़कियाँ भी जानती थीं कि भाई, बाप या माँ किसी का भी पैर छुना घर की लड़कियों के लिए वर्ज्य है। लड़की श्री है, ललिता है, वह पैर छूने के लिए झुकी नहीं कि सामने का पुरुष श्रीहीन हो जायेगा, उसकी आयु घट जाएगी। सब कुछ गणेशी तिवारी के साथ चला गया पर यह वर्जना उसके अनपढ़ वंशज अब तक भी निभाते चले आ रहे हैं।"[243] इस प्रकार ब्राम्हण वंश के कतिपय आचारों का विरोध आधुनिक पीढ़ी तो कर रही है परन्तु उसका भी निर्वाह ठीक तरह नहीं हो पा रहा है। किरण और जयन्ती से जब भी रामानन्द मिलता है, उसे अपने तिवारी वंश की मर्यादा का अहसान होने लगता है। कहीं-कहीं रामानन्द का किरण और जयंती के साथ प्रेमालाप, आलिंगन, चुम्बन आदि के प्रसंगों में भी रामानन्द की आत्मग्लानि व्यक्त हुई है। वह बार-बार स्वयं को गणेशी तिवारी का वंशज सिध्द करना चाहता है।

"शैलूष" उपन्यास में नट कबीलों के आग लग जाने पर पुरुष और स्त्रियाँ उसमें झुलस जाती हैं। जिससे मनुष्य की पहचान कर पाना असम्भव हो जाता है। सूरज का शरीर भी आग से झुलस जाता है, लगभग नग्न अवस्था में वह अपनी रक्षार्थ चिल्लाता रहता है। ऐसे में घुरफेंकन के व्यक्ति उस पर हिन्दु होने का संदेह करते हैं- "एक नंगा आदमी जो बहुत झुलस गया है, बगल में गिरा है। हमारे एक दोस्त ने कहा कि यह मुसलमान नहीं है। क्योंकि इसका खतना नहीं हुआ है।"[244] लेखक ने उक्त प्रसंगो के आधार पर मुसलमान धर्म के महत्त्वपूरी बाह्याडंबर पर प्रकाश डाला है। मुसलमान में यह सांस्कृतिक आचार माना जाता है। मुसलमान धर्म संस्कारों में यह सबसे प्रसिध्द एवं महत्त्वपूर्ण संस्कार है। यह आचार उनके धार्मिक पहलु को उजागर करता है।

इस प्रकार लेखक ने हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मों की धार्मिक प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए उनके बाह्याडम्बरों का वर्णन किया है।

४.४.५.२ भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताएँ एवं अन्य अन्धविश्वास :

आज मानव ने वैज्ञानिक दृष्टि से जो उन्नति की है वह उसके बौध्दिक विकास का ही परिणाम है। परन्तु आज भी भारतीय ग्रामीण समाज में अन्धविश्वासों, भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताओं को विशेष महत्त्व प्राप्त है। पहले पहल गद्य-साहित्य में भूत-प्रेत आदि को मनोरंजन हेतु स्थान मिलता था, परन्तु समकालीन साहित्य में भूत-प्रेत आदि को नए संदर्भो एवं प्रसंगो में स्थान मिल रहा है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में भूत-प्रेत की कथाओं को प्रमाण रुप में प्रस्तुत कर उनके नवीन अर्थो को प्रदान किया है। शैलूष उपन्यास में नटों का जीवन चित्रांकित हुआ है, जिसमें उनके भूत-प्रेत सम्बन्धी अंधविश्वासों की भी चर्चा हुई है। बीमार हालत में सुरजीत नट का डॉक्टरी इलाज भी किया जाता है, परन्तु उसका कोई असर नहीं होता। इसलिए उसका पिता गोवरधन गरीब ओझा से सम्पर्क कर अपने बेटे पर से चमाइन की प्रेतात्मा को हटाना चाहता है। इसके लिए उसे बहुत रुपया खर्च करना पड़ता है। गरीब ओझा अपनी कई माँगो को रखता है, उसके साथी भी उस पूजा में शामिल होना चाहते थे- "सोच लो भइया, बाद में गरीबू को दोस मत देना, मेरे साथ दो आदमी अउर रहेंगे। सबकी खातिर तवाजा करनी होगी। दन्तार सूजर का छौना जो कम से कम दो साल का होना चाहिए, खरीदना पड़ेगा। डेढ़-दो सौ से कम में सूअर नहीं मिलेगा। हमारे गुरु महाराज कहते थे कि दो महिने के छौने को काटने का मतलब है मरी को धोखा। जैसी करनी वैसी भरनी।"[245] ‡Ã0 प्रकार डरा धमकाकर ओझा गोवरधन नट के प्रेत का दूर भगाने के लिए पूजा का आयोजन करता है। ओझा के खाने पीने की पूरी व्यवस्था भी गोवरधन को करनी पड़ती है। इस प्रकार की पूजा कर ओझा अपने स्वार्थ की सिध्दी भी करता है। ओझा रात में यह पूजा शुरु करता है- "तीनों सोखा रेवतीपुर के नाले के पश्चिम डोह के चौरे पर पहुँचे और वहाँ पूजा हुई कडुवे तेल में सिंदूर मिलाकर गोरया के चौरे पर टीका लगाया गाया। एक कागज पर गरीबू ओझा पन्द्रह चक्र बनाकर

लाये थे। मुर्गे की गरदन उड़ा दी गयी। खून की पतली धार से गोरया का चबूतरा भीज गया। उन्होंने आग में लोहबान डाला।"[246] इस प्रकार पूजा की जाती है ओर चमाइन की प्रेतात्मा को भगाने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु सुरजीत इस पूजा का विरोध करता है। टाईफाइड को दूर करने के लिए डॉक्टरी इलाज की आवश्यकता है, यह जानते हुए भी उसका पिता ओझा पर विश्वास कर उसे बुला लाता है। ओझा कटे मुर्गे को पकाकर अपने साथियों सहित वहीं खा जाता है। इस प्रकार धोखा देकर, खा पीकर ओझा अपने साथियों सहित वहाँ से चला जाता है। इस प्रकार ओझा से मुक्ति पाने के प्रयत्न में सुरजीत को भगा देने में सफल होते हैं। ननकु ओझा की जेबों से रुपये भी छीन लेता है। इस प्रकार ओझा के प्रभाव से मुक्त होकर सब अपने कार्यो में लग जाते हैं।

ग्रामीण समाज में व्याप्त अंधविश्वास को लेखक ने अपने गद्य-साहित्य में प्रस्तुत किया है। गाँव वालों की अज्ञानता एवं अशिक्षा के परिणाम स्वरुप कतिपय अंधविश्वासों को आज भी महत्त्व मिल रहा है। अत: ग्रामों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार का कार्य यदि हो तो शायद इस प्रकार के अंधविश्वासों को गाँव में मान्यता प्राप्त नहीं होगी।

"गली आगे मुड़ती है" उपन्यास में भी हरिजन बस्ती में इस अंधविश्वास को पनपते हुए बताया गया है। रज्जो पर बलात्कार कॉलेज के छात्र करते हैं, परन्तु हरिजन बस्ती में इस बात को लेकर विवाद उत्पन्न होता है, लोग उस पर प्रेतात्मा का प्रभाव मानते हैं। रज्जो का पिता ओझा के कहे अनुसार लाल मुर्गी और उसके चूजे ले आता है, इन पाँचों मुर्गियों को बाहर दरवाजे के पास काटा जाता है और उसके खून को पीने के लिए रज्जो को आग्रह किया जाता है। रज्जो उस खून को पीना नहीं चाहती तब रज्जों कहती है- "हम मुरगा के खून नहीं पिउबै, हम मनई के खून पिउबै।"[247] इस प्रकार काशी नगरी की हरिजन बस्ती में व्याप्त ये अंधविश्वास एक ओर तो रोगी या बीमार व्यक्ति को शारीरिक यातना देते हैं तो दूसरी ओर उन लागों की आज्ञनता को व्यक्त करते हैं। वस्तुत: रोगी को इलाज करवाने की बात का विरोध कर कुछ लोग उसके भूत-प्रेत सम्बन्धी उनके विचार वास्तव में उनकी अविकसित मानसिकता का परिचय देते हैं।

लेखक ने अपनी कहानियों में भी "बरम बाबा" का उल्लेख किया है जो गाँव वालों के लिए भूत-प्रेत के समान भयभीत करने वाला है। "बरगद का पेड़" कहानी में विशाल बरगद का वृक्ष गाँव वालों को अपने भयंकर रुप से डराता रहता है। प्रस्तुत कहानी में एक प्राचीन कथा का उल्लेख किया गया है जिसका उस गाँव से सम्बन्ध है। उस गाँव के टीले पर स्थित देवीगढ़ नामक छोटी सी रियासत का राजकुमार वीरेन्द्र, अपनी पत्नी की हत्या का कारण बनता है। विवाह के बाद दहेज में राजकुमारी एक तोता भी साथ लाती है। उस तोते के मुख से "रमेश" शब्द को सुन राजकुमार अपनी पत्नी के चरित्र पर संदेह करता है, वह तलवार से तोते की करदन काट देता है। राजकुमारी के प्राण तोते में बसते हैं, अतः राजकुमारी ने राजकुमार को देखकर कहा, "जो पापशंकी! तूने मुझ पर सन्देह किया! मेरे श्राप से गढ़ मिट्टी में मिल जायगा। और आज से इस टूटे गढ़ की छाँह में कभी भी दो प्रेमी हृदय मिलकर नहीं रह सकेंगे।"[248] इस प्रकार टीले का वह बरगद का पेड़ मृत राजकुमारी के प्रेत के समान जगता है। गाँव का कोई व्यक्ति उस पेड़ के पास नहीं जाता रात के समय तो उस पेड़ की ओर काई देखता भी नहीं गाँव वालों का यह विश्वास है कि राजकुमारी और राजकुमार के असफल प्रेम की गाथा का प्रतीक बरगद का पेड़ प्रेमी प्रेमिकाओं और पति-पत्नी के लिए अशुभकारी है, क्योंकि इस पेड़ ने मिलाने का नही बिछडाने का काम किया है। इस प्रकार गाँव वालों की आस्था के कारण बरगद का पेड़ प्रेत का प्रतिरुप बन जाता है।

"पापजीवी" कहानी में 'बरम बाबा" नामक प्रेतात्मा का उल्लेख हुआ है। गाँव के ठाकुरों के हाथों किसी बारम की हत्या हो जाती है इस कारण पूरी जमीन बरम बाबा के नाम से छोड़ दी जाती है- "पाँच सौ बीघे पक्के में कोई आदमी डर के मारे पेशाब तक नहीं करता। वैसे पूरा जंगल बबूल और पलाश की लकडियों से भरा है, किन्तु किसी की क्या हिम्मत जो एक तिनका भी छू ले। कहते हैं एक बार गोरी सरकार ने परती तुड़वाने का निश्चय किया ट्रैक्टर आया तो चलाने वाला ही मर गया, उसी रात को जमींदार की बूढ़ी माँ को सपना हुआ और उन्होंने बरम बाबा के चबुतरे को पक्का बना दिया और इस तरह बाबा की नीव और भी पुख्ता हो गयी।"[249]

"सँपेरा" कहानी में एक अंधविश्वास का उल्लेख हुआ है। बक्कस नट अपनी लड़की कम्मो की मौत का बदला लेने के लिए जमींदार को साँप से कटवाना चाहता है। विषैले साँप को लाकर वह तंत्र विद्या के द्वारा साँप को जमींदार के घर छोड़ता है, उसका विश्वास है कि साँप जाकर जमींदार को काट लेगा और वह अपनी बेटी की मौत का बदला ले सकेगा। साँप को वह पूरे विश्वास के साथ छोड़ता है- "उस पापी का सर्वनाश हो। मेरी लड़की ही की तरह छटपटा-छटपटा कर वह मरे। उसके कुल में कोई पानी देने वाला न रहे। उसकी औरत बेवा होकर आठ-आठ आँसू रोये। उसके लड़के दर-दर की ठोकरें खाते फिरें...।"[250] साँप को वह छोड़ देता है परन्तु कम्मो का पति बशीर यह नहीं चाहता कि ठाकुर की मौत से उसकी पत्नी और बच्चे दुःखी हों, अतः वह अपने बाएँ हाथ में बँधी सरसों की मुट्ठी खोल देता है और साँप वापस लौटकर बशीर को ही काट लेता है। इस प्रकार के अंधविश्वास को गाँव के लोग विशेष महत्व देते हैं। तंत्र-मंत्र के आधार पर वे इस विद्या का प्रचार करते हैं।

"बरगद का पेड़" कहानी में बीमार अवस्था में विजय की दादी उसे एक ऐसा धागा बाँधती है जिससे उसकी बीमारी दूर हो सकती है- "सुनो वीनू यह उस्ताद की दी हुई आपामारग की जड़ है। जिद्दी अपदेवता उसके डर से बाँधने वाले शरीर को छोड़कर वहाँ चले जाते हैं जहाँ यह बँधती है।"[251] इस प्रकार एक धागे में इतना बल होता है कि वह सारी बीमारियों को दूर कर सकता है।

'कलंकी अवतार' कहानी में भी बाबू भेंदूसिंह का लडका पिछले माघ में निमोनिया से मर गया। लेकिन अंधश्रध्दा के कारण रोपन बारी के संदर्भ में संझा को उसकी घरवाली कहती है, "तुम यहाँ उनके लड़के के सोग में चारपायी पकडे हो, वहाँ गाँव भर में चरचा है कि दुलहिन की डोली के साथ रोपन गाँव नहीं आये थे, सो उसी असगुन से बहू विधवा हो गयी।"[252]

"नीला चाँद" उपन्यास में शीलभद्रा को अपमानित करने वाला विनायक भट्ट स्वयं को आदर्श ब्राम्हण समझता है। शीलभद्रा के चरित्र पर वह संदेह व्यक्त करता है। अतः शीलभद्रा विनायक भट्ट को श्राप देती है- "तुम्हारी पुरी में महामारियों का प्रकोप होगा। तुम लोग मक्खियों की तरह झुण्ड के झुण्ड मरोगे, अन्न के अभाव में

अकाल के बीच तुम अपना सर्वस्व खो दोगे, जिसे तुम्हारे ब्रह्मर्षि पुरुषों ने तुम्हारे लिए कठिन तपस्या से अर्जित किया था। तुम्हारा अग्निस्त्रात बुझ जाएगा तुम पूज्य-पूजन भूलकर अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित मणि-माणिक्य को बन्दर की तरह दाँत से काट-काटकर धूल में फेंक दोगे।"[253] इस प्रकार ब्राम्हण जाति को शीलभद्रा का श्राप उनके प्रति उसके क्रोध एवं अपमान की भावना को अत्यन्त तीव्रता से अभिव्यक्त करता है।

"शैलूष" उपन्यास में रेवती और सुधारक की प्रेमकथा प्रस्तुत हुई है। रेवती ब्राम्हण परिवार से है तो सुधाकर राजपूत। अतः दोनों का प्रेम सामाजिक दृष्टि से अनुचित माना जाता है। रेवती की गर्भावस्था में सुधाकर को चाबुक से मारकर रेवती का भाई अमोल सन्तुष्ट होता है। इस मार से सुधाकर की मृत्यु हो जाती है परन्तु अमोल बहन के श्रापों से मर्माहत् हो उठता है। वह विश्वास ही नहीं कर पाता कि उसकी अपनी बहन असे श्राप भी दे सकती है। क्योंकि दोनों भाई-बहन में अटूट प्रेम था। सुधाकर से रेवती का प्रेम अनैतिक इसलिए माना जाता है क्योंकि रेवती जमींदार की बहन है तो सुधाकर रघुवंशी है, राजपूत है। रेवती का श्राप अमोल को दुःखी कर देता है- "तूने एक अकलंक दंपति की आँखो से खून बरसते देखा है, हमेशा-हमेशा के लिए निरवंश रहेगा। तेरे वंश के पितर पानी के लिए छछजेंगे, तू गलित कुष्ठ से पीड़ित होकर मरेगा।"[254] अन्ततः रेवती भी अपने प्रेमी की मृत्यु के बाद स्वयं को जला कर आत्महत्या कर लेती है। फिर भी उसका श्राप सत्य सिध्द होता है।

लेखक ने उक्त प्रसंग की चर्चा द्वारा "श्राप" के औचित्य का समर्थन किया है। लोग यही समझते हैं कि दुःखी आत्मा जब श्राप देती है तब वह अवश्य चरितार्थ भी होता है। ऐसा लगता है कि श्राप पर लेखक को विश्वास है। अतः उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मैं बराबर सोचता हूँ कि ऐसे अंधविश्वास, जिनमें ओज भरा हो, सत्य जैसे क्यों लगते हैं? अंधविश्वास तो हजारों किस्म के होते हैं, पर चरितार्थ वे ही होते हैं जहाँ अन्याय से न्याय को दबाया गया है, झूठे रक्त के अभिमान में शूद्र की खाल खींची जाती है, एक बार के पतन के लिए नारी को घर से निकाल दिया जाता है।"[255] इस प्रकार श्रापों के प्रति लेखक की आस्था व्यक्त

हुई है। लेखक श्राप को उचित मानते हैं। उनके विचारानुसार मनुष्य की मनोव्यथा वास्तव में श्राप के रुप में उभर कर उसके मुख से व्यक्त होती है। श्राप के प्रभाव, महत्त्व एवं अंधविश्वास के रुप में श्राप को प्राप्त मान्यता को अभिव्यक्त कर लेखक ने उसके औचित्य का समर्थन किया है। इसके अतिरिक्त शिवप्रसाद सिंह ने कहीं-कहीं अन्य अंधविश्वासों जैसे, शगुन, अपशगुन आदि का भी उल्लेख किया हैं।

"नीला चाँद" उपन्यास में लेखक ने यह कहा है कि गृहनक्षत्रों का ठीक न होने के कारण मनुष्य को दु:ख पूर्ण परिस्थिति से गुजरने की स्थिति का सामना करना पड़ता है। इस बात का संकेत करते हुए कीरत कहता है कि ग्रह नक्षत्र यदि ठीक हों तो मनुष्य के सारे कार्य सुचारु रुप से चल सकते हैं। "कीरत, मैं संकट में तो हूँ मेरे गृह-नक्षत्र भी अच्छे नहीं चल रहे हैं।"[256] कुत्तो का रोना भी अपशकुन माना जाता है। शीलभद्रा के चरित्र पर संदेह करने वाला विनायक भट्ट सबके सामने उसे कुलटा, रखेल आदि कहता है। उस समय प्रकृति में भी अपशकुन दिखाई देते हैं- "तभी प्रज्वलित सूर्य की ओर मुह उठाकर श्रृंगालिकाएँ विचित भयदायक स्वर में चीत्कारने लगीं। उनकी चीत्कार सबको भयग्रस्त बना रही थीं। कुत्ते निर्भीक भाव से झुण्ड के झुण्ड आकर रोने लगे थे, गर्दभरी आंधी प्रबल वेग से धूलि का बवंडर उडाती धरती और आकाश को कंपाने लगी। कपोत, उलूक तथा कौवें झुण्ड बाँधकर आकाश में उड़ने लगे। कुटिया के द्वार पर खड़े लोगों के वामांग फड़कने लगे।"[257] इस प्रकार जब अनहोनी घटना घट जाती है तब प्रकृति कोई ऐसा रुप दिखाती है जिसे देख लोग किसी अपशकुन का अनुमान लगाते हैं।

"नीला चाँद" उपन्यास में कूडे-करकट को भी लेखक ने द्ररिद्रता का चिन्ह बताया है। सुअर गन्दगी को और भी फैलाते रहते हैं अत: सुअरों की तुलना लेखक ने पुरातत्ववेत्तओं से की है- "वीथिका के बीचों-बीच यह दुर्गन्धि से भरा हुआ मलबा डबरे में कच्छप के पीठ की तरह लग रहा था। इस रास्ते से आने-जाने वाले पशु, गाय, बैल बछड़े आदि इसे और भी गन्दा कर देते। भैंसे इस मटमैले जल में क्रिडा करती हैं। एक ओर सुअर धूरे को थूथन से उकील उकील कर पुरातत्वंवेत्तओं की तरह विभिन्न स्तरों की प्राचीनता का प्रमाण ढूँढ़ते हैं तो दूसरी ओर गृहों के भीतर से फेंके हुए जूठे खाद्यान्न पर कौवे और कुत्ते छीना-झपटी का खेल करते हैं।[258] ‡Ãö

प्रकार कूड़ा करकट बस्ती के लिए तो गन्दगीपूर्ण होगा साथ ही यह दरिद्रता का भी चिन्ह है। ऐसे स्थान में मनुष्य को नहीं रहना चाहिए यही लेखक का उद्देश्य है।

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य साहित्य में भूत-प्रेतों में ग्रामीण जनों की आस्था एवं उनमें परिव्याप्त अन्य अन्धविश्वासों का विस्तृत वर्णन किया है। ग्रामीण परिवेश में ही इन अंधविश्वासों एवं धार्मिक मान्यताओं को विशेष महत्त्व प्राप्त हैं। लेखक का विचार है कि शिक्षा के अभाव एवं अज्ञानता के कारण ग्रामीणजन इन अंधविश्वासों के प्रति आस्थावान हैं। वस्तुतः ये शकुन-अपशकुन अंधविश्वास ग्रामीणजनों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित हैं। अक्सर उनके जीवन में ऐसी घटनाएँ घटती रहती है जिनसे उनका अंधविश्वास सुदृढ़ हो जाता है। ग्रामीण जन अक्सर अंधविश्वासों का ही आश्रय लेते हैं। बीमारी की अवस्था में उनका घरेलु इलाज जादू में विश्वास स्वाभाविक है क्योंकि उनकी मानसिकता उनके विश्वासों को पूर्णतः स्वीकार करती है अतः अंधविश्श्वासों के प्रति उनका लगाव परिवेशजन्य हैं।

४.४.५.३ भैतिक स्वार्थो की पूर्ति हेतू मनौतियाँ :

मनुष्य अपनी स्वार्थसिध्दि के लिए कभी-कभी भगवान से मनौती भी मांगता है। अपने कार्य में सफल हो जाने पर उसे अपनी मनौती को पूर्ण करने का अवसर प्राप्त होता है। वस्तूतः मनौतियाँ मनुष्य की स्वार्थपूर्ण मानसिकता पर प्रकाश डालती हैं। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में मनौतियों का भी कष्टों संघर्षो से जूझते हुए ईश्वर का स्मरण कराते हैं, मनौती मानते हैं, और कार्य की सफलता पर उसे पूरा भी करते हैं।

"अलग-अलग वैतरणी" में सीपिया नाले की घटना में बुझारथ के गिरकर घायल हो जाने के बाद विपिन घबरा जाता है। अतः बुझारथ को बचाने के लिए विपिन स्वयं दोषी बन जाता है। बड़े भाई को बदनामी से बचाने के लिए विपिन गाँव वालों के आगे स्वयं को अपराधी मान लेता है। बड़े भाई बुझारथ की सुरक्षा के लिए भगवान से बार-बार प्रार्थना करता है, क्योंकि वह बड़े भाई की मौत का दुःख सह पाने की स्थिति में नहीं था। अतः मन ही मन देवी धाम की मनौती मानता है-

"उसने मन ही मन देवी धाम की ओर हाथ जोड़कर मनौतियाँ मानीं। मन को ¯Ö¸üÖê¿ÖÖ ×¤üµÖÖ ×ú "´ÖÖÑ ÃÖ²ÖÖš ßú ú ü¤êüÖß.."[259] इस प्रकार घबराया हुआ विपिन देवी माँ की मनौती मान एक तरह से निश्चिंत हो जाता है। इस प्रकार लेखक ने दु:खी विपिन की मनोदशा का वर्णन किया है। दु:ख में ही मनुष्य भगवान का स्मरण करता है, उसके प्रति आस्था व्यक्त करता है उसे विश्वास हो जाता है कि उसके संकटों को दूर करने वाला भगवान के सिवा अन्य कोई नहीं है।

"कुहरें में युध्द" उपन्यास में आनन्द तयासी के सैन्य वर्ग की ओर से प्रहार होने पर घायल हो जाता है। उसकी घायल अवस्था पर चिंतित हो भोजवर्म देव मनौती मानता है। अपने काका के पूर्ण स्वस्थ होने की कामना करता है। वह अन्न जल भी त्याग देता है। अत: दादी के आग्रह पर भी वह जल तक ग्रहण करना नहीं चाहता- "आप जानती हैं, दादी अम्मा कि सेनापति काका की अस्वस्थता मेरे लिए बहुत भारी पड़ रही है। अंशुमान जब से जयदुर्ग गये तब से अब तक मैंने जल तक ग्रहण नहीं किया। मैंने तो कन्दार्य से उनके स्वस्थ होने पर षष्टांग लेटकर पूरी परिक्रमा करने की मनौती मान रखी है। बिना प्रतिज्ञा पूरी किये यह प्रेम ले लूँ?"[260] आनन्द के प्रति सेनापति भोजदेव का प्रेम प्रशंसनीय है। दोनों में रक्त सम्बन्ध भी नहीं है, परन्तु फिर भी आनन्द के प्रति भोजदेव की श्रध्दा उसके सद्‌गुणों को व्यक्त करती है। अपने प्रिय व्यक्ति के प्रति मनुष्य का यह प्रेम ही मनौती मानने को उसे विवश कर देता है। अत: यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की स्वार्थ भावना ही उसे मनौती मानने को प्रोत्साहित करती है।

४.४.५.४ देवी-देवताओं की पूजा :

ग्रामीण समाज में देवी-देवताओं की पूजा विशिष्ट श्रध्दाभक्ति पूर्ण भावों से की जाती है। इन देवी-देवताओं की विशेषता यह होती है कि ये भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न नाम एवं रुप धारण करते हैं। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में विभिन्न जातियों वाले व्यक्तियों की विभिन्न पूजा विधियों का उल्लेख किया है। आदिवासियों की देवी माँ सत्ती मैया, खैती मैया, कुल देवी नथियाँ माँ, गुरुमान बाबा आदि देवी-देवता हैं। कबीले वालों के प्रेम और श्रध्दा का वर्णन लेखक ने "शैलूष"

में किया है। अपनी खुशी में आदिवासी नट हमेशा अपने देवी-देवता का स्मरण करते हैं, पूजा करते हैं, गीत गाते हैं, नृत्य करते हैं। शैलूष के कबीले वाले अपने देवी-देवता नाथिया और मानगुरु की पूजा करते हैं- "मानगुरु और नथिया नटों के लिए सब कुछ थे। माँ बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी यानी जहाँ तक इस घुमक्कड़ कबीले का विस्तार था, वहाँ तक मानगुरु और नथिया बंजारिन के प्रेम और शौर्य की कथाए गूंजती थीं। कहा जाता है कि दिल्ली के सुल्तान के सैकड़ों पहलवानों को आसमान तकाने वाले मान से सुल्तान ने इस्लाम स्वीकार करने को कहा मानगुरु ने सुल्तान को फटकार दिया।"[261] इस प्रकार नटों के देवी-देवताओं का शौर्य एवं पराक्रम अतुलनीय था। इसी कारण से अपने देवी-देवता उन्हें विशेष प्रिय हैं। उनकी गाथाओं को लोकगीतों के रुप में गा-गाकर नट कबीले वाले उनके प्रति अपनी श्रध्दा व्यक्त करते हैं। कहीं-कही आदिवासी नटों की कुलदेवी मनियाँ माता का भी उल्लेख हुआ है।

"नीला चाँद" उपन्यास में कीरत कहता है "यद्यपि आज दो प्रहर या सन्ध्या तक गाहडवाल दुर्ग भी घिर जायेगा, पर चिन्ता न करो, काका। हमारी कुलदेवी, विपिन-विराजिता मनिया का आशिर्वाद अभेद्य कवच की तरह रक्षा कर रहा है।"[262] इस प्रकार कीरत भी देवी-देवताओं पर विश्वास करता है।

"कुहरे में युध्द" में एक ऐसी देवी माँ का उल्लेख हुआ है, जिनकी केवल आँखों की पूजा ही होती है जिसे "रक्त दन्ता" के नाम से जाना जाता है। "सिध्द नगर में तो आप जानते हैं, रक्तदन्ता का विशाल मन्दिर है। भारत में केवल अकेला स्थान है सिध्दनगर जहाँ देवी की दो आँखें ही पूजी जाती हैं। आँखे ही विग्रह हैं। हमने तो पढ़ा है दादा कि विशालाक्षी के नाम से शक्ति, काशी में ही पूजित होती है, पर अब तो लगता है, काशी के अलावा उनका ¤सरा केन्द्र जुझौती के सिध्द नगर में है।"[263] उक्त वर्णन के आधार पर लेखक ने कालंजर प्रान्त में स्थित सिध्द नगर की उक्त तीर्थस्थलों का वर्णन किया है जो पाठक को परिचयात्मक जानकारी प्रदान करती है।

इस प्रकार डॉ.सिंह जी ने विभिन्न देवी-देवताओं के उल्लेख के द्वारा भारत की ग्रामीण जनता की भक्तिभाव को अभिव्यक्ति प्रदान की है। लेखक ने इस सत्य

का भी उद्घाटन किया है कि भक्तगण कहीं-कहीं शराब भी पीते हैं। आदिवासी नटों की पूजा के वर्णन में लेखक ने इस बात का उल्लेख किया है। अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करते हुए नट शराब पीकर नृत्य करते हैं, गीत गाते हैं। इस प्रकार उनकी पूजा में शराब भी विशेष महत्त्व रखती है। लेखक ने उक्त प्रसंग को व्यक्त कर नटों की भक्ति पध्दति को प्रस्तुत किया है।

४.५ डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य का सांस्कृतिक विवेचन :-

प्रस्तावना :

संस्कृति शब्द अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्यायवाची हिन्दी शब्द है। संस्कृति एक ऐसी परिकल्पना है जिसके प्रमुख लक्षणों को तो हम जानते हैं लेकिन उसको परिभाषित नहीं कर सकते। संस्कृति जीवन का एक ढंग है और इस ढंग का प्रभाव उस समाज पर पूरी तरह छाया रहता है, जिसमें मनुष्य जन्म लेता है। सदियों से मनुष्य जिस रुप में पूजा करता आया है, शादी और श्राध्द करता आया है, पर्व और त्यौहार मनाता आया है। सब कुछ संस्कृति का ही अंश है। सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश एवं जाति ज्यादा शक्तिशाली और महान मानी जाती है, जिसने विश्व को अत्यधिक देशों एवं जातियों की संस्कृतियों को अपना कर अपनी संस्कृति से उसका समन्वय किया है। इस दृष्टि से सारे विश्व में भारतीय संस्कृति को महान माना जा सकता है।

४.५.१ संस्कृति की परिभाषाएँ :

डॉ. भगीरथ मिश्र का कथन है कि "मानव जीवन एवं साहित्य को प्रभावित करने वाले सामाजिक स्त्रोतों में धर्म राजनीति, समाज व्यवस्था का ढाँचा, दर्शन विशेष, विभिन्न शास्त्रों का विकास, सामाजिक स्थित्यन्तर आदि महत्त्वपूर्ण है। धर्म, दर्शन, राजनीति आदि का साहित्य और समाज से अन्योन्यक्रम सम्बन्ध अनिवार्य है। इन सभी स्त्रोतों के मिलन से ही सांस्कृतिक इकाई बनती है।"[264]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि, "सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के

अन्तर के विकास का।"[265]

डॉ. गुलाब राय की दृष्टि में "संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है- संशोधन करना, उत्तम बनना, परिष्कार करना। संस्कृत शब्द का भी यही अर्थ है और संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी, किन्तु जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं। भाववाचक होने के कारण संस्कृति एक समुहवाचक शब्द है।"[266]

किंबाल यंग के शब्दों में "संस्कृति शब्द न्यूनाधिक रुप में उन आदतों, विचारों, मनोवृत्तियों और मूल्यों के संगठित और सदृढ प्रतिमानों की ओर संकेत करता है जो एक नवजात शिशु को उसके पूर्वजों अथवा बडा होने पर अन्य व्यक्तियों द्वारा हस्तांतरित होते हैं।"[267]

ए हाईट लेसली के अनुसार "संस्कृति घटनाओं का वह संगठन है, जिसमें कार्यो (व्यवहार के प्रतिमानों) पदार्थो (औजार तथा उनके द्वारा बनी हुई वस्तुओं) विचार (विश्वास और ज्ञान) और भावनाओं (मनोवृत्तियों और मूल्यों) का समावेश होता है, जो प्रतीकों के उपयोग पर निर्भर है।"[268]

४.५.२ संस्कृति और सभ्यता :

सभ्यता एवं संस्कृति में पर्याप्त अन्तर है। परन्तु दोनों का एक दूसरे से संबंध है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। सभ्यता से तात्पर्य उन कार्यो, आविष्कारों आदि से है जो मनुष्य की विकसित अवस्था का संकेत करते हैं। सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों के समावेश को ही सभ्यता कहा जाता है। सभ्यता के अन्तर्गत मनुष्य का आचार व्यवहार एवं सामाजिक राजनीतिक संगठनों का निर्माण आदि सम्मिलित है। इस संदभ में श्री रामधारी सिंह दिनकर का निम्न कथन दृष्टव्य है- "संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा सुक्ष्म होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध। सभ्यता की अपेक्षा वह टिकाऊ भी अधिक है। क्योंकि सभ्यता की सामग्रियाँ टूट फुटकर विनष्ट हो सकती हैं, लेकिन संस्कृति का विनाश उतनी आसानी से नही किया जा सकता।" सभ्यता का विकास धीरे-धीरे ही हो पाता है किन्तु संस्कृति रुकते-रुकते,

परिवर्तन का आधार लेते हुए आगे बढ़ती है।

साधारणतः यह देखा जाता है कि संस्कृति और सभ्यता की प्रगति, अधिकांशतः एक ही साथ होती हैं और दोनों एक दूसरे से प्रभावित भी होते हैं। सभ्य मनुष्य अपने आचरण से दूसरे पर प्रभाव डालना चाहता है। सुसंस्कृत मनुष्य अपने संस्कारों का प्रतिनिधित्व करता है। अतः संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे को नियमित रुप से प्रभावित करती है। मनुष्य के कार्यो से उसके संस्कार प्रकाश में आते हैं। उसके आचरण से सभ्यता का प्रकटीकरण होता है।

मनुष्य के कार्य व्यापारों से संस्कृति को जाना जा सकता है। मनुष्य का उठना, बैठना, घूमना, फिरना, पहनावा आदि से भी संस्कृति की परख होती है। मनुष्य संस्कार लेकर जन्म नहीं लेता, बाल्यकाल में माता पिता के संस्कारों से प्रभाव ग्रहण कर शिशु बढ़ता जाता है। इस प्रकार परिवार का प्रभाव मनुष्य के संस्कारों पर विशेष रुप से पड़ता है। अपने इन्हीं प्रभावों के कारण मनुष्य सुसंस्कृत आचरण करता है। यदि पारिवारिक वातावरण बालक पर दुष्प्रभाव डालता है तो उसके संस्कार भी उसे पतन की ओर ले जाते हैं। इस संदर्भ में हरिदत्त विद्यालंकार का निम्न कथन दृष्टव्य है- "संस्कृति का शब्दार्थ है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है। वह बुध्दि के प्रयोग से अपने चारों ओर भी प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन पध्दति रीति-नीति, रहन-सहन आचार-विचार, नवीन अनुसंधान आविष्कार, जिनसे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊपर उठता है तथा सभ्य बनता है, सभ्यता और संस्कृति के अंग हैं। सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की और संस्कृति से मानसिक प्रगति सूचित होती है।"

वह संस्कृति ही अधिक महान मानी जाती है जो दूसरों के संस्कारों के प्रभाव के ग्रहण करती है इस दृष्टि से भारतीय सभ्यता को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। अनेक संस्कृतियों को आत्मसात कर भारतीय संस्कृति विश्व की महान संस्कृतियों ´Ö Ã֯֕Ö£Ö´Ö Æ…

४.५.३ भारतीय ग्रामीण संस्कृति के विविध पहलू :

साधारणत: भारत में विकसित अथवा भारत से सम्बन्धित संस्कृति के "भारतीय संस्कृति" कहा जाता है। भारत ग्राम प्रधान देश है। भारत का वास्तविक स्वरुप ग्रामों में ही देखने को मिलता है। ग्रामीण पर्व, त्यौहार, मेले, लोकगीत लोकगद्यए, कीर्तन, विवाह शिशु के जन्म के समय किये जाने वाले संस्कार, छठी बरही एवं अन्य रीति-रिवाज आदि ही ग्रामीण संस्कृति के मूल आधार हैं। ये सारे तत्त्व ग्रामीण जीवन को सुव्यवस्थित करते हैं।

आज ग्रामीण समाज की दशा शोचनीय हो गयी है। आधुनिकता का प्रभाव गाँवों पर तेजी से पड़ रहा है। इससे ग्रामीण व्यक्तित्व खंडित हो रहा है। ग्रामीण मानदण्डों में भी आज पूर्णत: परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। वैज्ञानिक उन्नति एवं औद्योगिक विकास के परिणामस्वरुप ग्रामों में सांस्कृतिक परिवर्तन का स्पष्ट आभास होता है। आजकल परम्परागत नैतिकता को गाँवों में उतना महत्त्व नहीं मिल रहा है। फिर भी कई ग्रामीण क्षेत्र अभी भी अपने सांस्कृतिक अस्तित्व को बनाए रखने में पूर्णत: सफल हो रहे हैं। अभी भी कुछ ऐसे ग्रामीण क्षेत्र हैं जहाँ आधुनिकता का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ है। ऐसे क्षेत्रों में अभी प्राचीन संस्कारों का परम्परागत निर्वाह उसी गति से हो रहा है। श्री शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में भारत के पूर्वांचलीय ग्रामीण समाज के रीती-रिवाज, विवाह, लोकगीत, लोकनृत्य लोक परम्पराओं, लोक विश्वासों उक्त अचल विशेष की भाषा, बोली आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है। उक्त पहलुओं के आधार पर उनके गद्य-साहित्य में चित्रित ग्रामीण संस्कृति को जाना जा सकता है।

4.5.3.1 ×¾Ö¾ÖÖÆü :

ग्रामीण समाज के विवाह अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भारतीय समाज में नैतिकता की स्थापना के लिए, सामाजिक मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए, सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए तथा सामाजिक विकास के लिए विवाह की नैतिकता, परम्परा का विशिष्ट स्थान है। विवाह एक ऐसा आदर्श है जिसके आधार पर मनुष्य, परिवार की नींव डालता है। ग्रामीण संस्कृति में विवाह के कुछ

अलग रीति-रिवाज हैं, वहाँ विवाह के अवसर पर जो संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। उनका अत्यन्त सुन्दर वर्णन शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में हुआ है।

"शैलूष" उपन्यास में नटों के जीवन की विस्तृत, झाँकी लेखकने प्रस्तुत की है। नटों के विवाह के संस्कार एवं परम्परागत रीति-रिवाज कुछ भिन्न हैं। नटों की परम्परा के अनुसार लड़के के पिता को लड़की का पिता कुछ रुपया देता है, जिससे विवाह की रस्म को पूर्ण माना जाता है। उपन्यास में अमिरत का पिता कैलाश नटों के प्रमुख वृध्द व्यक्ति लल्लू से कहता है "लो काका: ये हैं एक हजार रुपये ताहिरा के मेहर के, इन्हें तुम संभालो। जिस परिवार में कोई नहीं होता, उसके माँ-बाप लल्लू काका होते हैं। इसलिए यह मेहर लो और शादी की तारीख 2ÖŸÖÖ ¤ÖÖ..."[269] "मेहर" की रकम देता है। मेहर के एक हजार की रकम लेकर लल्लू अमिरत और ताहिरा का विवाह करता है। नटों में हिन्दु और मुसलमानों में भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं। अमिरत पढ़ा लिखा है, ताहिरा अमिरत से तीन साल बड़ी है और कॉलेज के ब्राम्हण लड़को के बलात्कार का शिकार भी है। फिर भी अमिरत उसी से विवाह करना चाहता है। इस विवाह से अमिरत एक आदर्श स्थापित करना चाहता है। ताहिरा भी हिन्दु धर्म के अनुसार विवाह के संस्कारों को स्वीकार करती हुई कहती है- "यह सब मुल्ला मौलवी, पंडित-पुरोहित सब बेकार हैं। मन का भरम है। तू मेरा हाथ पकड़ मैं तेरा हाथ पकडूँगी, दोनों बोलेंगे"- यह रिश्ता जनम-जनम का।"[270] नटों में सगाई हो या विवाह दुल्हन के लिए दूल्हे की ओर से "डलवा" भेजा जाता है- "जिसमें दुल्हन के शृंगार प्रसाधन के वस्त्र आदि होते हैं "साडियाँ, ब्लाउज पीसे, साये तथा बेशकीमती चूनरी वहाँ मिल गयी। नत्थामला ने बतलाया कि उनकी चौक वाली दुकान से बाकी सभी चीजें मिल जायेंगी।"[271] नटों के विवाह के दिन अपना खाना खुद बनाकर खाते हैं। दुल्हें वालों की ओर से उनमें अनाज, सब्जी बाँट दी जाती है- "आठ बज चुके थे। जुड़वान की पूरी बिरादरी के लोग उपलो के अहरे पर हंडियों में चावल दाल सब्जी आदि पका रहे हैं। मछली माँस का इन्तजाम भी था। यह एक अजीब प्रथा है कि कोई भी नट परिवार दूसरे नट परिवार का छुआ नहीं खाता है। अगर राजपुत ब्राम्हण बनिए अहीर यहाँ तक कि मुसलमान भी बनाए तो

वे खा लेंगे, पर बिरादरी के किसी आदमी का छुआ वे नहीं खाएँगे।" कन्या पक्ष की पूरी बिरादरी को भोजन के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से राशन दिया जाता है। इस प्रकार शादी की प्रथा को पूरा किया जाता है।

पुष्पा की शादी फागुन में होती है। गाँवों में शादी के महत्त्व पर इस संदर्भ में लेखक ने प्रकाश डाला है- "फागुन सुदी नवमी को पुष्पा की शादी थी। गाँवों में शादी प्रायः वैशाख से आषाढ़ के बीच होती है। इसलिए कि लोग खाली होते हैं। घरों में नई फसल का अनाज होता है। फिर गर्मी में बारातियों या आगन्तुकों के लिए ओढ़ने जुटाने की भी दिक्कत नहीं होती। धरम सिंह इस लगन के पक्ष में नहीं थे। फागुन में शादी? कहाँ से गेहूँ लाएँगे, कहाँ से दाल बेसन? पर चचिया को फागुन की लगन खूब पसन्द थी। बल्कि यों कहें कि उन्होंने जिद करके फागुन में ही लगन् धरवायी। यदि माघ में खरमास न होता तो शायद वे माघ में ही शादी कर ›Ö»ÖŸÖê..."[272] लेखक ने यह बताया है कि गाँवो में विवाह अधिकतर स्त्रियों की इच्छा से ही होते हैं। व्यवस्था तो पुरुषों को ही करनी पड़ती। पुष्पा की शादी पर बुझारथ सिंह की पत्नी कनिया न्यौता भेजते है- "सबेरे-सबेरे चन्ना को कनिया ने बुलाया। चचिया के घर न्यौता जा रहा था। बड़े-बड़े डालों में चावल, दाल, आलू, बैंगन, एक पीली साड़ी, ब्लाउज का कपड़ा। चोटी, कंघी, शीशा और बड़ा सा सिन्होरा। आलता और नाखुन रोगन की शीशियाँ।"[273] इस प्रकार नौकर के हाथ यह न्यौता जाता है। जमींदार के घर का कोई व्यक्ति विवाह वाले घर में भोजन नहीं करता यहाँ तक कि औरतें भी कनिया विपिन से कहती है कि "तुम जानते ही हो मैं कहीं खाती-पीती नहीं।" इससे पता चलता है कि विवाह के अवसर पर भी गाँवों में जाति-पांति के नियमों का कठोरता पूर्वक पालन किया जाता है।

"दादी माँ" कहानी में उक्त प्रसंग का वर्णन रोचक शैली में किया है- "किशन के विवाह के दिनों की बात है। विवाह के चार पाँच रोज पहले से ही औरतें रात-रात भर गीत गाती हैं। विवाह की रात को अभिनय भी होता है। यह प्रायः एक ही कथा का हुआ करता है, उसमें विवाह से लेकर पुत्रोत्पत्ति तक के सभी दृश्य दिखाए जाते हैं। सभी पार्ट औरतें ही करती हैं।"[274] यह प्रथा आज भी गाँवों में प्रचलित है, शहरों में भी कुछ विशिष्ट परिवारों में इस प्रथा का प्रचलन है।

इस कार्य में औरतें पूर्ण रुचि दिखाती हैं।

"कर्मनाशा की हार" कहानी में ग्रामीण समाज के विवाह में जाने की उत्सुकता का वर्णन हुआ है- "मुखिया जी की लड़की की शादी थी। गाँव भर में खुशी छाई रहती, जैसे सबके घर शादी होने वाली हो। शादी के दिन गाँव वालों में बनने सँवरने की होड लग गयी। सब लोग पटीकटा रहे थे, शौकीनों की पड़ी चार-चार अंगुल चौड़ी छूरे से बनी थी। कुएँ की जगत पर दोपहर के दो घण्टे पहले से भीड़ और अब दो बजने को आए, साबुन लग रही थी, पैरों में जमी मैल सिकड़े से रगड़-रगड़ कर छुड़ाई जा रही थी।"[275] इस प्रकार गाँवो में शादी में शामिल होना अपना विशेष स्थान रखता है। लोगों में एक अजीब आनन्द एवं एक विचित्र हिलोर दिखाई देती है। उस पर मुखिया की पुत्री का विवाह और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

"आर-पार की माला" कहानी में नटों की विवाह की प्रथा का वर्णन हुआ है। रज्जब का पिता जुम्मन को दो सौ रुपये 'मेहर' के रुप में देता है- "निरु और रज्जब की सगाई हो गई। जुम्मन ने दो सौ रुपये, नयी ओढ़नी और लाल गरारा दिया।"[276] इस प्रकार नटों की यह प्रथा आज भी ग्रामों में देखने को मिलती है। इस प्रकार सगाई के बाद शादी का दिन निश्चित किया जाता है। यदि विवाह के पहले ही रिश्ता तोड़ना हो तो लड़के के पिता को पूरा अधिकार है कि वह अपनी मेहर की रकम को वापस माँग सकता है। लड़की का पिता इस रकम को वापस दे देता है।" नटों की यह वैवाहिक रीति आज भी प्रचलित है।

"केवडे का फूल" कहानी में लड़की को ससुराल को विदा करने के प्रसंग का भी उल्लेख हुआ है। इस विदाई को गाँव में विशेष महत्त्व प्राप्त है- "ताऊ के घर आज बड़ी भीड़ थी। गाँव भर की औरतें इकट्ठी थी। "अनु" आज ससुराल जा रही है इसलिए सारा प्रवाद मिट गया। वह फिर मासूम दुल्हन के रुप में सजायी गयी थी।"[277] लड़की का ससुराल को विदा करना गाँव में आज भी महत्त्व का विषय है। गाँव की औरतें एकत्रित होकर इस कार्य को पूर्ण उल्लास के साथ सम्पन्न करती हैं। गाँव की लड़की आज भी ससुराल को जाने से पहले इन संस्कारों से गुजरती है।

"नन्हों" कहानी में नन्हों के विवाह का अत्यन्त विशद् वर्णन हुआ है। विवाह की प्रथा को पूर्ण करने में नन्हों सहयोग देती है। "डोला आया, उसी दिन हल्दी तेल की सारी रस्में बतैर टोटके के पूर्ण हो गयीं और उसी रात की गाजे-बाजे के बीच नन्हों की शादी मिसरीलाल से हो गयी। बाजों की आवाजें हमेशा जैसी ही खुशी से भरी थीं, मण्डप की झंडियों और चंदोवे में हवा की खुशी भरी हरकतें भी पुर्ववत थीं, भाटिनों के मंगल गीतों में राम और सीता के ब्याह की वही पवित्रता गूँज रही थी।"[278]

"कर्ज" कहानी में भी विवाह की प्रथा एवं संस्कारों का विस्तृत वर्णन हुआ है। "फागुन बीत चुका था आमों में बौर और महुओं में फूल आ चुके थे। रामपती की शादी हो गयी। बूढ़ी देवला काकी का घर मंगल गीतों से नहा गया द्वार पर चावल के पानी से छुई दीवारों पर गेरु के कोहवर रंग गये। लम्बी सूंड वाले हाथियों पर पीले झूल लटके पीठ पर शहनाई वाले तासे और बीन लेकर बैठ गए। स्वस्तिक के चिन्ह भी बने और कोहवर पर नज़र न लग जाये इसलिए हाथियों की तस्वीरों के नीचे, ऊपर काजल के डिठौंने भी जड़ दिए गए।... काली दीवारों के भाग जग गये थे। सफेद मिट्टी से पुत-सँवर करके सुंदर लगने लगी थीं घर गुलजार लगता था।"[279] गाँवों में शादी के सुअवसर पर घरों की सजावट एवं रौनक के उक्त वर्णन से वहाँ की परम्परा का पता चलती है।

"किसकी पाखें" कहानी में विवाह के अवसर पर गाँवों में किए जाने वाले नाच-गाने का भी उल्लेख हुआ है। गाँवो में जमींदार के घर यदि विवाह हो तो महफिल का आयोजन होता था। शहर से औरतों को गाने-बजाने के लिए बुलाया जाता था।" महफिल से बिट्टो के गाने की आवाजें रात सन्नाटे को बेधती हुई टकराती। कहीं दूर अमराई में अपने गले की पूरी ताकत से कोई पपीहा चीख ^ŠŸÖÖ..."[280] विवाह के अवसर पर यह प्रबन्ध जमींदारों के शान का प्रतीक बन जाता Æ...

"कर्ज" कहानी में बहू की बिदाई के पश्चात् "थरिया छेंकायी" की प्रथा का भी उल्लेख हुआ है। बहू जब ससुराल आती है तब घर के सभी लोगों के लिए उसे भोजन तैयार करके अपने, हाथों से ही परोसना पड़ता है, इस अवसर पर उसे

ससुर एवं जेठ आदि के द्वारा मेग के रुप में रुपये या कोई वस्तु दी जाती है। जगपती अपने छोटे भाई की पत्नी को देने के लिए चाँदी के पछुवे (पैरों के कड़े) खरीद लाता है- "धुलाई के पैसे मिले तो जगपति को याद आया कि घर पँहुचने पर भैहू के हाथों पहली बार थाली मिलेगी। थरिया छेंकायी माँगने पर कुछ न कुछ देना तो पड़ेगा ही, नहीं तो हेठी का काम होगा। तीस रुपये की मजूरी थी फूल। ˆ ÃÖÖê ¯Öê¾Ö ¤üÖÖ □ê ¯Ö ãÖê □Ö ß¤ü »Ö ´ÖãÖ ÃÖ ûÖ □ê ²ÖÖ ÖÖ ü ´Öê."[281] लेखक ने पूर्वांचल के ग्रामीण जीवन में प्रचलित उक्त प्रथा का परिचयात्मक विवरण दिया है। इससे पता चलता है कि गाँव की बहू का ससुराल में विशेष महत्त्व प्राप्त है। ग्रामीण संस्कृति अभी भी गाँवो में अपने प्राचीन रुप को ही लिए हुए है। लोग अभी भी घर में बहू का आना मंगलकारी मानते हैं। उसके आगमन से घर वालों में प्रसन्नता की »ÖÆ¸ ¤Ö> ¯Ö>ŸÖß Æ…

4.5.3.2 ŸÖß•Ö :

पूर्वांचल के गाँवो में विवाह के पश्चात् लड़की को तीज के अवसर पर साड़ी भेजी जाती है। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। इस प्रथा का उल्लेख शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कुछ कहानियों में किया है। "अन्धकुप" कहानी में सोनी भाभी का छोटा भाई तीज लेकर आता है। किन्तु सास के अत्याचार के कारण सोनी उस तीज को ले नहीं पाती- "दो दिन पहले उनका छोटा भाई आया था तीज लेकर। माँ के हाथों बनायी केसार और साड़ी लेकर जिसे दीपू बो चाची ने गली में फिकवा दिया। भाई रोता रहा, पर उसे बहन से मिलने न दिया गया।"[282] गाँव में निर्धन अवस्था में भी माता-पिता को यह तीज लड़की के पास आवश्यक रुप से भेजना पड़ता है। यह ग्रामीण संस्कार लड़की को उसके मायके से मिलने वाला सम्मान है, जिसे उसे स्वीकार करना पड़ता है लड़की के ससुराल वालों के भय से लड़की के माता-पिता को तीज भेजते समय अधिक सतर्क होना पड़ता है। वरना लड़की को ससुराल वालों की ओर से सोनी की तरह अपमानित होना पड़ता है।

"एक यात्रा सतह के नीचे" कहानी का अवधू अपनी माँ से बहुत डरता है। पत्नी के लिए रेल में खरीदे हुए साबुन आदि को जब उसकी माँ देखती है तब वह

सकपका उठता है और बहन की तीज का बहाना कर उस वस्तु को बहन को ही भेजने का प्रस्ताव रखता है- "हँस पड़ा था अवधू। पर मन में तो जैसे भय का बवंडर उठ गया था जो लाख थामने पर भी थमता न था। हकलाते हुए बोला- "जीजी की तीज जायेगी न? रेल के डिब्बों में एक सरदार बेच रहा था, बड़ा सस्ता ले लिया था कि साबुन-वाबुन तो खरीदना ही पड़ेगा।"[283] इस प्रकार अवधू की माँ प्रसन्न हो जाती है। वह बहू की अपेक्षा बेटी को अधिक चाहती है। वह नहीं चाहती कि पुत्र अपनी पत्नी का ख्याल करे।

"तकावी" कहानी में शंकर सिंह सरकार से तकावी (कर्ज) का रुपया लेकर अपनी पूत्री को तीज भेजना चाहता है। तीज भेजने के विषय में पत्नी को चिंतित देख शंकर सिंह उसे सांत्वना देता है- "हाँ भाई, नयी-नयी शादी हुई है। दूसरे-तीसरे साल ही तीज फीकी-फीकी भेजी जायेगी तो समधी को तो बुरा लगेगा ÆB..."[284] पुत्री का पत्र पढ़कर माँ की चिन्ता स्वाभाविक है। माता-पिता यह प्रयत्न करते हैं कि तीज में सौ पचास का खर्च हो- "इसी से तो कहता हूँ कि तकावी का रुपया ले लो। सौ-पचास तीज में लग जायेगा। समधी खुश रहेंगे तो लड़की भी खुश रहेगी। पराये घर में है बिचारी बाप-भाई जब तक जीते हैं, कर देते हैं।"[285] उक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि तीज की यह प्रथा गाँवो में अब भी उसी प्राचीन परम्परा का निर्वाह कर रही है।

४.५.३.३ चरण छूना :

अपने से बड़े लोगों के चरण छूना और आशीष पाना भारतीय संस्कार है। अक्सर बहू को सास-ससुर के पैर छूने पड़ते है। पूर्वांचल में चरण छूने की प्रथा प्रचलित है। जिस व्यक्ति के चरण छूने होते हैं वह चाहे स्त्री हो या पूरुष पैर छूने वाली स्त्री अपने साड़ी के पल्लू के कोने को उनके पैरों को छुआती है चरण छूने की मुद्रा में झुक जाती है। "नीला चाँद" में सेनापति अनन्त की पत्नी चम्पक काशी के राजा कर्णदेव की राजरानी आवहल देवी के चरण छूती है- "चम्पक ने आँचल का छोर हथेली में लपेट उनका स्पर्श किया।"[286] "चितकबरी" कहानी में दुलारी को लड़का होने पर उसकी सास छठी बरही करने के लिए कर्ज माँगने ठकुराइन

के पास जाती है, उसके चरण छू कर अपनी बात कहती है- "ठकुराइन के सिकुडे हुए पैरो को आँचल से छू-छूकर सुहआइन ने सर लगाया। ठकुराइन बिल्कुल चुप £ÖßÖ..."[287]

"'गली आगे मुडती है' में आरती घर से भागकर शादी कर लेती है। फिर भी अपने संस्कारों को भूलती नहीं। रामानन्द अपनी बहन की तलाश में था और उसे पता भी मिलता है। आरती एक अध्यापिका से बात करती आ रही थी। सामने ³ÖÖ‡Ô úÖê¤êüÖ ú ü úÖ¾ÖÖ ß ÆüÖ" ³Ö‡µÖÖ ¾ÖÆüú‹ ú¤üÖ´Öá ß † Öü Ö üÖê úß † Öêü—ÖÖúß Ö ü ÃÖÆüÃÖÖ ˆ ÃÖ−Öê ÆüÖÖ ¸Öêú »Ö ..."[288] इस प्रकार बड़ो के पैर छूना भारतीय संस्कार है। ग्रामीण समाज में इस संस्कार को विशेष महत्त्व प्राप्त है। बड़ो के चरण छूकर आशीष पाने में उन्हें मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है। पैर छुआने का विरोध करते हुए कुछ लोग इस संस्कार को अर्थहीन मानते हैं। "नीला चाँद" में चम्पक कीरत के चरण छूने को झुकती है तब कीरत इसका विरोध करता है- "चम्पक कीरत के चरणों की ओर झुकी ही थी कि उन्होंने अपने पैर खींच लिये। आर्ये, मैं इस योग्य नहीं हूँ। प्रथमत इसलिए कि मैं क्षत्रिय हूँ। द्वितीयत: इसलिए कि अनंत का बड़ा भाई हूँ जिसके लिए शास्त्रों की आज्ञा है कि अनुज-वधू से पैर छुआना नितांत धर्म विरोधी आचरण है।"[289] इस प्रकार कहीं-कहीं पैर छुआना गलत आचरण माना जाता है। यह पैर छुआने वाले के महान व्यक्तिमत्व की पहचान कराता है। शिवप्रसाद सिंह ने भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का उल्लेख कर वस्तुत: भारतीय संस्कारों के प्रति अपनी श्रध्दा को व्यक्त किया है।

4.5.2.4 ¯Ö´ÖÖ»ÖÖ¯Ö :

शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में प्रेम के प्रसंगो का भी उल्लेख किया है, ये प्रसंग विवाहित युग्म के भी हैं और अविवाहित प्रेमियों के भी हैं। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में प्रेम का विशेष स्थान हैं। "नीला चाँद" उपन्यास में लेखक ने कीरत और गोमती के प्रेमालाप, आलिंगन, चुम्बन आदि का वर्णन किया है- "कीरत ने कपाट बंद किए और अपनी दोनों बलिष्ठ भुजाओं में गोमती को समेट लिया वह भी बिना विरोध के राजहंसिनी की तरह सिमटी रही। कीरत ने उसके ललाट,

कपोल और अधरों पर चुम्बनों की वर्षा कर दी... कीरत ने कंचुकी खींची और उसके उरोजों की संधि में मुँह डालकर एक लम्बी साँस ली। लगा महीनों से ´ÖÃÖü ´Öê³ÖÛü ×“ÖÖ¯Öê Öê úÖ²ÖÖÓ¾ÖÖûü¿ÖÖ ÖÖÆÖê ÖÖ."[290] इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थल पर भी लेखक ने प्रेमालाप के वर्णन में उक्त विवरण का ही आश्रय लिया है- "गोमती प्रेमविव्हल मुद्रा में मुस्कराती रही। कीरत ने उसके अंगो पर चुम्बनों की वर्षा कर दी। कंचुक फट न जाय इस भय से उन्होंने बहुत मृदु ढंग से कदम्ब-युग्म को सहलाया और चोली में मुँह डालकर खिल-खिलाते रहे।"[291] लेखक ने प्रेम के वर्णनों में "चुम्बनों की वर्षा" और "कंचुक में मुँह डालना" आदि का प्रयोग ही अधिक रुप में किया है। इन्हीं संदर्भो का उल्लेख वे बार-बार करते रहे, विवाहित स्त्री - पुरुष के प्रेमालाप एवं प्रेमपूर्ण सम्बन्धों की चर्चा लेखक ने खुलकर की है। साथ ही अविवाहित प्रेमियों के प्रेमप्रसंग भी शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में वर्णित हैं- "अलग-अलग वैतरणी" की पुष्पा विपिन को चाहती है, विपिन भी पुष्पा से प्रेम करता है। इन दोंनों का प्रेम बाह्यावस्था से ही पनपता और बढ़ता है। युवावस्था को प्राप्त करने पर दोनों शांत एवं गम्भीर हो जाते हैं। पुष्पा ही बार-बार दयाल महाराज के हाथ चिठ्ठी भेज विपिन को बुलवाती है और मिलती है। दोनों एक-दूसरे की विवशता को व्यक्त करते हैं। उन्हें मालूम भी है कि दोनों का मिलन असम्भव है, फिर भी दोनों चोरी-चोरी गाँव की चहल-पहल से केवडारों में मिलते हैं। विपिन पुष्पा को चूमता है, आलिंगन में भर लेता है। "विपिन ने दोनों हथेलियों में उसके मुख को थाम लिया। ऊपर उठी आँखें बन्द थीं। पलके आँसुओं से तर थीं। विपिन के सामने दरवाजे से तेरस के चाँद की रोशनी उस गोल चेहरे पर इस तरह पड रही थी कि एक तरफ का उठा हुआ चिकना गाल पूरी तरह प्रकाशित लग रहा था। उसने अपना मुँह उस उद्भासित अंश पर रख दिया। और अपने होंठों से उसने पलकों के नीचे चमकते हुए आँसुओं को पोंछ दिया।"[292] "गली आगे मुड़ती है" उपन्यास में भी रामानन्द, किरण और जयन्ती दोनों से प्रेम करता है, किन्तु दोनों में से किसी से भी विवाह नहीं कर पाता किरण गुजराती है, तो जयन्ती बंगाली दोनों से मिलना, जुलना, दोनों को चूमना और आलिंगन बध्द करना भी उपन्यास में बताया गया है। जयन्ती के घर अक्सर वह जाता आता है। दोनों में

घनिष्ठता बढ़ती जाती है- "मैं चलने को हुआ तो मैने स्वयं जयन्ती के दोनों हाथ पकड लिए। वह शायद नमस्कार की मुद्रा में उन्हें जोडने जा रही थी। मैने दोनों • Ö ã ê ÆÖëÖÖë úÖê×ÃÖ Ö ü¯Ö ü»ÖÖÖ ×» Ö µÖÖ."[293] रामानंद का यह प्रयास किरण के साथ भी स्पष्ट हुआ है- "मैं अपनी कुरसी से यों उठा जैसे दीवार पर लगे चित्र को और नजदीक से देखने जा रहा हूँ। तभी मैं कुरसी के पास रुका और मैंने किरण को अपनी दोनों बाहों में भर लिया।"[294]

लेखक ने अपने औपन्यासिक नायकों का प्रेम व्यवहार यहीं तक सीमित रखा, फिर से नायिकाँए नायकों से बिछुड जाती हैं और अपने विवाहित जीवन में व्यस्त रह जाती हैं। नायक अपनी कमजोरी का लबादा ओढ़े अकेला रह जाता है। विपिन एवं रामानन्द इसी श्रृंखला की प्रमुख कड़ी हैं। इस प्रकार लेखक ने प्रेमालाप, प्रेम-प्रसंगों के वर्णन में श्रृंगारपूर्ण शैली का प्रयोग किया है। वर्णित प्रसंग को प्रभावपूर्ण बनाने में लेखक की लेखनी अधिक उदार हो गयी है। विवाहित जीवन के वर्णन के साथ-साथ विवाहपूर्ण अवस्था में प्रेमी- का मिलना आदि वर्णन ×´Ö»ÖŸÖ Æ…

4.5.3.5 ”Šß ²Ö¸ÆÛ :

गाँवों में शिशु के जन्म के अवसर पर किए जाने वाले संस्कार, छठी बरही का भी वर्णन शिवप्रसाद सिंह ने किया है। गाँवो में इस अवसर पर विशेष चहल-पहल होती है। गाँव की औरतों को बुलाया जाता है, सबका मुँह मीठा किया जाता है। निर्धन अवस्था में भी लोग इस संस्कार को सम्पन्न करते हैं।'चितकवरी' कहानी में निर्धन सहूआइन अपनी बहू दुलारी को लड़का होने पर गाँव वालों को बुलाती है, ठकुराइन से रुपया माँगकर उधारी में ही सारे संस्कार सम्पन करती है- "सहुआइन गाँव भर दौड़-दौडकर पड़ोसियों के पैर लगती रही। और इधर रोपन साहू मारे क्रोध और चिढ़ के बूढ़े-खुसट बारम्हा की कारीगरी का बेहुदा और चौपट कहें-कहकर नाक-भौं सिकोड़ते रहे। हलुवे के लिए चीनी आटा, जच्चा-बच्चा के लिए तेल तासन और प्रेम से बेहाल शुभचिन्तकों के लिए कुछ मुँह मीठा का सामान रोपन साहु घबड़ा से गए।"[295] इस अवसर पर गाँव में महरी को भेजकर लोगों को

बुलाया जाता, नाच-गाकर खुशियाँ मनाई जातीं। इस प्रकार घर के वृध्दाजन इस संस्कार को पूर्ण कर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते। इस में चाहे उन्हे उधार रुपया ही क्यों न लाना पड़े, वे इस संस्कार को विशेष महत्त्व देते हैं।

"बेहया" कहानी में सुभागी को अपनी लड़की के माँ बनने का समाचार पत्र द्वारा मिलता है। नानी बनने की प्रसन्नता को वह छिपा नहीं पाती, चिठ्ठी को तुलसी चौरे पर रखकर माथा झुकाकर वह जमीन पर झुक जाती है- "माँ तुलसी मेरी तारा को, उसके बच्चे को हमेशा सुखी रखना माँ। पता नहीं वह कब तक झुकी रही। स्वस्थ हुई तो घूम-घूमकर पड़ोसिनों को न्यौता देती रही। औरतों ने देवताओं का आशीर्वाद माँगा, सोहर की मंगल ध्वनि से आँगन गूँजने लगा-

रिमिकि झिमिकि देवा परिसँई हो
कि मोतियन ओरी चूवै हो ओ ओ।"[296]

इस प्रकार अकेली रहकर भी सुभागी इस संस्कार को पूर्ण करती है। नानी बनने पर उसकी खुशी उसे अकेलेपन को भूल जाने की विवश कर देती है। गाँव में इस अवसर पर सोहर गाया जाता है। जच्च-बच्चा के कुशल मंगल की कामनाएँ की जातीं। इस सन्दर्भ में कहीं-कहीं हिजड़ों के नाच-गाने का भी प्रबन्ध किया जाता है। शिवप्रसाद सिंह ने "बिन्दा महराज" कहानी में ठाकुर के घर बच्चे की बरही के अवसर पर आयोजित संस्कार का विस्तृत वर्णन किया है- "उस दिन ठाकुर के घर नवजात बच्चे की बरही थी। गाँव-भर की लड़कियाँ, बूढ़ी औरतें बिन्दा महाराज का नाच देखने इकट्ठी हुई। खासा मजमा था। एक से एक चुल-बुलाती औरतें और उनके बीच बिन्दा महाराज...। बिन्दा महाराज पैरों में घुँघरु बाँधकर खड़ा हुआ तो लड़कियों की आँखों में गूलर फूलने लगे, बूढ़ी औरतें अपनी हँसी छिपाने के लिए होठों पर आँचल रखने लगीं, मुँहजोर नौकरानियों ने बिन्दा रानी को, आँचल में गेंद छिपा लेने की सलाह दे ही दी। विन्दा महाराज इन मजाकों का उत्तर अत्यन्त खुले और अश्लील मजाकों से देता जाता है। सब सह जातीं, कौन किससे कहे। विन्दा महाराज का गला पुरुष-कूण्ठ की तरह मोटा था, पर सधा। वह गा रहा था-

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके

धनि वारी उमरिया नइहर तरसे।"[297]

इस प्रकार हिजड़ों और नौकरों को अनाज एवं रुपये देकर नवजात शिशु के अभिभावक उनसे आशीष पाते। गाँवों में यह प्रथा आज भी विद्यमान है।

"कर्ज" कहानी में रामपती की पत्नी को लड़का होता है किन्तु रामपती की माँ अपने बडे बेटे जगपती की बीमारी के कारण नवजात बच्चे के जन्म की खुशी मनाना नहीं चाहती। जगपती इस खुशी को मनाना चाहता है। वह माँ को डाँटता हैं- "तुम औरत हो कि पत्थर हो अम्मा, तुमने थाली भी नहीं बजने दी। तुम सोचती हो मैं मर जाऊँगा, तुम सब अमंगल करके मुझे आज ही मार डालोगी-जाओ, जाओ। थाली बजने दो, नगाडे वाली को बुला लो, अम्मा, बधावे में तनिक कोर-कसर न हो। सबको बुला लाओ। सोहर मैं भी सुनूँगा। हाँ।"[298] इस प्रकार लडके का जन्म गाँव में खुशी का कारण बन जाता है। इस खुशी को गाँव वाले बड़े पैमाने पर मनाते है। थाली बजाकर ऊँची आवाज में लडके के जन्म की घोषणा की जाती है। घर में बीमार व्यक्ति हो तो भी इस मंगल विधि को विशेष उत्साह से मनाया जाता है। औरतें मिलकर सोहर गाती है और घर में खुशी छा जाती है। नवजात शिशु की लंबी आयु की कामना की जाती है। इस मंगल विधिको सम्पन्न करना वृध्द औरते भी अपना उत्तरदायित्व मानती हैं। पोते के जन्म के अवसर पर दादी - नाती के जन्म के अवसर पर नानी की खुशी ही शिवप्रसाद सिंह जी के साहित्य में व्यक्त हुई है। "श्रृंखला कहानी" में लालता की पत्नी द्वार-द्वार जाकर हाथ जोड़ आयी कि उन्हें पौत्र की प्राप्ती हुई है। अब भी चाहे गाँव कितने भी बदल गये हों पुत्री के जनम को पाप का और पुत्र के जनम को पुण्य का परिणाम मानते हैं। सूर्योदय होते होते ललता सिंह का आंगन औरतों से भर गया। पूरे गाँव ने इस पुत्र जन्मोत्सव को नाच-गाते मिठाई पान आदि ग्रहण करने का एक बहाना समझा।"[299] एक नवयुवती भाटिन बहुत ही स्वच्छ वस्त्र में लिपटी नाचने लगी। ललता के आंगन में एक नायाब दृश्य था, जिसकी पति-पत्नी ने जाने कब से पलक पांवडे बिछाये प्रतीक्षा की थी। भाटिने गाने लगी-

"आवहू मोर परोसिनि गोत दयादिनि हो-हो
ललना होरिला जनमवा के सोहर गाइ सुनावह हो।"[३००]

लड़की के जन्म अवसर पर किए जाने वाले संस्कार का उल्लेख कहीं पर भी नहीं हुआ है।

पर्व त्यौहार :

भारतीय देहातों में पर्व त्यौंहारों को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। पर्व त्यौहार यह ग्राम्य जीवन के संस्कारों को व्यक्त करते हैं। शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य-साहित्य में विभिन्न पर्व त्यौहारों का विस्तृत वर्णन किया है। जिनमे प्रमुख हैं- हल पर्वरी, जिऊतियापर्व, श्रीरामनवमी, संक्रान्ति, जन्माष्टमी बसन्त पंचमी, दीपावली, दशहरा, रमजान आदि। ग्रामीण परिवेश में सभी त्यौहारों की अपनी विशिष्टता है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में शिवप्रसाद सिंहजी ने "हल पर्वरी" के पर्व के महत्त्व को स्पष्ट किया है। गाँवो में जिस वर्ष, वर्षा नहीं होती उस समय गाँव की सबसे लम्बी स्त्रियों को हल में बैल की जगह जोत कर उनसे हल चलवाया जाता, जिससे धरती माँ का हृदय पिघले और वर्षा हो। करैता गाँव की सबसे लम्बी औरतें सोमारु बो भैजी और दीना बो चाची हैं जो अक्सर "हल पर्वरी" में हल में जुत जाती, जिस साल बरखा नहीं होती, इन दोनों साँड़नियों की इज्जत बढ़ जाती है। औंरतें, शिवजी के अरघा के पास बैठकर "हरपरवरी" गाती हैं। "यह पर्व पहले कभी कभार ही होता था। अब अकालवाढी देस का ई सालाना त्यौंहार हो गया है। गाँव की दो सबसे लम्बी औरतें छाँटकर हल में जोती जाती हैं। यह हल एक घरी रात गए नधता है। हलवाहा भी औरते और बैल भी औरतें ही।"[301] हल पर्वरी पर उन जुती हुई औरतों को दाना पानी भेजने के लिए आदमियों का प्रबन्ध किया जाता है, इन आदमियों को वे औरतें बुरी तरह डाँटती गालियाँ देती, कभी-कभी मार भी देतीं। इसीलिए अक्सर कई आदमी उस कार्य को करने के लिए तैयार नहीं होते।

करैता गाँव में प्रसिध्द इस त्यौहार का अपना अलग महत्त्व है। औरतों के लिए बैलों की जगह जुत जाना कठिन कार्य है, किन्तु फिर भी प्रतिवर्ष इस त्यौहार को औरतें उसी उल्लास के साथ मनातीं। यह पर्व औरतों के लिए विशेष महत्त्व का है। वर्षा के लिए किए जाने वाला उनका यह प्रयास वस्तुतः प्रशंसनीय है।

"रेती" कहानी में "जिउतियापर्व" का वर्णन लेखक ने किया है। पुत्रवती नारी इस पर्व को विशेष उल्लास के साथ मनाती है। आज जिउतिया है, मातृनवमी, पुत्रवती नारी का महत्त्वपूर्ण पर्व। किनारे खडी एक बूढ़ी औरत आकाश में मंडराते पक्षी की ओर हाथ उठाकर चिल्ला उठी, "जाकर राजा रामचन्द्र से कह देना कि रामू की माँ ने आज खर जिउतिया का व्रत किया था।"[302]

जिउतिया पर्व के उल्लेख के द्वार लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय समाज में पुत्र को विशेष महत्त्व प्राप्त है। पुत्र की प्राप्ति स्त्री के लिए गर्व का कारण बन जाती है। पुत्र की दीर्घ आयु, उसके मुख कल्याण एवं प्रगती की मंगल कामना ही, माँ का ह्दय करता है। यह भारतीय "माँ" की प्रमुख विशेषता है। पुत्र के लिए किया गया उसका यह उपवास उसके पुत्र प्रेम को व्यक्त करता है। ग्रामों में ऐसे पर्व उत्सव विशेष स्थान पाते हैं।

श्रीरामनवमी का त्यौहार चैत मास में मनाया जाता है। श्रीरामचन्द्र जी की जन्म तिथि के अवसर पर मनाया जाने वाला यह पर्व भारतीय ग्रामीण समाज में विशेष प्रसिध्द है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य-साहित्य में श्रीरामनवमी के पर्व का विस्तृत वर्णन किया है। "अलग-अलग वैतरणी" में करैता गाँव में प्रतिवर्ष रामनवमी को देवी धाम पर मेला लगता है। यह पर्व विशिष्ट उल्लास एवं आनन्द से मनाया जाता है। "आज ही मेला शुरु हुआ है। कल खत्म हो जायेगा। हर साल रामनवमी को करैता के देवीधाम पर यह मेला होता है।"[303] गाँव के मुखिया द्वारा दंगल का भी आयोजन किया जाता है, अखाड़े में पहलवानों के बीच कुश्ती लड़ी जाती। सारे गाँव के लोग बड़े उत्साह से कुश्ती देखते। कुश्ती के दाँव-पेंच को समझने का प्रयास करते हैं।

"देऊ दादा" कहानी में भी रामनवमी के दंगल का उल्लेख हुआ है- "अबकी नवमी को सदा की भाँती फिर दंगल का आयोजन हुआ। जयकरन फिर उस्ताद बना। लड़ने वालों को छुड़ाना, निर्णय देना यही उसका काम था। कभी-कभी आँख उठाकर वह मंदिर की ओर देखता। औरतों के भारी समाज में कितनी जोड़ा आँखे उसकी परिचित हैं, यही जानना चाहता। गाँव वालों को उसकी यह चाल बुरी लगती। पर जमींदार के डर से किसी की साँस न निकलती।"[304] इस प्रकार कुश्ती

में अक्सर गाँव के जमींदार की बेईमानी से या कुश्ती लड़ने वाले पहलवानों के गलत दाँव पेंच से जब झगड़ा पैदा होता तब प्राय: न्याय का पक्ष नहीं लिया जाता। कुश्ती देखने वालों में कुछ न्याय के पक्ष में बोलने का प्रयत्न तो करते हैं, परन्तु उनका साहस भी एक तरफा ही होता है। अक्सर लोग इस विषय में चुप रहना ही ठीक समझते हैं।

"रामनवमी" के अवसर पर गाँव में अक्सर नौटंकी का भी आयोजन किया जाता है। "बहाव-वृत्ति कहानी में रामनवमी के मेले पर बिहारीलाल की मंडली अपनी नौटंकी का प्रदर्शन करती है। ग्राम पंचायत द्वारा सारे आयोजन किए जाते हैं। बिहारीलाल अपनी नौटंकी का प्रदर्शन स्टेज पर करता है।- "नाच शुरु हुआ। बिहारीलाल बढ़िया चटक बनारसी साड़ी पहने चुचके गालों को रंग से सँवारे हुए पाउडर की मोटी पर्त से झुर्रियों को छुपाये, घुँघरु झनकारते जब स्टेज पर आये, तो तालियों की गड़गडाहट ने उनका स्वागत किया। हारमोनियम मास्टर ने जोर से धोंकनी चलायी। बिहारी ने लम्बा आलाप किया।"[305] किन्तु अपने नाट्य प्रदर्शन को दिखाने में बिहारीलाल असफल होता है। जनता उसका विरोध करती है। इस प्रकार के प्रयत्न वह पहले भी करता था, किन्तु भाववेश में उसके गले के राग को सुनने में दर्शको को असुविधा होती है।

"तो..." कहानी में भी रामनवमी के मेले के बाद की स्थिति का वर्णन हुआ है। ग्रामीण समाज में उक्त पर्व के पश्चात् का वातावरण सजीव बन पड़ा है। "रामनवमी के मेले के बाद काफी सन्नाटा था। रात को नौटंकी और कव्वाली दंगल में थकी आँखे मुश्किल से खुल पातीं। सारे नवयुवक थके-थकाये पड़े थे। उन्हें इस आलस्य में मजा आ रहा था। खास तौर से आज के दिन बूढ़ों से न तो आलसी होने का रिरियाना सुनना पड़ता, न किसी जरुरी काम के न होने की हाय- तोबा ही ´Ö“Ö´ £Ö´..."[306] रामनवमी का यह पर्व गाँव वालों मे उत्साह लाता है। वे कई दिन से इसकी प्रतीक्षा करते हैं। मेला, दंगल, एक दूसरे से मिलना, चहकना, बातें करना, औरतों और बच्चों का मेले में जाने को व्याकुल होना आदि रामनवमी त्यौहार की विशेषताओंको व्यक्त करते हैं। यह त्यौहार आज भी गाँव में परम्परागत रुप में मनाया जाता है। उत्सव की तैयारी में ग्राम सभापति या मुखिया भी भाग लेता है

जिससे ग्रामीण प्रजा का उत्साह दुगुना हो जाता है। गाँवो में संक्रान्ति का पर्व भी विशेष उत्साह से मनाया जाता है। "अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में मकर संक्रान्ति के पर्व के, परम्परागत महत्त्व पर लेखक ने प्रकाश डाला है।

इस प्रकार गाँव के इस पर्व में जमींदार के घर एवं परिवार वालों का विशेष सहयोग होता। जमींदार पहले गाँव का मुखिया हुआ करता था, अतः उसी के निर्देशानुसार गाँव वालों को भी पर्व में भाग लेना पड़ता था। जमींदार की ओर से ग्रामीण जन को कलेवा बाँटना भी ग्रामीण परम्परा का प्रतीक है। संक्रान्ति के अवसर पर जो विशिष्ट मिष्ठान्न बनाए जाते हैं उनका भी उल्लेख कहानी में हुआ है। प्रत्येक ग्रामवासी को उक्त अवसर पर उपस्थित होना पड़ता था। यह उसके संस्कारों का प्रतीक है।

अतः कहा जा सकता है कि संक्रांति का पर्व गाँवों में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। बच्चे बड़े-बूढ़े सभी इस पर्व का आनन्द लेते हैं। एकरस जीवन से ऊबे हुए मनुष्यों के लिए यह पर्व त्यौंहार विशेष महत्त्व रखते हैं।

"उपहार" कहानी में भी संक्रान्ति के त्यौहार का वर्णन हुआ है। गाँव का ठाकुर अपनी नौकरानी गुलाबो से पूछता है- "कल खिचड़ी है गुलाबी...। तुम्हें क्या चाहिए? कल मेला लगेगा।"[307] अर्थात् उक्त प्रसंग के आधार पर लेखक ने स्पष्ट किया है कि गाँव में जमींदार, ठाकुर मुखिया अथवा ग्राम सभापति जो ऊँचे दर्जे के लोग कहलाते हैं ऐसे पर्वे के अवसर पर अपनी नौकरानियों को प्रसन्न रखने के लिए उन्हें, अवैध कुछ उपहार खरीद देते हैं, ताकि उनके अवैध सम्बन्ध इसी तरह पनपते रहें। वे नौकरों को भेजकर इन पर्वो पर आयोजित मेलों से श्रृंगार प्रसाधन अथवा साड़ियाँ लेकर उन्हें देते हैं जिससे उन्हें इस बात का संतोष रहता है कि उन्होंने कुछ कर दिखाया है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व भी गाँव में उत्साहपूर्वक ढंग से मनाया जाता हैं। "उपधाइन मैया" कहानी में उपधाइन जन्माष्टमी पर्व को पूर्ण उत्साह से मनाती है- "आज जन्माष्टमी थी। उपाध्याय जी के घर की सफाई उतने उत्साह से नहीं होती थी। पूजा गृह की दीवालें सफेद मिट्टी से पोती गई। सोंधी गन्ध से कमरा महक रहा था। सिंहासन धोया गया। पलने को लोगों ने सुनहरे तार रंग-बिरंगी झण्डियाँ, चमकोली पन्नी के डुकडो और कुई की मालाओं

से सजा दिया। सामने बइठके में दरी बिछा दी गयी। लड़के, ओरतें, मर्द सभी आ-आकर बैठ गए। बड़े उत्साह से उत्सव आरम्भ हुआ और रात बारह बजे जन्म के अवसर पर घंटी, घट, झाँझ मृदंग के समवेत स्वर से गाँव का वातावरण मुखरित ÆÖ ^ŠÖ..."[308] रात बारह बजे तक जाग कर लोग बालकृष्ण की मूर्ती को पालने में बिठाकर झुलाते हैं। उस अवसर पर प्रसाद भी बाँटा जाता है, जिससे पंजीरी डलवा खीरे के टुकड़े शामिल होते हैं। बच्चों के लिए यह पर्व विशेष उत्साहवर्धक होता है। चरणामृत और प्रसाद पा कर बच्चे प्रसन्न होते।

अधिकांश गाँवो में यह पर्व पूर्ण श्रध्दा से मनाया जाता है। इस अवसर पर साफ सफाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। श्रीकृष्ण के जन्म दिवस पर मनाए जाने वाले इस पर्व को भारतीय संस्कृति का प्रतीक भी माना जाता है। विविध देवी-देवताओं की आराधना के अन्तर्गत श्रीकृष्ण की यह आराधना भी महत्त्वपूर्ण है।

होली को भी गाँवों में उल्लास एवं आनन्द से मनाया जाता है। होली रंगो का त्यौहार साम्प्रदायिक एकता का प्रतीक है। खलील गाँव की प्राचीन परम्परा का ही निर्वाह करता है, उसके आँगन में होली के अवसर पर भांग बनाई जाती है। खलील चाचा कहते हैं कि, "तुमने तो देखा ही है कि होली के दिन मेरे सहन में जाजिमा बिछ जाती। और क्या छोटा और क्या बड़ा सब इकट्ठे होते। फाग गानेवाली टोली पहले यहाँ छावनी पर जमती थी, फिर यहाँ से उठकर लोग सीधे मेरे दरवाजे आते। मैं अहीरों को बुलवा कर पहले से ही कंडाल भर ठंढई बनवाये ¸ÆŸÖÖ..."[309] गावों में ऐसे मुसलमान परिवार कम ही दिखाई देते हैं जो अपनी साम्प्रदायिक सद्भावना का परिचय देते हैं। उनके लिए हिन्दु पर्व का मानना असाधारण बात है। इसमें पता चलता है कि सभी मुसलमान कठोर ह्रदयी नहीं होते। इस प्रकार होली रंग में पगे सभी लोग बड़ा आनन्द लेते हैं, भाँग के नशे में पुरुष एक-दूसरे को अश्लील गालियाँ देते हैं। गाँव के सारे लोग एक जगह एकत्रित हो ठंढाई का आनन्द लेते हैं। बहकी-बहकी बातें करते हैं। नाच गाने का आयोजन होता है। होली का यह पर्व, गाँवों में ही विशेष आनन्ददायक होता है। यह गाँव वालों के परस्पर प्रेम एवं खुशी का प्रतीक त्यौहार है। लोग इस पर्व की

प्रतीक्षा बड़ी बेचैनी से करते हैं। कुछ समय के लिए सभी अपने कष्टों को भूलकर गले मिलते हैं। वस्तुतः यह पर्व भारतीय ग्रामीण सांस्कृतिक वैशिष्ट्य का परिचायक Æ...

दुर्गापूजा एवं नवरात्रि का वर्णन लेखक ने "गली आगे मुडती है" उपन्यास में किया है। काशी प्रान्त के अन्तर्गत दुर्गापूजा के पर्व का उल्लेख कर लेखक ने वहाँ की सद्भावना को वाणी प्रदान की है- "पर जिसने बनारस की दुर्गा पूजा देखी है वह साक्षी देगा कि भाव, ज्योति और नृत्य की जो त्रिवेणी यहाँ बहती है, वह अन्यत्र कहीं शायद ही दिखे! बंगालियों का दुर्गा-उत्सव, हिन्दी-भाषियों की रामलीला और गुजरातियों के गरबा का ऐसा सम्मोहक संगम नहीं मिलेगा।"[310] माँ दुर्गा की महिषासुर मर्दिनी की भंगिमा की मूर्तियाँ मंदिरों में विशेष स्थान देती हैं। विशेष पूजा एवं उत्सव का आयोजन होता हैं- "उत्सव एक है। स्तर भिन्न हैं। एकाध बंगालिनें जार्जेट और बनारसी सिल्क की साड़ियों मे भी नजर आ सकती हैं, पर अधिकांश के शरीर पर पॉत की चौड़े बार्डरवाली साडियाँ हैं, आँचल के खूँट में कलियों के गुच्छे बंगाली संस्कृति की रुढ़ि पर मोहर लगा रहे हैं वैसे ही कुछ घरों में संदेश है, गरी की बरफी है, रसमलाई है, रशोगुल्ला है, पर कहीं सिर्फ बताशा कदमा या मंडी ही बहूत कुछ है।"[311] गुजराती भी इस पर्व को आनन्द और मंगलमय वातावरण में मनाते हैं। औरतें गरबा नृत्य करती हैं। नवरात्री की यह पूजा उनके लिए हर्ष का कारण बन जाती है। दुर्गापूजा के महत्त्व को स्पष्ट करती हुई किरण कहती है- "मातृपूजा के दो ही सर्वथा जागृत केन्द्र हैं अभी तक। बंगाल और गुजरात। कलश है ऊपर दीप। यह बंगाल है। कलश के भीतर दीप सुरक्षित है। मातृ ज्योति घट-गर्भ में है यह गुजरात है। अगियारी लेकर नाचना बंगाल है, घट के भीतर दीप लेकर माँ की वन्दना में नाचना यह गुजरात है। सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड ही घट है, आदित्य का दीप है जिसे लेकर महामाया हमेशा नाचती रहती है।... गर्भ दीप घर फिर गर्भदीप, पुनः गरभा और अन्त में गरबा।"[312] इस प्रकार गरबा के महत्त्व को स्पष्ट कर किरण, दुर्गापूजा के पर्व की विशेषता पर प्रकाश डालती है। इस प्रसंग द्वारा वस्तुतः लेखक ने पाठक को भारतीय संस्कृति से परिचित करवाया है। गरबा नृत्य का दुर्गापूजा में विशेष महत्त्व है... "लड़कियों ने अपने-अपने हाथों

में फूलों के गजरे बाँध रखे थे। वेणियों मे भी श्वेत कुंद के गजरे सुशोभित थे। और यह लो, कालिका जी का गरबा शुरु हो गया:, माँ तू, पावा की पटरानी हैं, तू काली है, तू काकिला है। माँ तेरा पर्वत पर निवास है। माँ मेरी प्रेम-भावनाएँ ÃÖ´ÖÖ`¯ÖÖŸÖÖ Æü..."[313] यह नृत्य गुजरात मे ही नहीं जहाँ-जहाँ गुजराती निवास करते हैं वहाँ-वहाँ नृत्य किया जाता है। इस नृत्य में लड़कियाँ, औरतें सभी भाग लेती हैं। यह न केवल गुजरात की अपितु भारत की एक ऐसी मिली-जुली संस्कृती है जो भारतवासी को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती।

गुजराती एवं बंगाली समाज की दुर्गा पूजा के वर्णन के आधार पर भी भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है। पूजा की पध्दतियाँ भिन्न-भिन्न होने पर भी उसका महत्व तो एक ही है। परम्परागत संस्कार बंगालियों, गुजरातियों में विद्यमान है। अत: उनमें अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं। अपनी-अपनी पध्दति विशेष के आधार पर दोनों का अपना स्थान है। दोनों की अपनी महत्ता है। भारतीय पर्वो में दीपावली को भी विशेष महत्व प्राप्त है। दीपावली कार्तिक मास की अमावस्या के दिन मनाई जाती है। इस पर्व की तैयारियाँ कई दिन पहले से ही होती रहती हैं। लोग घर की सफाई करते हैं, घर की दीवारों को चूने से रंगा जाता है। ग्रामों में भी इस पर्व को हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है- "गली आगे मुड़ती है" में भी काशी के वातावरण में दीपावली पर्व को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। "दीपावली हर शहर-गाँव के लिए अपना महत्त्व रखती ही है, पर कार्तिक तो जैसे कार्तिकेय के पिता शिव की इस नगरी में अपनी सारी मोहिनी लिए चहुँ ओर डेरा डाल देता Æü..."[314] कृष्ण पक्ष की सफाई और सफेदी का जो माहौल शुरु होता है वह दीपावली की संध्या तक वैसे ही चलता रहता है। कौन दुकानदार है, जो लक्ष्मी प्रवेश के इस मुहूर्त पर अपनी दुकान को साफ-सुथरी न कर ले। लक्ष्मी पूजा के अवसर पर किए जाने वाले इस कार्य को हर व्यक्ति करता है। उस समय लोगों में एक आनन्द की अनुभूति होती है। आने वाले पर्व के प्रति श्रध्दा होती है। हर घर, परिवार गाँव-प्रान्त, प्रदेश में यह पर्व मनाया जाता है। काशी के परिवेश में यह पर्व अपना विशिष्ट आकर्षण लिए होता है। "गली आगे मुड़ती है" में रामानन्द किरण को साथ ले काशी के प्रसिध्द "सहस्त्र दीप मंदिर" जाता है, वहाँ पर किरणदीप जलाती है।

उन दीपों को मंदिर के ऊपरी हिस्से पर रख रामानन्द, किरण की इच्छा को पूरी करता है। दीपावली उसके अपने आनन्द को प्रकट करती हुई लगती है- "मैं पिछले पाँच छः वर्षो से काशी की दीपावली देख रहा हूँ। रात बारह बजे तब छूटने वाले पटाखों से नींद उचट जाती है, पर वह दीपावली, जैसे मेरे सपनों के दीपों ÃÖê³ÖŞ ß £Öß… µÖê¤ü ßÖ ´ÖêÞß † ÖŸÖÖ □úß • µÖÖêŸÖ ÃÖê×ÖÖ □úü‹ □úÖ□úÖü ÆÖê □Ö £Öê".[315]
काशी की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ गंगा के जल में अपनी छवि को निहारती हैं, घाट पर सजे दीप सहज ही मानव मन को आकर्षित करते हैं। नीचे ऊपर दोनों तरफ दीपावली थी। दीपों की पंक्तियाँ नीले जल में प्रतिबिम्बित होकर दुहरी प्रकाश रेखाएँ खींच रही थीं। इस प्रकार दीपों का त्यौहार दीपावली अपनी मनोहर छटा बिखेर देता है। अमावस्या की अन्धेरी रात दीपों के उजियारे से प्रकाशमान हो उठती है। बच्चे-बड़े-बूढ़े सभी इस पर्व को खुशी-खुशी मनाते हैं। यह पर्व भारत की प्राचीन परम्परा का प्रतीक है। भारतीय पौराणिक कथा से जुड़ा यह पर्व सत्य की असत्य पर विजय का प्रतीक है। इस पर्व को मनाकर लोग मंगलकामना करते हैं कि सच्चाई की ही सर्वदा विजय प्राप्त हो। इस दृष्टि से यह पर्व और भी महत्त्वपूर्ण ÆÖ •ÖÖŸÖÖ Æî…

भारत के प्रमुख पर्वो में "रक्षा बन्धन" का भी स्थान है। भाई-बहन के प्रेम को सुदृढ बन्धनों में बाँधने वाला यह पर्व श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। बहन-भाई की कलाई पर "रक्षा" बाँधकर भाई से अपनी रक्षा करने का वचन लेती है। इस प्रकार भाई - बहन का यह अटूट प्रेम सुदृढ़ हो, इस कारण हर वर्ष बहन भाई की कलाई पर राखी बाँधती है। शिवप्रसाद सिंह ने "गली आगे मुडती है" उपन्यास में इस पर्व के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। शोभना जीजी के साथ रामानन्द उपरी तल्ले पर चला गया वहाँ वह देखता है कि, "वहाँ सचमुच राखी बांधने की सारी तैयारी मुकम्मल थी। मैं सोच रहा था कि उस दिन जब मैं बक्कड के सारे प्रभाव को तोडने के लिए शोभना को जीजी कहा था, उसी क्षण उसकी आत्मा में सोया भ्रातृत्व जग उठा था।"[316]

रामानन्द रक्षाबन्धन के त्यौहार की पिछली यादों मे खो जाता है। "पर आरती, आरती उतारती, रोली, हल्दी और दही के मिश्रण से बना तिलक लगाकर

उन पर अक्षत साटती, फूल बिखराती और मैं अपना हाथ बडे विश्वास के साथ उसके सामने फैला देता कि देख ये है तेरे भाई के हाथ जो तेरी हर विपत में रक्षा करेंगे। 'कहाँ कर सका, मैं आरती की रक्षा।' मेरे मन का मृग-शावक फिर ™ÖÖêü ûÖÖ ÆÖü." [317]

आरती के प्रति रामानन्द का प्रेम स्वाभाविक है। आरती के घर से भाग जाने पर रामानन्द की ग्लानी स्पष्ट हुइ है। उसे इस बात का पछतावा है कि वह अपनी एकमात्र बहन की रक्षा करने में असफल हो गया है। रक्षाबंधन को आरती की याद उसे विव्हल कर देती है, किन्तु चाहकर भी वह आरती के घर जा नहीं पाता, माँ भी उत्सव का भोजन नहीं बनाती। रामानन्द घर से निकलकर शोभना जीजी के पास जाता है और उसी से राखी बँधवाकर उसे राखी बँधवाई के इक्कीस रुपये देता है"।

इस प्रकार लेखक ने रक्षाबंधन के पर्व की विशेषता प्रकट की है। बहन-भाई के प्रेम में दरार पड़ जाने पर इस पर्व का आनन्द समाप्त हो जाता है। आरती के घर से बिना कहे भाग जाने पर रामानन्द की दशा भी दयनीय हो जाती है। उसका आत्माभिमान बहन के यहाँ जाने से उसे रोक लेता है। उसे इसी बात का दु:ख है कि वह बहन की आवश्यकताओं को जान न सका। रक्षाबंधन के पर्व पर रामानन्द का उदास हो जाना उसके दु:ख को व्यक्त करता है। इसी उपन्यास में बसंत पंचमी के त्यौहार का भी उल्लेख हुआ है। यह त्यौहार माघ मास की पंचमी के दिन मनाया जाता है। उस दिन सरस्वती पूजा की जाती है। आम के बौर को रखकर कामदेव की पूजा की जाती है। इस दिन औरतें पीले वस्त्र धारण करती हैं, पैरों में महावर लगाती हैं। "गली आगे मुडती हैं" उपन्यास में भी इस त्यौहार का वर्णन हुआ है। "बसंत पंचमी आरती का जन्मदिन है। हमारे घर में बसंत पंचमी नहीं मनाई जाती। देहात में होली ही बहुत है? बसंत पंचमी की टीमटाम कौन करे †xŸÖx¸ŒŸÖ…" [318]

बसंत पंचमी का यह दिन अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इन दिन विवाह भी होते हैं। उत्तर भारत एवं राजस्थान के कुछ प्रान्तो में इन दिन होली भी खेली जाती है, जिसमें पीले रंग को विशेष महत्त्व दिया जाता है। युवतियाँ और विवाहित औरते इस पर्व का आनन्द लेती हैं।

शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य साहित्य में उत्तर भारत एवं पूर्वांचल में प्रचलित हिन्दु पर्वो एवं त्यौहारों का विस्तृत विवरण दिया है, जिससे भारतीय सांस्कृतिक जीवन की झलक पाठक को मिल जाती है।

4.5.3.7 ´Ö»Ö :

ग्रामीण समाज में मेलों का विशेष महत्त्व होता है। त्यौहार विशेष के अवसर पर मेलों का आयोजन गाँवों में होता है। गाँव में मेले की धूमधाम कई दिन पहले से ही होती है। शिवप्रसाद सिंह ने रामनवमी एवं संक्रान्ति पर्वो के अवसर पर आयोजित मेलों का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। "अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास का आरम्भ ही रामनवमी के मेले से होता है। लेखक ने इस वर्णन में विशेष रुचि दिखाई है, पाठक के सम्मुख मेले का चित्र ही खिंच जाता है- "देवीकुण्ड के चारों कगारों पर आदमी। मन्दिर के इर्द-गिर्द आदमी। चौतरफा फुटनेवाले रास्तों पर आदमी। रास्ते बेरास्ते पेड़ो के नीचे, सर्वत्र आदमी-ही आदमी। इनमें मर्द कम, औरतें और बच्चे ज्यादा। तरह-तरह की काली, गोरी, गन्दुमी-नवची, अधेड़, बूढी। एक-एक के साथ बच्चे-बच्चियों की लम्बी कतार। एक का हाथ एक पकड़े। इंजन के साथ जुड़े मालगाडी के डब्बों की तरह, हिलते-डुलते, लड़खड़ाते-घिसटते बच्ची-बच्चे। रास्ते-बेरास्ते चलती इन मालगाडियों का आपस में टकराना स्वाभाविक Æî..."[319]

इस प्रकार लेखक पाठक को करैता के मेले की सैर कराता हुआ चलता है। लेखक का वर्णन सचमुच प्रभावकारी है। चित्रात्मक शैली का प्रयोग लेखक ने किया है। मेले में अक्सर इस प्रकार की भीड़ देखी जाती है। हर कोई जल्द से जल्द पूरा मेला देख लेना चाहता है, सामान खरीदना चाहता है, कोई बच्चों के लिए मिठाई खिलौना, कपड़े तो स्वयं कुछ औरतें अपने लिए, चूडियाँ सिन्दूर, टिकली या साड़ी आदि। इस खरीदारी के लिए औरतें गाँव के बनिए से रुपया भी उधार माँग लाती हैं, कोई कठवत और बेलना खरीदना चाहती है तो कोई अमफरनी और कहुकस। करैता के मेले की अपनी विशेषताएँ हैं, जिसमें भेड़ो की लड़ाई भी होती है, दंगल में कुश्ती का आयोजन भी होता है, "सदा बहार कम्पनी

की नौटंकी भी विशेष प्रभावकारी होती है। हर मेले को समान करैता के मेले में लड़कियों से छेड़खानी भी होती है। पर करैता की किसी शीख लड़की से छेडखानी करने के कारण मारपीट और खून-खराबा इस मेले का सालाना रिवाज £ÖÖ..."[320]

बच्चों के लिए खिलौने मिठाई आदि की दुकाने भी गाँवो के मेलों में लगती हैं। बच्चें मिठाई और खिलौनों के लिए जिद करते हैं। सारी चीजें, खरीदकर जाते समय उनका मन अपनी चीजों में लगा रहता है- "लड़के, मेले से काफी दूर आ गये थे। मोह छूट गया था। अब वे मेले की खुशी से कटने का दुःख भूलकर अपने मनपसन्द गंवई खेलों में खो गये थे आगे एकदम छोटे-छोटे बच्चे थे। अधिकतर छोटी जाती के। गन्दे-गन्दे काले धूल धूसरित। वे सब एक में गुलम-गुत्थम होकर तालियाँ बजा रहे थे। एकदम ताल-लय के साथ।"[321]

बच्चों के स्वागत का भी चित्रण लेखक ने अपने गद्यसाहित्य में यथार्थ रुप में किया है। मेले में जाने वाली औरतें अपने साथ बच्चों के लिए खाने की चीजें भी साथ ले जाती हैं जिन्हें किसी पेड़े के नीचे बैठकर उन्हें खिलाने का प्रयत्न करती हैं। मेला शाम को जाकर खतम होता है और औरतें बच्चे अपने सारे सामान लेकर »ÖÖ™ ¯Ö›ŸÖ Æî...

मेले मे जमींदार का भी अपना रुतबा होता है। करैता के मेले में लोग पिछले मेलों की याद करते हैं, क्योंकि जमींदार जयपाल सिंह के जमाने में मेले की रौनक कुछ और ही होती थी। दयाल पंडित जयपाल सिंह के जमाने की याद करते हुए कहते हैं- "तब बुढ़ऊ सरकार जी मेला में खुद आते रहे। बिना उनकी सवारी आये नाच नही होता रहा। तू उन्हें देखे है कि नहीं। क्या बात थी ऊ गोरा भीषण शरीर, दपदप मलमली साफा वैसा। चटक कुर्ता तो इस देहात में दूसरे को पहने नहीं देखा यह मुढ़िया गल-गोच्छे, काले-काले जामुन की तरह पीछे-पीछे गोबरधना चलता था बन्दुक लिए। ऐसी छाती फुलाए रहता कि जानों पलटन का सिपाही है। बड़ा ताप था बुढ़ऊ मालिक का।"[322] नवमी के मेले में बुढ़ऊ मालिक के बखट में पाँच मन लड्डू बँटता था हाँ। दो लड्डू से कम किसी को नहीं। और छोटा हो या बड़ा मालिकार जी सबसे मुस्कराकर कुशलमंगल पूछें। सारे गाँव के एक-एक लड़के

का नाम याद उनको। हँसमुख भी खूब थे।"[323] जमींदारी प्रथा के समय की उक्त प्रथा को यादकर प्रजा जमींदार की शान अपना विशेष स्थान रखती थी। लोग जमींदार के मेले में आने की प्रतीक्षा करते रहते थे किन्तु जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् जमींदार वर्ग इन सार्वजनिक कार्यो में कम ही रुचि लेने लगा था। प्राचीन परम्परा में परिवर्तन हो गया था, जिसका मलाल ग्रामीण जनता को हैं।

जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से करैता गाँव में संक्रान्ति के पर्व पर होने वाले मेले पर भी रोक लगा दी थी। पहले करैता में यह उत्सव पूर्ण उत्साह से मनाया जाता था- "सारा गाँव इस उत्सव को अपनी शक्ति भर रंगीन और चटक बनाने की कोशिश करता रहा है। और किसी त्यौहार को कुछ हो या न हो इस दिन बच्चों को जाड़े के नए कपड़े जरुर चाहिए। औरतें नदी-तट के जलसे में कभी शरीक नहीं होती थीं, पर लड़को को नहला-धुलाकर ठीक से कपड़े पहना, उन्हें घर के बड़े-बूढों के हाथ सौंपने का काम वे वहां जाकर जरुर करती थी। ठीक से रहना चुलचुल मत करना, बाबू की उँगली मत छोड़ना थकने पर भइया के कंधो पर चढ जाना ये हिदायते देकर स्त्रियाँ कनखी से उस नवान्न-वितरण के कार्य को देखती, गाँव लौट आती थी। फिर बच्चों को कलेवा कराने से लेकर कस्बे के मेले से सकुशल घर लौटाने का सारा उत्तरदायित्व प्रौढों के सिर होता है।"[324] इस प्रकार संक्रान्ति का मेला करैत में विशेष स्थान रखता है। किन्तु जमींदार बुझारथ सिंह की कंजुसी के कारण संक्रान्ति के अवसर पर जो नवान्न वितरण होता था, वह भी बन्द हो गया- "बुझारथ ने नदी तट का यह "वाहियात झमेला" बन्द करा दिया "मारो गोली"। उन्होंने काफी घृणा से मुँह विदोरकर कहा- "क्या रखा है इस दिखावे में? सारा रस्म रिवाज हमी निभाते चलें? जब गाँव के लोगों ने सलामी नजराना बन्द कर दिया तो हम यह सब काहे करते फिरे।"[325] इस प्रकार मेले के अवसर पर गाँव के लोगों का अन्न का वितरण तो बन्द हो गया किन्तु गंगा स्नान की परम्परा जारी रही। कनिया, अपने बच्चों के साथ गंगा स्नान जाती है जब कि विपिन और बुझारथ घर पर ही रह जाते हैं।

गाँव की परम्परा थी कि जिस लड़की का विवाह निश्चित हो जाने के कारण संक्रान्ति के मेले में नही जाती- "लगन निश्चित हो जाने पर लड़कियाँ मेले

ठेले नहीं जाती। वरपक्ष की ओर से किसी आगन्तुक द्वारा पहचान लिए जाने की आशंका होती है।"[326]

उक्त प्रसंग द्वारा ग्रामीण समाज की संकुचित मानसिकता का संकेत मिलता है। इस प्रकार मेले वस्तुतः ग्रामीण संस्कारों को व्यक्त करते हैं।

"उपहार" कहानी में भी रामनवमी के मेले का वर्णन किया गया है। जो ग्रामीण समाज में बडे उत्साह के साथ मनाये जाते है। बच्चन गुलाबी से कहता है कि, "आज खिचडी है गुलाबी" बच्चन बोला, "जल्दी से मटर रखकर हम भी मेला चलेंगे। आज ठाकुर पैसे देंगे। बोलो तुम्हे क्या चाहिए।"[327] शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य में पूर्वांचल के ग्रामीण संस्कृति का परिचय मिलता है।

४.५.३.८ कीर्तन :

गाँवों में भजन कीर्तन का भी विशेष महत्त्व होता है। "बेहया" कहानी में सुभागी कार्तिक एकादशी को गंगा स्नान कर मंदिर जाती है क्योंकि कार्तिक एकादशी को गंगा स्नान पुण्य का प्रतीक माना जाता है- "देवोत्थान एकादशी के ×¤üÖ ŸÖÖ,ü ¯ÖüúÖ Ûúß ³Öß ÛúÆüÖê• ÖŸÖÖß Æü¡Öü ¤üæ×ü¤üæ×ü Ûêú »ÖÖêÖ ÛúÖÖÖ Ã-ÖÖÖ Ûêú ×»Ö †ŸÖÖêÆüü.
úÖÖü ¯Ö †ÖÖ Ûêú Öê Öê Ûêú ²ÖÖ"Öš Öü ã¸üÖÖ,ß Æü¡ †Ö Ö Ûêú ×¤üÖ³¾ÖÆüÖÑ ÛúÖüß "ÖÆüÖ- ÖÆüÖ ¸üÆüŸÖß Æüü. ¤êüÖ×¤üÆüÛŸÖÖ Ûêú -ÖÖÖß ¯ÖÖÖß, ÖÖ¿Öêú´ÖÆüÖ ¸üÖÖ¤üÖÃÖ²ÖÖÖÖ Ûêú ÃÖÖÖÖê³Ö ÖÖ ÃÖêÖÖŸÖêÆüü."[328] सुभागी को सामदास के कहने पर रामायण के दोहे गाने पड़ते हैं-

"मैं पुनि पुत्रबधु प्रिय पाई। रुप रासि गुन सील सुहाई।
नयन पुतरि कर प्रीति बडाई। राखेडँ प्रान जानकिहि लाई।"[329]

इस प्रकार अपूर्ण दोहे को पूर्ण करने में सुभागी स्वयं को असमर्थ पाती है क्योंकि सुभागी को महंत ने "बाई" कहा था जबकि सुभागी ने अपना वैश्या का कलंकित जीवन त्याग दिया था, वह अपने जीवन को सुधारना चाहती है किन्तु गाँव वाले उसे उसी नाम से पुकारते हैं। दोहे सुनाते समय सुभागी का दुःख उमड़ पड़ता है और वह आगे गा नहीं पाती। जो दोहे वह सुनाती है उनमें माता-सीता के विरह की व्यथा व्यक्त होती है। उन दोहों को गाने में वह असुविधा का अनुभव करती है। वह चाहकर भी अपने पिछले जीवन से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाती।

साधारण लोगों की तरह ठाकुर की देहरी पर सिर नहीं नवा सकती। भगवान के द्वार पर भी उसे गाने बजाने के लिए विवश किया जाता है।

"नन्हों" कहानी में चमारों की बस्ती में आयोजित सत्संग एवं कीर्तन का वर्णन हुआ है। चमार इस कीर्तन में अपना पूर्ण सहयोग देते हैं - "उस दिन चमदोली में गादी लगी थी। कार्तिक की पूनो को हमेशा यह गादी लगती। बीच चौकी पर सतगुरु की तस्वीर फूल मालाओं से सजाकर रखी हुई थी। अगरबत्तियों के धुएँ से चमरौटी की गन्दी हवा भी खुशबुदार हो गयी थी। कीर्तन मण्डली बैठी हुई थी। गाँव की औरतें बूढ़े, बच्चे इकट्ठे होकर भजन सुन रहे थे-

"जो तुम बाँधे मोह फाँस हम प्रेम बंधन तुम बाँधे
अपने छूटन की जतन करहू हम छूटे तुम आराधे
जो तुम गिरिवर तउ हम मोरा
जो तुम चन्दा हम भये हैं चकोरा
माधव तुम तारेहु तो हम नाहिं तोरहिं
ŸÖã ÃÖê ŸÖê ü ûŸÖÖ ÃÖê • Öê ¾ÖÆü..."[330]

इस प्रकार इस सत्संग एवं कीर्तन में सभी लोग भाग लेते हैं। इससे गाँव में भक्तिमय वातावरण छा जाता है।

"खैरा पीपल कभी न डोले" कहानी में भी चमारों के कीर्तन का वर्णन हुआ है-"हमारे गाँव की चमटोली में भी सिवनारायन गुरु की गादी लगती थी। दूर-दूर के चमार दर्शन करने आते। उस दिन हक के दरवाजे पर दरी बिछती और बड़ी भीड़ होती। सामने की चादर चावल से भर जाती। कुछ रुपया, पैसा भी गिरता। हमको गादी की चौकी बहुत पसंद आती। हरी लाल पन्नी से सजाकर चौकी पर सिवनरायन गुरु की तस्वीर लगाई जाती। नाच-गाना भी होता। पहले तो किर्तनिया लोग धीरे-धीरे कुछ मधुर स्वर में गुनगुनाते फिर अचानक जाने क्या होता कि कोई जोर से "होय" कहता और ढ़ोलक बड़ी तेजी से बजने लगती, सभी ताली पीट-पीटकर झूमने लगते एही पार गंगा, ओही पार जमुना

ÆÖ‹ - ‹ ‹
बिचवा में साहब क डेरा-

बिचवा में साहब का डेरा।"[331]

चमारों के लिए यह कीर्तन अपनी बस्ती का प्रमुख सांस्कृतिक आयोजन है। इसे वे परम्परागत रुप में मनाते आए हैं। आज भी गाँव में इस तरह के कीर्तन चलते रहते हैं। यह कीर्तन उनके अपने गुरु के प्रति श्रध्दा के प्रतीक हैं। इस सत्संग में गाने-बजाने का प्रबन्ध अवश्य होता है, जो चमारों द्वारा ही आयोजित किया जाता है। गुरु की तस्वीर के आगे शीश नवा कर सारे अपने-अपने घर लौट जाते हैं। यह सत्संग चमारों की बस्ती की समन्वय दृष्टि का परिचायक है।

४.५.३.९ लोकगीत और लोकनृत्य :

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लोकगीतों की परम्परा बहुत ही प्राचीन है। भारत के हर प्रदेश आँचलिक क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकारके लोकगीत गाने की प्रथा प्रचलित है। लोकगीत किसी पर्व उत्सव या त्यौहार विशेष पर गाये जाते है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में भी लोकगीतों को सार्थक रुप प्रदान हुआ है।

"अलग-अलग वैरणी" उपन्यास में भी विपिन्न जब सामने पुष्पा को देखता है। तब उसके मन में परेशानी और अपरिचय के मिले-जुले भावों को देखकर कनिया बहुत खुश हुई है। जाने तभी उनको कहाँ से बचपन की सीखी पंक्तियाँ याद हो आयी और वे ताली बजा-बजाकर गा उठी-

"चोली रे पहिरि हम हाट गए सुनु बालहिया।
चोर परीखन लागु परम हरि बालहिया।"[332]

पुष्पा के विवाह के बाद सुरजितवा का यह गीत गाँव भर में गूँजता रहता है।

"सजन सकारे जायेंगे
प्रान मरेंगे रो-ो-ो-ो-य।
विधना ऐसी रैन कर
भोर कभी न हो-ो-ो-ो-य।।"[333]

विपिन और पुष्पा के प्रेम को समझकर सुरजितवा पुष्पा की विदाई का संकेत और जीवन में कभी दु:ख न आये इस प्रकार की कामना अपने गीत के माध्यम से व्यक्त करता है।

बीसू धोबी अपनी मण्डली के साथ ढोल और करताल लेकर बैठ जाता। चारों तरफ स्वरों का मेला लग जाता। उसके अलाप की काँपती आवाज दिलों में दर्द की घुमड़न बनकर बरसने लगती। सहसा उसकी आवाज मध्दिम हो जाती। वह एक नजर सामने बैठे लोगों को देखता। आँखे नम हो जाती और वह धीरे-धीरे गाने लगता-

"उनके अँखिया से लोरबा गिरत होइहैं ना।
उनके गज मोती अँचरा भिंजत होइहैं ना।।"[334]

बीसू के लोकगीत अपनी ऊँचाई की मीनारें बनाते, इधर बडे-बूढों की आँखो में बीते जमाने की कहानियाँ घुमड-घुमडकर आने लगती हैं।

"शैलूष" उपन्यास में शिवप्रसाद सिंहजी ने मानिक और रुपा की शादी का वर्णन किया है। शादी की रस्म पूरी हुई। नटों की शादी में जो अखरनेवाली बात थी वह थी कन्या पक्ष की पूरी बिरादरी को भोजन के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से राशन देना तभी सारे मर्द छोलदरियों के सामने बिछी दरियों से उठ गये। शादी पूरी हो गयी। तभी सभी नट कन्या झुंड से झुंड हाथ से हाथ पकडे मानिक और रुपा के चारों ओर गाने लगे- नटों की शादियों में गाने वाले लोकगीत को प्रस्तुत किया है।

"केकरा हि नदिया रे झिलमिल पनिया
आ रे केकरा हि नदिया सेवाल रे
केकरा हि नदिया चल्हवा मछलिया
कवन दुलहा लावेला जाल रे
बाबा के नदिया रे झिलमिल पनिया
भइया के नदिया सेवाल रे
ससुरु के नदिया के चल्हवा मछरिया
मानिक दुल्हा लावे महाजाल रे !"[335]

सावित्री, जुड़ावन के साथ अपने घर से भाग आती है। जुड़ावन खुद को भाग्यशाली समझता है। किसी जनम का पुण्य रहा होगा कि जवानी के चौखट को

¯ÖÖ'ü ú¸ü ÃÖê×ÖÖ ...

कुछ लुटा दिया यह घटना जुड़ावन के लिए अविस्मरणीय बन जाती है। जुड़ावन ने ढोलक पर थाप दी। जुड़ावन ने आलाप ली:

"आहो रामा मानिक हमरो हेरइले हो रामा
आहो रामा ओही रे जमुनवा के चिकनी मटियवा
“Ö»ÖŸÖ ¯ÖÖ¾Ö x²Ö”ü»Ö‡»Ö ÆÖ ¸Ö´ÖÖ
आहो रामा तोरे लेखे ग्वालिन मानिक हेरइले
´ÖÖê¸êü »ÖêÖê“ÖÖÖ ×” ûÖ‡ »ÖêÆÖê ¸üÖÖ."[336]

चैते के गीत का दर्द मंजरियों से लदे नीम-वृक्षों को अपने नीले आंचल में छिपा रहा था। मेरा माणिक्य खो गया। उस जमुना की माटी इतनी चिकनी थी कि चलते हुए पांव बिछला गये। अरे ग्वालिन तेरे लिए माणिक खो गया होगा, मेरे लिए तो मेरा चाँद ही छिप गया।

नटों को जब जमीन मिल जाती है तो उनके खुशी का ठिकाना नही रहता तब सभी नट बूढ़े मर्द जमीन के सामने खड़े हो गये। नट छोकरों से ज्यादा उत्साह छोकरियों मे था। तभी नट छोकरियाँ हाथ में हाथ डाले नाच उठी, उनके गले से संगीत के बोल उठने लगे:

"हरि मोर चलले उतर बनिजरिया
दुअरा कदंब लाइ गइले हो राम
जब जब धनिया रे मनवां उदसिहे
तब तुं कदम तरै जोहिहे हो राम"

मेरे प्रिय उत्तर दिशा को नौकरी करने गये। वे द्वार पर कदंब का वृक्ष लगा गये। हे धनिया, जब-जब तुम्हारा मन उदासे, तुम इसी के नीचे खड़ी होकर मेरी बाट जोहती रहना।

दो नट युवतियाँ इस तरह नाच रही थी जैसे अपने छितनारे पंखों को फैलाकर मयूर नृत्य कर रहे हों। दोनों अत्यंत रुपवती थी। नटों के बारे में कहा जाता था कि ये जहाँ डेरा डालते है, वहाँ किसी सेठ साहुकार के घर मे सेंध मारकर धन-दौलत लूटने में उतना अभिनिवेश नहीं दिखाते जितना छोटी बच्चियों को चुराने में दिखाते हैं। परिणामत: जवानी में वर्णसंकर बच्चे-बच्चियाँ बहुत ही

आकर्षक लगती हैं। दोनों बच्चियाँ गड चुकी थी। उनके ऊपरी भाग में एक डोर बाँध दी गयी। नट अब डफ लेकर बजाने लगे थे।

"बोल खिलाडी।"

"ÆÖ ´Ö¤Ö>ß…"

"यह सब किसके लिए?"

"पेट के लिए।"

"पेट के लिए क्या प्राण देगा?"

"³ÖæÖÖë´Ö Çü³ÖêÃÖë³ÖŸÖÖë† “” üÖ ÆÖêÖÖ."[337]

ये सब नटों के रटे हुए टुकडे थे, जो हर कौतुक के समय भूमिका के रुप में बोले जाते थे। काशी विश्वेश्वर मंदिर के उत्तर स्थित चौराहे पर यह सब कौतुक “Ö»Ö ¸ÆÖ £ÖÖ…

नट जातियों की रक्षा का आश्वासन कन्हैया मिसिर से पाकर बब्बर नट प्रसन्न होता है, और वह अपनी दयनीय दशा को गीत के माध्यम से अलापता है। मादल खनकी, मंजीरे झनके बब्बर ने लंबी आलाप ली:

"बेडाले राजा गाइ-भंइसिया
काहे बदे राजा हँसा राज छोडबा
जनम दिन राजा बेडेलन गाइ भंइसिया
दस दिन राजा हँसा राज छोडबा।"[338]

युध्द के दौरान हुई नटों की दयनीय स्थिति का संकेत उक्त गीत में व्यक्त हुआ है। शत्रू राजा ने बब्बर नट के सारे जानवर छीन लिए जिससे उसे अपना शोणनाद छोडने के लिए विवश किया गया।

"हनोज दिल्ली दूर अस्त" उपन्यास में महामात्य वाशेक उदास है। त्रैलोक्य मल्ल कहते है- "आप चिन्तित न रहो राजन, काल की यदि सीमा नहीं है तो भाग्य को असीम मानकर आकाश जीवी क्यों बने? तभी केन की छाती पर चीपकडी पत्थर की शिलाएँ लादे बडी-बड़ी नावें केन यमुना संगम की ओर जाती दिखाई पड़ी। दक्खिनी-पश्चिमी हवा के कारण नावों की पाले पंख फैलाए हँसिनी की तरह तिरती मन को मोह रही थी। तभी एक लोकगीत हवा में तैर गया-

"हम का दरद होत है रजऊ प्रात हौइहैं गौन
तुम बिनु सूना मन कॉं आंगन सून लगत है मौन
तुम संग चलिबे को तरसत हैं अपने मन अरु प्रान
काह करौं कुछ समझ न आवत कैसे बचिहै मान"[339]

आई। वे बोले- "महामात्य वाशेक क्या उन लोगों ने हमारी नाव पहचान ली थी? रजऊ बिछुडने वाले हैं, यह मेरी प्रजा क्यों कहने लगी। मेरी क्या ऐसी दशा हो गई है कि मन को भरोसा देने के लायक भी नहीं रहे? कालंजर पुन: जीत चुका है। फिर जिक घड़ी, किस हाल, किस मुहूर्त की मेरी उपेक्षा से इतने निराश हैं ये लोग। मैं अपने पीछे धन नहीं दरिद्रता छोड़े जा रहा हूँ।

वाशेक, अंशुमान लगातार तीन घंटे की दौड से थके थे तभी एक सुमधुर वीणा विनिन्दित ध्वनि उनके कानों से टकराने लगी।

"माधव सा विरहे तव दीना
निन्दति चन्दनमिन्दूकिरण मन विन्दति खेदमधीरम
व्याल निलय मिलनेन गरलमिंव कलयति मलयसमीरम,
सा विरहे तव दीना
माधव मनसिज विशिखमयादिव भानूनया त्वयि लीना माधव,
सा विरहे तव दीना।"[340]

हे माधव, कामबाण से भयभीत राधा आपके भीतर विलीन हो गयी है। विरह व्यथा से अति क्षीण हो गयी । उसे चन्दन भी निंदनीय लगता हैं। चन्द्र किरण बहुत खेद पैदा करती है। मलय समीर नागों के पास से आने कारण विष तुल्य लगता है। हे माधव तुम्हारे विरह में वह अति दीन प्रतीत होती है।

"वैश्वानर" में किरात और मुंडा आदिवासियों की झोपडियाँ एक उंचे कगार पर स्थित है। लगातार वर्षा के कारण जन-जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। चारों ओर जल ही जल है। अब पानी धीर-धीरे उतर गया। रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। उसी मार्ग पर जलती हुई उल्काएँ हाथ में लिए एक छोटी टोली सामवेदी स्वरों में गाते हुए चल रही थी :

"हे वैश्वानर अग्ने मैं देता हवि तुम्हें
तुम्हारा सेवक मैं दीर्घतमा
उठो प्रज्वलित होकर हविष्य-गृहीता बनों
शत्रु पर शासन तेरा
भ्रंश करो कपट का, तमस भेदकर
प्रज्वल ज्वल् ज्वल् जागो जन कल्याण हेतु तुम जलो।"[341]

आह, पितृण्य तुम्हारा भ्रातृज शैनक तुम्हें सादर पुकार रहा है। काशी नगर जनपदोध्वंसक तक्मा रोग से ग्रस्त है, नाना प्रकार के संकट प्रतिदिन हमारा पथ 1ý-Ö ¤ ¸Æ Æ...

"बेहया" कहानी में सुभागी हर दिन कीर्तन सुनने जाती। बाबा के आग्रह पर गाने को तैयार हो जाती है। गवैयों ने हारमुनियम और तबले को साधना शुरु कर दिया या, सुभागी के लिए सुस्थिर शान्त होने का भी समय न था। सुभागी गर्दन झुकाये धीरे-धीरे गाने लगी:

"मै पुनि पुत्र बधू प्रिय पाई।
रुप रासि गुन सील सुहाई।।
नयन पुतरि कर प्रीति बडाई।
राखेऊँ प्रान जानकिहिं लाई।।"[342]

सधे कण्ड की एक तार कोमल आवाज एका-एक फँस गयी। सुभागी को लगा कि उसके कण्ठ में आँसुओं का भरपूर वेग आकर उलझ गया है, आँखें सूनी और उदास थी, पर कण्ठ के स्वरों में खारेपन की नमी उभर आयी थी।

"विन्दा महराज" कहानी में बिन्दा महराज पैरों में घुंघरु बाँधकर खड़ा हुआ तो लड़कियों की आँखों में गूलर फूलने लगे। बूढ़ी औरतें, मुँहजोर नौकरानियाँ मजाक में हँसने लगी। बिन्दा महराज इन मजाकों का उत्तर अत्यन्त खुले और अश्लील मजाकों से देता जाता। सब सह जाती, कौन किससे कहे। विन्दा महराज का गला पुरुष कण्ठ की तरह मोटा था, पर सधा। वह गा रहा था:

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके
धनि वारी उमरिया नइहर तरसे।

"कलियाँ मैं चुन-चुन सेज लगायो
मोरा सूतने वाला विदेस तरसे।"[343]

ढोलक चलते पर बज रही थी। एक विचित्र तरंग सिसकारियाँ छनछनाहट बीच-बीच में हथेली के जोर से धुम-धुम की आवाज निकालते हुए करीमा की घुटक। सभी हँसी से हत्कम्प के कारण आँचल तक थिरकने लगते।

"इन्हें भी इन्तजार है" कहानी में अपने पेट की आग बुझाने के लिए गाँव में किसी के भी यहाँ श्राध्द हो वहाँ जाकर नाच-गाकर अपने पेट की आग बुझाते हैं। खंजडी और बाँस के टिप्पे बजाकर वे हमेशा नाचते-गाते रहते। मैंने उस भीड़ में कबरी और मँगरा को इसी तरह जुड़े देखा। मँगरा मण्डली के बीच में खड़ा होकर, खंजडी बजाकर गाता और कबरी उसके चौगिर्द मोर की तरह पंख फुलाये नाचा करती।

"कहँवा पवले रे डोमवाँ कहँवा पवले रे-ए ए,
दंतरँगुई डोमनियाँ डोमवाँ कहँवा पवले रे-ए ए,
गंगा पॅवरु के हो बाबुजी गंगा पँवर के हो"[344]

सचमुच में मँगरा को कबरी गंगा पैर के ही मिली थी। "कर्ज' कहानी में जगपती अपने भाई रामपती का विवाह हो जाने से बहुत ही प्रसन्न है। जगपती पहली बार दूर की दुलाई पर जा रहा था, उसके मन में बड़ी खुशी और बड़ा उत्साह था। जग्गू का दिल तो उमंग पर था ही, कानों पर हाथ रखकर उसने बादलों को देखा और पूरे गले से गा पडाः

"अमवा के डारी में मोजरि फूलेले
गुलरी फुलेल हड्फोर
गोरिया के छतिया जोबनवाँ फूलेला
कि फाटेला करेजवा रे मोर।"[345]

इस प्रकार लोकगीतों के माध्यम से ग्रामीण लोग अपने सुख-दुःख को व्यक्त करते हैं। लोकगीत मूलतः मनुष्य की मानसिकता का परिचय देते हैं।

"श्रृंखला" कहानी में लालता सिंह का आंगन सूर्योदय होते-होते औरतों से भर गया। पुत्र जन्मोत्सव के कारण लालता खुश था। दो सौ लोगों के नाश्ते का

प्रबंध किया था। तभी ढोलक पर थाम बड़ी। एक नवयुवती भाटिन नाचने लगी, तो भाटिनें गाने लगी :

"आवहू मोर परोसिनि गोत दयादिनि हो-हो-ो -
ललना होरिला जनमवा के सोहर गाइ सुनावह हो...।"[346]

"आदमखोर पैंथर" कहानी में सुरसतिया ठाकूर सिधारी सिंह की रखैल बनकर रह जाती है। मनसा भी ठाकूर का शिकार बनती है। जब जवानी खत्म हो जाती है। तो बूढ़ी सुरसतिया को कोई देखता तक नहीं उसकी दयनीय स्थिती बन जाती है। हाय राम अपनी छाती भुटिठयों से पीटती हुई बोली, सब विलाय गया। तभी सारंगी वाला गूदड जोगी कोठी के दरवाजे आया।

"हो डेराला जियरा वरबा मिलेल बउराह
हो डेराला जियरा
अंग में भभुत सोहे गले मुण्डमाला
अइसन कुरुप बन गौरा न सोहाला
हो डेराला जियरा
हमरी गौरा रहिहै कुंवार
हो डेराला जियरा
हो डेराला जियरा।"[347]

सुरसतिया कहती है, उमरी गौरा तो फँसरी लगा के चली गयी और वह गयी भी अपनी महतारी के कारण। उसे अपनी खुशी ऐस, आराम की खतिर अपने खून दूध से पाला पोसा और खुद ही कोठा वाली डायन बन बैठी।

"घाटियाँ गूँजती है" नाटक में गोपाल शर्मा पहाडोंका गीत गुनगुनाता है। विवेक गाने के लिए कहते हैं तो शर्मा एक मेजके नीचेसे अपना बैजो निकालता है और एक कुरसीपर बैढ़कर खिड़कीसे सामने की पहाडियों को देखते हुए भीगी काँपती हुई आवाज में गाता है।

"य पहाड़ हमारे आँखो के तारे
इनको कभी ना भूल सकेंगे।
ये बहते नाले जंगल काले

श्रृंग छबीले घूँघट वाले।
हमको हमेशा याद करेंगे।
इनको कभी ना भूल सकेंगे।
यं' उँचे कगारे साथी हमारे
य' हँसते झरने हमको प्यारे
कैसे इन्हें बेगाना कहेंगे।
इनको कभी ना भूल सकेंगे।।
य' ऊँचे कगारे साथी हमारे
य' हँसते झरने हमको प्यारे
कैसे इन्हें बेगाना कहेंगे।
इनके कभी ना भूल सकेंगे।।
जब हम हँसते तब ये हँसते
जब हम रोते ये चुप करते
इनके लिए सौ जन्म जियेंगे।
इनके लिए सौ जन्म मरेंगे।।
इनको कभी ना भूल सकेंगे।।"[348]

इस गीत के माध्यम से शर्मा पहाडों का गौरवगान और हमारी सृष्टी का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में लोकगीत और लोकनृत्यों का बहुत ही अच्छा चित्रण उभरकर सामने आया है। ये लोकगीत और लोकनृत्य अपनी आँचलिक एवं क्षेत्रीय शैली में व्यक्त हुआ है। लोकगीत और लोकनृत्य यह भारत के सांस्कृतिक जीवन को अभिव्यक्त करती है।

मनोरंजन ही इन लोकगीतों एवं लोकनृत्य का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

लोकगीत लोकनृत्य शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में लोक-संस्कृति की अभिव्यक्ति करती है। अर्थपूर्ण गीतों के माध्यम से लेखक ने पूर्वी भारत के लोकगीत पर्वों, त्यौहारों, खुशी आदि में गाए जाने वाले लोकगीत गद्य साहित्य में चित्रित पूर्वांचलीय संस्कृति में प्राण डाल देते हैं।

संदर्भ संकेत

1. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 308.
2. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ६८
3. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 349
4. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४४७
5. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १४
6. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९६
7. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८८
8. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५५
9 शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७९
10. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५१
11. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२६
12. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २४३
13. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 04
14. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 219
15. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०४
16. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११७
17. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११८
18. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७१
19. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१५
20. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २८०
21. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७१-१७२
22. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १९
23. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११७
24. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १९२

25. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 219
26. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 17
27. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७१-७२
28. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६८
29. †Ö¸üŸÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 26
30. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०२
31. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७४
32. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१३
33. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५२
34. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२०
35. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१५
36. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७७
37. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३७५
38. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४६९
39. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३९१
40. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४१२-४१३
41. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७१
42. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०५
43. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११२
44. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२२
45. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४६४-६५
46. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६
47. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५३-५४
48. ×¤ü»»Öß ¤ü¸ü Æü - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 567
49. ×¤ü»»Öß ¤ü¸ü Æü - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 598
50. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८३

51. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८३
52. मानक विशाल हिंदी शब्दकोश - डॉ. शिवप्रसाद सिंह भारद्वाज शास्त्री, पृ. ४११
53. राजपाल हिंदी शब्दकोश - डॉ. हरदेव बाहरी, पृ. ४८४
54. E.M. Burgess and H.J. Lock the family p. 8
55. R.M. Maclver and C.M. page.Society p. 238
56. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३४९
57. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४१५
58. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११९
59. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५२
60. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २३७
61. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २३५
62. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७३
63. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १४१
64. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६४
65. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७९
66. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६६
67. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७१
68. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३१०
69. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 64
70. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१४
71. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६
72. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२९
73. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २५४
74. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२६
75. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२१-१२२
76. शिवप्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृ. १६६

77. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 243

78. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 254

79. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 293

80. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 248

81. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 248

82. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२६

83. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२३

84. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३३

85. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १९२

86. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३८६

87. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३९४

88. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७०

89. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 45

90. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२

91. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २३

92. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४३

93. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८८

94. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २३७

95. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७२

96. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६८

97. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७०

98. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 64

99. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 217-218

100. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 236

101. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७६-१७७

102. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १९५

103. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८२
104. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८२
105. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९५-९६
106. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०५
107. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५०
108. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १४८
109. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११३-११४
110. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६०
111. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६३
112. †Ö¸ŸÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 22
113. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 138
114. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 227
115. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 28
116. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११२
117. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११८
118. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १४९
119. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५५
120. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१२
121. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२३
122. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२५
123. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२४
124. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८२-१८३
125. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १९८
126. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३२
127. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 229
128. शिवप्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृ. १८१

129. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 172-73

130. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 194

131. ×¤ü»»Öß ¤ü¸ü Æü - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 296

132. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९५

133. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ६१

134. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६१

135. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६२

136. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४४०-४१

137. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, नेशलन पृ. २३

138. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 213

139. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 84

140. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 126

141. शिवप्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृ.१७८-७९

142. †Ö¸üÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö.126

143. †´ÖÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 154

144. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १११

145. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०२

146. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०६

147. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३८

148. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५१

149. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २५९

150. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २५९

151. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७५

152. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १०

153. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३

154. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ.शिवप्रसाद सिंह पृ. १९

155. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६४
156. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 128
157. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११५
158. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८१
159. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६९
160. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७६
161. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३९७
162. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३५
163. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१९
164. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २३
165. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३५
166. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४४६
167. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 188
168. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १४७
169 अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.३०८
170. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.४८४
171. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३६६
172. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, संपा. अरुणेश निरन, ¯Ö. 08
173. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७७
174. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.६१
175. आलोचना, जनवरी, मार्च - १९७८, डॉ. महेश्वर, पृ. २७
176. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö.231
177. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö.19-20
178. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö. 28
179. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÆ, ¯Ö.12

180. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 162

181. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४३०-४३१

182. †Ö¸üŸÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 24

183. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८१

184. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८५

185. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२३

186. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२६

187. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ.१०२

188. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५५

189. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३३२

190. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 32

191. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७१

192. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 58

193. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 15

194. शिवप्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृ. १३८

195. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७१

196. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७२.

197. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८०

198. शिवप्रसाद सिंह - संपा. अरुणेश निरन, पृ. ८४

199. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४७-४८

200. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५५

201 अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.५९

202. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 28

203. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २५८

204. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.६१

205. गिता रहस्य - बाल गंगाधर तिलक, पृ. २१२

206. इन साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स वॉल्युम - १०, पृ. ६६३
207. दि सोशालॉजी ऑफ रिलीजन - थॉमस डिया, पृ. ११६
208. भारतीय चिन्तन परंपरा - के. दामोदरन, पृ. २९
209. धर्म और समाज - डॉ. राधाकृष्ण, पृ. ४३८
210. मानव और संस्कृती - श्यामाचरण दुबे, पृ.१४५
211. भारतीय सामाजिक संस्थाएँ - डॉ. के. के. मिश्र, पृ. १५
212. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.२२६
213. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २५२
214. शिवप्रसाद सिंह - संपा. अरुणेश निरन, पृ. ७४
215. x¤»»Ößü ¤¸ü Æü - >Ö. x¿Ö¾Ö¯ÖÏÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 22
216. x¤»»Ößü ¤¸ü Æü - >Ö. x¿Ö¾Ö¯ÖÏÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 88
217. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह पृ.१४६
218. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह पृ. २९
219. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.९-१०
220. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११
221. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ७०-७१
222. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६९
223. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.६१-६२
224. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३६
225. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५४
226. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३१
227. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३१-१३२
228. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५४
229. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६२
230. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३१२
231. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६३

232. †Ö¸ÜÖ - ›Ö.×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 195
233. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.१९३
234. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १७०
235. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१७
236. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१०
237. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 44
238. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 110
239. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.१७३
240. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२२
241. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३६
242. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.३०
243. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१०
244. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö.109
245. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 86
246. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 87
247. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२२
248. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.२९
249. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १४७
250. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८३-१८४
251. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.२७
252. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २८८
253. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३१९
254. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 7-8
255. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 8
256. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४०३
257. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३१६

258. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८४
259. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७६
260. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७६
261. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 130
262. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३८७
263. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २८०
264. डॉ. भगिरथ मिश्र - आलोचना अंक २०, पृ. ९
265. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना - साहित्यिक निबंध - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. ४०१
266. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना - साहित्यिक निबंध - गुलाबराय, पृ. ४०१
267. किंबाल यंग - साहित्यिक निबंध, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. ४१०
268. कल्चरालॉजिकल इण्टरप्रिटेशन ऑफ ह्यूमन बिहेवियर-ए. टी. हवाइट, पृ. ६८६-678
269. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö.242
270. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 242
271. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 255
272. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ३८६
273. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ३९०
274. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.२२
275. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५६
276. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११६
277. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.१७८
278. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २२
279. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५०-१५१
280. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १९१
281. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.१५२
282. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २८३

283. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११
284. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.२७६
285. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७७
286. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १६२
287. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९०
288. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २०८
289. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७३
290. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३५५
291. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ३८९
292. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ १२१.
293. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९१
294. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ७२
295. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ८९-९०
296. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २१६
297. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६२.
298. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५४
299. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆ, ¯Ö. 30-31
300. †´ÖŸÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆ, ¯Ö. 31
301. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ १८-१९
302. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १९७
303. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ १
304. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ६५
305. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५५
306. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २५१
307. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५०
308. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ११०

309. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ १९२

310. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५४

311. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५५

312. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५८

313. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ५८

314. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८५

315. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १८६

316. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २४३

317. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २४१

318. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, व्पृ. १३८

319. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ०१

320. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ०३

321. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ १७

322. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ २०

323. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ २०-२१

324. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ३२८-३२९

325. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ३२९

326. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ३३०

327. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५२

328. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ.२०७

329. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ.२०८

330. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ. २७-२८

331. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृ. १३९-१४०

332. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ १२५

333. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ ३९५

334. अलग अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ २३

335. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 259
336. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 9
337. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ९३-९४
338. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.४०८
339. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १२
340. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.१४१
341. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.क्र. १५
342. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २०८
343. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६२.
344 शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.३६
345. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. १५१
346. †´ÖÝÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 31
347. †´ÖÝÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯Ö. 163
348. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. ४६

पंचम अध्याय

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का शिल्प

5.1 ¿Ö»Ößü

5.1.1 वर्णनात्मक शैली

5.1.2 आत्मकथात्मक शैली (मैं शैली)

5.1.3 पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैशबैक शैली)

5.1.4 वार्तालाप या संवाद शैली

5.1.5 चेतनाप्रवाही शैली

5.1.6 पत्रात्मक शैली

5.1.7 डायरी शैली

5.1.8 प्रतीकात्मक शैली

5.2 ³ÖÖÂÖÖ

5.2.1 पात्रानुकूल भाषा

5.2.2 भाषा का वैशिष्ट्य

5.2.3 लोकभाषा का हिंदीकरण

5.2.4 चित्रात्मक भाषा

5.2.5 काव्यात्मक भाषा

5.2.6 ध्वन्यात्मकता

5.2.7 भाषा के कलात्मक प्रयोग

५.२.७.१ प्रतीक योजना

५.२.७.२ बिंब विधान

५.२.७.२.१ दृश्य बिंब

५.२.७.२.२ श्रव्य बिंब

५.२.७.२.३ घ्राण बिंब

5.2.7.2.4 Ã¯Ö¿Ö Ø²Ö²Ö

5.2.7.2.5 Ã¾ÖÖ¤ü Ø²Ö²Ö

५.२.७.३ मिथक

५.२.७.४ संकेत

५.२.८ अलंकार

५.२.८.१ पात्रों के शारीरिक अंगो के लिए प्रयुक्त उपमान

५.२.८.२ चरित्रों के लिए प्रयुक्त उपमान

५.२.८.३ पात्रों के लिए प्रयुक्त उपमान

५.२.८.४ मानवीकरण

५.२.८.५ रुपक

५.२.९ शब्द संपत्ति / शब्द प्रयोग

५.२.९.१ ठेठ ग्रामीण शब्द

5.2.9.2 ŸÖŸÃÖ´Ö ¿Ö²¤ü

5.2.9.3 ŸÖ¤ü³Ö¾Ö ¿Ö²¤ü

5.2.9.4 ‰ú¤ü ¿Ö²¤ü

५.२.९.५ अंग्रेजी शब्द

5.2.9.6 †¸ü²Öß - ±úÖ¸üÃÖß ¿Ö²¤ü

५.२.९.७ गुजराती शब्द

५.२.९.८ बंगाली शब्द

५.२.९.९ बाजारु शब्द और गालियाँ

5.2.9.10 ´ÖÆüÖ¾Ö¸êü

५.२.९.११ कहावते

शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का शिल्प

प्रस्तावना :

मानव अपनी अनुभूति को जिस पद्धति से व्यक्त करता है, उसे शिल्प कहा रचनाकार की अमूर्त अनुभूतियाँ शिल्प के कारण ही मूर्त रुप धारण करती है। डॉ. कैलास वाजपेयी के अनुसार "शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है।"[1]

हिंदी में जिसे हम शिल्प विधि कहते हैं, अंग्रेजी में उसके लिए 'टेकनिक' शब्द का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त मेकनिक्स, क्रैप्ट, सेटिंग, स्ट्रक्चर, आर्टीस्टी फॉर्म, कन्सट्रक्शन आदि शब्द भी करीब-करीब उसके पर्यायवाची है। शिल्प विधि का शाब्दिक अर्थ है "किसी चीज को बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका। किसी वस्तू की रचना की जो-जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ हैं, उनके समुच्चय को ही शिल्प-विधि के नाम से पुकारा जाता है।"[2] इनसायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में शिल्प को कलात्मक निर्वाह की पध्दति को बताया गया है।

शिल्प विधि एक माध्यम है जिसके सहयोग से कोई भी रचनाकार अपना कथ्य कहने के लिए उद्यत होता है। उसके लिए वह अपनी सुविधानुसार कथा, पात्र, कथोपकथन शैली, वातावरण, अपने तरीके से जोड़-तोडकर प्रस्तुत करता है। वह प्रस्तुतीकरण मानव जीवन के किसी सत्य को उजागर करने में सहायता देता है तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने में प्रयत्नशील होता है जैसा कि श्री कैम्पवेल उबडले ने स्पष्ट किया है, "अच्छे टेकनीक का अर्थ सही बात, सही ढंग से उपयुक्त समय पर कहना। वही विषय चुनो जो तुम्हें रुचे और तब ऐसी शैली एवं टेकनीक चुनो जिसके सहारे वह विषय पाठकों तक मार्मिक ढंग से पहुँचाया जा सके।"[3] लेखक के रचनात्मक उद्वेगों को सही ढंग से स्पष्ट कर, सामने, शिल्प ही लाता है। "किसी भी कृति में कुछ थोडा ही ऐसा होता है जो पाठकों की स्मृति में शेष रह जाता है, उसके अतिरिक्त वह सब कुछ भूल जाता है। निश्चित रुप से वह अनावश्यक है, पर उस अनावश्यक को भी आवश्यक बनाकर उसे कला के अंग के रुप में प्रस्तुत कर देना शिल्प का ही कार्य है।"[4]

शिल्प के बिना कला अधूरी होती है। शिल्प एक कौशल है, कारीगरी है। इसमें रचना की आरंभ से अंत तक कौशलपूर्ण बनावट की प्रक्रिया होती है। "उपन्यासकार जो कुछ कहना चाहता है या जो उसने कहा है वह उपन्यास की भाववस्तु है और जिस ढंग से, जिस ढाँचे में उसे प्रस्तुत किया गया है वह उसका शिल्पविधान है।"[5]

शिल्प का महत्तव स्पष्ट करते हुए डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी कहते है, "शिल्प के माध्यम से किसी 'लक्ष्य की पूर्ति' की जाती है। यह लक्ष्य रचना-सृष्टि की प्रक्रिया से संबंधित होता है। भौतिक जीवन में यह लक्ष्य किसी वस्तु अथवा मनोवांछित तत्वप्राप्ति से संबंध रखता है और कला के क्षेत्र में इस लक्ष्य से अभिप्राय है- संपूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रकार अथवा ढंग।"[6] यही कारण है कि शिल्पविधान के संदर्भ में आधुनिक साहित्यकार अत्यंत सजग है।

5.1 ¿Ö»ÖÖß :

शैली और भाषा एक दूसरे से भिन्न-अभिन्न भाव से जुड़े होते हैं। शैली का संबंध भाषा के प्रयोग और पाठ की प्रक्रिया से होता है। यह अभिव्यक्ति के उद्देश्य और कथा-प्रसंग के बीच की कडी है। प्लेटो ने कहीं कहा है कि जब विचार को तात्विक रुप का आकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है। बोलचाल की भाषा में इसे ढंग या तरीका कह सकते है। किसी प्रसंग को वर्णित करने का ढंग या तरीका ही शैली है। यह ढंग तरीका जितना आकर्षक होगा उतना ही कथ्य का प्रभाव अधिक होगा। डॉ. प्रतापनारायण टंडन कहते है, "शैली के द्‌वारा उपन्यासकार अपनी कृति को अधिक आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार जिस ढंग से अपने विचार और भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है उसी को शैली कहते हैं।"[7]

प्रत्येक व्यक्ती के पास अनुभव का एक निजी संसार होता है। भोलानाथ तिवारी शैली के संदर्भ में कहते हैं, "सभी अपने अनुभव की निजता को पहचान नहीं पाते। जो पहचान पाते हैं, जब उसे अभिव्यक्ति देने के लिए भाषा से जूझते हैं तो पाते कि सामान्य भाषा तो केवल सामान्य अनुभवों को अभिव्यक्ति देने में ही समर्थ है, विशिष्ट अनुभव को नहीं। यही आकर सामान्य भाषा से कवि या लेखक

को विद्रोह करना पडता है। भाषा की सामान्य संरचना चरमराकर टूट जाती है। और नए तेवर नई धारा से युक्त नई भाषा जन्म लेती है- सामान्य भाषा से अलग। यह अलगाव ही शैली है।"[8]

संस्कृत आचार्य वामन जैसे विदवानों ने भी 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति अथवा शैली को काव्य की आत्मा माना है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य साहित्य में आधुनिक युग में प्रयुक्त होनेवाली सभी शैलियों का बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया है। उनके गद्य साहित्य में प्रयुक्त शैलियाँ इस प्रकार हैं-

५.१.१ वर्णनात्मक शैली :

इस शैली को इतिवृत्तात्मक या व्याख्यात्मक शैली भी कहा जाता है। वर्णनात्मक शैली में वर्णन की प्रधानता होती है। इसमें लेखक की प्रवृत्ति रुचि एवं योग्यता को लक्षित किया जा सकता है, क्योंकि इसमें बिना किसी शास्त्रीय बंधन के एकदम खुलकर लिखने की स्वच्छन्दता होती है। यहाँ शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने अनुभवों के आधार पर वर्णनों में विश्वसनीयता और कथा में वास्तविकता को लाने के लिए अपनी कलात्मकता का सही प्रयोग किया है।

शिवप्रसाद सिंह की पूर्ण वर्णनात्मक कहानियों में 'चितकबरी', 'प्रायश्चित्त', 'कहानियों की कहानी', 'उपहार', 'उपधाइन मैया', 'भग्नप्राचीर', 'मंजिल और मौत', 'मरहला', 'बीच की दीवार', 'मुर्गे ने बाँग दी', 'माटी की औलाद', 'बिन दिवार का घर', 'तकावी', 'भेडिए', 'आँखे', 'धतूरे का फूल', 'एक वापसी और', आदि प्रमुख है। हर एक कहानी के अंतर्गत वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ ही है। 'कलंकी अवतार', 'किसकी पाँखे', 'कर्मनाशा की हार', 'अन्धकूप', 'नन्हों', हत्या और आत्महत्या के बीच', 'उस दिन तारीख थी', 'गंगा तुलसी', 'आर-पार की माला', 'दादी माँ', 'नयी पुरानी तस्वीरें', 'कबूतरों का अड्डा', 'पोशाख की आत्मा', 'धरातल' आदि कहानियों के अलावा इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली बहुत कहानियाँ है।

'कहानियों की कहानी' कहानी में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। बूढ़ी काकी कहती है- "एक दिन राजा शिकार खेलने निकला। घूमते-घामते एक घने जंगल में पहुँचा। सिर पर सूरज तप रहा था। हवा बन्द थी, एक पत्ता भी नही

हिलता। राजा को बडी प्यास लगी थी, घोडा भी थककर चकनाचूर था। एक पेड़ पर चढ़कर उसने देखा, घनघोर जंगल के बीचों बीच साफ पानी का एक तालाब Æ..."[9]

शिवप्रसाद सिंह जी ने कम-अधिक मात्रा में हर उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रकृति चित्रण, लोगों के आपसी सम्बन्धों के चित्रणों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। "अलग-अलग वैतरणी" में मेले का वर्णन, चमारो-ठाकुरों की लडाई, ठाकुर जैपाल सिंह का गाँव में आगमन, गोगई महाराज के प्रचार, पुष्पा के घर का नीलामी वाले प्रसंग आदि संक्षिप्त लेकिन उत्कृष्ट उदाहरण है। 'गली आगे मुडती है' में वर्णनात्मक शैली का अभाव है। फिर भी जहाँ पर प्रकृति चित्रण है, वहाँ पर वर्णनात्मक शैली देखी जा सकती है। "नीला चाँद" में माँ शीलभद्रा का अतीत, विद्याधर देव की स्मृतियाँ, वैशिक-वीथिका का प्रसंग, लडाईयों के प्रसंग, आदि प्रसंगो में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। "शैलूष" में नट कबीले के वर्णन, नटों- घुरफेंकन की लडाई सब्बो मौसी की लडाई आदि प्रसंग इसी शैली में है। 'मंजुशिमा' में भी अस्पताल, प्रवास आदि का वर्णन इसी शैली में हुआ है। 'दिल्ली दूर है' कुहरे में युध्द' के लडाई के प्रसंग, प्रकृति का वर्णन, आदि प्रसंग इसी शैली में है। "वैश्वानर" में भी प्रतर्दन की लडाई के प्रसंग, कार्तवीर्य, अर्जुन और राम भार्गव के द्वंद्व युध्द आदि प्रसंग इसी शैली में है।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में मेले का वर्णन हुआ है- "बडे-बूढों का दल अभी पीछे था, ठमक-ठमककर आता हुआ। पर लडकों ने कतार से टूटकर, अपना एक अलग गिरोह बनाकर 'रेस' लगा दी थी। हाँफते-चीखते, चिल्लाते वे मेले की ओर दौड पडे थे। देवीधाम के चौगिर्द आदमियों के विराट समुद्र में ज्वार-भाटे उठ रहे थे। भीड की चुम्बकीय शक्ति बच्चों को बुरी तरह खींच रही थी। 'उद्देख रे, उद्देख' चिल्लाते दौडते चले आ रहे थे।"[10]

"घाटियाँ गूँजती है" नाटक में भी, भारत-चीन युध्द के प्रसंग, हिमालय की वादियों का हुबेहुब वर्णन, टूराँ की कहानी आदि प्रसंगो में वर्णनात्मक शैली दिखाई देती है। शीकू कहता है- "टूराँ मेरा इकलौता बेटा था बाबू। मैं इसकी नींद सोता था, इसीकी नींद जागता था। इसकी माँ बचपनमें ही मर गयी थी और मैंने इन्ही हाथोंसे सरकार उसको खिलाया-पिलाया, पाला-पोसा।"[11]

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य साहित्य में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कम-अधिक मात्रा में किया ही है।

५.१.२ आत्मकथात्मक शैली (मैं शैली) :

यह शिवप्रसाद सिंह की बडी प्रिय शैली है। आत्मकथात्मक विधि का मुख्य आधार है- मैं का माध्यम याने की पूरी कथा उत्तम पुरुष में कही जाती है और ऐसा करने से लेखक वस्तुविन्यास की तमाम जटिलतासे बच जाता है तथा बीच के अन्य चारित्रिक माध्यमों को तोडकर वह पाठक के साथ सीधे जुड़ जाता है। इस प्रकार पाठक के साथ आत्मीयता स्थापित करने और उसके अन्दर के कथ्य के प्रति विश्वास पैदा करने में आत्मकथात्मक विधि सहज ही समर्थ सिध्द होती है।

शिवप्रसाद सिंह जी आत्मकथात्मक शैली से अपनी कहानियों मे इन सभी सहलियतों का पूरा फायदा उठाते है। इसीलिए बहुआयामी प्रसंगो, विविध दृष्टिकोणीय कथ्यों से भरा हुआ उद्देश्य भी सरलता व स्पष्टता के साथ एकसूत्र में बंध गया है, जैसा 'धारा', 'अंधेरा हँसता है', 'धरातल', 'इन्हें भी इन्तार है', 'एक यात्रा सतह के नीचे', 'बड़ी लकीरें', खैरा पीपल कभी न डोले', 'बरगद का पेड़', 'दादी माँ', 'श्रृंखला', 'काला जादू', 'एक और देवयानी', 'हीरो की खोज', 'महुवे के फूल', 'मास्टर सुखलाल', 'केवडे का फूल', 'हाथ का दाग', 'रेती', 'अंधेरा हँसता है' आदि कहानियों में 'मै' शैली का प्रयोग हुआ है।

इसी 'मैं' के कारण ही शिवप्रसाद सिंह की कहानियों को 'संस्मरण', 'रेखाचित्र', और 'स्केच' कहा गया है। 'मैं' पर आधारित कहानियों में संस्मरणात्मकता का आना सहज ही है, लेखक की बहुत कहानियाँ संस्मरण पर आधारित हैं- 'किसकी पाँखे', 'हत्या और आत्महत्या के बीच', 'मास्टर सुखलाल', 'अंधेरा हँसता है', 'धारा' कहानियाँ 'मैं' शैली में लिखी गयी है। जैसा लेखक कहता कि, "ति...उ...रा'... मैं इन तीन अक्षरों पर देर तक सोचता रहा। क्या नाम है! काला-काला चिकना-सा एक बीज होता है जंगली पौधे का, और उसका तेल तो ऐसा कि दूर से भी आँखो में अपनी झर्राहट से पानी ला दे। हाँ, ऐसा ही होता है तिउरा का 2Ö।ß•Ö…"[12] पूरी कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी है।

शिवप्रसाद सिंह का 'गली आगे मुडती है' उपन्यास पूर्णत: आत्मकथात्मक

शैली में लिखा गया है। इसका प्रमुख पात्र रामानंद सारी कथा आत्मकथात्मक रुप में प्रस्तुत करता है। इसी शैली के कारण ही लेखक को युवा आक्रोश, विश्वविद्यालय की राजनीति तथा काशी का सांस्कृतिक चित्रण करने में पूरी सफलता मिली है। 'अलग -अलग वैतरणी' में भी विपिन के माध्यम से आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। 'मंजुशिमा' में भी इस शैली का प्रयोग हुआ है। अपनी बेटी मंजुश्री के गुर्दे की बीमारी की सारी व्यथा एवं संघर्ष के लेखक साक्षी है। इसीलिए उन्होंने संपूर्ण कथानक को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत कर उपन्यास को रोचक एवं प्रामाणिक बना दिया है।

"गली आगे मुडती है" उपन्यास में 'मैं' शैली का बहुत ही अच्छा निर्वाह हुआ है। जैसे रामानंद कहता है- "मैं चिटठी पढकर हिचक-हिचककर रो पडा। आखिरी अंश तक आते-आते गला रह-रहकर भीतर से उठने वाली हक से रुंध जाता था, पर अंतिम वाक्य ने मेरे धैर्य का बाँध ही तोड दिया। मैने अपनी नंगी बाँह पर सिर रख लिया और फूट-फूटकर रोता रहा।"[13] "घाटियाँ गूँजती है" नाटक में भी शीकू के कुछ प्रसंगो में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

५.१.३ पूर्वदीप्ति (फ्लैशबैक) शैली :

पूर्वदीप्ति शैली को हिंदी में 'स्मृति अनुप्रकाशी' नाम भी दिया गया है। लेकिन इस बात से कोई नाम नहीं लेता। इसकी ख्याति तो 'फ्लैशबैक' नाम से ही है। इस शैली में कथासुत्र अतीताभिमुख होता है। लेकिन यहाँ लेखक अतीत की घटनाओं को वर्तमान से जोड देता है। इस शैली में वर्तमान अतीत को जगाने का निमित्त बनकर आता है, पर पूर्वदीप्ति से ही वर्तमान प्रकाशित भी होता है। अमूर्त अवचेतन को लेखक इस शैली के माध्यम से मूर्त्त कर देता है। अवचेतन में छिपा अतीत का वह अमूर्त्त खण्ड वर्तमान की किसी समान घटना से कौंधता है और स्मृति के सहारे पात्र उसे व्यक्त करता जाता है। इस तरह समय की लघुतम परिधि में जीवन के विस्तृत लम्हों को समेट लेने की इसमें अपूर्व शक्ति होती है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने इस शैली का बहुत ही कलात्मक ढंग से प्रयोग किया है। प्रस्तुतीकरण की विभिन्न विधियों को लेकर कहा जाये तो फ्लैशबैक डॉ.शिवप्रसाद सिंह के गद्य-साहित्य की रीढ़ है जो अतीत के झरोखे और वर्तमान

के दर्पण को इस कदर मिला देती है कि यह इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज और समय का साक्षी बन जाता है।

शिवप्रसाद सिंह की अनेक कहानियाँ और उपन्यास के कई-कई अध्याय प्रमुख रुप से फ्लैशबैक में ही लिखे गये है।

"आर-पार की माला" कहानी में, कहानी की नायिका, नीरु नदी किनारे बैठी है। विवाहित जोडा नदी के दो किनारों को बांधने आया है। नीरु यह दृष्य देखती है और इस मौके की सांकेतिकता को लेकर अपने अतीत में खो जाती है- उसकी उजडी-स्याह आँखो में बीते दिनों का रंगीन आसमान झाँकने लगा... पूरी कहानी खत्म होने पर लेखक फिर इसे जोडता है। "नीरु का ध्यान टूटा। उसने देखा आसमान में फफोलों की तरह तारे उठने लगे है। दूल्हा नाव पर बैठा दुलहिन की ओर देखकर मुस्कराया। आँखे बोली, 'हमने दो किनारों को बाँध दिया। दुलहिन मुस्करायी, "यह बन्धन दृढ हो।" नीरु मन में सोचती, आर-पार की माला। उसकी झोंपडी में मूँज की रस्सी है जिससे वह हजारों नदियों का पाट बाँध सकती है। जंगल में पीले कनेर के फूल मुस्करा रहे हैं। उनकी भी क्या कमी... वह एक ×□ú÷Ö¸ü ß¯Öü²Ö ß Æ£ü.. ¤ÃÖ¸üÖ ×□ú÷Ö¸üÖ "ÖÖ×Æ£ü..."[14]

"इन्हें भी इंतजार है" 'किसकी पाँखे', 'बेहया', 'बिन्दा महराज', 'धारा', 'धरातल', 'केवडे का फूल', 'नन्हों', 'बडी लकीरे', 'प्रायश्चित' आदि कहानियों में उपरोक्त शैली दिखाई देती है। "अलग-अलग वैतरणी" का तो शायद ही कोई ऐसा अध्याय हो जिसमे फ्लैशबैक शैली का प्रयोग न हुआ हो। जग्गन मिसिर, विपिन, शशिकांत, जैपाल, खलील चाचा आदि प्रमुख पात्रों के माध्यम से इसका बडी सरलता के साथ प्रयोग हुआ है। 'गली आगे मुडती है', 'मंजुशिमा' आत्मकथात्मक शैली में होने के कारण यहाँ तो यह शैली और भी निखरकर सामने आती है। रामानंद, सुबोध भट्टाचार्य, जमनादास, किरण आदि का अतीत तथा मंजुशिमा की बचपण की यादें फ्लैशबैक शैली के माध्यम से अभिव्यक्त की गयी है। 'नीला चाँद' में शीलभद्रा माँ के अतीत की सारी घटनाएँ, 'शैलूष', 'औरत', 'कुहरे में युध्द', 'दिल्ली दूर है' आदि उपन्यासों 'में' इसका प्रभावी रुप से प्रयोग हुआ है।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास 'में' झब्बू बो भौंजी जग्गन मिसिर के अतीत की यादे बताती है, "जग्गन मिसिर को माँ-बाप की याद नहीं आती। बैजू कहा

करते थे कि तेरे जनम के दो साल के भीतर ही वे दोनों हमें छोड़करे चले गये। उस समय बैजू भइया भी कुल सात-आठ साल के ही थे।"[15] इस प्रकार सभी उपन्यासों में फ्लैशबैक शैली का प्रयोग हुआ है।

'घाटियाँ गूँजती है' नाटक में चीन ने भारत पर जब आक्रमण किया, जिन्होंने उसको देखा है, सहा है, उसके बारे में वृध्द विवेक से कहता है, "तवाडके पास अपनी बस्ती थी बाबू! जब हमारे मुलुकपर हमला हुआ तो हम बस्ती छोड़कर उधरको मैदानकी ओर चल पडे। जाने कैसे चलते रहे, उसकी बात न पूछो बाबू! ये दिन जैसे कटे, वैसे किसी शत्रुके भी न कटे।"[16] इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में इस शैली का प्रयोग कम-अधिक मात्रा में हुआ है।

५.१.४ वार्तालाप या संवाद शैली :

दो या अनेक पात्रों के बीच हुई बातचीत के माध्यम से कथा को प्रस्तुत करना वार्तालाप या संवाद शैली है। शिवप्रसाद सिंह के लिए सबसे प्रिय शैली वार्तालाप या संवाद शैली ही रही है। 'अलग-अलग वैतरणी', 'नीला चाँद', 'गली आगे मुडती है' इन सभी उपन्यासों में वार्तालाप या संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। 'औरत' उपन्यास तो केवल संवादों पर ही आधारित है। 'शैलूष', 'कुहरे में युध्द' और 'वैश्वानर' तो इस शैली के अन्यतम उदाहरण है। कहानी साहित्य में भी संवाद शैली का प्रयोग हुआ है 'नन्हों', 'टूटे तारे', 'सुबह के बादल', 'धारा', 'किसकी पाँखे' 'टूटे शीश की तसवीर', 'खेल', 'खैरा पीपल कभी ना डोले', 'श्रृंखला', 'काला जादू', 'एक और देवयानी', 'दादी माँ', 'बरगद का पेड', 'आखिरी बात', 'आदिम हथियार', 'उपहार', 'देऊ दादा' आदि कहानियों में कम-अधिक मात्रा में संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। 'घाटियाँ गूँजती है' नाटक तो पूरी Ÿö¸ÆÆ Ãö¾ööü ¿ö»öß Ãö Æß ³ö¸ö ¯ö>ö Æ…

'वैश्वानर' उपन्यास से एक उदाहरण देखिए- "उसने धन्वन्तरि के पैर छुये, प्रतू. क्या तू दिन प्रतिदिन ऐसे ही युध्द लड़ता रहेगा?"

"मैं कहाँ लड़ रहा था बाबा, लड़ी तो मेरी प्रजा। तीन-तीन शवों के बदले तीन सौ शव भेंट कर आया हूँ उस वृषल भद्रश्रेण्य को। लेकिन वह कापुरुष वहाँ था ही नहीं। अन्यथा इस बार उसे रणकौशल सिखा देता।" सभी ने आशीर्वाद दिये,

सभी ने आलिंगन भेटों से उल्लास मनाया 'बधाई प्रतू।"

"ओई अइय्या मैं तो तेरे पैर छूना भूल ही गया।" उसने प्रतू की हथेली पकडी, " मारुँगी कि तेरी नाक पिचक जायेगी। ले ये मयूरपंख लायी हूँ तेरे लिए। इसे उष्णीश में लगा ले।"

"तुम्ही लगा दो न अइय्या।"[17]

"घाटियाँ गूँजती है" नाटक मे से उदाहारण देखिए-

विवेक : मेरा नाम विवेक है; विवेककुमार रॉय।

पिण्टो : ओह आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई मिस्टर रॉय।

कैप्टोन : आप एक न्यूज-एजेन्सीके प्रतिनिधि हैं फादर पिण्टो। बड़े सच्चे और बहादुर अपने विश्वासोंपर जमे रहनेवाले।

पिण्टो : अच्छा तो कैप्टेन साहब, आप भी हैं यहाँ?

कैप्टेन : भला, आप क्यों हमें पहचानेंगे फादर!"[18]

इस प्रकार वार्तालाप या संवाद शैली सिंहजी के गद्य साहित्य में देखने को मिलती है। संवाद शैली में एक खतरा भी बना रहता है- पात्रों के संवाद भाषण न बन जाये। सिंह जी ने इससे बचने का पूरा प्रयास किया है।

५.१.५ चेतनाप्रवाही शैली :

चेतनाप्रवाही शैली को अंग्रेजी में Stream of Consciousness कहते हैं। "फ्लैशबैक के माध्यम से किसी पात्र की चिन्ताधारा चेतनस्तर पर जब हु-ब-हु अभिव्यक्ति में बँधती हुई पूरे आवेश के साथ अप्रतिहत वेग से बहने लगती है, तो इस पूरी प्रक्रिया को चेतनाप्रवाही नाम दिया जाता है।"[19] कहा जाता है कि चेतनाप्रवाही शैली मनोविज्ञान और यथार्थवाद के मेल से बनती है। किन्तु चेतना प्रवाह का संबंध पात्र और समय की चेतना से होता है।

शिवप्रसाद सिंह जी के लेखन में यदि चेतना प्रवाह विपुल मात्रा में प्रयुक्त हुआ हो तो वह सहज-स्वाभाविक ही है। हर कहानी के अंतर्गत आंशिक रुप में चेतना प्रवाह देखने को मिलता है पर 'आर-पार की माला', 'पापजीवी', नन्हों 'बिन्दा महारज', 'धरातल', 'उसकी भी चिट्ठी आयी थी', 'प्रायश्चित्त' आदि में सहज रुप से देखा जा सकता है। जिन कहानियों में शुध्द रुप से इस शैली का

प्रयोग शुरु से अंत तक हुआ है, उनमे 'कर्मनाशा की हार', 'शहीद दिवस', 'कलंकी अवतार', 'ताडीघाट का फूल', 'अरुन्धती', 'बडी लकीरे', 'अंधेरा हँसता है', 'किसकी पाँखे' आदि में भी चेतनाप्रवाही शैली अपनायी गयी है।

'शहीद-दिवस' कहानी में चेतनाप्रवाही शैली का प्रयोग हुआ है जैसे- "बीते दिन की बात है, घटना पुरानी है, पर कितनी ताजी है। १९४२ के सितम्बर की तेरहवी तारीख थी। दो दिन से लगातार भयंकर बारिश हो रही थी, कस्बे का कोई समाचार न मिल सका। ग्यारहवी की शाम को, जब कि सदा की भाँति लोग स्टेशन पर खडे होकर आने वाली गाडियों का इन्तजार कर रहे थे, एक सैनिक -²ÖÖëÖß † ÖµÖß † Öµü×±µü ¯ÖÖ™ÖÖ™ü ÖÖë»ÖµÖÖÑ“Ö›Öß.."[20]

शिवप्रसाद सिंह जी के अपने उपन्यास साहित्य में भी इसकी झलक देखने को मिलती है। 'अलग-अलग वैतरणी' में कई जगहों पर इस शिल्प का प्रयोग हुआ है। हलपर्वरी प्रसंग में दयाल महाराज की चेतना, विपिन के मन में प्रवाहित पुष्पा, पुण्यी-चचिया की स्मृति, हरिया की चेतना में प्रवाहित उसका पूरा जीवन, जग्गन मिसिर का चिंतन 'गली आगे मुडती है' में रामानंद की चेतना प्रवाहित यादें सुबोध भट्टाचार्य की यादें, 'नीला चाँद' में किरत बैठे-बैठे अपने अतीत में खो जाता है। वहाँ भी इसी शैली का प्रयोग हुआ है। धन्वंतरी द्वारा शत्रु को जीवनदान देने के उपरांत प्रतर्दन का क्रोध में किया गया चिंतन सिंधुजा के दुर्व्यवहार पर धन्वंतरि का चिंतन (वैश्वानर) आदि घटनाएँ भी इसी शैली में प्रयुक्त हुई हैं।

"कुहरे मे युध्द" उपन्यास की पूरी कथा आनंद की चेतना में ही प्रवाहित होती है। आनंद देविका की यादों में खो जाता है और उसे याद आते है वह लम्हे, "और आज जब आनन्द उन दिनों को याद करता है तब हृदय की पीडा बढ जाती है। देविका की निश्छल आँखें उसके गौर वर्ण के गोल मटोल चेहरे में कुछ इस तरह थिरकती थीं मानो सन्ध्या के आकाश में अडोल पंख फैलाए तालचंचु पक्षी युग्म चक्कर काट रहे हैं। वे आँखें थिर रहना तो जैसे जानती ही नहीं थी। "देविका!" आनन्द ने कहा था। "क्या है?" देविका वैसे ही हंसते बोली, "क्या है?"[21] "घाटियाँ गूंजती है' नाटक में भी रोज, क्यूला, शीकू की यादें चेतना प्रवाही शैली के उत्तम उदाहरण हैं।

५.१.६ पत्रात्मक शैली :

पत्र-लेखन जीवन का अनिवार्य अंग और सहज क्रिया-व्यापार है। शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य साहित्य में पत्रात्मक शैली का प्रभावी प्रयोग किया है। इस शैली में सबसे प्रमुख तत्व है- आदि का सम्बोधन और अन्त का आत्मोल्लेख। शिवप्रसाद सिंह जी ने इस तरह की सभी औपचारिकताओं का निर्वाह नहीं किया है। 'हाथ का दाग' कहानी में 'प्रिय रेखा' और 'सस्नेह-विपिन, के रुप में आदि-अंत दोनों का निर्वाह हुआ है, पर 'मुरदा सराय' और 'अन्धकूप' में तो आदि के संबोधन भी नही है। 'अन्धकूप' में आपकी चिट्ठी मिली और 'मुरदा सराय' में मैंने आपसे वादा किया था आदि सन्दर्भो से पत्रात्मकता का अहसास कराया गया है। 'प्लास्टीक का गुलाब' कहानी में भी एक छोटे से पत्र का उल्लेख है जो पूरी कहानी की जान है। 'टूटे शीशे की तस्वीर' में भी सूचनार्थ पत्र का सहारा लिया गया है। 'नन्हों' में भी पत्र का उल्लेख हुआ है। 'प्रमाणपत्र' में भी पत्र शैली को अपनाया गया है।

"टूटे शीशे की तस्वीर' कहानी में सुरेश की बीवी ने कामिनी को चिट्ठी भेजी थी, उसमे उसने लिखा था-

"प्रिय बबुई,

मेरा सौभाग्य उजड गया। कल अचानक कई दिनों की बीमारी के बाद आपके भैया हमें छोडकर चले गये... जाते वक्त वह अक्सर आपका नाम लेते रहे। हम जल्दी में आपको बुलाकर उनसे भेंट भी न करा सके...।

† ÕÖ□úß † ³Ö×□ÖÖß - ³ÖÖß.."[22]

हिंदी उपन्यास साहित्य में पत्रात्मक शैली का प्रयोग आंशिक रुप में ही हुआ है। शिवप्रसाद सिंह जी ने भी इसका प्रयोग सीमित परंतु प्रभावी रुप में किया है। 'अलग-अलग वैतरणी' में पुष्पा द्वारा विपिन को लिखे पत्र, कनिया और पटनहिया भाभी का आपसी पत्राचार, 'गली आगे मुडती है' में जयंती का रामानंद को लिखा पत्र, रामानंद का किरण के नाम लिखा पत्र, हरिमंगल का रामानंद के नाम लिखी चिट्ठी आदि इस शैली के उदाहरण है। 'मंजुशिमा' में मंजुश्री के नाम आये पत्र, मंजुश्री के द्वारा लिखे पत्र, 'नीला चाँद' में गोमती और कीरत का आपसी पत्रव्यवहार, कलानेत्री सुनंदा का गोमती के नाम लिखा पत्र, 'शैलूष' में मौंसी द्वारा

लिखी गयी चिट्ठियाँ, 'औरत' में चंद्रा द्वारा नायक शिवेंद्र को लिखा गया पत्र आदि इसके उदाहरण है।

'शैलूष' उपन्यास में सारस्वत लल्लू काका को पत्र लिखकर कहता है-

"लल्लू काका, कमिशनरवा का सलाम कबूलो। मुझे पता नहीं था कि मटरु-रज्जब के कबीले में मजहब के आधार पर भेद-भाव नहीं होता। मुझे तो लगता है, आये दिन हम जिन्हें मजहबी झडप आगजनी, छुरेबाजी आदि कामों में मशगुल देखते है वे सिरफिरे है। आपका कबीला भारत के लिए उदाहरण है। मैं आपको, जुड़ावन को ताहिरा को, ननकू को बनारस बुलाना चाहता हूँ। आप लोग अपनी जमीनें पा गये होंगे। ट्यूबवेल का पानी पीते होंगे। मैं उस दिन एक गलती कर गया। आप जैसे संत को संभालने वाली पौत्री माला को तो अलग से उपहार देना चाहिए था। यह छोटा सा उपहार माला के लिए है, दीप्ति की ओर से।

आपका

□ú× Q̧ÖQ̧ ü³ŒÖ ÃÖQ̧ Ã³ŒÖ[23]

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य साहित्य में आंशिक रुप में ही पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।

५.१.७ डायरी शैली :

डायरी में श्रृंखलाबध्द रुप से अपनी दैनंदिन की तफसील और उस पर मन-मस्तिष्क की क्रिया-प्रतिक्रिया का लेखाजोखा ब्यौरेवार निबध्द रहता है। कथानक प्रस्तुत करने की यह एक अभिनव शैली डायरी शैली है। शिवप्रसाद सिंह जी की एक मात्र कहानी 'प्लास्टिक का गुलाब' में दो तारीखे देकर डायरी शिल्प का अनुसरण किया गया है।

'प्लास्टिक का गुलाब' कहानी में जैसा कि,

"काशी : ११ अगस्त १९५०

कल शाम बाजार गये थे। मधु खुद बुलाने आयी थी। जाना ही पड़ा। टेबललैम्प था एक। चितकबरे साँप के बदन-जैसा स्टैण्ड और उसमें जुडे हुए चार फन-सर्पमुखी-चार बल्ब लगते थे।"[24]

शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने उपन्यासों में आंशिक रुप में ही इस शैली का

प्रयोग किया है। उनका एकमात्र उपन्यास 'मंजुशिमा' में पृष्ठ १५ से २६ तक प्रयुक्त डायरी के पत्रों पर लेखक ने मंजु की एकाएक उठी बीमारी का निदान आदि का वर्णन किया है। अस्पताल में आये कटु अनुभवों को भी लेखक ने डायरी शैली में अभिव्यक्त किया है। 'कुहरे में युध्द' में पृष्ठ ३३ पर डायरी शैली का उल्लेख मात्र मिलता है। 'गली आगे मुडती है' उपन्यास में पृष्ठ ५३, पृष्ठ ६७ तथा पृष्ठ १९४ और पृष्ठ ८०, ८१ पर वार तिथि सन के साथ डायरी शैली का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के रुप में-

"२८ नवंबर १९६७ को मंगलवार के दिन वाराणसी नगर में पूरी हडताल [illegible]."[25] सिंह जी के उपन्यासों में भी डायरी शैली का प्रयोग हुआ है।

५.१.८ प्रतीकात्मक शैली :

"यद्यपि प्रतीक ही मुख्यत: प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का साधन है तथापि प्रतीकात्मकता अपेक्षाकृत व्यापक टर्म है।"[26] इसी व्यापक रुप में यह शिल्प के साथ जुड़ जाता है। अपने सूक्ष्म अतींद्रिय, अमूर्त तथा जटिल अनुभवों को सहज-संप्रेषणीय बनाने के लिए साहित्यकार प्रतीक शैली का सहारा लेता है। ये प्रतीक उन विचारों और अनुभूतियों को भी अंतर्दृष्टि प्रदान करते है, जो धुंधली और अस्पष्ट होने के कारण सहज- संप्रेषणीय नहीं होती। अपना मूल अर्थ खोकर ये प्रतीक नए अर्थो से ही संपृक्त हो उठते है। शिवप्रसाद जी के गद्य-साहित्य में प्रतीकों के व्यापक प्रयोग का अधिकांश भाषा पक्ष के साथ जुड़ा हुआ है। यहाँ सिर्फ प्रसंगत: उन प्रयोगों का जिक्र होगा जो कहानी की पूरी संरचना को प्रभावित करते है- यानी घटनाओं या चरित्रों के साथ जुडकर शैली में ढल जाते है।

प्रतीकात्मक कहानियों में लेखक की 'केवडे का फूल' कहानी बहुचर्चित है। यहाँ केवडे का फूल नारी के उस, जीवन का प्रतीक है जिसका सौरभ-जीवन पति की इच्छा पर निर्भर करता है। अन्य कहानियों में 'कर्मनाशा की हार', 'रेती', 'महुए के फूल', 'टूटे शीशे की तस्वीर', 'अंधकूप', 'किसकी पाँखे', 'मुरदा सराय', 'धारा', 'कलंकी अवतार', 'प्लास्टिक का गुलाब' की प्रतीकात्मकता तो जटिल से जटिल अनुभूति को भी संक्षिप्त और सहज रुप में व्यंजित करती हुई

प्रतीकात्मक शैली को सार्थक बनाती है।

"कर्मनाशा की हार' मनुष्य से कर्म को नष्ट करके उसके ऊपर सामाजिक रुढि और नियति का अभिशाप लादने वाली समूची प्रवृत्ति के विरोध का प्रतीक है, ×• ÖÃÖë¯Ö Ö• ÖŸÖ ú ü ÖÖ, -ÖµÖß ´ÖÖ-ÖÖÃÖ ÖüŸÖÖ ÖúÖ ÃÖÖÆüß ÃÖÖÖú»¯Ö ÆüÖëÖÖ "ÖÖ×Æüü ..."[27] '´Ö¸¤Ö सराय' पूरी कहानी में फैलकर अपनी दीप्ति से मृत मानवता को प्रतीकित करने लगती है। रोपन की विश्वासमयी चेतना में पैठा कलंकी अवतार तो भगवान का प्रतीक बनकर पूरी कहानी को संचालित करता ही है।

'गली आगे मुडती है' उपन्यास में किरण, आधुनिक स्वच्छंद स्त्री का प्रतीक बनकर सामने आती है। किरण अपनी शादी के संबंध में माता-पिता से स्पष्ट कहती है- "हाँ हाँ, मैं बच्ची नहीं हूँ। मैं सब समझती हूँ। म्हे ठीक समझी ने निर्णय करयो छे। मैं अपनी जिन्दगी का निर्णय खुद करुंगी।"[28] एक स्वच्छंद नारी का प्रतीक किरण में दिखाई देता है।

"शैलूष' में सावित्री मौंसी, करुणा, त्याग, ममता का प्रतीकात्मक रुप बन जाती है। जो कबीलों के लिए ईश्वर से कुछ कम नहीं। सारस्वत को सच्चाईका प्रतीकात्मक रुप दिया गया है। सिंह जी के सभी उपन्यासों में भी प्रतीकात्मकता बड़ी विस्तृत है पर उनसे प्रतीकात्मक शैली की स्थिति नहीं बनती, 'गली आगे मुडती है' के गली की व्यंजना भी संस्कृति और युवा आक्रोश के प्रतीक के रुप में व्याप्त है, फिर भी यह उपन्यास के शैली पक्ष को प्रभावित नहीं कर पाते। "नीला चाँद', 'वैश्वानर' प्रतीकात्मक रुप में ही प्रयुक्त हुए है। दृढ इच्छाशक्ति का प्रतीक 'नीला चाँद' है जो प्रतीकात्मक शैली को तो स्पष्ट नही करते लेकिन प्रतीक बनकर सामने आते है।

5.2 ³ÖÖÂÖÖ :

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी भाषा को लेकर बहुत ही सजग रहे हैं। हिंदी साहित्य में वे ग्राम-कथाकार रुप में प्रसिध्द रहे हैं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के लगभग दस वर्षो के लेखन की भाषा को देखकर ही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा था, "क्या कमाल की चित्रकारी सीखी है तुमने! भाषा पढ़कर तो कभी-कभी लगता है कि यह मेरा शिवप्रसाद लिख रहा है।"[29] और लेखक की यह कला दिन-ब-दिन

अपने कई पड़ावो से गुजरती-निखरती नित नवीन मंजिलो की तरफ बढ़ती जा रही है। शिवप्रसाद सिंह जी की भाषा में कहानीपन भी है, काव्यात्मकता भी, सादगी भी है और नाटकीयता भी अभिजात्य भी है, कडवाहट भी तथा सस्तापन भी है और लावण्यता भी। डॉ.गोपाल राय ने शिवप्रसाद सिंह जी की भाषा को कमजोर सपाट और सर्जनात्मकता से हीन बताया है और इसके लिए मुद्दा बनाया है- भाषा की पात्रानुकूलता को, लेकिन इसका एक भी उदाहरण नहीं दिया है।

शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य-साहित्य में पात्र के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। ग्राम कथाओ में लोकभाषा का प्रयोग हुआ है, वही मध्यकालीन भारत का चित्रण करते समय उनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दो के साथ तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। प्रसंगो के अनुसार बिंबो, प्रतीकों, कहावतो, एवं मुहावरों का प्रयोग किया है। चित्रात्मकता, काव्यात्मकता, पठनीयता उनकी भाषा की निजी विशेषताएँ है। उनकी भाषा में "एक-एक शब्द का चयन यथावसर उनका प्रयोग और कथाप्रवाह के साथ समरसतापूर्वक व्यवहार लेखक के गंभीर अध्ययन, ØÖÏÖÖ, †-Ö¾ÖÖ»ÖÖ ê † ¯ÖÏÖÃÖÖ×ÓµÖÖ ú Ö ˆ Ÿ éÂ™ü ˆ ¤üÖÆü¸üÖ Æîü."[30] ×¿Ö¾Ö¯ÖÏÃÖÖ¤ü ØÃÖÆ स्वयं कहते है "कभी लोगों ने मुझे भाषा का जादूगार कहा था। अब वह जादूगरी बिलाय गयी। अब तो मैं भाषा का शैलूष हूँ।"[31] अर्थात इन बातों से स्पष्ट होता है कि शिवप्रसाद जी भाषा को लेकर अत्यंत सजग रहे है। उनकी भाषा में दिखायी देनेवाली विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

५.२.१ पात्रानुकूल भाषा :

शिवप्रसाद सिंह जी ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। पात्रानुकूल भाषा की मांग कलात्मकता की मांग होती है। पाठक रचना को पढते समय इस बात को महसूस करे कि प्रत्येक पात्र की अपनी भाषा है, शब्दसंपदा एवं कहने का ढंग है। पात्रों की बहुलता होते हुए भी शिवप्रसाद जी ने अपने गद्य-साहित्य में इस बात को अच्छी तरह निभाया है।

'कर्मनाशा की हार' कहानी में पतुरिया के गीत की भाषा में चित्रात्मकता की झलक दिखाई देती है। ग्रामीण लोकभाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे परलय, रॉड, 'उसकी भी चिट्ठी आयी थी' में पात्रों की भाषा में आधुनिक काल की

अनुरुप अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मिलता है। ग्रामीण पात्रों के मुंह से अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है। जैसे- ग्लोरी ऑंव गार्डन, पेन-फ्रेण्डस्, मनी ऑर्डर, 'आर-पार की माला' सँपेरा, मुहवे के फूल', चितकवरी', 'एक यात्रा सतह के नीचे', 'नन्हों', 'अरुन्धती', 'किसकी पाँखे', 'बडी लकीरे', 'कलंकी अवतार', 'तकावी', 'मरना एक पेड का', 'अमृता' आदि कहानियों में ग्रामीण और आदिवासी पात्रों के अनुसार शब्द प्रयोग हुआ है और साथ मे कई पात्रों के मुख से अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग प्रचूर मात्रा में हुआ है।

"नीला चाँद" के पात्र उस काल के अनुरुप तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग करते है। दिल्ली दूर है' के पात्र अरबी-फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग करते है। 'मंजुशिमा' के दोनों प्रमुख पात्रों की भाषा आधुनिक काल के अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग तरोड-मरोड कर किया गया है- टिक्कस-(टिकीट), हाट (हॉट) बइंड (बॉईड) डिगरी (डिग्री) भी पात्रानुकूल भाषा के ही उदाहरण है। 'शैलष' की सब्बो मौंसी भी सारस्वत के साथ अलग भाषा में और कवीले के लोगों के साथ अलग भाषा में बात करती है। 'गली आगे मुडती है' की जयंती घर में बंगाली तो रामानन्द के साथ खडी बोली हिंदी में बात करती है। किरण घर में गुजराती का ही प्रयोग करती है। 'अलग-अलग वैतरणी' में खलील खाँ की शेरशायरी युक्त भाषा पटनहिया भाभी की दर्दभरी भाषा 'नीला-चाँद' श्री माँ की आध्यात्मिक भाषा वैश्वानर' में प्रतर्दन और धन्वंतरि आदि की तत्सम प्रधान भाषा पात्रानुकूल भाषा के ही ज्वलंत उदाहरण हैं। "घाटियाँ गूंजती है' नाटक में क्यूला, कैप्टेन, शीकू, मुकूल की भाषा पात्रानुकूल भाषा को ही व्यक्त करते है।

५.२.२ भाषा का वैशिष्टय :

शिवप्रसाद सिंह जी की भाषा तीखी संवेदनात्मक गहरे अर्थ को व्यक्त करनेवाली व्यंग्य का पुट लिए चलनेवाली शिष्ट भाषा है। शिवप्रसाद सिंह जी में दृश्यों का वर्णन और स्थितियों के दिलचस्प बयान की ऐसी अद्‌भुत प्रतिमा सिंह जी में है कि पाठक पत्थर की गढ़ी, मूर्ति की तरह निश्चेष्ट हो पढ़ता जाये पढ़ता जाये 'इन्हें भी इंतजार है' में "ह-ह-ह-ह-ह... वह तीखी चीरती हुई आवाज से जोर से हंसी और हाथों की अंगुलियों को बुरी तरह मरोडकर चिल्लायी- "हट जाओ! हट

जाओ! हट जाओ! तूफान आ रहा है।... तूफाना... उसकी आवाज में कुछ ऐसी सनसनाइट थी कि लगता है बिना बादल के ही कही बिजली टूट पडेगी, कोई पेड उखड जायगा, कोई सिर टकराकर चूर-चूर हो जाएगा। एक अजीब दहशत से मैं ²Ö¸ü ŸÖ£ÖÖ ÆüÖë □ú¬ÖÖ ˆ šüÖ.." □ú²Öü ! □ú²Öü !"[32]

'एक यात्रा सतह के नीचे' कहानी में इण्टरव्यू देकर बाहर निकलने वाला अवधू और उसके चारो तरफ के भीड़ के वर्णन में भी अदभुत सजीवता है- "तभी उसके ईद-गिर्द मक्खियों की भनभनाहट तेज हो गयीं। यह इण्टरव्यू भी क्या जलजला है। लोग-बाग अपरिचित लोगों से यों लिपट जाते हैं मानो मुसीबत में पडी इन्सानियत को श्रध्दांजलि देने का पर्व आ गया हो। क्यों भाई साहब!... हेलो बन्धु!- एक मिनिट प्लीज!- और वे पतली दुबकी-दुबकी सरसराहटभरी आवाजें: मैं नही जा सकती भई... प्लीज शीला, कुछ तो 'हिण्ट' ले जाओ! और तभी अवधू को लगा कि वह लोगों की भीड़ में घिरा-घिराया जाने कब सडक पर आ गया है।"[33]

उनकी तीखी तेवरवाली भाषा का उदाहरण 'अलग-अलग वैतरणी' से देखिए- "और ई साला सुरजुआ! ससुर अपने को बड़े भारी तीसमार खाँ समझते है। मुँह कैसा है नेवले जैसा।"[34]

शिवप्रसाद सिंह की भाषा संक्षिप्तता के गहरे अर्थ को व्यक्त करती है। सुगनी के साथ पकडे जाने पर सुरजू सिंह की बेशर्मी के बारे में लेखक कहता है- "सुरजू सिंह के होठ हंसने की कोशिश मे विथुर गये। बेशर्मी की चादर ने हजारो चिनगारियों को अपने ऊपर झेल लिया।"[35] 'गली आगे मुडती है' में कथ्य के मुताबिक आक्रोशपूर्ण भाषा के उदाहरण कई स्थलों पर वैशिष्ट्य बनकर उभरे है जिनमें प्रमुख है- सामाजिक भ्रष्टाचार को लेकर हरिमंगल की भाषा, युवापीढी को लेकर सुबोध भट्टाचार्य की भाषा, यौन उच्छृखलता के सम्बन्ध में जयंती की भाषा, शिवप्रसाद सिंह की भाषा हमें पात्रों के दु:ख दर्द से सीधे जोड देती है। पुष्पा, कनिया, पटनहिया भाभी आदि 'दिल्ली दूर है' मे देविका या नज्मा की व्यथा हमें दर्द में डुबो देती है। 'वैश्वानर' में प्रतर्दन की करुणाजनक मृत्यू से हम सिहर उठते Æ…

"घाटिया गूँजती है' नाटक में टूराँ की मृत्यू के बाद शीकू और क्यूला का दु:ख दर्द को शीकू के द्वार व्यक्त हुआ है- "क्यूला ! क्यूला... हे भगवान! बाबू उसे

पकडवाइए, उसे पकडवाइए बाबू। वह पागल हो गयी है। पागल हो गयी है... वह जान दे देगी बाबू... जान दे देगी! मेरा वंश समाप्त हो गया ईश्वर। मेरा सारा परिवार नष्ट हो गया मालिक। मेरा परिवार नष्ट हो गया।"[36] ">Ö.×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ ØÃÖÖÆ के गद्य-साहित्य की जो सबसे बड़ी विशिष्टता है वह है उसकी गति, प्रवाह वर्णन हो या चिंतन, सबमे कलकल, छलछल करता भाषा का अविरल प्रवाह अबाध गति से प्रवाहमान है। इस गति में कहीं लयात्मकता है, कही लोच है, कहाँ अक्खडपन है तो कहीं अल्हडता, पर उसमे एक तरन्नुम एक 'रिदम' प्राय: सर्वत्र लक्षित की जा सकती है।"[37]

५.२.३ लोकभाषा का हिंदीकरण :

शिवप्रसाद सिंह के भाषा प्रयोग की सबसे खास विशेषता है- अपने कथ्य के मुताबिक भाषा को मोड देना, याने 'स्थानीय भाषा और खडी हिंदी का स्पृहणीय संतुलन। सिंह जी ने साहित्यिक हिंदी को संवारने के लिए तथा कथ्य में प्रभावत्मकता लाने के लिए भोजपुरी, बुंदेली, बंगाली, गुजराती, बोलियों का बडा सुंदर प्रयोग किया है। सिंह जी ने अपने उपन्यासों में पात्रों के अनुरुप लोकभाषाओं का प्रयोग किया है।

लोकभाषा का हिंदीकरण करते समय लेखक ने 'ये' और 'यह के लिए 'ई' का प्रयोग किया है। जैसे- "ई गाना है?"[38] "ई तो जायेंगे ही भइया।"[39] "‡ ŸÖÖ ±úº सिंह का ननकू है न?"[40] इसी तरह 'वह और 'वे' के लिए 'अ' का प्रयोग किया Æî...

"जब ऊ हमको नाहीं छोडती, तो हम कैसे छोड़ दे बाबू।"[41]

"ई तो ऊ बॉझ औरतों को लडिका होवे खातिर बॉटता है।"[42]

"ऊ सब इन्दरजाल वाले तम्बू के पास जाकर खडी हो गयी।"[43]

"ऊ लोग कुछ खरीद थी।"[44]

"ऊ कोई वारिसनामा छोड गये है।"[45]

"न निकले तो उहौ होगा।"[46]

इसी तरह कोई के लिए 'कोनो' और क्यों के लिए 'काहै' और क्या के लिए 'का' प्रयोग बहुत जगह पर हुआ है। नहीं के लिए गवई रुप नाही भी मिलता है।

"का हो भोलू साह।"[47]

"काहे तू माला कपार पर उठाये जा रहे हो?"[48]

"का हो नन्हकू बाबू।"[49]

"अरे नाही दिदिया।"[50]

गँवई अंदाज में पुकारे जानेवाले नामों का भी प्रयोग देकर उसे हिंदी के वाक्यों में समाहित किया गया है- हरिया-सिरिया-गुलबी,-सुरसतिया-सुरजितवा-शिवेंदर-रुपवा सोबरन, शीकू-क्यूला-टूराँ आदि रुपों का प्रयोग किया है परिणामस्वरुप भाषा में एक मिठास आ गयी है।

५.२.४ चित्रात्मक भाषा :

शिवप्रसाद सिंह की भाषा में चित्रात्मकता एक प्रमुख विशेषता है। उनके साहित्य में प्रसंगो के अनुरुप शब्दों का प्रयोग इस प्रकार से हुआ है, उनका गद्य-साहित्य पढ़ते समय घटनाओं के दृश्य चित्र आँखों के सामने उभरने लगते हैं।

शिवप्रसाद सिंह जी ने कहानी साहित्य में प्रचूर मात्रा में चित्रात्मकता शैली का प्रयोग किया है। 'पोषाख की आत्मा' कहानी का उदाहरण देखिए- "मेरी ऑखों के सामने तभी शीला की तस्वीर घूम गयी। लगा जैसे अपने लाल रंगे हुए नाखूनों वाले हाथों को जोड़कर वह पूछ रही है, क्यों भाईजी, क्या आपकी भी ऐसी ही राय है!"[51]

"कुहरे में युध्द" उपन्यास में चित्रात्मक शैली की दृष्टी से लड़ाई का सुंदर वर्णन किया गया है- उदाहरण देखिए- "एक साथ तुरुष्क सेना ने हाथ उठाकर हुंकार भरी- "अल्ला हू अकबर।" "क्या बात है आका?" मकबूल अपने घोडे को पीछे से निकालकर आगे ले आया, एक देगची सौंपते हुए कहा- "शरबते शहद और सेहत लीजिए पर पियाला नहीं था। इसी वास्ते देगची में ही लाना पड़ा।"[52]

"अलग-अलग वैतरणी" में करैता गांव का एक-एक प्रसंग इस भाषा का उत्तम उदाहरण है। "दिल्ली दूर है" में, आनंद वाशेक का वर्णन युध्द वर्णन, 'वैश्वानर' की मृत्यू का वर्णन चित्रात्मक भाषा का सुंदर नमुना है।

"घाटियाँ गूँजती है" नाटक में भी चित्रात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है, हिमालय का गुणगान, युध्द का वर्णन, जैसे- "इन घाटियों का भी क्या विचित्र रुप

है। कभी ये ऋषियों के मन्त्रों और ऋचाओंसे गूँजती हैं। कभी तोप और बन्दूकों की आवाजों से, कभी इनमें प्रेम के गीत और यात्रियोंके भजन - कीर्तन गूँजते हैं, तो कभी प्रवंचना और विश्वास घातकी चीत्कारें।"[53] इस प्रकार सिंह जी के गद्य साहित्य में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है।

5.2.5 काव्यात्मक भाषा :

शिवप्रसाद सिंह कवि मन के साहित्यकार रहे है। उन्हें कविता लेखन में अधिक रुचि तो न थी पर गद्य साहित्य में उन्होंने काव्यात्मक भाषा का प्रयोग कर कवि होने का अहसास भी करा दिया है- जहाँ-जहाँ श्रृंगार वर्णन और प्रकृति वर्णन हुआ है वहाँ-वहाँ उनकी काव्यात्मक भाषा ऊभर कर सामने आयी है। सिंह जी की कहानियों में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है, जिनमे 'दादी माँ', 'एक यात्रा सतह के नीचे', 'नन्हों', 'इन्हें भी इन्तजार है', 'टूटे तारे', 'सुबह के बादल', 'ताडीघाट का पुल', 'एक वापसी और', 'तकावी', 'मरना एक पेड़ का', 'श्रृंखला' अमृता आदि कहानियों में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। 'अमृता' कहानी का उदाहरण देखिए "आसमान में काले-काले बादल गरज रहे हैं। हाय, मित्र तुमसे मिलन नही होगा। टुपुर-टुपुर वर्षा की झडी लगी है। घर के पीछे मानकुचू के लंबे चौडे पत्तों को काटकर सर पर रख लिया तब भी अर्धरात्रि में मेरी सोनाली देह भीग गई। मैं अभागी निकट ही केश पोंछती रही; पर मिलन नही हुआ...।"[54]

शिवप्रसाद सिंह जी के उपन्यासों में भी काव्यात्मक भाषा का प्रचूर मात्रा में प्रयोग हुआ है- 'गली आगे मुडती है' में काशी का वर्णन, 'अलग-अलग वैतरणी' में पौष, आषाढ, माघ का वर्णन, और करैता का वर्णन, 'शैलूष', 'कुहरे में युध्द' में भी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। 'वैश्वानर' उपन्यास का उदाहरण देखिए- "रात्रि का तृतीय प्रहर, काशी को एक अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य से सजा देता है। पौष मास की नवमी का चन्द्रमा आकाश में चमक रहा था। शीतल हवा चल रही थी। पथों पर दीन दु:खी लोगों के लिए अलाव जल रहे थे। तभी तीव्र शब्द की कडक से रात्रि की स्तब्धता भंग हुई।"[55]

'घाटियाँ गूंजती है' नाटक में भी काव्यात्मक भाषा में प्रकृति का वर्णन हुआ है जैसे- "हिमालय ! पर्वतराज हिमालय!! हमारी सभ्यता और संस्कृतिकी आधारशिला

हिमालय! दोपहरकी भी धूपमें ये चोटियाँ कितनी सुन्दर लगती हैं! इसी सौन्दर्य और भव्यता को देखकर तो लोगोंने हिमालय को देवताओंका घर कहा था। हिमालय अधलेटा देवता ही तो है, श्वेत गौरांग महादेव का स्वरुप।"[56] x¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü सिंह की भाषा की इसी विशेषता के कारण विद्यानिवास मिश्र जी 'मंजुशिमा' के संदर्भ में कहते हैं, "मंजुशिमा को कविता नहीं भी कहे तो इसे 'कविता-कथा' तो कहेंगे ही।"

५.२.६ ध्वन्यात्मकता :

शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। हा,हा,हा,हा! मेरे प्यारे चुन चिह चेह।"[57] '†Ö-†Ö-†Ö-†Ö…"[58] "आपका पायजामा...हो...हो...हो...हो...देखिए ना कैसा सन गया है धूल से।"[59] "गाडियाँ “Ö»ÖŸÖß ¸üÆüŸÖß Æü…... Æü-Æü-Æü-Æü…"[60] “Ö»Ö •ÖÖ ¸üÆü £Ö… ŸÖ›ü-ŸÖ›ü-ŸÖ›ü…"[61] "तो हँसने की 'ÆüÖ-ÆüÖ-ÆüÖ-ÆüÖ' ³Öß Æü…"[62] 'उल्लू की' घू घू' है।"[63] "दरवाजे की खट खट भी है।"[64] "रेलवे की खडखडाहट है।"[65] "यहाँ नगाडे की' डम-डम है।"[66] 'जूतों की खटर-¯Ö™ü¸ü Æü…"[67] इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में ध्वन्यात्मकता दिखाई ¤üŸÖß Æü…

५.२.७ भाषा के कलात्मक प्रयोग :

भाषा के कलात्मक प्रयोग के अंतर्गत प्रतीक, बिंब, मिथक, रुपक संकेत और अलंकारों का विवेचन किया गया है।

५.२.७.१ प्रतीक योजना :

भाव की अभिव्यक्ति में जब सामान्य भाषा अपना प्रभाव नष्ट कर देती है और शब्द अपना अर्थ खो देते हैं तब साधारण के स्थान पर विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ये ही विशिष्ट शब्द प्रतीक हैं। अर्थसंदर्भ व्यंजित करने की शक्ति अर्जित करने वाला कोई अप्रस्तुत या-शब्द प्रतीक है।

प्रतीक, शिवप्रसाद सिंह जी के भाषा के अनिवार्य अंग हैं। उनकी विविधता और कलात्मकता ने भाषा को अपूर्व गरिमा से भर दिया है। सिंह जी के कहानियों

में आये चरित्र- 'दादी माँ' 'देऊ दादा' 'उपधाइन मैया' 'नयी पुरानी तस्वीरें' 'कर्मनाशा की हार' 'पापजीवी' 'उपहार' 'केवडे का फूल' 'अन्धकूप' 'बेहया' 'इन्हे भी इन्तजार है' 'परकटी तितली' 'बडी लकीरें' 'मुरदा सराय' 'कलंकी अवतार' 'चरित्रहीन' 'अमृता' 'अमोक्ष' 'श्रृंखला' आदि "अमोक्ष' कहानी में सुब्बा, बुरे कर्म करता है तो उसे उसके बुरे कर्मों का फल अमोक्ष ही मिलता है। "सुब्बा के सारे बदन में तो कीड़े पड गये थे। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। सारा बदन सड़ गया ऐसा भोगा ऐसा भोगा कि उसकी यातना देख कर तो लगता था भैया कि Ã³ÖÖê-Öü ú ÃÖÖ µÖÆÖó ÖêÖÖ ¯Ö üÖÖ Æü."[68] मरने के बाद भी मोक्ष नहीं मिलता जो अमोक्ष का प्रतीक है। 'कर्मनाशा की हार' कहानी में भैरो पाण्डे बुदबुदाये "कर्मनाशा की बाढ उनकी इस जर्जर बखरी को हडपती नहीं, उनके पितामह की उस अमूल्य प्रतिष्ठा को हडपने आई है।"[69] पाण्डे की बखरी उसके खानदान की प्रतिष्ठा का प्रतीक है। 'एक यात्रा सतह के नीचे' कहानी में अवधू एक बेरोजार युवक का प्रतीक रुप है। आज हमारे देश में अवधू जैसे नवयुवकों का प्रातिनिधिक रुप है। 'उपहार' कहानी में गुलबी ठाकुर को फटकार देती है- तो बच्चन का कथन "देख रहा हूँ कि इस श्रीफल में फल ही नहीं लगते, बल्कि ये अनूचक्के टपक भी पडते है और आदमी खियाल से न रहा तो खोपडी भी फोड देता है।"[70] यहाँ श्रीफल गुलबी का ही प्रतीक बन गया है।

"सुबह के बादल' में आरंभ का ताजा-ताजा सूर्योदय नवार्जित भारतीय स्वाधीनता का प्रतीक है। 'अरुन्धती' प्रतीकात्मक का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस कहानी की भाषा ही प्रतीकात्मक है। बडकी बहू पर जुल्म और अकारण इल्जाम लगाया जाने लगा है- "बडकी बहू के उठे पैर रुक गये थे। वह एकटक अपनी सास के मुँह की ओर देखने लगी थी। एक क्षण को सास ठिठक गयी थी। उन दो एकदम स्थिर चमक वाली मछलियों के बदन की छड़कनें जैसे इस अकारण जुल्म की शहादत की प्रतीक थीं।"[71] मछलियों की छड़कनें बडकी बहू पर होने वाले जुल्म की सूचना ही दे रहे हैं।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास का करैता भारतीय गाँवों का प्रतीक है। इस उपन्यास का हरेक पात्र किसी न किसी रुप में प्रतीकात्मकता को लेकर चलता है। उपन्यास में प्रयुक्त बाघ और मेमने शब्द प्रयोग के द्वारा लेखक ने बाघ

का प्रतीक जमींदार जैपाल सिंह, और मेमनों का प्रतीक रुप आम जनता है। "यहाँ तो भुलभुलैया में रास्ता ढूंढकर खुद मेमने ही बाघ की मांद में आया करते थे। क्या करते बिचारे तब करैता गाँव के सभी रास्ते छावणी को ही जाया करते थे।"[72]

जैपाल सिंह जहाँ शोषक वर्ग का प्रतीक है वही खलील चाचा शराफत का प्रतीक है, तो कनिया भारतीय ग्रामीण आदर्शवादी स्त्री का प्रतीक है। जमींदारों की हवेली खानदानी प्रतिष्ठा का प्रतीक है। 'गली आगे मुडती है' उपन्यास में पुराना राजेश्वरी मठ पुरानी परंपराओं का प्रतीक है। 'नीला चाँद' उपन्यास दृढ इच्छाशक्ति का प्रतीक है। 'दिल्ली दूर है' उपन्यास में आनंद वाशेक को दिल्ली न मिलना और देविका यह वाशेक की अतृप्त इच्छा का प्रतीक है। तयासी का सड-सड कर मरना दुष्टप्रवृत्तियों का प्रतीक है। "वैश्वानर" वेदकालीन समाज का उद्‌घाटन करनेवाली प्रतीकात्मक कथा है।

'घाटियाँ गूंजती है' राष्ट्र प्रेम का प्रतीक है। हिमालय भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक है। "हिमालय ! पर्वतराज हिमालय !! हमारी सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला हिमालय!"[73] रोज ओ ब्राएन शांती का प्रतीक है। मुकूल गद्दारी का प्रतीकात्मक रुप है जो देश के साथ गद्दारी करता है और चीनियों का साथ देता है। "असफल क्रान्ति देशद्रोह बन जाती है कैप्टेन! वही सफल होनेपर क्रान्ति कही जाती है।"[74]

टूराँ भी गद्दारी का प्रतीक है। शीकू अपने बेटे के प्रति कहता है- "मुझे मालूम हुआ सरकार कि टूराँ गद्दार है। वह उन लागों में शामिल है जो देशकी आबरु बेचना चाहते हैं, हमारी धरती को दुश्मनोंके आगे भेंट चढ़ाना चाहते है।"[75] इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में प्रतीकों के उदाहरण प्रचूर मात्रा ´Ö Æü…

५.२.७.२ बिंब विधान :

मानव जीवन में विम्ब विधान का बडा महत्तव होता है। प्रतीक और बिंब भाषा के सौंदर्य को बढ़ाते है। "प्रतीक की सांकेतिकता को निकालकर चित्रात्मक भावमयता और गोपित अदृश्य की जगह मूर्तन की समग्रता को रखकर उसे संक्षिप्त कर दिया जाये तो बिंब की स्थिति बनती है।"[76] डॉ. पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु' जी

का कहना है कि "वस्तुत: बिंब की प्रशंसा विचार और भावना पर पडनेवाले उसके तीव्र प्रभाव के कारण ही की जाती है।"[77] शिवप्रसाद सिंह जी के बिंब पाठक के मन ¯Ö¸ü †ÃÖ¸ü ”Ö›ü •ÖÖŸÖê Æïü…

शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में उपमानमूलक बिम्बों का बाहुल्य है जो कई स्थलों पर चित्रण के प्रत्यक्षविधान में सक्षम है, पर इनसे अलग वर्णनों द्वारा भी वे बडे ही सफल बिम्बों को प्रस्तुत करने में अधिक सक्षम हैं। उनके साहित्य में चित्रात्मक बिंब प्रमुख रुप से आते हैं, जो स्मृति में आये या सामने दिखने वाले व्यक्ति दृश्य, घटना, क्रिया, हाव-भाव, आदि को स्थिर या गतिशील दोनों रुपों में हू-ब-हू प्रत्यक्ष कर देते हैं। "बिना दिवार का घर' कहानी में जैसे, "जयपुर के खूबसूरत शहर की हमवार जिस्म काली सडकें, रिक्शें, ताँगों की झनझनाहट से गुंजान हो रही थी, कन्दीलों की रोशनी सन्ध्या के सिन्दूरी प्रकाश में ऊँघती नजर †ÖŸÖß…"[78] 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास मे भी बिम्ब विधान का उदाहरण देखिए- "देवीकुण्ड के चारों कगारों पर आदमी। मंदिर के इर्द-गिर्द आदमी। चौतरफा फूलेवाले रास्तों पर आदमी। रास्ते बेरास्ते पेड़ों के नीचे, सर्वत्र आदमी-ही-आदमी।"[79] "घाटियाँ गूंजती है' नाटक में स्मृति में उभरता 'टूराँ का बचपन' है नहीं सरकार था कभी। था हुजूर। टूराँ मेरा इकलौता बेटा था बाबू। मैं इसकी नींद सोता था, इसीकी नींद जागता था।"[80] यह एक सफल बिम्ब विधान कहा जा सकता है।

बिंबो के इन प्रयोगों में विविधता भी देखने को मिलती है। पात्रों के बिंबात्मक चित्र, भावों के बिंबात्मक चित्र, सादृश्यमूलक बिंब शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में देखने को मिलते है। इसके अलावा निम्नलिखित बिंब भी देखने को x´Ö»ÖŸÖê Æïü…

५.२.७.२.१ दृश्य बिंब :

इंद्रियपरक बिंबो में सर्वाधिक सहज ग्राह्य बिंब दृश्य बिंब ही है। इसका संबंध आँख से होता है। "घाटियाँ गूंजती है' नाटक में विवेक कहता है, "क्या कहूँ कैप्टेन, ऐसा दर्दनाक दृश्य हमने कभी नहीं देखा। इस बेचारे शीकूको हम जाने क्या-क्या समझते थे। इतने महान व्यक्ति तो पढ़े-लिखे ऊँचे समाजमें भी शायद ही ÆÖŸÖê Æïü…"[81]

५.२.७.२.२ श्रव्य बिंब :

इस बिंब का संबंध कान से है। इस में प्राय: ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग होता है। 'नीला चाँद' उपन्यास का उदाहरण देखिए "चारो आगे बढे। उनके पैरों की हल्की आहट सुनकर सारस-युग्म क्रेंकार ध्वनि करते हुए उडा और उत्तुंग मंदिरों के क्लशों के बीच एक तिर्यकू रेखा खींचते हुए नीले क्षितिज में विलीन हो गया।"[82]

'एक यात्रा सतह के नीचे' कहानी का उदाहरण देखिए - "फक्-फक् करती इंजिन की आवाज इतनी मनहूस थी कि मानो यह गाडी किसी मौत के समुद्र में धँसने को जा रही हो।"[83]

५.२.७.२.३ घ्राण बिंब :

घ्राण अथवा गंध का संबंध नाक से हे। सिंह जी के गद्य साहित्य में घ्राण बिंब भी देखने को मिलता है। 'इन्हे भी इंतजार है' कहानी में लेखक कहता है- "बरसात के दिनों में तो लगातार पानी बरसते रहने से गन्दगी कुछ कम हो जाती, पर क्वार की धूप पडते ही पानी सडने लगता और मच्छरों तथा दूसरे कीडे-मकोडो की अनभनाहट के साथ पानी की बदबू हवा में फैल जाती।"[84]

5.2.7.2.4 Ã¯Ö¿Ö ×²Ö²Ö :

इसका संबंध त्वचा से है। इस बिंब का प्रयोग भी गद्य साहित्य में हुआ है। 'श्रृंखला' कहानी में "पुत्रवधू ने दौडकर सोवरन की गर्दन को अपनी भुजाओं में लपेट लिया।"[85] 'गली आगे मुडती है' उपन्यास में भी "आनन्द खुद रो रहा था, पर उसने मुझे उठाकर वक्ष से लगा लिया।"[86] "मैं झूठ नहीं बोलूंगा। उसकी हथेलियों के स्पर्श से मेरे शरीर में एक विचित्र तरह की रासायनिक क्रिया होने लगी।"[87]

इस प्रकार सिंह जी के गद्य साहित्य में स्पर्श बिंब भी प्रयुक्त हुए है।

5.2.7.2.5 Ã¾ÖÖ¤ ×²Ö²Ö :

इसका संबंध जिव्हा से है। शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में स्वाद बिंब की योजना हुई है। "सामने एक मृगी, मृग के मुँह को अपने मुँह से रगड रही

£Ö߅"[88] "तो ये आँसू नहीं, मुंजाल जल है, सुवासित स्वर्ण बिन्दु! मैंने उसके गाल पर अपने होठ रुख दिए।"[89]

उपर्युक्त कोटियों के अतिरिक्त गद्य साहित्य में सरल एवं संश्लिष्ट बिंब, स्थिर एवं गत्यात्मक बिंब आदि भी प्राप्त होते हैं।

५.२.७.३ मिथक :

मिथक का मूल हमारी संस्कृति की परंपरा में होता है। मिथक सदा मानवेत्तर होते है, जैसे देवता, राक्षस, मिथक हमारी पुराण कथाओं, धर्म ग्रंथो या जन कथाओं के माध्यम से विश्रुत होते है। 'कलंकी अवतार' कहानी में भी एक मिथक है जो 'सुखसागर' में आया है। पुजारी जी कहते- "सुखदेव मुनी बोले कि हे महाराज गोमाता के रुप में पृथ्वी की गुहार सुन भगवान ने कहा कि मैं तुरंत ही अवतार लूँगा और अत्याचारिन का संहार करिके दुःखी दीन भगतजनों का उध्दार करुँगा।"[90] यह कहानी कलंकी अवतार पर आधारित है। इसके बिना कहानी चल ही नही सकती। प्रयोग प्रतीक रुप में ही हुआ है। संकेत यह है कि इस निरर्थक बातों को छोडे बिना आम आदमी अन्याय, शोषण के शिकार से मुक्त नहीं हो सकता 'दादी माँ' शापभ्रष्ट देवी है और उपधाइन मैया लोककथा की देवी,

'अलग-अलग वैतरणी' से लेकर 'दिल्ली दूर है' तक पर्याप्त रुप से मिथको का प्रयोग हुआ है। शिवप्रसाद सिंह जी का अंतिम उपन्यास 'वैश्वानर' मिथकों पर ही आधारित है। 'अलग-अलग वैतरणी' की तट चर्चा (भूमिका) में लेखक लिखते है-"कहा जाता है कि सती-वियोग से व्याकुल शिव के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल गयी। इस पुराण-कथा का प्रतीकार्थ जो हो, मुझे पढ़ते हमेशा ही विक्षिप्त, बहिष्कृत, संत्रस्त और भीड के संगठित अन्याय के विरुध्द जूझते शिव की याद आ जाती है। जब शिवत्व तिरस्कृत होता है, व्यक्ति के हक छीने जाते है, सत्य और न्याय अवहेलित होते है, तब जन-जन के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल जाती है। नरक की नदी बन जाती है।"[91] और ऐसे ही तमाम वैतरणियों के प्रवाह का नाम है- 'अलग-अलग वैतरणी'

'शैलूष' में महाभारत के अनेक मिथक प्रयुक्त हुए है। सावित्री का पक्ष सत्य का पक्ष है जैसे महाभारत में पांडवों का था। सावित्री खुद नरम किसुन और गरम

किसुन की भक्त है। वह कहती है "नरम को गोपवेश किसुन कहते है और अर्जुन के सारथी को गरम किसुन।"[92] 'नीला-चाँद' में कीरत के लिए तो श्रीकृष्ण का मिथक प्रयुक्त हुआ है। 'शैलूष' में मौसी की बेइज्जती के लिए प्रयुक्त द्रोपदी वस्त्रहरण का मिथक भी काफी प्रभावी है।

इस प्रकार शिवप्रसाद जी ने बड़ी कलात्मकता के साथ अपनी भाषा में मिथकों का प्रयोग किया है।

५.२.७.४ संकेत :

शिवप्रसाद सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी भाषा में न केवल प्रतीको, बिंबो और मिथकों का प्रयोग हुआ है बल्कि उन्होंने कुछ ऐसे वाक्यों का भी प्रयोग किया है, जिनसे किसी अलग संकेत का बोध होता है। ये संकेत "प्राय: संदर्भ से खुलते है और किसी शब्द या वाक्य के माध्यम से किसी एक घटना चारित्रिक विशेषता या संदर्भ को झटके से खोल देते है। इनकी क्षमता सीमित होती है, पर ऐसे संकेत लेखक की रचनात्मकता में प्रत्युत्पन्न चेतना के सबूत हैं जो बडे कौशल्य और सजगता की अपेक्षा रखते हैं।"[93] इस संदर्भ में कुछ उदाहरण।

'चेन' कहानी के अंत में आया वाक्य "यह हमेशा - हमेशा के लिए उतर जाती बाबू तो भी गला छूटता।"[94] भी संकेत ही है। 'नन्हों कहानी में भी "नन्हों ने किवाड तो बन्द कर लिया, पर साँकल न चढा सकी।"[95] 'टूटे तारे' कहानी की यह भाषा भी अपनी स्थितियों की स्पष्टता का संकेत करती है- "रात के रहस्य के जादू के पर्दे खींच लिए। रात का दूसरा प्रहर संपूर्ण मादकता बिखेरकर छा गया था। पास के बगीचे से नाना फूलों की सुगंध रंगीन साँपों की तरह रेंगने लगी थी। पूरब से चाँद का पीला गोला उठने लगा था जिसका प्रकाश खिडकी से होकर कमरे में झाँकने लगा।"[96]

'अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में घोडे के बारे में जब बात आती है तो खुदाबक्कस कहता "हाँ बडे सरकारा जी हुजूर! अब तो हुजूर हुनरमन्द हो गया है श्यामकरन। गरीब परवर हाँ, हाँ। खुदाबक्कस ने कोर्निस बजाते हुए बडी अदा से कहा- कल सबेरे मालिक की थोडी इनायत हो जाय तो कुछ इसके भी करतब देख लिये जायँ हुजूर। "हाँ, हाँ, क्यों नहीं। करतब देखने ही आया हूँ।"[97] यह वाक्य

बुझारथ और खुदाबक्कस के तमाम अन्य करतबों की तरफ संकेत करता। "गली आगे मुडती है", उपन्यास में विपिन अपनी सारी किताबें दिखाते हुए निश्चल हँसी के साथ कहता है" देखिये न इनमें से कोई पसन्द आ जाये शायद। उसने निश्छल उदार हँसी के साथ पटनहिया भाभी की ओर देखते हुए कहा। पटनहिया भाभी कहती है- "कोई दे दीजिए सभी अच्छी ही हैं बबुआ जी मेरे लिए। जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ सभी अच्छे ही हैं, हैं कि नही।"[98] 'गली आगे मुडती है' निराश रामानन्द के मन में प्रेरणा, आत्मविश्वास जगाने के संकेत रुप में प्रस्तुत हुआ है, जयंती लिखती है "ना लइओ ना लइओ बन्धु कांचनमालार नाम तोमार चरेणा आभा शतेक परणाम...।"[99] सिंह जी के गद्य साहित्य में संकेत का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

५.२.८ अलंकार :

शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य साहित्य में भाषा में कलात्मकता लाने के लिए जगह-जगह पर अलंकारो का सफलता के साथ प्रयोग किया है। सिंह जी ने अलंकारों को श्रृंगार के रुप में नहीं, संस्कार के रुप में महत्त्व दिया है। शिवप्रसाद सिंह जी के साहित्य में अलंकारों की अधिकता और विविधता उनके विस्तृत अनुभव संसार और सलीके से सहेजने के कौशल के अद्‌भुत प्रमाण है। अलंकारो के जो भी उदाहरण हमे मिलते है, उनमे उपमा रुपक और मानवीकरण जैसे अलंकार प्रमुख है। अलंकारों के प्रयोग में उपमान ही लेखक की शक्ति है। 'मुर्गे ने बाँग दी' कहानी मे "ढलते सूरज की किरणें मंगरु की निस्तेज आँखो पर चौंध पैदा करती।"[100] "उसने देखा आसमान में फफोलों की तरह तारे उढने लगे है।"[101]

"कटै जौ की सफेद बालों से भूरी खुत्थियाँ और उसके बीच असहाय विधवा - सी गंगा की धार।"[102] "उदास उधडे रंग की तरह फीकी सुबह थी।"[103]

५.२.८.१ पात्रों के शारीरिक अंगो के लिए प्रयुक्त उपमान :

इस उपमानों का प्रयोग सिंह जी के गद्य साहित्य में पर्याप्त मात्रा में हुआ है। कुछ उदाहरण।

"धनूष की तरह भूलेखा।"[104]

"नीरु की आँखों में एक हल्की कालिमा छा जाती है।"[105]

"पैर से लेकर चोटी तक के शरीर को सिकोडकर आँखों में समेट »Ö..."[106]

"गर्द-भरी आँख से आसमान की ओर देखा।"[107]

"आँखो से ओझल हो जाती।"[108]

"उजली आँखे खंजन की तरह थिरकती मालूम होती.।"[109]

"नन्हा सा मुँह काले नारियल जैसा लगता।"[110]

"तूफान थमा तो आँखों से गरम आँसू की धार उमड पड़ी।"[111]

"उनका चेहरा बुल्ले मछली की तरह मासूम और भोला है।"[112]

"नेवले-जैसा मुँह बनाकर हरिया उन सबों से छेडखानी कर रहा £ÖÖ..."[113]

"गोरा चिट्टा इकहर बदन। कमर इतनी पतली कि झुककर कमान की तरह हो गयी है।"[114]

५.२.८.२. चरित्रों के लिए प्रयुक्त उपमान :

शारीरिक अंगो के अलावा चरित्रों के लिए प्रयुक्त हुए उपमानों का प्रयोग भी देखिए-

"कनिया जलती दीपशिखा की तरह थी, जिनकी ज्योति के आगे वह घुग्घू की तरह आँखे मुलमुला लेता।"[115]

"सर के बाल सन की तरह सफेद हो गये है।"[116]

"भौंहे तक सटी हुई रुई की रेखा-सी लगती है।[117]

"मयभीत हरिणी के समान काँपती पुष्पा की आँखे।"[118]

५.२.८.३ पात्रों के लिए प्रयुक्त उपमान :

पात्रों के लिए प्रयुक्त हुए उपमानों का प्रयोग भी देखने जैसा है-

"वनचरी हरिणी की तरह देविका।"[119]

"ओढहुल के टटके फूल की तरह पुष्पा।"[120]

"नंगे बदन ऐसे लगते कि साखू की सिल्ली हो।"[121]

"चचिया और पुष्पा दोनों घबराकर बेबस हरिनी की तरह एक दूसरे की आँखों में देखने लगी।"[122]

"विशालाक्षी मुन्नत की ओर देखती हुई बोली, "मैं तेरे रास्ते की नागफणी हूँ।"[123]

"चढी जवानी में वह नेनुवां की लता जैसी गदराई थी।"[124]

इस प्रकार भावों के लिए प्रयुक्त उपमानों के प्रयोग को भी देखा जा सकता है।

५.२.८.४ मानवीकरण :

"काजल रंगे कारे-कारे नयनों वाली, रंगीन धोती में इन्द्रधनुष की तरह लगती थी, गाँव की गलियों में चलती तो बिछुआ बजता £ÖÖ…"[125]

"गंगा को देखकर ऐसा लगता है जैसे कोई तपस्वी कुमारी अपनी बलखाती कमर पर संस्कृती का कलश धरे चली जा रही है।"[126]

"चर्मण्यवती के पानी में मछलियों की गंध ऐसी-ही जुगुप्सा जगाती है। ये निश्चित ही चंबल के आस-पास के अश्व है।"[127]

"वैश्वानर आकाश में सूर्य, अन्तरिक्ष में विद्युत, धरती पर अग्नि है। यह वैश्वानर ही प्राण है, यही अन्न है, यही आन्नाद है। यह वनस्पतियों में पुष्प बन कर खिलता है, फल बनकर शाखाओं को झुका देता Æ…"[128]

"गंगा अर्धरात्रि में श्यामल केशों में अपने सौम्य चेहरे को छिपाये ²ÖÆÜÖß •ÖÖ ¸ÆÜß £ÖÜß, ²ÖÆÜÖß •ÖÖ ¸ÆÜß £ÖÜß…"[129]

५.२.८.५ रुपक :

"चिट्ठी-डाकिये ने दरवाजे पर दस्तक दी तो नन्हों सहुआईन ने दाल की बटुली पर यों कलछी मारी जैसे सारा कसूर बटुली का ही है। हल्दी से रंग हाथ में कलछी पकडे वे रसोई से बाहर आयीं और गुस्से के मारे जली-भुनी, दो का एक डग-मारती डयोढी के पास ¯ÖÆÓ“Öß…"[130]

"हलकी-हलकी रोशनी अंधेरी चादर में सलवटें डालने लगी थी। अंधेरे में एक पौधा खिला था- कोमल रोशनी का पौधा - और बडकी बहू को उम्मीद थी कि सूरज के आलोक में वह इसे बडे ध्यान से देखेगी और इसकी आभा को निहार कर खुश होगी। पर पता नही यह किस जाति का पौधा था कि सूरज की रोशनी के आने की खबर मात्र से ही मुरझा गया।"[131]

"जमींदारी उन्मूलन को देखकर जैपाल सिंह का सोचना था कि 'यह तो तूफान था-पर पेड खडा था।"[132]

"एक बाढ़ बीती, बरस बीता। पिछले घाव सूखे न थे कि भादों के दिनों में फिर पानी उमडा। बादलों की छाँव में सोया गाँव भोर की किरण देखकर उठा तो सारा सिवान रक्त की तरह लाल पानी से x'Ö¸Ö £ÖÖ..."[133]

५.२.९ शब्द संपत्ति / शब्द प्रयोग :

शब्द प्रयोग को लेकर डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी की कलाक्षमता अद्‌भुत है। शब्द चयन में सिंह जी माहिर रहे हैं। शब्दों के चयन और समान क्षेत्र एवं जाति वाले शब्दों के स्टीक प्रयोग में वे सिध्दहस्त हैं। लेखक का शब्द भाण्डार बहुत ही विस्तृत है। इसमे जीवन एवं ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों वाले शब्दों का सुरुचिपूर्ण सम्मिश्रण हुआ है। इतिहास, पुराण, ज्योतिष, तंत्र योग दर्शन और साहित्य के सभी मृत शब्दों को जहाँ जीवन मिला है, वहीं कितने ही नये शब्दों का जन्म भी हुआ है। शिवप्रसाद सिंह जी खुद कहते हैं- "मैं जानता था कि गुरुदेव के दिमाग में सिर्फ वेणीसंहार का शैलूष ही नहीं बल्कि ऋगवेद के मंत्रद्रष्टा ऋषि शैलूषी का नाम भी होगा।"[134]

"सटीक शब्द चयन की उनकी वृत्ति उपन्यासों की भूमिकाओं के शीर्षक में भी देखने को मिलती है। तटचर्चा (अलग-अलग वैतरणी), नुक्कड सभा (गली आगे मुडती है), माटिका, आत्मन, (शैलूष), ज्वलंत प्रश्न (वैश्वानर) आदि शीर्षक मौजूँ है। 'मंजुशिमा' को वेदनोपनिषद।"[135]

शिवप्रसाद जी के शब्द भाण्डार की अतुल राशि में हिंन्दी शब्दों के अलावा

मुख्य रुप से देशज संस्कृत ऊर्दू और अंग्रेजी अरबी-फारसी, शब्दों का प्रयोग भी प्रसंग के अनुसार किया गया है।

५.२.९.१ ठेठ ग्रामीण शब्द :

शिवप्रसाद सिंह ने अपने गद्य साहित्य में कथ्य के अनुरुप ठेठ ग्रामीण शब्दो का काफी मात्रा में प्रयोग किया है। संक्षिप्त सूची इस प्रकार है-

गोडा, नांद, कुतरना, टमकना, घोंटना, पुरवट, परती, बंजर, नवचा, चमरौटी, घाघ, जोहना, पतियाना, नघता, हिरकना, उबसन, थेथर, टिहुकना, पोतन, बुटरना, मुर्दे, टटका, चनक, अनसाने, घोडपराड, खांची, अगोरना, कल्ले, ठार, झिलंगी, ओरदवानी, बबुनी, मेहरारु, हाडपडा है, समहुत, पंगुंआना, बखरी, होरहा, ड्यौढी, देस, बुझाना, भीटा, मेहर, सांसत, बिराना, छिछोरापन, उठंगकर, गद्दड, ओखली, पटाये रहना, जुड़ा गया, औझड, कोयर, बनिहार, चौंचक, भोथर, पकठल, अगाडी, चनक, कोने - अंतेर, सरेख, बनरखत, कसरियाही, चांड, उतान, चंगा, पक्खे, खलबलाता, मारे, पइन, तिडी, क्लांस, पिद्दी, दुहकना, चियारना, अंडस, अलंग, जॉगर, टट्टर, टपरा, भिनसार, बज्जर, सपड-सपड, दतौन, भसान, पुरनिया, झोंटा, कुतरना, करमोना, घामड, अइया, लहाछेह, पोतन, खोंइछा, बाटी, अगुताहे, बिदोरकर, गझिन, ताकना, लौछार, डॉक, लेखन, दतौन, गाभिन आदि।

5.2.9.2 ŸÖŸÃÖ´Ö ¿Ö²¤ :

मंत्रोच्चार, उधत, स्थानापन्न, मार्गच्युत, वार्त्तालाप, अंतर्यामी, किंचित, कालंजर, यजुर्वेद, कालक्रम, अधोमुख, वैशिक, मध्यमा, प्रेयस, कायस्थ, परिणीता, चतुर्दिक, ग्रीष्मावकाश, अध्यात्म, प्रदीप्त, महामृत्युंजय, कैवर्त चर्मण्वती, छात्रवृत्ति, प्रकीर्ण, भृत्य, भौरवी, भ्रातृज, उपादान, ज्योतिष, रुद्राक्ष, सूर्यरश्मि, अवांच्छित, उर्वरा, ऐंद्रिय इष्ट, महातपस, नैगम, गुल्म, प्रकोष्ठ, शैलूष, शृगाल, प्रतोद, पुष्पपाद, रम्य, दयार्द्र, रक्षिता, दुर्वा, चक्षु, वृहत, शलाका, सन्निधि, तिर्यक, प्रत्युत्पन्न, वृषभ, प्रपितामह, अतिथि, अकृतविनता, कर्णाभिराम, महोदधि, कालुष्य,आम्रपल्लव, अहः

"नीला चाँद" और "वैश्वानर" उपन्यास में तत्सम शब्दों की संख्या अधिक

है। कुछ शब्द तो इतने अपरिचित है कि लेखक को शब्द के साथ कोष्टक में उनके अर्थ भी देने पडे है। जैसे कैरमाली (कैमूर) मौली (रोहिताश्व) हरयूपिया (हडप्पा) बटियाँ (गोलियाँ) क्षुरप (खुरपी) सूर्यांकित (सूरज छाप) प्रसेव (थैली) मातृगृह (मैहर) कुटन्नट (मोथा) शिविका (डोली) पान्थशाला (सराय मोहना) पोली (पुडी) आमलक (आंवला) धुमधार (धुआंधार) पुटिकाए (इत्र की शीशियाँ) मात्रायें (नक्षत्र) धारायंत्र (फव्वारे) डिंबनाद (हाहाकार) मज्झिम (मध्यम) संशप्तक (आत्मघाती) श्यामक (सांवा) त्रषु (शीशे) पुश्त (दुलत्ती) कक्कट (घट्टे) आदि।

5.2.9.3 Ÿö¤³ö¾ö ¿ö²¤ :

आँख, नरैन, मगन, अहीर, दुआर, जोत, पोसा, हरिया, नेबान, परमान, कोख, मगन, करम, कर्म, सिरिया, शिवेंदर परताप, अमरित, किसन, सूरज, साँप, बहरा, नन्हों घोडा, घडा, अंधेरा, तालाब, कुऑ, नाच-गाना, दूध, दही, बस्तर, निबह, ज्ञान, नेम, बरम, धरम, साइत, बरा, दिया, खोखी, जुगुत, अनकुस, भूंजना, मूंड, नेमआदि...

5.2.9.4 ^¤ ¿ö²¤ :

मायूस इंतकाल, हिफाजत, फिदा, गवारा, मुस्तैदी, पेशानी, हिदायत, शुहरत, गुमनाम, फरियाद, इत्मीनान, जज्ब, जुबान, वजूद, गाफिल, शिकस्त, तहकीकात, जर्द, गारत, यकीन, आजमाइश, जज्बात, हुनरमंद, मुखातिब, फरेबी, इजाफा, मोहताज, परवाज, तादाद, बर्खास्त, हुजूम, मशगूल, हिदायत, लुत्फ, आबखाँ, इंतहा, रश्क, तोहमत, अहमियत, कैफियत, जिस्म, इत्तफाक, फिदा, वाकिफ, जबांदानी, बदस्तूर, मौजूदगी, नागवार, ताजिया, रिसाला, गोश्त, ख्वाजा, तरक्की, शायर, औलिया, ओहदा, बेपर्दा, बेइंतहा आदि।

५.२.९.५ अंग्रेजी शब्द :

डिक्लेयर, ऐलान, सेंटेस, अप्लाई, पब्लिक, डाउन, वारंट, कमेटी, केसे, बॉडी, कैरियर, डिस्पेंसरी, रिजल्ट, मुड, मनीऑर्डर, पाकेट, प्रोजेक्टर, केस, जिवर्ज, ब्लड, यूरिया, टेलीग्राम, ऑपरेशन, हैट, मीडियम्स, लाइफ, मेडिकल कॉलेज, पोस्ट ग्रेजुएट, मैगजीन, डायलिसिस, रिपोर्ट, डैमेज्ड, किडनी, ब्लड

प्रेशर, एजेंसी, यूनिवर्सिटी, पैकेट, प्रेजेंट्स, इंटरव्यू, थीसिस, रिसर्च, हाऊसिंग, बोर्ड, चेक, काउंटर, कैलेंडर, कस्टमर, एंबेसी, एलबम, एवार्ड, इंस्पेक्टर, अकाऊंट, प्राइमरी, ट्रेंड, गारंटी, डाऊन, मरडर, केस, टेंपरेचर, कमेटी, साइड, पार्टनर, डिलीवरी, कैश पेमेंट, अनफिट, एडमिनिस्ट्रेशन, प्रॉड, मस्टर रोल, हॉस्पिटल, ब्लड बैंक, ओ-निगेटिव, टूरिस्ट होटल आदि।

5.2.9.6 †¸²Öß - ±úÖ¸ÃÖß ¿Ö²¤ :

शिवप्रसाद सिंह जी ने अपने गद्य साहित्य में अरबी-फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है। अरबी-फारसी शब्दों का ज्यादा प्रयोग 'दिल्ली दूर है', 'कुहरे में युध्द' उपन्यासों में हुआ है। शख्स फर्द (व्यक्ति) काकाद्रि (कडा) मलका (रानी) तस्वीरकशी (चित्रकला) दो गुल्म (१२ सैनिक) हाजिबो (दरबारी रस्म के संरक्षक) सिलहदारों (सुलतान के अंगरक्षक) सहमुलहश्मानों (सेना संचालक), अंजाब (पाप-दंड), जर्राह (शल्य चिकित्सक), मियाना (डोली), स्तबक (गुलदस्ता) मगरिब (पश्चिम), सरकश (उद्दंड), नजाकत (गंभीरता), रुतवा (प्रतिष्ठा), इनायत (कृपा), जामा-ए-संजाब (घर का वस्त्र), जामा-ए-तरफत (जरी का काम किया कुर्ता), कालप्रिय नगर (कालपी), लवपुरम (लाहौर), परमल (भुना अन्न), मंगल देव (मलय वर्मा), हम-अकीद (सहधर्मी), गोश्त-ए-गोस्पंद (बकरे का मांस), सुर्ख बिर्यानी (पुलाव), आसेब (भूत), जियारत (दर्शन), चुगद (उल्लू), सियासत (राजनीति), हरमसरा (अंतः प्रासाद), कार्षिक (रुपया), अपूप (पुवा), ओ टौरियेवारी (बुर्जी रक्षक), साका (ध्वजा), दीवाने अर्ज (युध्द विभाग), होताओं (हवि डालने वालों), ताम्रचूड (मुर्गाबी) नान-ए-मैद (पुडियाँ), चन्द्रवाडी (चन्द्रवाटिका), उरवाही (उरई), पोशाके संजाव (घर में पहनने वाली), सजदा (प्रार्थना), खुत्बा (धर्मोपदेश), महायुध्दपति (सैन्य सामग्री प्रबन्धक), तनके (मुद्रा), अधित्यका (पठार), नाबालिग-नवीर (बालक पौत्र) कदमबोशी (चरण चुंबन), कर्मकारो (मजदूरों), नाबीना (अंधा), आजर (आग), बेमांदी (बीमार), तश्वीश (चिन्ता), रेवा (नर्मदा), हुकहुकें (अन्तिम सांसे), बारन (केश) आदि।

५.२.९.७ गुजराती शब्द :

चलिहों, म्हारी, कशूँ, नत्थी, आववूं, शूं छे, दीकरी, लक्षण, तमे, एवू, खोटा, जई, म्हे, करयो, कीधो, एनो, बेन, शकतो, आपी, दईश, त्हारी आदि।

५.२.९.८ बंगाली शब्द :

दिहा, निभावे, बदै, दू, बोई, पाठिए, दाओ, खोखा, हिलसा, सोना दी, शुनो बंधु, पाजि, एड, शहरेर, बडो, कदना, तोमर आदि।

५.२.९.९ बाजारू शब्द और गालियाँ :

पात्रों के अनुरुप बोलचाल की भाषा में प्रयोग होने वाले बहुत से सस्ते, सडकछाप शब्द आये हैं- गावदी, माल, लांठनी, रंडी, कुलटा, गधा, निहँग, छप्पनछूरी, घोंचू, गुलछर्रे, जानमारु, गण्डगोल।

गालियाँ भी कुछ साफसुधरी भी प्रयुक्त हुई है, पर कुछ एकदम अश्लील-

सत्यानासी, हरामी, दोगला, कमीना, चूंतिया, लुच्चा, साले, कुलच्छन, भुच्चड, डोम की औलाद, आवारा, नमकहराम, करमनिखट्टू, मक्कार हरामजादी, बेहया, मादर हग मारना, छैछी छिनाल आदि।

5.5.9.10 ´ÖÆÖ¾Ö¸ê :

आखों में धूल झोंकना, टस से मस न होना, छटी का दूध याद आ जाना, एडी-चोटी का पसीना एक करना, दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ना, दाँत खट्टे होना, आँखों में गूलर फूलना, छांती पर मूँग दलना, कान में तेल डालकर सोना, दूध का दूध पानी का पानी करना, लोहे के चने चबवाना, हाथ को हल में जोतना, उत्साह ठंडा पडना, गला फाडना, तलवा चाटना, सब्ज बाग दिखाना, आस्तीन का साँप होना, नमक मिर्च लगाना ज्ञान का अंजन लगाना, नौ दो ग्यारह होना, हँसी उडाना, हाथ साफ करना, आहिस्ता आहिस्ता आदि।

५.२.९.१ कहावतें :

मियाँ को न पाऊँ तो बीबी को बकोटू, दूध का जला मठा भी फूँक-फूँक

कर पीता है, कुक्कर भोंकते है और हाथी चलता जाता है; करिया अच्छर भैंस बराबर, घोडा घास से दोस्ती करेगा तो खायेगा क्या?, एक हाथ से ताली नहीं बजती; साँच को आँच क्या?; नेकी कर दरिया में डाल, धर्म नाद तहाँ पाप माँद; आ बैल मुझे मार; न साँप मरे न लाठी टूटे, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी आदि।

संदर्भ संकेत

1. आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेयी, पृष्ठ १९
2. बृहद हिंदी कोश - कैलाश वाजपेयी, १९८८ पृष्ठ १२३९
3. वाल्युम - कैलाश वाजपेयी, पृष्ठ, १२३९ पृष्ठ १२७
4. हिंदी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ २४२
5. हिंदी उपन्यासों का शिल्पविधान - डॉ. प्रदिपकुमार शर्मा, पृष्ठ २०
6. प्रेमचंद कथा साहित्य : समीक्षा और मूल्यांकन - डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी, पृष्ठ २१७
7. हिंदी उपन्यास में कला-शिल्प का विकास - डॉ. प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ १००
8. शैली विज्ञान - भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ २३
9. कहानियों की कहानी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २७०
10. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२
11. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११२
12. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १९९
13. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २९०
14. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११९
15. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २०५
16. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ७९
17. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ५६
18. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३९
19. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य, डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृष्ठ ३२९
20. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १६४
21. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ४८
22. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १५९
23. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 256
24. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १८३

25. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८०
26. हिंदी उपन्यासों मे प्रतीकात्मक शिल्प - डॉ. सुशीला शर्मा, पृष्ठ ३१
27. प्रश्नो के घेरे - सं. राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ २००
28. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २६०
29. बीहड पथ के यात्री - संपा. डॉ. प्रेमचंद जैन, डॉ. गंगाप्रसाद पांडेय का लेख, ¯ÖÂš 184
30. बीहड पथ के यात्री - संपा. डॉ. प्रेमचंद जैन, डॉ. गंगाप्रसाद पांडेय का लेख, ¯ÖÂš 184
31. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ׿־֯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂš 16
32. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३९
33. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२
34. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १०८
35. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ४१२
36. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२३
37. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृष्ठ ३४३-४४
38. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ९१
39. †Ö¸üŸÖ - ›Ö. ׿־֯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂš 10
40. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ०७
41. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १७९
42. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २४२
43. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १५
44. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ७५
45. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ४०
46. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २९०
47. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ६
48. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८

49. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ९
50. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १५४
51. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८५
52. कुहरे में युध्द : डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ. २६४
53. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२५-२६
54. †´ÖŸÖÖ- >Ö. ׿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 131
55. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १३५
56. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १८-१९
57. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ५७
58. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ७३
59. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ४३
60. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १३०
61. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १३०
62. ¿Ö»ÖÂÖ - >Ö. ׿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 246
63. ×¤ü»»ÖÖß ¤ü¸ü Æü - >Ö. ׿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 530
64. ×¤ü»»ÖÖß ¤ü¸ü Æü - >Ö. ׿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 573
65. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ७६
66. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८३
67. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८४
68. †´ÖŸÖÖ- >Ö. ׿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 186
69. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८३
70. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १५६
71. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १६५
72. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३४-३५
73. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १८
74. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १०४

75. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११७
76. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृष्ठ ३५४
77. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü : ÃÖÂ™ü †Öî¸ü ÃÖÛÂ™ü - ÃÖ¯ÖÖ. ¿ÖßÝÖÖ¿Ö, ¯ÖÂšü 146
78. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २४१
79. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ०१
80. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११२
81. घाटियाँ गूँजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२४
82. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३३
83. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ९
84. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३८
85. †´ÖÝÖÖ- ›ü. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 30
86. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २६१
87. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १९८
88. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १९९
89. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २०१
90. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २८९
91. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह (तट चर्चा भूमिका सें)
92. ¿Ö»ÖÂÖ - ›ü. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 54
93. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, पृष्ठ ३६१
94. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २०७
95. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३१
96. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ४८
97. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३७
98. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १५६
99. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २७०
100. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १०५

101. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११९
102. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११९
103. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २०६
104. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ५४
105. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११३
106. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ९५
107. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ९९
108. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३३
109. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३७
110. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३६
111. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८०
112. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३
113. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १५
114. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११४
115. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२६
116. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १६४
117. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १६४
118. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ३८८
119. कुहरे में युध्द - डॉ.शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ६८
120. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२५
121. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११
122. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२६
123. †´ÖŸÖÖ- ›Öü. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 45
124. †´ÖŸÖÖ- ›Öü. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 179
125. †´ÖŸÖÖ- ›Öü. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 179
126. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १९

127. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १३८

128. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ५२४

129. नीला चाँद- डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ६७

130. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ २०-२१

131. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - २ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ १६१-६२

132. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ६४

133. शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ - १ डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ ५१

134. ¿Ö»ÖÂÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 65

135. ´Ö•Ö×¿Ö´ÖÖ - ›Ö. ×¿Ö¾Ö¯ÖÃÖÖ¤ü ØÃÖÆü, ¯ÖÂšü 12

षष्ठ अध्याय

निष्कर्ष एवं मूल्यांकन

मानव चरित्र का निर्माण प्रकृति, संस्कृति और परिवेश के संदर्भ में ही होता है। युग परिवर्तन के साथ-साथ परिवेश में भी परिवर्तन आता है। ऐसे समय मानव मूल्यों में भी परिवर्तन लाना आवश्यक होता है। इसलिए प्रत्येक युग में मनुष्य के आचार-विचार, रहन-सहन, संस्कृति, सभ्यता, धारणाएँ और मान्यताओं में परिवर्तन आता है। परिवर्तन संसार का नियम है। इस परिवर्तन का प्रभाव मानव चरित्र पर होना स्वाभाविक है। व्यक्ति, समाज और साहित्य के विकास की प्रक्रिया एक-दूसरे पर निर्भर होने के कारण इस परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी होता है।

इस शोध प्रबंध का प्रथम अध्याय 'शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' इस अध्याय में लेखक के जन्म से लेकर मृत्यु तक के साहित्यिक और वैयक्तिक जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयाय किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य के सशक्त हस्तांक्षर डॉ. शिवप्रसाद सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। केवल कथा साहित्य ही नहीं तो नाट्यलेखन, वैचारिक लेखन, समीक्षा, जीवनी, निबंध, नाटक आदि गद्य विधाओं में वे सिध्दहस्त थे। इसलिए उनके साहित्य की समीक्षा, उनके व्यक्तित्व के परिचय के बाद ही संभव हो पाएगी। साहित्यकार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनो उसी प्रकार मिले होते है, जैसे वाणी के साथ अर्थ होता है। साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब ही उनकी रचनाधर्मिता है।

जीवनी और परिवार :-

स्वयं डॉ. शिवप्रसाद सिंह व्यक्तित्व के संदर्भ में लिखते है - "लेखकों के साहित्य को समझने के लिए उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। वैसे भी लेखक के व्यक्तित्व को सार्थक शब्दो में पकडना एक कसौटी ही होती है। शिवप्रसाद सिंह का जन्म १९ अगस्त १९२८ को वाराणसी जिले के जलालपुर (जमनियाँ) गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम चंद्रिकाप्रसाद सिंह और माता का नाम कुमारी देवी था।

पितामह गणेश सिंह बहुत बडे जमींदार थे। पिता चंद्रिकाप्रसाद सिंह की मृत्यु १९७२ में हुई थी।शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व पर माँ और दादी माँ का प्रभाव था। शिवप्रसाद सिंह के भाई शंभूप्रसाद सिंह गांव पर खेती बाडी का काम देखते हैं। दो बहने हैं दोनों सुखी हैं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह की पत्नी धर्मा सौम्य प्रकृति की मिली। सिंहजी पत्नी के रुप में श्रीमती धर्मा को पाकर स्वयं को सौभाग्यशाली मानते रहे। डॉ. शिवप्रसाद सिंह को कई सन्तानें हुई जिनमे नरेन्द्र एवं पुत्री मंजुश्री ही बचे। १९ दिसम्बर १९८४ को पुत्री मंजुश्री का निधन हो गया।

शिक्षा - नौकरी :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह की शिक्षा का आरंभ जलालपुर प्रायमरी पाठशाला से हुआ। पाँचवी कक्षा तक की शिक्षा जलालपुर में मिडिल की शिक्षा जमनियॉ में हुई। हाईस्कूल की शिक्षा गाजीपुर में हुई। सन १९४७ में हाईस्कूल की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। कॉलेज की शिक्षा उदय प्रताप कॉलेज वाराणसी में हुई। १९४९ में इंटरमीडिएट की परीक्षा हिंदी, संस्कृत, तर्कशास्त्र, अंग्रेजी विषय लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण। काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से बी.ए. पास हुए। सन १९५१ में 'हिन्दी साहित्य' विषय लेकर एम.ए. में प्रवेश लिया। १९५३ में एम.ए. परीक्षा में प्रथम श्रेणी के साथ स्वर्णपदक प्राप्त किया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्याख्यानों से बहुत प्रभावित थे।

१९५७ में काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। पीएच.डी. का शोध कार्य 'सूरपूर्व ब्रज भाषा और उनका साहित्य' इस विषय पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। शिवप्रसाद सिंह की इसी योग्यता को देखकर सन १९५६ में काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। अवकाश प्राप्ति तक वे इसी विश्वविद्यालय से जुडे रहे। १९६८ में रीडर तथा १९८४ में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुए। १९८३ से १९८५ तक विभागाध्यक्ष भी रहे। लगभग ३२ वर्षो तक अध्यापन कार्य कुशलता, ईमानदारी और तन्मयता के साथ पूरा करके ३१ अगस्त १९८८ को सेवामुक्त हुए। अंतिम बीमारी में उनके पुत्र नरेन्द्र ने दिल्ली के राम मनोहर लोहिया अस्पताल में दाखिल किया, तो वे बडे बेचैन हुए। वे काशी

लौटना चाहते थे। अत: वे अपने पुत्र नरेन्द्र से कहते थे कि कोई काशी छोडकर और कहीं क्यों मरना चाहेगा ? यह शरीर तो काशी का ही है। ७ सितम्बर १९९८ को बनारस ले आये। इस प्रकार एक महान साहित्यकार ने अंतिम साँस काशी में ही ली। २८ सितम्बर १९९८ को सुबह चार बजे उन्होंने सुंदरलाल अस्पताल में सबसे विदा ली, बहुत ही कृतार्थता के साथ। हिन्दी साहित्य जगत ने एक महान साहित्यकार को खो दिया - हमेशा-हमेशा के लिए।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का बाह्य व्यक्तित्व :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। साहित्यिक, समीक्षक, या शिष्य उनके प्रभावी व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। 'पक्का गेहुँआ रंग, क्लीन शेल्ड चेहरा, तीखी नाक और काफी बडी-बडी आँखे।' देखते ही किस पर प्रभाव नहीं पडेगा ? इसीलिए तो विश्वनाथ प्रसाद को, उनके इस रूप को देखकर लगता है कि, "प्रसाद जी के नायक की परिकल्पना साकार हो गयी।" रुपसिंह चंदेल भी लिखते हैं, "उनका शरीर भव्य आँखे बडी यदि अतीत में जाएँ तो कह सकते हैं कि कुणाल पक्षी जैसी सुन्दर ललाट, चौडा चेहरा, बडा और पान से रंगे होट सदैव गुलाबी रहते थे। धोती कुर्ता उनका सदाबहार पसंदीदा पेहराव था। ठहका लगाकर हसना और पान खाना।

बाह्य व्यक्तित्व में गहन मौन और मुक्तहास जैसी दो विरोधकारी स्थितियों का साक्षात्कार होता है।धीर गंभीर स्वभाव एवं कम बाते करना उनके इस व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता है। सारिका में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, "मैं अपने से किसी पर खुलता नहीं हूँ। यह मेरा स्वभाव है। जब तक कोई खुद बातचीत शुरु नहीं करता है मैं चुप ही रहता हूँ। जो उनके सम्पर्क में आते उनके साथ साहित्य पर घंटो बाते करते। छोटे से छोटा साहित्यकार भी मेरे पास आकर रचनाएँ दिखा, राय ले सकता है। मैं उसकी सहायता करता रहा हूँ। डॉक्टरों के प्रति घनघोर वितृष्णा का भाव था।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का आंतरिक व्यक्तित्व :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंहजी बहुमुखी प्रतिमा के धनी थे। उनका आन्तरिक व्यक्तित्व विविध पहलुओं से युक्त था। आन्तरिक व्यक्तित्व के अन्तर्गत रुचि, रुझान, भाव एवं विचारों को चित्रित किया जाता है। डॉ. शिवप्रसाद सिंहजी का सम्पूर्ण जीवन ही प्रामाणिकता का उदाहरण है। विनम्रता उनके जीवन का आधार था, संघर्षशीलता उनके जीवन की गाथा है, साहित्य ही नहीं समाज, धर्म राजनीति आदि विषयों पर भी वे अपने विचार स्पष्ट रुप से व्यक्त करते थे। लेखक अत्यंत संवेदनशील मन के सर्जक थे। उनकी अध्ययनशीलता के संदर्भ में कृष्णदत्त पालीवाल लिखते है, "बेहद प्रतिभा संपन्न और अदभूत पढाकू। पुराने नये साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र, ज्योतिष, तंत्र साधना का रात दिन अध्ययन मंथन किया।"

गम्भीरता के संदर्भ में डॉ. विवेकी राय कहते है, "अध्यात्म, इतिहास, ज्योतिष, भाषा विज्ञान, साहित्यशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, धर्म दर्शन और पूरब-पश्चिम के साहित्य आंदोलनों आदि के गहन अध्ययन से परिपुष्ट उनका यह व्यक्तित्व बहुत ही गंभीर है।" चिंतनशीलता शिवप्रसाद जी की प्रवृत्ति थी। लेखक आस्तिक थे। उनकी ईश्वर में आस्था थी। लेकिन कभी उन्होंने आस्था का प्रदर्शन नही किया। मानवता के संदर्भ में लेखक स्वयं कहते है, "मैं तो उस पार्टी का सदस्य हूँ जिसके सामने मनुष्य से बडी कोई इकाई नहीं है, उसी मनुष्य की अबाध विजययात्रा का ध्वजवाहक हूँ।"

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का कृतित्व :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का जीवन संघर्ष का दूसरा नाम है। साहित्य सृजन कार्य का आरंभ कविता से हुआ था। कविता उनकी बौध्दिक रुझानों का साथ न दे सकी। नये विचारों का बौध्दिक पर्यावरण उन्हें कहानी, उपन्यास की ओर ले गया। कहानी, उपन्यास को एक नई दिशा दी और अपना अलग स्थान बनाया। स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य के प्रतिष्ठित कथा साहित्यकारों की प्रथम पंक्ति के रचनाकार हैं। सन १९५१ में वे बी.ए. में थे तब 'दादी माँ' कहानी लिखी थी। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने कुल मिलाकर ८५ कहानियाँ लिखी जो तीन भागों में विभाजित की गई है। 'अन्धकूप' (सम्पूर्ण

कहानियाँ भाग - १) 'एक यात्रा सतह के नीचे' (सम्पूर्ण कहानियाँ भाग - २) अंतिम कहानी संग्रह 'अमृता'.

उपन्यास साहित्य में कुल मिलाकर नौ उपन्यास लिखे। जिसमे उन्होने अपने जीवन अनुभवों को उतार दिया है। ललित निबंध में कुल सात निबंध संग्रहो का निर्माण किया है। दो नाटक, एक काव्य नाटक, रिपोर्ताज एक, जीवनी, इस प्रकार हिन्दी साहित्य विधा के हर विधा पर अपनी कलम चलाई है। कुल दस पुरस्कार मिले, जिनमें 'नीला चाँद' उपन्यास के लिए सबसे प्रतिष्ठित व्यास सम्मान पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ये उनके लेखन प्रतिभा के साक्ष्य हैं।

×¾Ö“ÖÖ¸¬ÖÖ¸Ö :-

भारतीय समाज में नारी सदियों से शोषित, पीडित रही है। आज हमारे देश में नारी को भोग्या की दृष्टी से देखा जाने लगा है। लेखक ने अपने साहित्य में नारी विषयक विचारधारा को अपनाया। समाजविषयक विचारधारा तो लेखक के हर लेखन में दिखाई देती है। लोकतंत्र विषयक विचारों को भी वाणी देने का प्रयास किया गया है। साहित्य विषयक विचार भी हमारे सामने रखे है। साहित्यकार विषयक विचारों पर भी प्रकाश डाला गया है। भाषा विषयक विचार धारा की नीव ही 'गली आगे मुडती है' में देखने को मिलती है।

प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हमेशा अपने समय से आगे देखता है। परिणामत: उसका समय उसे ठीक से पहचान नहीं पाता। परन्तु बाद का समय तो उसे स्वीकार करता ही है। जिसका जीता जागता उदाहरण डॉ. शिवप्रसाद सिंहजी रहे है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक "डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य विधा का उद्भव, विकास और सामान्य परिचय इस अध्याय में डॉ. शिवप्रसाद सिंह के उपन्याय, कहानी और नाटक विधा का परिचयात्मक विवेचन किया गया है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में का पहला उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' भारतीय ग्रामीण परंपरा को चित्रित करनेवाला महाकाव्यात्मक उपन्यास है। प्रेमचन्द के बाद ग्रामीण जीवन का चित्रण करनेवाले सफल कथाकारों में

शिवप्रसाद सिंह अगली पंक्ति में आते। अपने इस वृध्द उपन्यास में उन्होंने उत्तर प्रदेश के करैता गाँव को समस्त भारतीय गाँवो के प्रतिनिधी के रुप में ग्रहण करके अत्यन्त यथार्थवादी एवं विचारोत्तेजक चित्रण प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता आई ! जमींदारी टूटी! करैता के किसानों को लगा कि दिन फिरेंगे ! मगर हुआ क्या ? अलग-अलग वैतरणी ! अलग-अलग नर्क !! - जिसे निर्मित किया है भूतपूर्व जमींदारी ने, धर्म तथा समाज के पुराने ठेकेदारों ने, भ्रष्ट सरकारी ओहदेदारों ने और इस वैतरणी में जूझ और छटपटा रही है गाँव की प्रगतशील नई पीढी ! निश्चय ही यह कृति हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक ^¯Ö»Öû²Ö¬Ö Æî…

'गली आगे मुडती है' यह उनका दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास की रचना स्वतंत्रता से सांस्कृतिक नगरी काशी को केन्द्र में रखकर की गई है। किसान मजदूर के बाद तीसरी शक्ति युवा आक्रोश को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, परन्तु रचनाकार यहाँ इस आक्रोश को राजनीतिक पृष्ठभूमी में न देखकर सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में चित्रित करता है। सारा युवा आक्रोश सेक्स में सिमटा पडा है। इसका लोकेल बनारस है। वहाँ का शैक्षणिक अकादमिक परिवेश और छात्र आन्दोलन इसका मुख्य कथ्य है। 'नीला “ÖÖ¤' डॉ. शिवप्रसाद सिंह का तीसरा उपन्यास है। 'नीला चाँद' मध्यकालीन काशी या विदेशी आक्रान्ताओं के पूर्व की काशी के ऐतिहासिक वृत्त को लेकर लिखी गयी कृति है। सिर्फ एक मिनट (भूमिका) में स्वयं लेखक ने लिखा है, "मैं मध्यकाल की वह काशी देखना चाहता था जो विदेशी आक्रान्ताओं के पहले थी। मुझे तदनुरुप किसी ऐसे समय को ढूँढना था जिसने त्रिकंटक को भी हिला दिया हो, जहाँ 'धगद धगद ज्वलम' के भीतर नंदिश्वर के ज्योर्तिलिंग ने विशाल स्तंभ की तरह धरा और आकाश को जोड दिया हो। वह समय मिल गया, जब कर्ण कलचुरी ने देव वर्मा चंदेल की हत्या की। पूरी जुझौती रौंद कर कर्णमेरु प्रासाद में अपने चरणों द्वारा नयी बिरुदावली सुनी यानी 'काल: कालंजराधिपतये' कालंजर अधिपति का काल। गाहडवाल कर्ण के पिता गांगेयदत्त के जमाने से ही मन मसोसकर रह गए, क्योंकि उन्होंने आवश्यक अश्वों और आरोहियों से अपने को सज्जित नही किया था। लक्ष्मीकर्ण ने अपने पिता की ही तरह गाहडवालों को मामूली सामन्त मानकर हमेशा दबाए रखा। उस समय की काशी है यह यानी ईसवी १०६० की।

'शैलूष' यह उनका चौथा उपन्यास है। 'शैलूष' में नट जाति का जीवन ही कृति की प्रेरणाभूमि है और उसी के विकासेतिहास का शोध ही इस रचना का स्त्रोत भी है। विस्थापित नट जाति को सामान्य नागरिक के रुप में स्थापित करना। इसीलिए इसमे जयरामपेशा नट जाति को चिरकाल से दर-दर ढोंकरे खाने की नियति से निकालकर उन्हें एक जगह का बाशिंदा बनाया गया है और गृहस्थ जीवन में प्रतिष्ठित किया गया है। नटो के जीवनेतिहास, उनकी संस्कृति व विश्वास आदि के साथ ही समकालीन परिवेश भी साकार हो उठा है।

'मंजुशिमा' डॉ. शिवप्रसाद सिंह का पाँचवा उपन्यास है। पूरी कृति पुत्री 'मंजु' के दुखद अंत के बाद यादों के बल पर लिखी गयी है। हर रचनाकर्म यादों के सहारे, यादों के आधार पर ही चलता है, 'मस्तक' मे स्मृति-सी छाई का कालांतर में बरस पडना ही तो कलाकर्म है और यही 'मंजुशिमा' का कथाकर्म है। भारतीय समाज में कन्या का पैदा होना ही अशुभ माना जाता है, वहाँ शिवप्रसाद नाम का पिता ढाई लाख रुपये जुटा-जुटा कर ट्रांसप्लांट करवाता है। बेटी को लेकर चिकित्सा के लिए वे दक्षिण भारत घूमे फिर भी मृत्यु के सामने हार जाते है। 'औरत' डॉ. शिवप्रसाद सिंह का छठाँ उपन्यास है। 'औरत' उपन्यास जैसे शीर्षक से स्पष्ट है कि नारी की व्यथा को प्रमुखता से उजागर करता है। उपन्यास का कथानक पूर्वांचल की नारी है, नारी भारत के किसी भी प्रांत की, किसी भी धर्म की अथवा जाति की हो, उपेक्षा और शोषण उसके जीवन में समान रुप से मौजूद हैं। 'औरत' उपन्यास के संदर्भ में लेखक कहते हैं, "इस नवीनतम उपन्यास के माध्यम से आर्थिक विषमताओं, जातिवाद और सामंती सोच से ग्रस्त समाज पर बहुत सफलता से चोट की है। औरत और वह भी दलित हो तो उसके दुःख का क्या कहना ! उपन्यास में सोनवा, रुपवा, सुखिया तथा तेतरी के माध्यम से दलित स्त्री का दुःख चित्रित किया गया है। सांप्रदायिक दंगे हो, या युध्द अथवा देश का बटवारा हो, सबसे मार्मिक पीडा बच्ची, युवा, प्रौढ या वृध्द नारी को ही होती है। यह केवल पूर्वांचल की नारी का ही दुःख नहीं है, पूरे भारतीय नारी का दुःख है। नारी सदा ही उपेक्षित रही है। उपन्यास का शोभू कहता है, "आज पूरी दुनिया में हिन्दुस्तन की बदनामी इसीलिए हो रही है कि वह अस्सी करोड जनता वाला देश अपनी चालीस

करोड स्त्रियों को गुलाम की तरह ट्रीट करता है।"

'कुहरे में युध्द' डॉ. शिवप्रसाद सिंह का सातवाँ उपन्यास है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के माध्यम से नायक आनंद और तुर्क आक्रमणकारी नुसरत तयासी जो हिन्दुस्तान की नर-नारियों पर अन्याय, अत्याचार कर उन्हे बंदी बना लेता है। आनंद वाशेक की सेना तयासी की सेना के सामने टीक नहीं सकेगी; इसलिए युध्द की नई-नई नीतियों को अपनाता है और जनता को न्याय देने का प्रयास करता है। आनंद को एक तरफ जीत की खुशी है तो दूसरी तरफ देविका का दु:ख है। 'दिल्ली दूर है' डॉ. शिवप्रसाद सिंह का आठवाँ उपन्यास है। यह उपन्यास कुहरे में युध्द का दूसरा भाग है। आनंद वाशेक उर्फ सफीउल्लाह उर्फ हिंदूखान नाम से जाना जाता है। आनंद के व्यक्तित्व में सबसे अधिक प्रभावी गुण है उसकी मानवीयता। उसका जीवन समाज के लिए अर्पित है। निराश, हताश आनंद की मृत्यु बडी दु:खदायी है। आनंद के लिए दिल्ली सदा के लिए दूर ही रही। देविका के शब्दों में, "हनोज दिल्ली दूर अस्त की जीती जागती मिसाल बनी रही हूँ।" देविका शरीर से विवश थी, आत्मा से नहीं, मन से नही। जीते जी वह आनंद की नहीं बन पायी। पर मृत्यु तो दोनों को मिला सकती है। यही सोचकर वह आनंद की चिता में समा जाती है। उपन्यास का अंत दु:खद है।

'वैश्वानर' डॉ. शिवप्रसाद सिह का अंतिम महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने वैदिक कालीन काशी का चित्रण किया है। आधुनिक काशी से लेकर वैदिक कालीन काशी तक उनका यह रचनात्मक प्रवास निश्चित रुप से आश्चर्यचकित करनेवाला है। 'वैश्वानर' का कथानक रामायण महाभारत से भी प्राचीन अर्थात वेद काल पर आधारित है। वैदिक साहित्य में दिवोदास को काशी का प्रथम राजा कहा गया है। उसी का पुत्र है प्रतर्दन। 'वैश्वानर' प्रतर्दन की संघर्ष गाथा है। 'वैश्वानर' अर्थात अग्नि हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। 'वैश्वानर' के कथ्य का दूसरा रुप है मानवता की आद्य परंपरा का।

कहानी साहित्य उद्भव और विकास (सामान्य परिचय) :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य के प्रतिष्ठित कथा साहित्य के

प्रथम पंक्ति के कथाकार है। कहानी लेखन से ही उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा। सन १९५१ में जब वे बी.ए. के छात्र थे, तब 'दादी माँ' कहानी लिखी थी। 'दादी माँ' कहानी अक्तूबर १९५१ के 'प्रतीक' में संपादक अज्ञेय की इस टिप्पणी के साथ छपी थी, "जिन्हें कहानी के लिए प्लाट नहीं मिलता वे 'दादी माँ' कहानी पढकर सीखें। मार्गदर्शन के लिए यह कहानी उनके लिए उपयुक्त है।" पहले संकलन 'आर-पार की माला' में शीर्षक कहानी के साथ 'मुर्गे ने बांग दी' और 'उस दिन तारीख थी' में शोषण का चित्रण हुआ है। इनमें यह शोषण आर्थिक, शारीरिक तथा सामाजिक स्तर पर हुआ है। घर में खाने को दाना नहीं रहता, पर मंगरू लोहार को बंसुला-हथौडा लेकर काम करना पडता है। ठाकुर को अनाज की कोई कमी नही, पर वे बुआई के बाद मजदूरी देने की परंपरा का हवाला देते हुए काम लेते रहते है मजदूरी तो नही मिलती। इसमें जहाँ आर्थिक और श्रम संबंधी शारीरिक शोषण का चित्रण हुआ है। 'आर-पार की माला' कहानी की नीरु एवं उसके बाप से काम लेने वाले 'ठाकुर की दो औरते है, पर उनसे मन नही भरता, बाप नौकर है तो बेटी नौकरानी' शारीरिक स्तर पर होने वाले शोषण के दोनों रुप देखे जा सकते है। 'उस दिन तारीख थी' के देवी सिंह का आर्थिक शोषण है। दूसरे संकलन 'कर्मनाशा की हार' में आकर थोडासा परिवर्तन तब दिखता है जब गुलाबी (उपहार) अपने प्रेमी बच्चन के साथ 'हाथ-पाँव' चलाकर दो रोटी कहीं भी खा लेने का निर्णय लेती हुई ठाकुर का विरोध करती हुई कहती है - "'कसाई कही का' ठाकुर का दिया हुआ उपहार उनके मुंह पर फेंक देती है। ठाकुर को इत्मीनान ही नहीं होता क्योंकि तत्कालीन परिवेश में किसी मजदूर औरत का ऐसा करना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल तो है ही। ऐसा लगता है आजादी के बोध ने गुलाबी में यह आस्था जगा दी। 'पापजीवी', 'माटी की औलाद' कहानियाँ इसी जमीन पर लिखी गई हैं। तीसरे संकलन 'इन्हें भी इंतजार है' के अधिकांश पात्र किसी न किसी रुप में त्रस्त सदियों से इंतजार कर रहे हैं। 'इन्हें भी इंतजार है' संकलन के कबरी मंगरा समाज में निकृष्ट मानी जाने वाली जाति (मुसहर) के सदस्य हैं। हमारे समाज में कैसी विडंबना है कि किसी को काम करने पर भी शोषण किया जाता है और किसी को काम नहीं करने दिया जाता हमारी देह में तो ऐसी छूत भरी है कि कोई खाद-गोबर फेंकने का काम भी नहीं करने देगा। शोषक समाज

की यह गुंजलक कितनी विचित्र है। 'खेल' शारीरिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण से बढकर गांव का ठाकुर वर्ग अन्य वर्गो के आत्म-सम्मान का भी शोषण करता है।

पाँचवाँ कहानी-संग्रह 'भेडिए' तक आते-आते समाज की स्थितियाँ काफी बदल चुकी थी। छठे दशक में जिस रामसुभग तिवारी को 'जमींदार थे' न कहकर 'जमींदार है' कहना ही उचित था। 'कलंकी अवतार' में रोपन वारी जमाने के साथ उनके नाम बदल गये, तरीके बदल गये, पर कार्य में कोई अंतर नहीं आया।रोपन वारी का खेत ठाकुर की जोत में जाता है। इन बदली स्थितियों में चालाक लोगो ने जनतंत्रीय व्यवस्था में ग्रामप्रधान पद लेकर अपने गुट बना लिए है। यह शोषण का नया अंदाज है। इस आधुनिक तरीके का सूक्ष्मता से वर्णन 'भेडिए' में हुआ है। तीन कहानी संग्रहों में डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने समाज से अछूत जाति को समाज में स्थान देने का प्रयास किया है। मानव के साथ मानवता जैसा व्यवहार हो मानव बनकर जीये, समाज में कोई अमीर-गरीब न हो, अस्पृश्यता की दरी खत्म हो, यही लेखक के कहानी साहित्य की प्रतीकात्मकता है।

नाटक साहित्य :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने नाटकों पर भी अपनी कलम चलाई है। उन्होंने दो नाटकों का निर्माण किया। 'अश्मक का फूल', 'घाटियाँ गूंजली है। विवेच्य अध्ययन के लिए एक ही नाटक लिया गया है। 'घाटियाँ गूंजती है' नाटक मूलतः भारत चीन युध्द पर आधारित है। तीन अंको में नाटक सीमित है। नाटक का परिवेश बहुत व्यापक और बहुत स्थूल है। इसलिए इस नाटक में घटनाओं की स्थूलतासे अलग होकर भिन्न-भिन्न व्यक्तित्वोंकी अन्तरात्मामें उभरनेवाले भावों और संवेगोंको ही लक्ष्य में रखकर उनके संघर्षका चित्रण किया गया है। नाटकीय संघर्ष में सद् और असद् चरित्रों के द्वन्द्वकी स्थिति अनिवार्य मानी जाती है। यहाँ यह असद् अदृश्य है, सिर्फ उसके सर्वत्र फैले कुकृत्य ही उसके व्यक्तित्वका निर्माण करते है। नाटक के चरित्रों के त्याग, शौर्य और संघर्ष में आदर्शवादिता भी दिखाई देती है। संहारक संकटों में जूझनेवाले चरित्रों का आदर्शवाद मात्र आदर्शवाद न होकर जीवन का सत्य हो जाता है। संकट ही मनुष्यों के

मूल्योंकी कसौटी होती है। एक ओर सहअस्तित्व और विश्वशान्तिकी विचारधाराएँ जोर पकडने लगी थी; किन्तु चीन आज विश्वमानवता के सामने एक ऐसा तानाशाह राष्ट्र उभरने लगा है जो सह-अस्तित्व और शान्तिमें विश्वास नहीं करता। इस प्रकार इस नाटक में चीनी एक शोषक का तथा असद् का प्रतीकात्मक रुप है। जिसे सारी दुनिया के सामने लाने का प्रयास डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने किया है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक 'डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में वर्ग-संघर्ष' में डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में चित्रित वर्ग-संर्घर्ष को दर्शाया गया है। वर्ग-संघर्ष प्रमुख रुप से आर्थिक स्थिति से उत्पन्न होते है। कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित यह सिध्दान्त आज भी सार्थक है, कि वर्ग-स्वार्थ से वर्ग संघर्ष और वर्ग-संघर्ष से वर्ग-युध्द उत्पन्न होता है। भारतीय वर्ग-संघर्ष का आधार समाज की वर्ण-व्यवस्था रहा है। दास-प्रथा का प्रचलन भी वर्ग भेद का ही अंश है। आर्थिक परिस्थितियाँ समाज में विभिन्न वर्गो और उनके संघर्षो के स्वरुप का निर्धारण करती है।

भारतीय वर्ग संघर्ष :-

भारतीय समाज अति प्राचीनकाल से ही वर्ग संघर्ष एवं वर्ग-विरोध रुपी सर्पिणी द्वारा ग्रसा जाता रहा है। कार्ल मार्क्स ने विभिन्न वर्गो के पारस्पारिक संघर्ष की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि - "उत्पत्ति के साधनों के लिए ही व्यक्तियों में पारस्परिक संघर्ष पैदा होता है।" साधारणतया वर्ग-संघर्ष से अभिप्राय किसी समाज वर्ग में परिव्याप्त आर्थिक एवं वैचारिक वैषम्य से है। वैयक्तिक स्वार्थपूर्ण विचार एवं सम्पत्ति की रक्षार्थ संघर्ष हुए, जो वर्ग-संघर्ष की भावना के मूल स्त्रोत है। कार्ल मार्क्स ने कहा है - "अभी तक घटित सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।" वर्ग-संघर्ष के सिध्दान्त के प्रतिपादन का श्रेय कार्लमार्क्स को है। 'दास कैपिटल' के अंतर्गत इस सिध्दान्त का उल्लेख किया गया है।

भारतीय वर्ग-संघर्ष जहाँ तक इसकी पृष्ठभूमी का सम्बन्ध, यह एक अति प्राचीन परम्परा है। समाज में वर्ग-संघर्ष सदैव से रहा है और आज भी है। पूंजीवादी अभिजात वर्ग एवं शोषित निम्न वर्ग के संघर्ष को ही शोषित वर्ग की प्रगति मानते हुए एफानसेव

ने लिखा है - "जितना ही अधिक वर्ग-संघर्ष होगा, उतना ही पुराने मूल्यों के बीच नए मूल्य स्थापित होंगे, और इस प्रकार समाज की व्यवस्था में प्रगति आएगी।" वर्ग-संघर्ष प्रगति के लिए आवश्यक है। आधुनिक समाज में शोषण अपनी चरम सीमा की ओर अभिमुख हो रहा है। सभी जगह हमे वर्ग-संघर्ष दिखाई देता है। मनुष्य के स्वभाव में संघर्ष और सहयोग दोनों समान रुप में परिव्याप्त है। पैदावार के स्वामित्व के रिश्तो से यह टकराव ही वर्ग-संघर्ष का मूल है।

भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष :-

आज हमारे समाज में व्यक्ति व्यक्ति के बीच संघर्ष अपना घर बना चुका है। वर्तमान समाज में वर्ण-व्यवस्था या आश्रम-व्यवस्था के नाम पर मात्र खोखलापन रह गया है। समाज में अनेक वर्ग विकसित होने लगे। आज उसी परिवर्तन का ही परिणाम है कि जातिगत, वंशगत, समुदायगत, व्यवसायगत, राष्ट्रगत विविध वर्ग अपना रुप लेकर उपस्थित है। अर्थनीतियों पर आधारित हमारी सामाजिक व्यवस्था में पग-पग पर संघर्ष देखने को मिलता है। संघर्ष का जन्म वैषम्य के द्वारा होता है। वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष आधुनिक युग की देन है। भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष की भावना भक्तिकालीन साहित्य में भी मिलती है। जातिभेद और वर्ग-विषमता का सशक्त खण्डन करते हुए कबीरदास कहते हैं - "जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरिको भजै सो हरि का होई।"

डॉ. रागेय राघव ने समाज में वर्ग-संघर्ष की निरंतरता पर बल दिया है, उन्होंने लिखा है - " भारतीय समाज में निरन्तर वर्ग-संघर्ष होता रहा है, किन्तु उसका स्पष्ट स्वरुप वर्ग-संघर्ष के रुप में भारत में प्रगट हुआ है।"

वर्ग-संघर्ष का सिध्दान्त :-

एक ओर शोषण के खिलाफ आवाज बुलन्द का प्रयास और दूसरी ओर उस आवाज के कुचलने के प्रयास के फलस्वरुप वर्ग-संघर्ष की स्थिति समुत्पन्न हो जाती है। भले ही पृथक-पृथम क्षेत्र क्यों न हो। फेडरिक, एंजेल्स ने अपनी प्रसिध्द पुस्तक "समाजवाद वैज्ञानिक और काल्पनिक" में भी वर्ग-संघर्ष का सिध्दान्त आर्थिक कारणों

पर आधारित माना है। आदिम समाज को छोडकर मानव जाति का सारा अतीत इतिहास वर्ग संघर्षो का इतिहास है और हर समाज के संघर्षशील वर्ग उस काल के उत्पादन और विनिमय की अवस्थाओं से या एक शब्द में कहें तो उस काल की आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं। उत्पादन पध्दतियों में यदि असंगतता की जगह सहयोग, सद्‌भाव एव विचार विनिमय का समावेश हो जाये तो शायद भावी समाज में भी किसी प्रकार का वर्ग-संघर्ष नहीं रहेगा। समाज में दो श्रेणियों का सूत्रपात हो गया, प्रथम जो दूसरों की कमाई से स्वयं लाभ उठाते थे और दूसरे वे जो दूसरों का काम करने के लिए विवश थे, इनको हम शोषक और शोषित कहते हैं। यही से समाज में सर्वप्रथम श्रेणियों का आरंभ होता है।

पूंजीवादी वर्ग ने समाज के शोषण के लिए नवीन वर्गों का सूत्रपात किया। जहाँ उन व्यवस्थाओं में शोषण प्रत्यक्ष रुप में होता था, वही आज इस पूंजीवादी वैज्ञानिक युग में शोषण अप्रत्यक्ष रुप से हो रहा है। इस प्रकार वर्ग विहीन समाज के साध्य को प्राप्त करने के लिए वर्ग-संघर्ष को एक अनिवार्य साधन के रुप में स्वीकार किया जा सकता है। तभी इस शोषण से छुटकारा पाने की आशा की जा सकती है।

वर्ग-संघर्ष और डॉ. शिवप्रसाद सिंह का गद्य :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी का गद्य साहित्य वर्ग-संघर्ष की जीती जागती मिसाल है। वर्ग-संघर्ष की जो तीव्रता है उस तीव्रता को गद्य साहित्य के माध्यम से कम करने का प्रयास लेखक ने किया है। जमींदार, ठाकुर लोगों द्वारा निम्नवर्ग का शोषण किया जाता था। वे लोग चुपचाप सब सह लेते थे, लेकिन लेखक ने अपने गद्य साहित्य के द्वारा शोषक वर्ग की पुख्ताह दिवारों मे सुरूंग लगाने का काम किया है। 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास मे जमींदार का विरोध करते हुए सिरिया कहता है- "गाली मत बको बुझारथ भाई, जे बा से हम नान्ह जात नही है। जमींदारी टूट गयी। पोखरा पंचायत का Æ..."

डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में भी जमींदार लोगों की शोषक प्रवृत्ति को जड से काट देने का प्रयास किया है। 'श्रृंखला' कहानी में लालता सिंह जैसे

जमींदार को बेनकाब करना चाहते है, जिससे वर्ग-विषमता की दरी खत्म हो जाये। पांडे कहता है - "शोषको, पूंजीपतियों के दलालों को हम इतना डरा देना चाहते हैकि वे समय रहते चाल-चलन बदले, उनको बेनकाब कर रहे है कि असलियत को जनता समझे, बिना इसके देश को गृह युध्द से बचा पाना असंभव है - वैसे लगता है कि यह श्रृंखला अभी आगे जायेगी। धैर्य की जरुरत है। चैतन्य बने रहना ही कर्तव्य है।" शोषण को खत्म करने के लिए जनता के पास धैर्य की आवश्यकता है। एक ना एक दिन शोषण की कडी खत्म ही होने वाली है।

'घाटियाँ गूंजली है' नाटक तो वर्ग-संघर्ष का प्रतीक ही है। यहाँ विशिष्ट जाति धर्म में वर्ग-संघर्ष है। चीनी साम्राज्यवाद की अपनी हवस को पूरा करने के लिए भारत पर आक्रमण करता है। शांती में अशांती फैलाना चाहता है और अपनी स्वार्थपूर्ति करना चाहता है। लेकिन वह उसमे कभी कामीयाब हो नही सकता। जीत हमेशा सत्य की ही ÆÖŸÖß Æî…

उपन्यास साहित्य में वर्ग-संघर्ष :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास साहित्य वर्ग-संघर्ष की दहकती दास्तान है। आज शिक्षा, सरकारी दफ्तर, चारों ओर शोषण ही शोषण दिखाई देता है। विकास से कोंसो दूर पिछडी जन-जातियों का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और शारीरिक शोषण को समाज के सामने लाने का प्रयास ही उनका उपन्यास साहित्य है। जो सच्चाई ईमानदारी शायद खत्म सी हो चकी है। जो सच्चाई की राह पर चलता है, उसे अपनी नौकरी या जीवन से हाथ धोना पडता है। यह समाज का वास्तविक सत्य उपन्यासों में दिखाई देता है।

'शैलूष' उपन्यास तो आदिवासी नट जाति के संघर्ष की जीवन गाथ है। जमींदार घुरफेकन तिवारी नटों को सरकार द्वारा दी गई जमीन को हडपना चाहता है। साम, दाम, दंड, नीति को अपनाता है। लेकिन बदलती समाजव्यवस्था के कारण नट भी अपने अधिकार और हक के लिए जमींदार को सब्बो मौसी आगाह करती हई कहती है - "रुक जा, अगर असल बाभन है, तो रुक जा। तू दोगला है स्सालें कि रन में पीठ दिखाकर

भाग रहा है।" शैलूष नट अपने अधिकार और हक के लिए जमींदार के खिलाफ विद्रोह कर अपना हक छीन लेने के लिए तैयार हो जाते है। सिर्फ यह एक नट जाति की कथा नहीं है, देश में फैले सभी शोषित लोगों की कथा को वाणी देती है।

ऐतिहासिक उपन्यासों मे भी डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने विश्वमानवता की संकल्पना को अपनाया है। 'कुहरे में युध्द', 'वैश्वानर' ऐतिहासिक उपन्यासों में ध्न्वन्तरि ने सिध्द कर दिया कि महामानव बनने के लिए राजपरिवार में जन्म लेना विडम्बना है। जाति, वंश से मानव महामानव नही बनता, तो अपने आचार, विचारों से महामानव बनता है, जिसका ज्वलंत उदाहरण डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी हैं। 'वैश्वानर' उपन्यास की पृष्ठभूमि में वर्ग-संघर्ष के संदर्भ में लेखक का कथन "यह कितने आश्चर्य का विषय है कि आज भी एक ओर संयुक्त राष्ट्रसंघ, यूनेस्को जैसी संस्थायें विश्वमानवता का सपना सँजोती हैं उसी को अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग करनेवाले पाँच बड़े देश पूरी मानवता को धनी अमीर और गरीब अविकसित देशों के शिविरों में बाँट कर मुक्त बाजार के नाम पर गरीबों को लूटने का धंधा करते हैं।" मध्ययुगीन काल में भी तुर्क आक्रमण में सबसे ज्यादा किंमत आम आदमी को ही चुकानी पड़ी है। राजसत्ता और साम्राज्यवाद के दलदल में गरीब आदमी ही पिसता जा रहा था। 'नीला चाँद' उपन्यास में तुर्को की धार्मिक उन्मत्तता मंदिर टुटेंगे, प्रसाद जला दिये जायेंगे। तुर्क सैनिक सुन्दर और स्वस्थ महिलाओं से विवाह कर लेगें, या रखैल के रुप में स्वीकार कर लेंगे, शेष लोग गजनी और मध्य एशिया के बाजारों में नीलाम किये जायेंगे, इनके खिलाफ बुलंद आवाज उठाने का सफल प्रयास कीरत करता है। सदियों से सबसे ज्यादा शोषण नारी का ही Æ†Ö Æ…

कहानी साहित्य में वर्ग-संघर्ष :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के कहानी साहित्य में संघर्ष से जूझता हुआ भारतीय समाज की झलक देखने को मिलती है। 'हीरों की खोज' कहानी में चमार जात की छब्बी की गरीबी का बोधन तिवारी फायदा उठाकर उसका शारीरिक शोषण करता है। उच्च वर्ग के भ्रष्ट आचरण की झलक इसमें देखने को मिलती है। 'मुर्गे ने बाँग दी' कहानी में मंगरु

लोहार से ठाकुर हल तो बनवा लेता है लेकिन मजदुरी देने से मुखर जाता है। 'आर-पार की माला' कहानी में कंजड जाति के नटों का थानेदार और गाँव का ठाकुर सामाजिक और शारीरिक शोषण करता है। ठाकुर नीरु को अर्थ के बल पर रखैल बनाकर रख देता है। भांडवलदार लोगोंद्वारा मजदूर लोगों के आर्थिक शोषण की दहकती हुई दास्तान 'पापजीवी' कहानी है। 'आदिम हथियार' कहानी सामाजिक वर्ग-संघर्ष पर प्रकाश डालती है। चौधरी का लडका श्यामलाल प्रेम विवाह करता है। यह गाँव वालों को मंजूर नहीं। पंचायत बुलायी जाती है, श्यामलाल पंचायत को लेकर कहता है - "यही है नयी पीठी की क्रान्ति। व्यक्ति से व्यक्ति की लड़ाई तो बहाना है, लड़ता है खानदान से खानदान या जात से जात। इसके बाहर कहीं जैसे समाधान है ही नहीं।" 'इन्हें भी इन्तजार है' कहानी में डोम जाति की दर्दनाक कथा व्यथा को वाणी दी गई है। जानवर से भी बदत्तर जिंदगी डोम लोग जी रहे है। 'किसकी पाँखे' कहानी में धार्मिक वर्ग-संघर्ष देखने को मिलता है। अशरफ चाचा से देवी की पूजा में चन्दा नही लिया जाता, तब ज्ञानू पण्डित कहता है - "मै देवी माता की पूजा में म्लेच्छ से चन्दा नहीं ले सकता। यह हमारे धर्म के विरुध्द है। जो लोग मंदिरों को अपवित्र करते हैं, उन पर हिलाली ध्वजा गाडते हैं, उनके पैसे से पूजा नहीं हो सकती।" आज भी हमारे देश में जाति के नाम पर वर्ग-संघर्ष जारी है।

'श्रृंखला' कहानी में जाति के नाम पर हमारे देश में होली खेली गयी है। शुद्र शब्द की आड में जीवित मनुष्य के साथ जो अमानवीय कुकृत्य हुए ऐसे उदाहरण किसी भी सभ्य देश के समाज में मुश्किल से मिलेंगे। जाति के नाम पर शूद्रों का सदियों से शोषण किया जा रहा है।

नाटक साहित्य में वर्ग-संघर्ष :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का नाटक 'घाटियाँ गूंजती है' में भारत चीन युध्द को नाटक की प्रमुख कथावस्तु के रुप में लिया है। चीनी शासक पूंजीवादी एवं शोषक तानाशाह का प्रतीकात्मक रुप है। जो भारत पर आक्रमण कर भारत भूमि पर अपना कब्जा करना चाहते हैं। आज चीन विश्व-मानवता के सामने एक ऐसा तानाशाह राष्ट्र उभरने लगा

है जो सह-अस्तित्व और शान्ति में विश्वास नहीं करता। जो युध्द को अनिवार्य मानता है। नाटक के सभी पात्र अलग-अलग प्रतिकों को लेकर हमारे सामने आते हैं। फादर पिष्टो मानवता का प्रतीक है; मुकुल गद्दारी का पतीक, तो क्यूला त्याग का पतीक है।

चीनी शासक खुद को मार्क्सवादी कहते हैं, पर बात तानाशाहों - जैसी करते हैं। तुम अपने को जनता का सेवक कहते हो, पर गला उसीका काटते हो। तुम अपनेको समाजवादी कहते हो, पर हिटलर और मुसोलिनीसे स्पर्धा करते हो। तुम अपने को पंचशील और सहअस्तित्वका निर्माता कहते हो, पर युध्दको मार्क्सवादके लिए अनिवार्य बताते हो। तुम लाल लिबासमें जल्लाद हो, तुम क्रान्तिके नामको कलंकित करनेवाले लुटेरे हो, तुम बोर्जुवा युध्दा-लालुपोंका विरोध करनेवाले स्वयं सबसे बडे युध्द लोलुप हो। इस प्रकार की नीति चीनी शासक की है।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक 'डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का विवेचन' इस अध्याय में समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश का विवेचन किया गया है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का सामाजिक विवेचन :-

मानव सामाजिक प्राणी है। वस्तुतः वह समाज का अभिन्न अंग है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश में मानव जीवन में व्याप्त कष्ट, संत्रास, घुटन, संघर्ष आदि का विस्तृत चित्रण हुआ है। सामाजिक मूल्य देशकाल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते हैं। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति से प्रभाव ग्रहण कर आधुनिकता ने सामाजिक मूल्यों में विशेष परिवर्तन लाया है। शहरी प्रभाव और शिक्षा के कारण आज गाँवो में भी लोग अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण करने लगे है। 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में झब्बुलाल अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता है जैसे कन्सन्टेशन। 'घाटियाँ गूंजती है' नाटक की आदिवासी युवती क्युला 'लो मेम साब'। आज गाँवो में भी नारी पुरुष के हाथों की कठपुतली बनने से नकार रही है, अन्याय और अत्याचार को सहने के लिए आज बाध्य नहीं है। 'गली आगे मुडती है' उपन्यास में आरती आधुनिक विचारों वाली युवती के रुप में चित्रण हुआ है। आज की युवा पीठी रुढी, परंपरा को तोडकर प्रेम

विवाह कर रहे है। यह आधुनिक परिवेश की उपज ही है। 'धतुरे का फूल' कहानी में आधुनिक परिवेश के कारण आज नारी यौन-संबंध के बारे में भी खुलकर बात कर रही है। नैतिक मूल्यों का पतन होता जा रहा है। 'शैलूष' उपन्यास में जगजीवन नट का अपनी बहु के साथ अनैतिक संबंध 'आर-पार की माला' में मटरु अपनी बेटी का सौदा ठाकुर से करता है। मानव स्वार्थ के पीछे भाग रहा है और उसी स्वार्थ के कारण नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। 'बेह्या' कहानी में सुभागी को पुत्री के लालन-पालन के लिए वैश्या बनना पडता है। 'अन्धकूप' कहानी में दहेज के लिए सोना भाभी अपनी सास द्वारा सतायी जाती है, आज समाज में लाखों सोना भाभी है जो दहेज के नाम पर सतायी गई है। उच्च-निम्न जातियों के बीच यौन-संबंधो का विस्तृत रुप गद्य साहित्य में देखने को मिलता है। चमारों की बस्ती में सुरजू सिंह सुगनी के साथ रंगे हाथ पकडा जाता है। निम्नवर्ग की नारी अपने आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए चोरी-छिपे यौन-संबंध स्थापित करती हैं। 'गली आगे मुडती है' में हरिमंगल लाजो के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करता है, वह भी विवाहित होकर जमुनादास भी ब्राम्हण स्त्री के साथ यौन-संबंध रखता है। यह सामाजिक नैतिक मूल्यों का अधपतन ही है। संबंधो ने तनाव और उसका विघटन हो रहा है। व्यक्तिगत संबंध भी बिगडते जा रहे हैं बेरोजगारी की समस्या, अर्थ की समस्या आदि। सामाजिक जीवन का मूल आधार वस्तुतः परिवार ही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में पारिवारिक संबंधो में एक प्रकार का तनाव दिखाई दे रहा है, जिसका परिणाम संयुक्त परिवार टूट कर बिखर रहे है। अर्थ, शहरीकरण, शिक्षा प्रसार, आधुनिकता के साथ-साथ भारतीय समाज में नारी की परिवर्तित मानसिकता के कारण भी पारिवारिक संबंध टूट रहे है। दाम्पत्य संबंधो में भी आज विघटन दिखाई दे रहा है। आधुनिकीकरण, पाश्चात्य संस्कृति, औद्योगिक विकास, शिक्षा के कारण पति-पत्नी के पारिवारिक संबंध टूट कर बिखर रहे है। जिसका परिणाम स्वरूप 'तलाक' में बदल रहा है। आज शहरों मे पति-पत्नी के बीच संबंधों में विशेष परिवर्तन दिखाई दे रहा है। शहरों में यह तनाव आम बात हो गई है। आज के युवा वर्ग के आचार-विचार, रहन-सहन में परिवर्तन आया है। माता-पिता के विचारों से युवा वर्ग के विचार मेल नहीं खा रहे हैं परिणाम स्वरुप माता-पिता और संतान के बीच संबंधों

में विघटन हो रहा है। 'बेह्या' कहानी में कामता का सुभागी के घर जाना अच्छा नहीं लगता, अपने पुत्र को ठाकुर रोकना चाहता है। लेकिन कामता मानता नहीं और अपने माता-पिता से झगडा कर घर छोड देता है।

ग्रामीण परिवेश में नारी की परिवर्तित मानसिकता को आज हम देखते है। आज की नारी पुरुष के समान आत्मनिर्भर हो गयी है। शिक्षा प्रसार के कारण नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है। नारी आज प्राचीन मान्याताओं को छोडकर आधुनिक मान्यताओं को अपना रही हैं। यह परिवर्तन भारतीय समाज की महत्त्वपूर्ण विकास-यात्रा का परिचायक है। 'शैलूष' उपन्यास में सावित्री नटों के अधिकारों के लिए जमींदार घुरफेकन तिवारी के शोषण के खिलाफ आवाज उठाकर नटों को अधिकार दिलाने में सफल होती है। ग्रामीण नारी भी आज अपने अधिकार एवं अपने जीवन में सुधार लाने के लिए विद्रोह करने के लिए तैयार है। भारतीय समाज में नारी का विवाह एक तो पिता तय करता है या भाई या रिश्तेदार जिसकी शादी करनी है उसकी इच्छा क्या है यह तक पूछा नहीं जाता। जिस प्रकार जानवर का क्रय-विक्रय किया जाता है उसी प्रकार शादी तय हो जाती है। 'अलग-अलग वैतरणी' में पुष्पी, जमींदार के पुत्र विपिन से प्रेम करती है। लेकिन माता-पिता से कुछ कह नहीं सकती। ग्रामीण लड़की आज भी अपनी शादी के बारे में पूरी तरह अपने माता-पिता पर निर्भर है। यह ग्रामीण समाज का वास्तविक सत्य है। ऐसे विवाह के संदर्भ में औरतें कहती हैं - "वह विवाह नहीं बहिनी निवाह है।" आज हमारे देश में पुष्पा जैसी हजारों युवतियाँ है जो अनमेल विवाह का शिकार हुई हैं।

आर्थिक समस्याओं का विवेचन :-

हर मानव धन प्राप्ति के लिए सदा से संघर्षमय रहा है। कार्लमार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिध्दांत ने सारे विश्व में हललचल मचा दी थी। साम्यवादी समाज की स्थापना द्वारा ही वर्ग-संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है। पूंजीवादी व्यवस्था के कारण ही सर्वहारा वर्ग का शोषण हो रहा है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में आर्थिक विपन्नता से त्रस्त, अर्धनग्न, भूके-प्यासे, असंख्य निम्न मजदूर कृषक, नर-नारियों के करुणामय स्वर

को वाणी देने का काम किया है। 'शैलूष' में करीमन अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण नीचतम कार्य करने के लिए तैयार हो जाता है। घुरफेकन से पैसे लेकर बच्चे का गला घोंटकर पोखरे में फेक देने के एवज में दो हजार रुपये लेता है। 'घाटियाँ गूंजती है' नाटक में टूराँ आर्थिक विपनता से तंग आकर ज्यादा पैसे कमाने के चक्कर में चीनियों के जाल में फस जाता है। जो उसे मृत्यु ही बाहर निकालती है। जमींदार और कृषक मजदूर निन्म वर्ग का संबंध पुरातन काल से ही तनावपूर्ण रहा है। अर्थ के अभाव में जीवन जीने वाला किसान-मजदूर अपने खेतों को जमींदार के पास रेहन रखकर कर्ज लेता रहा है। कर्ज अदा न कर पाने पर खेत जमींदार के जोत में आ जाता है। 'शैलूष' में घुरफेकन नटों की जमीन पर कब्जा कर लेता है। घुरफेकन के शोषण से नट कबीला त्रस्त है। सावित्री मौसी जमींदार के खिलाफ आवाज उठाती है और अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने का संदेश देती है। 'माटी की औलाद' कहानी में टिमल कुम्हार रामसुभग तिवारी के आर्थिक शोषण का शिकार बनता है। 'आर-पार की माला' कहानी में नीरु भी अर्थ के कारण काम-वासना का शिकार बनती है।

सरकारी अफसर भी जनता का आर्थिक शोषण करते हैं। 'अलग-अलग वैतरणी' में लेखपाल रामकरण चौधरी से पैसे लेकर खालील की जमीन धोके से चौधरी के नाम कर लेता है। सरकारी अफसर अपने स्वार्थ के लिए कुछ रुपये लेकर गलत बयान लिखकर निर्धन कृषकों को जमीन से बेदखल कर रहे हैं। 'शैलूष' में डॉ. गुप्ता ननकु को गोली लगने पर उसको ही गालियाँ देता है। डॉक्टर के इस व्यवहार से सब्बो चकित रह जाती है और सोचती है कि स्वतंत्रता के चालीस वर्ष बाद भी देश की आर्थिक स्थिती निर्धनता का मजाक उड़ा रही है। सरकारी अफसरों का चरित्र धीरे-धीरे गिरता जा रहा है। भ्रष्टाचार भारतीय जनतंत्र को लगी हुई कीड है, जो हर तरफ नजर आती है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय पुलिस विभाग भ्रष्टाचार, रिश्वत की दल-दल में पूरी तरह डूबता जा रहा है, यह पुलिस विभाग का वास्तविक चित्रण गद्य साहित्य में हुआ है। दैवी और भौतिक आपदाएँ हमेशा किसान का पीछा कभी भारी वर्षा के कारण कृषक को भूखे रहना पडता है। 'अलग-अलग वैतरणी' में सूखे की स्थिति का वर्णन हुआ है। हरिया इस सूखे की हालत में परिवार का भरण-पोषण नहीं कर पाता, तो गाँव छोडकर निकल

जाता है - "अब चार साल से सूखा पड़ रहा है। फसलें खेत में खडी-खडी कोयला हो जाती है।" 'उपधाइन मैया' कहानी में सूखे से फैली महामारी का चित्रण हुआ है। 'तकावी' में बाँधो के टूट जाने पर गाँव और फसलों का नुकसान हो जाता है। बेकारी की समस्या आज विकराल रुप धारण कर चुकी है। बेकारी आदमी को निकम्मा और घरवालों के लिए बोझ बन जाती है। 'एक यात्रा सतह के नीचे' कहानी में पढा-लिखा युवक बेरोजगारी की समस्या का सामना करता है। बेकारी मानव को मानवीयता से जल्लाद बना देती है। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात जमींदारों की स्थिति दयनीय बन गई है। जमींदारी अब बिला गई है, रही है उनकी पुख्ता निशानियाँ, 'पापजीवी' में बदलू जमींदारी टूट गई तो ऐसा खुश हुआ जैसे दुनिया भर की जमीन उसी के नाम लिख जायेगी। जमींदारी तो खत्म हो गई लेकिन वे ही जमींदार, व्यापारी, राजनेता कंपनी मालिक बनकर शोषण की प्रक्रिया शुरु ही है। नगराभिमुखता आज बहुत बडी समस्या बनकर सामने आयी है। गाँवो के मजदूर, छोटे किसान खेती छोडकर पेट की आग बुझाने के लिए महानगरों की ओर चले जाते हैं। पढे-लिखे युवक भी नौकरी की तलाश में शहर जा रहे है। शहर-शहर न रहे वह जनसंख्या के महानगर बने हैं। काम न करने की इच्छा भी इसका कारण है। 'अलग-अलग वैतरणी' में शिक्षित नवयुवक विपिन और देवनाथ ग्रामीण वातावरण से उब कर नगर में जाकर अपनी इच्छा के अनुसार काम करना चाहते है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में चित्रित राजनितीक समस्याओं का विवेचन :-

साहित्य समाज का दर्पण होता है। मानव जीवन ही साहित्य का मूल रचना स्त्रोत है। इसी आधार पर साहित्यकार मानव के सामाजिक जीवन के साथ राजनीतिक पक्ष को भी उजागर करता है। आज की राजनीति कल का इतिहास बन जाती है।बदलती हुई राजनीतिक स्थिति से समाज प्रभावित होता है। 'प्राय: दो दशक पहले राजनीति को गैर-साहितियिक मुद्दा माना जाता था। मगर आज स्थिति बदल गई है और राजनीति और अर्थनीति को साहित्य का केंद्रीय मुद्दा मान लिया गया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंहजी के साहित्य में राजनीतिक स्वर को भी बड़ी सशक्तता से व्यक्त किया गया है।

ग्रामीण परिवेश में नवीन भाव क्रांति स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ आयी। अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय किसानों एवं मजदूरों का विद्रोह जमींदारों एवं साहुकारों के विरुध्द न था, शासन व्यवस्था के विरुध्द था। निम्नवर्ग अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हो जाता है और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने लगता है। 'शैलूष' में अपने अधिकारों को पाने के लिए नटों द्वारा किया गया संघर्ष विशेष महत्त्व रखता है। यह साहित्यकार की बहुत बडी उपज है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी उन्मूलन के कानून के कारण वर्षो से चले आ रहे सामंती शासन का अंत हो गया। जमींदार से डरनेवाला किसान उसके सामने निर्भीक खड़ा होने लगा है। 'अलग-अलग वैतरणी' में जमींदार जयपाल सिंह जमींदारी उन्मूलन से निराश होता है, वह करैता छोडकर चला जाता है - "जमींदारी टूट गयी। फिर भी किसी को विश्वास नहीं होता था, कि मांसाहारी बाघ शाकाहरी हो गया।" आज समाज में मानव स्वार्थ के पीछे भागता जा रहा है। देश को आजादी दिलाने के लिए हजारों वीरों ने अपने प्राणो की बाजी लगाई। देश के लिए बलिदान दिया, उनको सब भूल गये। आज राजनीति गिने-चुने लोगों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गई है।

आज हमारे देश को गांधीवाद की आवश्यकता है। सत्य अहिंसा परमोधर्म की सक्त जरुरत है। 'शैलूष' में सावित्री गांधीवादी विचारों से प्रभावित है। घुरफेकन से बदला लेने के लिए भी वह अहिंसा का मार्ग अपनाने को कहती है। देश का भविष्य जो है वह है छात्र शक्ति। छात्र ही देश को विकास के मार्ग पर ले जा सकते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भी छात्रों ने आंदोलन किया और आज भी कर रहे है। 'गली आगे मुडती है' में अंग्रेजी भाषा को लेकर छात्रों के आंदोलन को चित्रित किया गया है। ग्रामपंचायते ही गाँव विकास का मूल आधार हैं। सामंती व्यवस्था में ग्राम पंचायत ही सब कुछ थी। 'आदिम हथियार' कहानी में श्यामलाल पंचायत के निर्णय का विरोध करता है। ग्रामों के जीवन में ग्राम पंचायत का बहुत बडा हस्तक्षेप रहा है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का धार्मिक विवेचन :-

भारतीय समाज में धर्म को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। धर्म मानव जीवन के कर्म पक्ष

को उजागर करनेवाली शक्ति है। धर्म का वास्तविक अर्थ कर्तव्य पालन है। धार्मिक विश्वास और श्रध्दा ही समूह में सुरक्षा और सहयोग की भावना को जन्म देते हैं। समाज की रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ, विशेषकर उसके साहित्य और कला, सामाजिक गतिविधि और क्रिया-कलाप आदि पर धार्मिक विश्वासों की प्रत्यक्ष या परोक्ष छाप अवश्य रहती है। धर्म आज वास्तविक संदर्भो से मुक्त होकर मनुष्य के संकुचित स्वार्थी संकीर्ण विचारों से जुडता जा रहा है। धर्म का सामाजिक महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा है। आज ग्रामीण समाज में धर्म के नाम पर अंधविश्वास, अंधश्रध्दा पनप रही है। 'पापजीवी' कहानी में बदलू अपनी पुत्री के इलाज का प्रबन्ध नहीं कर पाता तो सत्ती मैया के सामने खडे होकर बेटी के स्वास्थ के लिए प्रार्थना करता है। 'नीला चाँद' में की जानेवाली चक्रपूजा। 'कर्मनाशा' कहानी में फुलमती तुलसी की वन्दना करती है। धार्मिक एकता और विकृतियाँ भी समाज में प्रचलित है। 'अलग-अलग वैतरणी' में खलील चाचा धार्मिक एकता का ज्वलंत उदाहरण है। 'किसकी पाँखे' कहानी में अशरफ चाचा धार्मिक एकता में विश्वास रखते हैं, 'शैलूष' की सावित्री, 'नीला चाँद' की शीलभद्रा देवी। झानू पंडित जैसे लोग धार्मिक एकता में विकृतियाँ पैदा करते हैं। धर्म के नाम पर आर्थिक और शारीरिक शोषण पर भी प्रकाश डाला गया है। 'नीला चाँद' में विनायक भट्ट कुँवारी कन्याओं को आर्थिक सहायता करता है और बदले में अपनी काम वासना को तृप्त करना चाहता है। बिस्सू मिसिर धर्मशाला के नाम पर वैश्यालय चलाता है।

आज भी ग्रामीण समाज में भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताओं, अंधविश्वासों को विशेष महत्त्व प्राप्त है। 'शैलूष' में सुरजीत नट के पिता चमाइन की प्रेतात्मा को हटाना चाहता है। गरीब ओझा को बुलाकर पूजा करता है। अपने स्वार्थ सिध्दि के लिए आज समाज में हजारो भोंदु साधू हैं, जो गरीब जनता का शोषण कर रहे हैं। 'पापजीवी' कहानी अंधश्रध्दा से भर पडी है। 'नीला चाँद' उपन्यास में शीलभद्रा विनायक भट्ट को श्राप देती है - "तुम्हारीपुरी में महामारियों का प्रकोप होगा। तुम लोग मक्खियो की तरह झुण्ड के झुण्ड मरोगे अन्न के अभाव में।" अंधश्रध्दा मानव की सबसे बडी कमजोरी बन जाती है। मनुष्य अपनी स्वार्थ सिध्दि के लिए भगवान से मनौतियाँ माँगता है। 'अलग-अलग वैतरणी' मे पढा-लिखा विपिन्न भाई को बदनामी से बचाने के लिए देवी से मनौती

माँगता है - "माँ सब ठीक कर देगी।" 'कुहरे में युध्द' में आनन्द जब घायल हो जाता है, तो भोजवर्म देव मनौती माँगता है, अपने काका के पूर्ण स्वस्थ होने की कामना करता है। देवी देवताओं की पूजा-अर्चना का भी चित्रण दिखाई देता है। आदिवासियों की देवी माँ, सत्ती मैया, खैती मैया, गुरुमान बाबा आदि। 'शैलूष' में आदिवासी नट शादी बिहा में देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। ऐसे चित्रण से भारतीय ग्रामीण जनता की भक्तिभावना को अभिव्यक्त किया है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का सांस्कृतिक विवेचन :-

संस्कृति शब्द की परिभाषा के संदर्भ में डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन, सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का। संस्कृति और सभ्यता के संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर का कथन - "संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा सूक्ष्म होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध।" भारतीय ग्रामीण संस्कृति के विविध पहलू हैं। ग्रामीण पर्व, त्यौहार, मेले, लोकगीत, लोककथाएँ, कीर्तन, विवाह, शिशु जन्म के समय किये जानेवाले संस्कार छठी बरही एवं अन्य रीति-रिवाज आदि ग्रामीण संस्कृति के सांस्कृतिक पहलु है। विवाह में दहेज देने और लेने की प्रथा आज भी बरकरार है। 'शैलूष' में लड़के के पिता को लड़की के पिता दहेज के रुप में कुछ पैसे देता है, जिससे विवाह की रस्म को पूरा किया जाता है। कुछ आदिवासी कबीले में शादी के लिए लड़के वाले लड़की वालों को दहेज देते हैं। 'आर-पार की माला' कहानी में रज्जब का पिता जुम्मन को दो सौ रुपये मेहर के रुप में देता है, निरु और रज्जब की सगाई हो गई। विवाह के बाद गाँवों में तीज भेजने की प्रथा आज भी प्रचलित है। 'अन्धकूप' कहानी में सोना भाभी का छोटा भाई तीज लेकर आता है। 'तकावी' कहानी में शंकर सिंह सरकार से तकावी का रुपया लेकर अपनी पुत्री को तीज भेजना चाहता है, शंकरसिंह कहता है - "हाँ भाई नयी-नयी शादी हुई है। दूसरे-तीसरे साल ही तीज फीकी-फीकी भेजी जायेगी तो समधी को तो बुरा लगेगा ही।" अपनों से बड़े लोगों के चरण छूना और आशीष पाना भारतीय संस्कार है। अक्सर बहू को सास-ससुर के

चरण छुने होते हैं। 'नीला चाँद' में सेनापति आनन्द की पत्नी चम्पक काशी के राजा कर्णदेव की राजरानी आहवल देवी के चरण छूती है। भारतीय समाज में चरण छूने की प्रथा आज भी प्रचलित है। गाँवों में शिशु के जन्म के अवसर पर किये जानेवाले संस्कार छठी बरही का भी वर्णन किया है। 'विन्दा महराज' कहानी में ठाकुर के घर बच्चे की बरही चित्रण हुआ है। विन्दा महराज गाता है -

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके
धनि वारी उमरिया नइहर तरसे।"

इस प्रकार हिजडों और नौकरों को अनाज एवं रुपये देकर नवजात शिशु के अभिभावक उनसे आशीष पाते। गाँवों मे यह प्रथा आज भी विद्यमान है। 'तो' कहानी में रामनवमी के मेले का वर्णन किया गया है। 'उपहार' कहानी में संक्रान्ति के त्यौहार का वर्णन हुआ है। गाँवों में पर्व और त्यौहार धूमधाम से मनाये जाते हैं। 'गली आगे मुडती है' में रक्षा बन्धन के पर्व का चित्रण हुआ है। शोभना जीजी रामानन्द को राखी बाँधती है जो बहन की रक्षा करे। कीर्तन-भजन का भी आयोजन अक्सर गाँवों में होता है। 'नन्हो' कहानी में सत्संग एवं कीर्तन का चित्रण हुआ है। लोकगीत और लोकनृत्य अलग-अलग प्रदेश के आंचल की सांस्कृतिक धरोहर है। हर प्रदेश का लोकगीत और लोकनृत्य अलग अलग होता है। लोकगीतों के माध्यम से ग्रामीण लोग अपने सुख दुःख को व्यक्त करते हैं। 'घाटियाँ गूंजती है' नाटक में भी गोपाल शर्मा पहाडों का गीत गुनगुनाता है -

"यह पहाड हमारे आँखे के तारे
इनको कभी ना भूल सकेंगे।

इस प्रकार डॉ शिवप्रसाद सिंह जी के गद्य साहित्य में उपरोक्त सभी समस्याओं का विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय का शीर्षक 'डॉ शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य का शिल्प' यह है। इस अध्याय में शिल्प विधान पर विवेचन हुआ है। शिल्प के बिना कला अधूरी होती है। शिल्प एक कौशल है, कारीगरी है।

¿Ö»Öß :-

आधुनिक युग में प्रयुक्त होनेवाली सभी शैलियों का बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया गया है। चितकबरी, मेडिए, तकावी, अलग-अलग वैतरणी, आदि साहित्य में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। आत्मकथनात्मक शैली यह सिंह जी की बड़ी प्रिय शैली है। 'मै' शैली, संवाद शैली, चेतनाप्रवाही शैली, पत्रात्मक शैली, डायरी शैली, प्रतीकात्मक शैली, सभी शैलियों को अपने साहित्य में अपनाया है।

³ÖÖÂÖÖ :-

भाषा को लेकर डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते है - "क्या कमाल की चित्रकारी सीखी है तुमने ! भाषा पढकर तो कभी-कभी लगता है कि यह मेरा शिवप्रसाद लिख रहा है।" पात्र के अनुसार भाषा का प्रयोग किया गया है। ग्रामकथाओं में लोकभाषा का प्रयोग हुआ है। मध्यकालीन साहित्य में अरबी-फारसी का प्रयोग हुआ है। पात्रानुकूल भाषा, चित्रात्मक भाषा, काव्यत्मक भाषा, ध्वन्यात्मकता आदि सभी का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है।

भाषा के कलात्मक प्रयोग के अंतर्गत प्रतीक, बिंब, मिथक, रुपक, संकेत और अलंकारों का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है। शब्द प्रयोग के अंतर्गत ठेठ ग्रामीण शब्द, तत्सम शब्द, तद्‌भव शब्द, बंगाली शब्द आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। मुहावरे और कहावतो का भी प्रयोग किया गया है। मुहावरें और कहावतें जैसे गागर में सागर भरकर एक बडे अर्थ को प्रस्तुत करते हैं। दूध का दूध पानी का पानी करना, हाथ साफ करना आदि कहावतो में 'करिया अच्छर भैंस बराबर', 'न साँप मरे न लाठी टूटे आदि कहावतों का प्रयोग गद्य साहित्य में मिलता है। इस प्रकार इस अध्याय में डॉ. शिवप्रसाद सिंह की भाषा, लोकोक्तियाँ - मुहावरें, चित्रात्मकता, अलंकारिकता, शैली बिंब और प्रतीक आदि का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है।

इस तरह इन पाँच अध्यायों में मैंने 'शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्म अध्ययन' का अध्ययन किया है। इस विषय पर अध्ययन करने के पश्चात निम्नलिखित प्रकार से मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाता हैं।

मूल्यांकन :-

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य के अध्ययन एवं निष्कर्ष के पश्चात इस मूल्यांकन पर पहुँचते है कि डॉ. शिवप्रसाद सिंह अष्टपैलू व्यक्तित्व के धनी है। प्रेमचंद के बाद शायद ग्रामीण एवं निम्न स्तर की आवाज को वाणी देने का काम डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने ही किया है। साहित्य की हर विधा पर कलम चलाई है। धीर गंभीर स्वभाव एवं कम बातें करना उनके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता है। मैं उस पार्टी का सदस्य हूँ जिसके सामने मनुष्य से बड़ी कोई इकाई नहीं है, उसी मनुष्य की अबाध विजययात्रा का ध्वजवाहक हूँ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी टूटी, पर शोषण का दमनचक्र वही का वही रहा। युवा पीढी का आक्रोश सेक्स में सिमट पड़ा है। नट जाति को सामान्य नागरिक के रुप में स्थापित किया गया है। बेटा और बेटी में समानता लाने का प्रयास किया है। ग्रामीण समाज अपने निर्णय सक्षम रुप से ले रहा है। नारी सदा ही उपेक्षित रही है और उसका शोषण घर से ही शुरु हो रहा है। आज पूरी दुनिया में हिन्दुस्तान की बदनामी इसीलिए हो रही है किवह सौ करोड जनता वाला देश अपनी पचास करोड स्त्रियों को गुलाम की तरह ट्रीट करता है। गुलामी के शिकंजे से नारी अभी भी पूरी तरह से बाहर निकल नही पाई है। पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, परिवेशगत परिवर्तन आदि के कारण नारी में नया आत्मविश्वास निर्माण हुआ है। नारी स्वावलंबी और स्वयंपूर्ण बनने लगी है। इसी कारण परिवार, परिवारिक संबंध, समाज में संघर्ष करती हुई कभी टूटती बिखरती हुई नजर आती है। नारी अब घर के अलावा समाज के हर क्षेत्र में अपना नाम रोशन करती हुई दिखाई दे रही है। वह पुरुषो से स्पर्धा नहीं, समान अवसर और सहयोग चाहती है। वर्ग-संघर्ष और वर्ग चेतना आधुनिक युग की देन है। शोषक वर्ग की पुख्ताह दिवारे आधुनिक विचारों के कारण बहने लगी हैं। वर्ग-विषमता की दरी खत्म होने लगी है। शोषण को खत्म करने के लिए धैर्य की जरुरत है। अब वह धैर्य ग्रामीण जनता में शिक्षा के कारण आया है। दिन ब दिन शोषण की कडी खत्म होती हुई नजर आ रही है। साम्राज्यवाद की लालसा मानवीयता की गरिमा को खत्म करती हुई नजर आ रही है। रिश्वत और दहेज आज प्रतिष्ठा बनकर रह गई है। विश्वमानवता की संकल्पना की जगह स्वार्थ ने ले लिया है। मुक्त बाजार के नामपर गरीबों को लूटा जा

रहा है। नारी अब जमींदारों का खुलकर विरोध कर रही है। आज भी हमारे देश में जाति के नाम पर वर्ग-संघर्ष जारी है, यह भारतीय समाज का वास्तविक सत्य है, इसे नकारा नहीं जा सकता। सामाजिक मूल्यों में विशेष परिवर्तन आया है। आधुनिक परिवेश में शिक्षा के कारण आज नारी यौन-संबंध के संदर्भ में खुलकर बात कर रही है। अंधश्रध्दा, रुढी-परंपराओं को नकारते हुए युवा पीठी प्रेमविवाह कर रही है। आर्थिक अभाव के कारण नारी आज यौन-संबंध का शिकार हो रही है। बेरोजगारी की समस्या दिन ब दिन बढती जा रही है, जिसके फल स्वरुप अनेक विकृतियाँ जन्म ले रही हैं। नारी प्राचीन मान्यताओं को छोडकर आधुनिक मान्याताओं को अपना रही है। संयुक्त परिवार अब नामशेष होते जा रहे हैं। ग्रामीण समाज में शादी के संदर्भ में लड़की पूरी तरह से अपने माता-पिता पर निर्भर है। इसीलिए हजारों लड़कियाँ अनमेल विवाह का शिकार हुई हैं। भारतीय जनतंत्र में, शासन व्यवस्था में,पग-पग पर रिश्वत और भ्रष्टाचार दिखाई देता है, भ्रष्टाचार की जड़ ने ही विकास को रोक दिया है। बेरोजगारी, शिक्षा का प्रभाव, नौकरी की समस्या, प्रकृति की अनियमितता पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता का आकर्षण ग्रामीण मजदूर किसान, नगर की और आकृष्ट हो रहा है। जिसके फल स्वरुप नगराभिमुखता बहुत बडी समस्या बनकर रह गयी है। देश का उज्वल भविष्य छात्रों के हाथ में है, इसलिए छात्रों को गांधीवादी विचारों की शिक्षा की आवश्यकता है।

ग्रामीण समाज में धर्म के नामपर अंधश्रध्दा पनप रही है। स्वार्थी और ढोंगी साधू ग्रामीण जनता का धर्म के नाम पर अभी भी शोषण कर रहे है। संस्कृति देश की धरोहर है। भारतीय संस्कृति, विकृति में बदल रही है। भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक पहलू नगरीय परिवेश में नामशेष होते जा रहे हैं। यह भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी हानि है। सांस्कृतिक पहलूओं को बचाने का पूरा दायित्व नयी पीढी पर है। पात्र के अनुरुप भाषा का प्रयोग करने में डॉ. शिवप्रसाद सिंह सिध्दहरत थे। सभी शैलियों का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। कहावतें, मुहावरें, सूक्तियों का प्रसंगानुरुप प्रयोग किया गया है। यह उनके गद्य साहित्य की बहुत बड़ी सफलता है।

'शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन' विभिन्न समस्याओंसें जूझता हुआ भारतीय समाज संकुचित दायरों को छोडकर विस्तीर्ण दायरों को अपनाने

में मन, बुध्दि, अंतरात्मा से परीक्षित होकर नई संकल्पनाओं को अपने भीतर समा लेंगे तो आनेवाली नई पीढी इनके नक्शे कदमों पर चलेगी जो, उनके लिए मार्गदर्शक होगी। मार्गदर्शक तत्व जो इस प्रकार हैं।

1. डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में नीति मूल्यों का ऱ्हास हो रहा है, वहीं नई नीति मूल्यों का आविर्भाव हो रहा है। समाज में प्रचलित मूल्यों का जतन होना अनिवार्य है।
2. समाज में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विषमता आज भी विद्यमान है। इस विषमता को समानता में परिवर्तित करना आवश्यक है।
3. डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गद्य साहित्य में ग्रामीण समाज की आर्थिक स्थिति दयनीय और शोचनीय है। शिक्षा और रोजगार के साधनों में बढोत्तरी करना आवश्यक है। निम्न वर्ग को शिक्षा क्षेत्र में सुअवसर प्राप्त करके देना, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आये।
4. समाज की उत्पादन पध्दतियों में यदि असंगतता की जगह सहयोग, सद्‌भाव एवं विचार विनिमय का समावेश हो जाय तो शायद भावी समाज में भी किसी प्रकार का वर्ग-संघर्ष नहीं रहेगा।
5. आधुनिक युग में अर्थ के कारण संयुक्त परिवार टूट कर बिखर रहे हैं। जो हमारे देश की प्रगति में हानिकारक सिध्द होगा।
6. आधुनिक युग में सांस्कृतिक मूल्यों की क्षति होना यानि आपसी स्नेह भाव, लगाव और एकता पर प्रहार होना ही है। सांस्कृतिक पर्व, त्यौहारों का बनाये रखना नई पीढी की जिम्मेदारी है।
7. सांस्कृतिक त्यौहार विशिष्ट वर्ग या क्षेत्र को एक परिधि में बनाये रखते हैं।
8. डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने कहा है शिक्षा शेरनी का दूध है जो पीता है वह गुरगुराता ही है,उक्ति के अनुसार ग्रामीण परिवेश के पिछडे लोगों में शिक्षा का प्रसार करना आवश्यक है।
9. आज नारी आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर होकर नारी ने अपने लिए स्वतंत्रता के आयाम तय किए हैं, कितु अपने सुदृढ आत्मविश्वास के अंतर, सामाजिक

विसंगतियाँ उसके विकासमार्ग में बाधा बन रही हैं, घर और बाहर सामंजस्य बनाए रखने के उपक्रम में नारी मानसिक तनावों से भरी रहकर अनास्था घुटन एवं टूटन का अनुभव कर रही है।

10. नई पीढी के रुमानी प्रवृत्ति के कारण नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। रुमानी प्रवृत्ति में परिवर्तन करना ही नई पीढी का उत्तरदायित्व है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'शिवप्रसाद सिंह का गद्य साहित्य : एक विवेचनात्मक अध्ययन' में समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवेश में हमारा समाज एक ऐसे चौराहे पर खडा है, जहाँ से एक ओर परंपरागत धाराएँ निकलती हैं तो दूसरी ओर आधुनिक धाराएँ बहती हैं। आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए मानव को सभ्यता एवं संस्कृति का रक्षक बनना चाहिये।

मुल ग्रंथ

1. अलग-अलग वैतरणी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद सातवां संस्करण, २००८
2. अन्धकूप - (सम्पूर्ण कहानियाँ), डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली Ãö., 2005
3. अमृता - (सम्पूर्ण कहानियाँ-३), डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली Ãö., 2008
4. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, ‡»ööÆö²ööû Ãö., 1970
5. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, द्वितीय सं., १९८८
6. उत्तरयोगी श्री. अरविन्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ¯öÉö´ö Ãö., 1998
7. एक यात्रा सतह के नीचे (सम्पूर्ण कहानियाँ - २) डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं., २००५
8. औरत - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, नई दिल्ली - ¯öÉö´ö Ãö., 1992
9. कहानियों की कहानी - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं, 2008
10. क्या कहूँ कुछ कुछ कहा न जाये - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, १९९५
11. किस-किसको नमन करु - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्कारण, १९८७
12. कुहरे में युध्द - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, नई ×¤û»»öß, 1995

13. खालिस मौज में - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८
14. गली आगे मुडती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पंचम संस्करण, २००८
15. घाटियाँ गूंजती है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी तृतीय सं., १९९५
16. दिल्ली दूर है - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, १९९३
17. नीला चाँद - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली आवृत्ति, २००९
18. मानसी गंगा - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम सं., १९८६
19. मुरदासराय - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, १९६६
20. मेरे साक्षात्कार - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, १९९५
21. मंजुशिमा - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली द्वितीय Ã0., 1997
22. विघापति - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००८
23. वैश्वानर - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय सं., २००४
24. शान्तिनिकेतन से शिवालिक - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली प्रथम सं., १९८८
25. शैलूष - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग होऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८९
26. साब्जा पत्र कथा कहे - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेयी, रुपा एण्ड कंपनी, १९९५
2. इंडियन मिडिल क्लासेज, डॉ. बी.बी. मिश्र, ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय दिल्ली, 1961
3. E.M. Burgess and H.J. Lock the family.
4. ए.टी. हवाइट - कल्चरालॉजिकल इण्टरप्रिटेशन ऑफ ह्युमन बिहेवियर
5. कथाकार शिवप्रसाद सिंह - कामेश्वर प्रसाद सिंह, श्रीनिवास प्रकाशन, नई x¤»»Öß, 2006
6. किंबाल यंग - डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
7. गिता रहस्य - बाल गंगाधर तिलक
8. जर्मनभावी नव जागृती की क्षीणतम तलहट सिध्द हुआ है-एंजेल्स
9. द्वन्दात्मक भौतिकवाद - श्री हीरालाल पालित
10. दि सोशालॉजी ऑफ रिजीजन - थॉमस दिया, द युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस ÃÖ., 1993
11. धर्म और समाज-डॉ.राधाकृष्ण Books from India in Londan १९८०
12. प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यास मनुष्य और बिंब, डॉ. सुरेन्द्र तिवारी
13. प्रतिदान - रांगेय राघव, नेहा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
14. प्रेमचंद कथा साहित्य: समीक्षा और मूल्यांकन - डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी
15. प्रश्नो के घेरे में - संपा. राजेन्द्र अवस्थी
16. बीहड पथ के यात्री - संपा. प्रेमचंद जैन, मधुबन एज्युकेशनल बुक नई दिल्ली, 1983
17. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, भवतशरण उपाध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००९
18. भारतीय चिन्तन परंपरा - के दामोदरन D.C. Books Kottayam (Kerala) 1982.

19. भारतीय सामाजिक संस्थाएँ - डॉ. के.के. मिश्र
20. भीष्म साहनी - उपन्यास साहित्य - डॉ.विवेक द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई x¤»»Ößß 2006
21. मार्क्सवाद और रामराज्य - स्वामी करपात्री महाराज
22. R.N. Maclver and C.M. Page. Society.
23. Luduri G. Feurtach and the out come of classical German philosophy - E Angles.
24. लेखक का समाजशास्त्र - डॉ. विश्वंभरनाथ गुप्ता विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
25. व्यास सम्मान - संपा. टंडन, डॉ.सत्यदेव त्रिपाठी का लेख
26. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि - संपा. पांडेय शशिभुषण शीतांशु, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम सं., १९९५
27. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन ‡»ÖÖÆÖ²ÖÖ¤ ¯ÖÏ£Ö´Ö ÃÖÓ., 1988
28. शिवप्रसाद सिंह - संपा. अरुणेश नीरन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली ¯ÖÏ£Ö´Ö ÃÖÓ., 1994
29. शिवप्रसाद सिहं का परवर्ती कथा साहित्य - डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, अमन प्रकाशन, कानपूर प्रथम सं.,१९९३
30. शैली विज्ञान - भोलेनाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, २००४
31. स्टडीज इन स्ट्रक्चर - जी.डी. एच कोल ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1955
32. समाजवाद वैज्ञानिक और काल्पनिक - एंजेल्स मॅकमिलींयन रेफरन्स यू.एस.ए., 2008
33. साहित्यिक निबंध - डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
34. हिंदी उपन्यासों का शिल्पविधान - डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा
35. हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना - डॉ. प्रताप नारायण टंडन

36. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - डॉ. मुंजुलता सिंह

37. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन - डॉ.गणेशन, विजय पुस्तक मंदिर लोकसंगम प्रकाशन हिंदी प्रचारक पुस्तकालय

38. हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ. जनेश्वर वर्मा

39. हिंदी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - डॉ. त्रिभुवनसिंह, हि.पु.बनारस सं.१९७३

40. हिंदी उपन्यास में कला शिल्प का विकास, डॉ. प्रताप नारायण टंडन हि.सा.मं. लखनऊ, १९५९

41. हिंदी उपन्यासो में - प्रतीकात्मक शिल्प - डॉ. सुशीला शर्मा

42. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ.बच्चन सिंह, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई x¤»»ÖÌ, 1996

पत्र-पत्रिकाएँ

1. अक्षर भारत नई दिल्ली सोमवार दि. २१ अगस्त २००० (रुपसिंह का लेख)
2. अक्षरा - अप्रैल, जून १९९५
3. आलोचना - डॉ. भगीरथ मिश्र अक्टुंबर-दिसम्बर, १९८५
4. आजकल - मार्च, १९९३
5. कथा देश - नवम्बर, १९९८
6. जनसत्ता दिल्ली, ४ अक्टुबर १९८८ (कृष्णदत्त पालीवाल का लेख)
7. धर्मयुग संपा. - धर्मवीर भारती, ४ मई, १९८६
8. प्रकर - राणा प्रताप बाग, नई दिल्ली, जनवरी १९९५
9. भाषा - नवम्बर-दिसंबर, २०००
10. मार्क्सिस्ट फिलासफी : बी एफानसेव फारेन लेग्यूवेजज पब्लिकेशन हाऊस मॉस्को
11. मेनिफेस्टो ऑफ दि कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्स एंजेल्स, सलेक्टेड वर्क्स Vol -१ प्रोसेस पब्लिशर, मॉस्को युनायटेड, १८४८
12. राष्ट्रवाणी - जुलाई-अगस्त, २००२ डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे के साक्षात्कार
13. राष्ट्रीय सहारा दि. २५/१०/१९९८
14. साहित्य अमृत नवम्बर १९९८
15. सारिका पाक्षिक ०१ फरवरी १९८० टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
16. हिंदुस्थानी - जनवरी-जून १९९१
17. हिंदुस्थानी - लोकतंत्र विशेषांक जनवरी-जून १९९९

कोश

1. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइन्सेस, मॅकमिलियन रेफरन्स, यु. एस. ‹., 2008
2. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सायन्सेस, वॉल्यूम III, मॅकमिलीयन रेफरन्स यु.एस.ए. २००८
3. इनसाईक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वॉल्युम - १०
4. बृहत हिंदी कोश - कैलाश वाजपेयी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८८
5. मानक विशाल हिंदी शब्द कोश - डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री
6. राजपाल हिंदी शब्दकोश - डॉ. हरदेव वाहरी
7. वाल्युम - कैलाश वाजपेयी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८५